

७११२५  
नारायणदेवज्ञकृत.

# मुहूर्तमार्तंडः ।

संस्कृत मार्तंडवल्लभा टीका

व

सटीक मराठी भाषांतर

द्वितीय आवृत्ति

विष्णु बाबुदेव शास्त्री वरी यांनी मराठीत केलें

हें

बीळकृष्ण लक्ष्मण पाठक

यांनी

‘ जगदीश्वर ’ छापखान्यांत छापून प्रसिद्ध केले.

सन १९०७ शके १८१९

सन १८६७ चे २५ वे आवृत्तिप्रमाणें सत्यं तत् सर्वं भासत  
कार्यानि आपले स्वाधीन ठावले आहेत.

किंमत १। रुपाया.

## प्रस्तावना.

सृष्टि उत्पन्न करणाऱ्या ईश्वरानें प्राणिमात्रांच्या सुखाकरिता अनंत साधनें केलीं आहेत आणि त्यांत पुढें होणाऱ्या सुखाचें साधन ज्योतिषा वांचून दुसरें कोणतेंच नाही. व आपल्या हिंदुधर्माचे प्रवर्तक जे वेद त्यांतहि हें ज्योतिष एक अंग गणिलें आहे, परंतु कालगतीनें गीर्वाण भाषेचें ज्ञान कमी होत जाऊन त्या विषयीं अज्ञान मात्र वाढलें व सर्व लोकांस या आर्यभाषेंत असलेल्या ग्रंथांचा स्वरा हेतु काय आहे हें समजण्यास कठीण पडतें; करितां ही अडचण दूर व्हावी ह्मणून 'मुहूर्त मार्तंडाची' मराठी भाषेंत स्पष्ट व साधार अशि भाषांतर रूपानें व्याख्या केली आहे.

आतां आजपर्यंत संस्कृत ग्रंथांचीं मराठींत भाषांतरें अनेक झालीं आहेत व या "मुहूर्त मार्तंडाचेंही" भाषांतर अनेकांनीं अनेक प्रकारचें केलें आहे परंतु मूळ श्लोकांतील गूढार्थ किंवा सांकेतिकार्थ स्पष्ट दाखविणारी जी 'टीका' तिचा अर्थ स्पष्ट रीतीनें कोणीच केला नाही. करितां श्लोकार्थ आणि टीकार्थ निरनिराळे करून सर्व लोकांस सहज जाणतां यावें ह्मणून हें मराठी भाषांतर केलें आहे.

ह्या ग्रंथांत १३ प्रकरणें असून श्लोक १६० आहेत. मनुष्याची कोणतीही कृति निर्दोष होत नसते व ज्याचे त्याला दोषही दिसत नाहींत. ह्याकरितां विद्वानांला गुण ग्रहण करून दोष कळविण्याविषयीं माझी सविनय प्रार्थना आहे, त्यांनीं ह्या ग्रंथांत असलेले दोष मला अवश्य कळवावे, ह्मणजे पुढील आवृत्तींत काढून टाकितां येतील.

ह्या प्रसिद्ध मुहूर्तमार्तंड ग्रंथाचा कर्ता देवगिरी (दौलताबाद) जवळील प्रसिद्ध चृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग ज्यास सांप्रत वेरुळ ह्मणतात, त्याचे उत्तरेस नजीकच टापरगांवचा राहणारा माध्यंदिनशास्त्रीय कौशिक गोत्री 'हरि' ह्याचा पुत्र 'अनंत' अनंताचा पुत्र 'नारायण' दैवज्ञ यानें हा ग्रंथ शके १४९३ त केला असें ग्रंथकारानें ग्रंथाचे शेवटीं सांगितलें आहे, ह्यावरून आज या ग्रंथाला तीनशें छत्तीस वर्षे झालीं. व ह्या ग्रंथकारानेंच आपल्या ग्रंथावर 'मार्तंडवल्लभा' नांवाची टीका केली आहे. ग्रंथकर्त्याची टीका असल्यामुळे ग्रंथांतील आशय स्पष्ट न झाल्याचा संशय घेण्यास जागा नाही.

भाषांतरकर्ता.

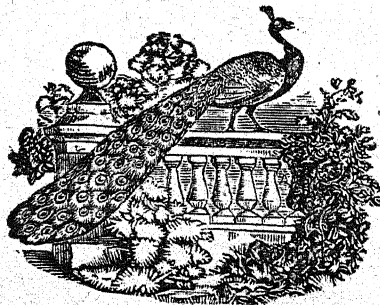


# ॥ अथ मुहूर्तमार्तंडस्य विषयानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

| प्रकरण.   | पृष्ठ.   | प्रकरण.  | पृष्ठ.   | प्रकरण.  | पृष्ठ.   | प्रकरण.  | पृष्ठ.  |
|---|--|--|--|--|--|--|---|
| टीकागतसंगलाचरण,<br>श्लोक व्याख्या.  | १  | उपनयनास अशुभ ग्रह<br>व विद्यारंभकाल.   | ३८   | विषधटी व त्यांचे अप-<br>वाद.   | ६७   | श्राद्धनियम व सप्तपदीचा<br>शास्त्रार्थ.  | ९३  |
| संगलाचरण.   | २  | केशांत, समावर्तन व<br>छुरिकाबंधन.  | ४०   | विवाहाचे अशुभ व शुभ-<br>ग्रह.  | ६९   | स्त्रीरहितांचा विधि व<br>विषययोग.  | ९४  |
| त्याज्यप्रकरणम् १<br>शुभकर्म त्याज्य.<br>उपग्रह दोष.  | ३<br>५   | विवाहप्रकरणम् ४<br>घटित वर्णविचार.<br>वश्य, नक्षत्र, योनि.<br>राशिस्वामी आणि मित्र,<br>शत्रुग्रह.<br>गण व कूट.<br>कूटापवाद, नाडी.<br>नूतूर त्याचा अपवाद व<br>दुःकूटाचीं दानें.                           | ४१<br>४२<br>४४<br>४५<br>४७                         | अशुभ ग्रहांचे अपवाद.<br>सामान्य दोषांचे अपवाद<br>व भावफल.<br>केशांचीतील नतसाधन.<br>स्थूलमानाचे भावसाधन<br>तन्वादि द्वादशभाव.<br>कर्तरी व तिचे अपवाद.<br>पंचकदोष व त्याचा अ-<br>पवाद.   | ४१<br>४२<br>४४<br>४५<br>४७<br>४९                   | विषकन्यायोग व मूलादि<br>नक्षत्रांचीं फळें.<br>विषपुत्रयोग व सहामा-<br>सांत निषिद्ध.<br>अनेक शास्त्रार्थ.<br>प्रतिकूल निर्णय.<br>सूतक निर्णय व सिंहस्थ<br>निर्णय.   | ९५<br>९५<br>९६<br>९७<br>९९<br>१०२   |
| नक्षत्रप्रकरणम् २<br>नक्षत्रांचे स्वामी.<br>नक्षत्रांच्या स्थिरादि संज्ञा<br>आणि शुभ पापग्रह.<br>दिनरात्रि नक्षत्रें.   | ७<br>८<br>९  | वर्ण, वश्य, नक्षत्र योनी<br>ह्यांचे गुण.<br>ग्रहांचे व गणांचे गुण.<br>कूटाचे व नाडीचे गुण.<br>गुणमेलन कोष्टक.<br>विवाहकाल.<br>विवाह नक्षत्रें आणि वेध.<br>वेधानिर्णय.<br>पंचशलाका व सप्तशला-<br>का चक्र. | ४९<br>५०<br>५२<br>५३<br>५४<br>५६<br>५७<br>५८<br>५९ | राशिशुद्धि व अंशशुद्धि.<br>लक्षांशशुद्धि, नवांश प्र-<br>वृत्ति व लग्नसाधन.<br>उदयास्त शुद्धि व होरा<br>साधन.<br>जामित्र आणि त्याचे अ-<br>पवाद.<br>ग्रहदृष्टि व षड्वर्ग.<br>षड्वर्ग साधन.<br>रविसाधन व लग्नाचा<br>इष्टकाल.        | ७५<br>७६<br>७७<br>७९<br>८०<br>८१<br>८२<br>८३       | नामराशीचा व जन्मरा-<br>शीचा निर्णय.<br>नामनक्षत्राचें ज्ञान.<br>अवकहड चक्र.<br>अग्न्याधानप्रकर-<br>णम् ५<br>अग्न्याधान.  | १०४<br>१०५<br>१०७<br>१०७  |
| संस्कारप्रकरणम् ३<br>प्रथमरजोदर्शनी अशुभ.<br>साधारण लग्नबल.<br>गर्भाधानकाल.<br>पुंसवन, सीमंतोन्नयन.<br>जातकर्म, नामकरण.<br>पालकारोहण, भूम्युप-<br>वेशन, दुग्धपान, नि-<br>ष्क्रमण.<br>कर्णवेध.<br>अन्नप्राशन.<br>अस्ताचा निर्णय वगैरे.<br>चौलाचा काल व निर्णय.<br>चौलाचे वार, नक्षत्रें व<br>लग्नबल.<br>क्षौरनिर्णय आणि गर्भि-<br>णीपतिधर्म.<br>क्षौर आणि अक्षरारंभ.<br>उपनयन काल.<br>गुहबल.<br>गुरूचा वेध व उपनयनाचे<br>मासादि.<br>उपनयनाचीं नक्षत्रें,<br>वेदपति व लग्नबल. | ११<br>१६<br>१७<br>१९<br>२०<br>२२<br>२४<br>२६<br>२७<br>२९<br>३०<br>३२<br>३३<br>३४<br>३५<br>३७<br>३८ | संघेदोषादि व भद्राक-<br>रणाचा काल.<br>गंडांत, चंडायुध, एका-<br>गैल.<br>यामार्थ, कुलिक, काल,<br>कंटक, यमघंट.<br>दुर्मुहूर्त. महापात, मू-<br>ल्युयोग.  | ६०<br>६१<br>६२<br>६३<br>६५<br>६६                   | इष्टकाल साधन आणि<br>घटिकास्थापन.<br>गोधूल लग्न.<br>विवाहवेदी व अंगकमीचे<br>मुहूर्त.<br>वधूपवेश.<br>प्रथमवर्षी कन्येनें राह-<br>ण्याचे नियम.<br>पुनर्विवाह मुहूर्त.<br>अनेक शास्त्रार्थ.<br>संगलकार्यांतले नियम व<br>मंडपोत्थापन. | ८४<br>८५<br>८६<br>८७<br>८८<br>८९<br>९०<br>९१<br>९२ | वास्तु प्रकरणम् ६<br>ग्रामविचार.<br>काकिणी व भूमीचे वर्ण,<br>रस व गंध.<br>भूमिनियम व शल्यज्ञान.<br>भूमिपरीक्षा.<br>गृहाचें दिशासाधन व<br>मासादि.<br>नक्षत्रशुद्धि आणि वृष-<br>चक्र.<br>गृहद्वार नियम आणि<br>आयसाधन.<br>राशिपरस्वें, द्वारदिशा<br>गृहनक्षत्र व व्यय.<br>गृहनक्षत्रांच्या राशि व<br>ध्रुवादि गृहनाम. | १०९<br>११०<br>११२<br>११४<br>११५<br>११६<br>११८<br>११८<br>११९<br>१२०<br>१२२ |

| प्रकरण.                                | पृष्ठ. | प्रकरण.  | पृष्ठ. | प्रकरण.   | पृष्ठ. | प्रकरण.  | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|---|--------|--|--------|
| शुवादिकांची अक्षरे व<br>अक्षकशुद्धि.   | १२३    | ललाटगत ग्रह.                                   | १४२    | कृषिकर्म व नांगरण्याचा<br>सुद्धर्त.                               | १५९    | अनध्यायप्रकरणम् ९  | १७७    |
| शुभग्रहाविषयी नियम.                    | "      | वक्रग्रहांचा निषेध व<br>ग्रहांची जन्मनक्षत्रे. | १४३    | हलचक्र, बीज पेरणे, शेत<br>कापणे व फणिचक्र.                        | १६१    | अनध्याय.<br>अनध्याय निर्णय.                                  | १७८    |
| चतुरस्र साधन.                          | १२५    | प्रयाणलमी शुभग्रह.                             | १४४    | मळणीचा खांब पुरणे,<br>नवान्न प्रासन, नृत्य<br>व संगीत.            | १६२    | नैमित्तिक अनध्याय.<br>अन्य अनध्याय.                          | १८०    |
| सूत्रन्यास, नाभिपूरण.                  | १२६    | प्रयाणाला अशुभ व शुभ-<br>ग्रह.                 | "      | पशुसंबंधी कर्मे.<br>अश्वकर्मे व अश्वचक्र.                         | १६४    | प्रदोष अनध्याय.  | १८२    |
| शकुन्यास, रेषाकरण व<br>भित्तिरचना.     | १२७    | संमुख शुक्र व बुधाचा<br>अपवाद.                 | १४५    | अभ्यंगाचा काळ.  | १६५    | पल्लीसरठपतन-<br>प्रकरणम् १०                                  |        |
| द्वारस्थान, स्तंभस्थापन<br>व उंची.     | १२९    | संमुखशुक्राचा अपवाद<br>व प्रयाणविधि.           | १४६    | आमलकस्नान, सूतिका-<br>स्नान.                                      | १६६    | पल्लीसरठपतन.   | १८५    |
| पदार्थ ठेवण्याची स्थाने.               | १३२    | गमनकल्यांचे व प्रस्था-<br>नाचे नियम.           | १४८    | औषध करणे व रोग्यास<br>देणे.                                       | १६८    | गोचरप्रकरणम् ११  |        |
| आवादि विचार व गृह-<br>प्रवेश मास.      | १३३    | शुभशकुन.                                       | १४९    | रोगाचा अवाधि व स्नान.<br>द्रव्याचा व्यवहार.                       | १६९    | शुभग्रह, ताराबल.<br>ग्रहांचे वेध.                            | १८८    |
| गृहप्रवेश आणि कलश-<br>चक्र.            | १३४    | अपशकुन.  | १५१    | नष्टद्रव्यलाभ, द्रव्य नि-<br>क्षेप, मन्त्रग्रहण, वृ-<br>क्षारोपण. | १७०    | वेध कोष्टक.  | १९०    |
| गृहप्रवेशाची लभशुद्धि.                 | १३५    | शुभाशुभशकुन.                                   | १५३    | वापीकृपादि, राजदर्शन<br>व शांतिक, पौष्टिक.                        | १७३    | संक्रांति प्रकर-<br>णम् १२                                   | १९१    |
| यात्रा प्रकरणम् ७                      |        | विपरीत शकुन व परि-<br>हार.                     | १५४    | दिव्य आणि अस्तनिर्णय.   | १७४    | अधिकमास व क्षयमास.   | १९३    |
| यात्राकाल, नक्षत्रे वगैरे.             | १३६    | राज्याभिषेक व देवस्था-<br>पन.                  | १५५    | गुरुशुक्रास्ताचे अपवाद.   | "      | अलंकार प्रकर-<br>णम् १३                                      |        |
| शूल व योगिनी.                          | १३७    | वस्त्रधारण, क्षालन वगैरे                       | १५६    | तार्थियात्रा निषेध व प्रेत-<br>कर्म निषेध.                        | १७५    | ग्रंथकल्यांचा वंश व स्थान<br>ग्रंथपठन फल व श्लोक-<br>संख्या. | १९८    |
| परिघदोष.                               | १३८    | पुरुषांचे अलंकार चारण<br>व क्रयविक्रय.         | १५७    |   |        | ग्रंथांचा काळ व प्रार्थना.                                   | "      |
| गमननिषेध व अभिजित.                     | १३९    | धनिष्ठा पंचकांत वज्ये,<br>सेवा व संन्यास.      | १५८    |   |        |  |        |
| गमन नियम व अडल-<br>विडल.               | १४०    |  |        |   |        |  |        |
| चारशूलदोहद व दिशा-<br>दोहद.            | १४१    |  |        |   |        |  |        |
| प्रयाणची लभशुद्धि व<br>दिशांचे स्वामि. | "      |  |        |   |        |  |        |

॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥



॥ श्रीः ॥

## ॥ मुहूर्तमार्तण्डः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अविघ्नमस्तु ॥ मार्तण्डोऽवतु वाचं नः पादैर्जाड्यतमोहरः ॥ वृत्तवद्धतनुः  
सेव्योऽभीष्टदो विश्वलोचनः ॥१॥ अर्थद्वयवाची ॥ तत्र प्रथमं सूर्यपक्षे । मार्तण्डः श्रीसूर्यः नोऽस्माकं  
वाचं अवतु रक्षतु । किं लक्षणो मार्तण्डः । वृत्तवद्धतनुः वृत्ते मंडले वद्धा तनुर्यस्य स तथा । तथा च  
स्मृतौ । सशंखचक्रं रविमंडले स्थितं कुशेशयाक्रांतमनंतमच्युतमित्यादि । श्रुतिरपि । य एष  
तस्मिन् मंडले पुरुषः सोऽग्निरित्यादि । पुनः किं लक्षणः पादैः किरणैर्जाड्यतमोहरः जाड्यं पातकं  
शीतं वा तमोऽधकारस्तद्धरतीति तथा । पुनः किं सेव्यः सेवितुं योग्यः अभीष्टफलदातृत्वात् । पुनः  
किं अभीष्टदः सेवितः सन्नभीष्टार्थदायीत्यर्थः । पुनः कथंभूतः । विश्वलोचनः विश्वलोच्यतेऽनेनेति  
विश्वलोचनः लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरमित्यादित्यहदय उक्तत्वात् । अथ ग्रंथपक्षे । मार्तण्डो मुहूर्तमार्तण्डः नः  
वाचं अवतु । किंलं वृत्तवद्धतनुः वृत्तानि ग्रहर्षिणीशार्दूलविक्रीडितादीनि तैर्निबद्धा तनुर्यस्यस  
तथा । पुनः किं पादैर्जाड्यतमोहरः पादैर्वृत्तचरणैर्जाड्यं मूर्खत्वं तदेव तमः तद्धरतीति तथा । पुनः  
किं सेव्यः निरंतरं पठनीय इत्यर्थः । पुनः किं अभीष्टदः यथोक्तमुहूर्तव्युत्पत्तिकरणादभीष्टार्थं  
सिद्धिकारीत्यर्थः । पुनः किं विश्वलोचनः समयप्रकाशकत्वात् कुर्वे मुहूर्तमार्तण्डटीकांमार्त  
ण्डवल्लभाम् इयमाकल्पमेतेन दीव्याद्विप्रास्यवेद्यस्तु ॥ २ ॥ इह शास्त्रे तावत्संबंधाभिधेयप्रयो-  
जनान्युच्यते । आग्रहादिविनिःसृतमिदं वेदांगमिति संबंधः । उक्तं च नारदमुनिना स्वसंहितायां  
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमं । अस्य शास्त्रस्य संबंधो वेदांगमिति धातृत इति ॥  
अत्राप्युक्तं । पूर्ववाक्यार्थमादाय ग्रंथोऽयं रचितो लघुरिति ॥ त्याज्यनक्षत्राद्यर्तुलग्नगोचरगर्भा-  
धानादिसंस्कारविवाहाग्न्याधानवास्तुयात्रामिश्रानध्यायपत्नीग्रहगोचरसंक्रांतिकथनमभिधेयं तथाच  
नारदः । अभिधेयं च जगतः शुभाशुभनिरूपणमिति । अस्य प्रयोजनं मुहूर्तैर्नानाकार्यसाधनं अस्य  
सम्यग्ज्ञानान्मोक्षावाप्तिरिति वा । किमेभिरुक्तैरित्यत्रोच्यते । नृणां संबंधाभिधेयप्रयोजनकथनाच्छा-  
स्त्रेप्रवृत्तिर्जायते । उक्तं च । सिद्धिः श्रोतृप्रवृत्तीनां संबंधकथनाद्यतः । तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु संब-  
धः पूर्वमुच्यते ॥ किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्ठस्तु केनचित् । यदि न प्रोच्यते तस्मै फलं शून्यं  
तु । तद्वेत् सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वाऽपि कस्याचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्केन न  
गृह्यत इति ॥ इह शास्त्रे कस्याधिकार इति प्रोच्यते द्विजस्यैव वेदांगत्वात् । यतः षडंगो वेदो हि  
द्विजैरेवाध्ययनीयो ज्ञातव्यश्च । तथाचोक्तं भास्करीयसिद्धांतशिरोमणौ । तस्माद्विजैरेध्ययनीयमेत  
तत्पुण्यं रहस्यं परमं पवित्रं । यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थमोक्षानलभते यशश्चेति ।  
शिष्टास्तावच्छास्त्रारंभे सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता इति शास्त्रेण सर्वारंभेष्वंतरायप्राप्तौ  
सत्यांधमेणपापमपनुदतीति श्रुतिसिद्धं प्रयोजनमास्थाय स्वास्ति न इंद्रो वृद्धश्च वा इति श्रुतिलिगाश्च ।  
ग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरिसमाप्तये मंगलमाचरति । तस्मान्माध्यंदिनीयो ब्राह्मणो नारायणो नारायणा-  
च्चावाप्तमतिज्योतिःशास्त्रसंहितास्कंधं चिकीर्षुरशेषप्रत्यूहोपशांतयेऽभिमतदेवतानमस्कारलक्षणमं-  
गलपूर्वकं ग्रंथकरणप्रतिज्ञां ग्रहर्षिण्याऽऽह—

टीकार्थ—ज्यानें आपलें शरीर मंडलामध्ये बांधलें आहे तोच अर्थ स्मृतीत सांगितला आहे कीं, रविमंडलामध्ये  
शंखचक्राला धारण करणारा, कमलानें आक्रांत असलेला अनंत अच्युत भगवान् आहे. तसेंच श्रुतांतही सांगितलें आहे  
कीं, जो हा पुरुष रविमंडलामध्ये आहे तो अग्नि आहे तो मार्तण्ड आपल्या किरणांनीं पातक आणि थंडी ह्यांचा नाश करणारा,  
तो सेवा करावयाजोगा आहे कारण कीं, तो इच्छित फल देणारा आहे, सेवा केली असतां इच्छित देणारा आहे.

ज्याच्या योगाने सर्व विश्व पाहतां येतें असा, असाच अर्थ आदित्यहृदय ग्रंथांत सांगितला आहे. तो सूर्य आमची वाणी रक्षण करो. आतां ह्याचा मार्तंड ग्रंथाकडे लागणारा दुसरा अर्थ असा कीं, ज्याचें शरीर ग्रहर्षिणी, शार्दूलविक्रीडित इत्यादि वृत्तांनीं बांधिलें ह्मणजे रचिलें आहे. ज्याच्या पादांनीं ह्मणजे श्लोकांच्या चरणांनीं जाव्य ह्मणजे मूर्खपणा हाच एक आधार त्याचा नाश होतो. जो नेहमीं सेवन करण्याजोगा ह्मणजे पाठ करण्याजोगा आहे. जो इच्छित देणारा आहे ह्मणजे, यथायोग्य मुहूर्त सांगण्याची व्युत्पत्ति करणारा आहे ह्मणजे त्यापासून इच्छा पूर्ण होतात. तो विश्वाचा प्रकाशक आहे. कारण, ह्यापासून समयाचें प्रकाशन होतें ॥ १ ॥ ही मुहूर्तमार्तंडाची 'मार्तंड वल्लभी' ह्या नांवाची टीका करीत आहे ही कल्पकाल-पर्यंत ब्राह्मणांच्या मुखरूपी घरामध्ये प्रकाश करो ॥ २ ॥

आतां ज्योतिष शास्त्रांत संबंध, जें आतां सांगायलाचें तें, आणि प्रयोजनही सांगतों तीं अशीं कीं, ब्रह्मदेव इत्यादिकांच्या सृष्टीचे आरंभीच हें ज्योतिःशास्त्र वेदांबरोबरच परमात्म्यापासून बाहेर निघालें आणि तें वेदांचें अंगही आहे हा संबंध झाला हीच गोष्ट नारद मुनींनीं आपल्यासहि तें सांगितलें आहे ती अशी कीं, वेदाचें निर्मल चक्षु हें ज्योतिःशास्त्र आहे, ह्याहून उत्तम दुसरें कोणतें ही शास्त्र नाहीं. हें शास्त्र वेदाचें अंग आहे, ह्मणून तें विद्यात्यापासून निघालें आहे. येथेंही सांगितलें आहे कीं, पूर्वीचे वाक्यार्थ घेऊन हा लहानसा ग्रंथ मी रचिला आहे असा हा संबंध आहे ह्यामध्ये, त्याज्य नक्षत्रादि, ऋतु, लग्न, गोचर, गर्भाधान, इत्यादि संस्कार, विवाह, अभ्याधान, वास्तु, यात्रा, मिश्र, अनव्याय, पत्नी, ग्रहगोचर, संक्रांति ही सांगितली आहेत. हें अभिषेय सांगितलें. तेंच नारदमुनींनीं सांगितलें आहे कीं, जगाचें शुभ आणि अशुभ ह्या दोहोंचें निरूपण आहे. ह्या ग्रंथाचें प्रयोजन असें कीं. मुहूर्त समजल्यावर मग नाना प्रकारचीं कायें करावयाचीं हें आहे. ह्याचें उत्तम ज्ञान झाल्यापासून मोक्षप्राप्ति आहे. संबंध, अभिषेय, आणि प्रयोजन हीं सांगून काय उपयोग अशी शंका कोणी करील तर त्याचें उत्तर असें कीं, तीं सांगितल्यानें शास्त्रांत प्रवृत्ति होते. एके ठिकाणीं असें सांगितलें आहे कीं, संबंध सांगितल्यापासून श्रोत्यांची प्रवृत्ति होऊन त्यापासून प्रसिद्धि होते ह्मणून सर्व शास्त्रांमध्ये अगोदर संबंध सांगितला जातो ह्या शास्त्रांत काय सांगितलें आहे? असें जर कोणी विचारिलें आणि त्याला उत्तर दिलें नाहीं तर तें फल शून्य व फुकट आहे असें होतें ह्मणून सर्वही शास्त्रांचें आणि कोणत्याही कर्माचें प्रयोजन जोंपर्यंत सांगितलें नाहीं तोंपर्यंत तें कोणीही घेणार नाहीं. करितां कोणत्याही शास्त्रांत संबंधादि सांगणें जरूर आहे. शास्त्र शिकण्यास अधिकारी कोण आहे तर द्विज ह्मणजे ब्राह्मणच आहे. कारण हें शास्त्र वेदांग आहे. कारण, साहा अंगासहित वेद द्विजांनींच शिकावा. व जागावा तेंच भास्कराच्या सिद्धांतशिरोमणि ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, हें उत्तम पुण्यकारक, फारच रहस्य, परमपवित्र ज्योतिःशास्त्र द्विजांनीं शिकावें. जो मनुष्य हें जाणतो तो उत्तम रीतीनें धर्म, अर्थ, काम आणि मोक्ष अशा चार पुरुषार्थांना आणि यशाला मिळवितो.

सर्व शिष्ट, पुरुष, शास्त्रांचे आरंभी, जसा अग्नि हा धुरानें घेरलेला असतो तसे सर्व आरंभ दोषांनीं व्यापलेले असतात. ह्या कारणास्तव सर्व आरंभामध्ये विघ्न घेण्याचें फार भय असतें आणि धर्मानें पापांचा नाश होतो असें श्रुतींत सांगितलें आहे व ती श्रुति अशी कीं, काहीं प्रयोजन उद्देशून आमचें स्वस्ति क्षेम वृद्धश्रवा नांवाचा इंद्र करो ! अशी प्रार्थना आहे. ग्रंथाची निर्विघ्नपणें समाप्ति व्हावी ह्याकरितां मंगलाचरण करितात. ह्मणून माध्यंदिन शाखेचा नारायण नांवाचा ब्राह्मण, श्रीनारायणाचा सुत ज्याला उत्तम बुद्धि मिळाली आहे असा हें ज्योतिःशास्त्राच्या संहितास्कंधाला रचण्याची इच्छा करणारा संपूर्ण विघ्नांचा नाश व्हावा ह्याकरितां आपल्या इष्ट देवतेला नमस्कारात्मक मंगल कश्चन मग ग्रंथ करण्याची प्रतिज्ञा ग्रहर्षिणीनामक वृत्तानें करित आहे.

मंगलाचरण. ( ग्रहर्षिणी. )

सिंदूरोल्लसितमिभेंद्रवक्त्रमंबां श्रीविष्णुं वियतिचरान् गुरुन्प्रणम्य ॥

बह्वर्थं विबुधमुदे लघुं मुहूर्तमार्तंडं सुगममहं तनोमि सिद्धये ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—शेंदूरानें सुशोभित असलेल्या अशा गर्जेद्राप्रमाणें मुख असलेल्या श्रीगणपतीला, श्रीसरस्वतीला, लक्ष्मीसहवर्तमान असलेल्या महाविष्णूला. गगनांत संचार करणाऱ्या श्रीसूर्य इत्यादि नवग्रहांना, शास्त्रोपदेश करणाऱ्या गुरूंना नमस्कार करून ग्रंथ करणारा मी दैवज्ञ नारायण कार्यसिद्धीसाठीं आणि विद्वान् लोकांना आनंद व्हावा ह्यास्तव पुष्कळ अर्थ असून संख्येनें लहान व सुलभ असा हा मुहूर्तमार्तंड नांवाचा ग्रंथ रचीत आहे ॥ १ ॥

सिंदूरोल्लसितमिति । सिंदूरेण उल्लसितं शोभायमानं इभेंद्रवक्त्रं गजाननं अंबां सरस्वतीं श्रीविष्णुं प्रसिद्ध वियतिचरान् ग्रहान् गुरुन् निजगुरुन् शास्त्रोपदेष्टृन् प्रणम्य नमस्कृत्वाऽहं नारायणो मुहूर्त-

मार्तंडं नाम ग्रंथं तनोमि विस्तारयामि किमर्थं सिद्ध्ये कार्यसाधनाय पुनः किमर्थं विबुधमुदे पंडित  
हर्षाय हर्षकारणं विशेषणद्वारेणाह किंलक्षणं मुहूर्तमार्तंडं लघुं अतिशयेनाल्पं अल्पे बहुवर्थाभावशंक  
विशेषणद्वारा परिहरति पुनः किंलक्षणं बहुवर्थे अर्थबहुलं अल्पग्रंथे बहुवर्थे दुर्बोधशंकां परिहरति  
पु० सुगमं प्रकटार्थमिति ॥ १ ॥

## त्याज्यप्रकरणं १

शुभकर्मां त्याज्य. ( शार्दूलविकीरित. )

यामार्थं कुलिकं दिनर्द्धिमवमं पूर्वं दलं पारिधम् ।  
विष्टिं वैधृतिपातसंक्रमणं गंडांतमेकार्गलम् ॥  
कृष्णानंगचतुर्दिनं रविशशिक्रान्त्योः समत्वं स्वलाम् ।  
होरां रात्रिदिनार्थके क्षयदिनं पित्रोर्जनन्यार्तवम् ॥ १ ॥  
मासाद्यं जनिसंभवं ग्रहणभं चंडायुधं दुःक्षणम् ।  
ज्येष्ठं पूर्वभवस्य पापयुगितैष्यर्क्षाणि विद्धं च भम् ॥  
ऊनाख्याधिकमासकौ युतिषुविन्याश्वगंडातिषु ।  
त्र्यंकार्थंकरसर्तुपूर्वघटिका भानां विषाख्या घटीः ॥ २ ॥  
लत्तापंचकपापवर्गमशुभं चंद्रं दशारिष्टकम् ।  
जन्मेशेज्यसितास्तमंगशशिनोः क्रूरोद्भवां कर्तरीम् ॥  
रिष्टं गोचरसंभवं ग्रहजनिप्रांतोद्भवं सूतकम् ।  
दुश्चिह्नानि मनोविभंगमपि च व्याधिं शुभे संत्यजेत् ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ—यामार्थ—ह्याचा अर्थ ( विवाह प्रकरणांत २० व्या श्लोकांत आहे ) कुलिक ( त्याच २०  
श्लोकांत ) तिथि वृद्धि, तिथि क्षय, परिधयोगपूर्वार्ध, भद्रा, करण, ( विवाह प्र० १८ श्लोकी ) वैधृति, व्यतिपात,  
सूर्य, चंद्र, मंगल ह्या अशा नऊ ग्रहांच्या संक्रांति, ( विवाह १७ श्लोकी ) गंडांत ( विवाह १९ श्लोकी )  
एकार्गल ( त्याच श्लोकांत ) कृष्ण पक्षांतल १३-१४-३०-१ असे चार दिवस, सूर्य आणि चंद्र ह्यांचें क्रांतीचें  
समत्व, ज्याला महापात असें नांव आहे. ( विवाह २१ श्लोकी ) पापी ग्रहांची होरा, ( विवाह ३२ श्लोकी )  
मध्य रात्रीचीं पूर्वीचीं १० पळें व नंतरची १० पळें मिळून २० पळें तशींच दिवसाचे मध्यान्हीचीं २० पळें,  
मातापित्यांचा श्राद्ध दिवस, माता रजस्वला असलेला दिवस ॥ १ ॥ जन्मकालचा मास, तिथि, नक्षत्र, योग  
इत्यादि, ग्रह, नक्षत्र, ( विवाह १७ श्लोकी ) चंडायुध, ( विवाह १९ श्लोकी ) दुःक्षण, ( विवाह २० श्लोकी )  
पहिल्या संतानाचा ज्येष्ठ महिना, पापग्रह युक्त नक्षत्र तें व त्याचे मागचें एक व पुढचें एक मिळून तीन नक्षत्रें,  
विद्ध नक्षत्र, ( विवाह १५ श्लोकी, ) क्षय महिना, आणि अधिक महिना, ( संक्रांति प्रकरणाचे २ श्लोकी )  
विष्कंभ, व्याघात, शूल, वज्र, गंड, अतिगंड ह्या सहा योगांच्या आरंभीच्या क्रमानें ३-९-५-९-६-६ घटिका,  
नक्षत्रांच्या विष घटिका ( विवाह २२ श्लोकी ) ॥ २ ॥ लत्ता ( विवाह प्र० १६ श्लोकी ) पंचक ( विवाह प्र०  
२९ श्लोकी ) पापग्रहांचे वर्ग, ( विवाह ३५ श्लोकी ) गोचरी असलेला अशुभ चंद्र, ( गोचर प्रकरण १ श्लोकी, )  
जातकामधील अरिष्ट करणाऱ्या अशा ग्रहांची दशा, जन्म राशीचा स्वामी आणि गुरु व शुक्र यांचा अस्त, लग्नास  
आणि चंद्रास पापग्रहापासून झालेली कर्तरी, गोचर असलेल्या दुष्ट ग्रहाचा अधिकपणा, चंद्राचें व सूर्याचें ग्रहण,  
जनना शौच ( वृद्धि ) मरणाशौच ( मरणाचें सूतक ) शिक येणें, दुष्ट भाषण, अपशकुन इत्यादि दुश्चिह्ने, कार्य  
करण्याविषयी मनाची भंग, आणि ज्वर इत्यादि रोग हीं सर्व शुभ, कार्य करण्याचे वेळीं सोडून द्यावीत ॥ ३ ॥



अथ नानामुहूर्तान् विवक्षुस्तावच्छुभे कर्मणि त्याज्यं त्रिभिः शार्दूलविक्रीडितैराह-यामार्धमिति ।  
यामार्धादिकं शुभे शुभकर्मणि संत्यजेदित्यंतिमशुकेनान्वयः । यामार्धकुलिकौ वक्ष्यमाणलक्षणौ  
दिनद्विर्नाम यत्र तिथिः सूर्योदयात् षष्टिघटिका भवति सैवान्यस्मिन् दिने दृश्यते सां दिनद्विः ।  
अवमः प्रसिद्धः पारिघं प्राग्दलं परिघयोगस्य पूर्वार्धं विधिर्भद्रा वक्ष्यमाणा वैधृतियोगः पातो  
व्यतीपातः संक्रमणं सूर्यादीनां राशिसंक्रमणं सर्वेषां ग्रहाणां संक्रमणे त्याज्यघटिका अप्रे वक्ष्यमाणाः  
गंडांतं त्रिविधं वक्ष्यमाणं एकार्गलो वक्ष्यमाणः कृष्णानंगचतुर्दिनं कृष्णत्रयोदश्यादिप्रतिपदंतं चंद्रस्य  
क्षीणत्वात् कैश्चिद्वादश्यादिसार्धदिनपंचकं त्यज्यते कृष्णे चांत्यत्रिकं कैश्चित्तेषु मध्यमोऽयं पक्षोऽत्रा-  
गीकृतः कृष्णानंगचतुर्दिनमिति । रविशशिक्रांत्योः समत्वं सूर्यचंद्रमसोः क्रातिसाम्यं गणितगम्यं  
तथापि तस्यावलोकनं कस्मिन्दिने कर्तव्यमित्यप्रे वक्ष्यति । खलां होरां पापग्रहहोरां रात्रिदिनार्धके  
दिनार्धं राज्यार्धं च उक्तं ग्रंथांतरे । मूर्तः कालो निवसति महानिशायां च दिनदले यस्मात् । दश पूर्व  
दश परतस्तस्माद्ग्रह्यानि च पलानीति ॥ क्षयदिनं पित्रोः माता च पिता च पितरौ तयोः पित्रोः क्षय-  
दिनं श्राद्धदिनमित्यर्थः जनन्यार्तवं मातुः रजस्वलात्वम् ॥ १ ॥ मासाद्यमिति । मासाद्यं जनिसंभवं जनि-  
रूपत्तिस्तत्र संभवो यस्य एवं विधं मासाद्यं मासप्रभृति जन्ममासजन्मतिथिजन्मनक्षत्रादि ग्रहणभं  
ग्रहणनक्षत्रं चंडायुषं वक्ष्यमाणं दुःक्षणो दुर्मुहूर्तो वक्ष्यमाणः तं । ज्येष्ठं पूर्वभवस्य प्रथमजातापत्यस्य  
ज्येष्ठमासं पापयुगितेष्यक्षाणि पापाः पापग्रहाः वक्ष्यमाणास्तेषामन्यतमेन युक् युक्तं इतं गतं एष्यं पुरः  
स्थितं एतानि ऋक्षाणि नक्षत्राणि विद्धं भं च विद्धनक्षत्रं वक्ष्यमाणलक्षणं ऊनाख्याधिकमासकौक्ष्यमा  
साधिमासौ वक्ष्यमाणलक्षणौ युतिषु विव्याशुवगंडातिषु ज्यं ३ का ९ र्थां ५ क ९ रस ६ तु ६ पूर्वघटि-  
काः वि विष्कंभः व्या व्याघातः शू शूलः व वज्रः गंडः प्रसिद्धः अति अतिगंडः एषु योगेषु क्रमेण ज्यंका-  
र्थाकरसर्तुसंख्याकाः पूर्वघटिकाः प्रथमघटिकाः । तद्यथा विष्कंभे तिस्रः व्याघातैः ५ का नव शूले अर्थाः  
पंच वज्रे अंकाः नव गंडे रसाः षट् अतिगंडे ऋतवः षडिति भानां विषाख्या घटीः भानां अश्विन्यादी-  
नां नक्षत्राणां विषाख्या घटीर्वक्ष्यमाणलक्षणाः ॥ २ ॥ लक्ष्मिलालत्तापंचकपापवर्गं एतत्सर्वं वक्ष्यमाणं अशुभं  
चंद्रं वक्ष्यमाणगोचरप्रकरणे वेद्यं दशारिष्टकं जातकशास्त्रगम्यं जन्मेशो ज्यसितास्तं जन्मेशो राशिस्थमी  
ईज्योगुरुः सितः शुक्रः एषां अस्तगमनं रविलुप्तकिरणत्वं अंगशशिनोः क्रूरोद्भवां कर्तरीं अंगं लग्नं शशी  
चंद्रः तयोः क्रूरोद्भवां क्रूरग्रहजनितां कर्तरीं वक्ष्यमाणलक्षणां रिष्टं गोचरसंभवं गोचरे दुष्टग्रहाधिक्यं  
गोचरं वक्ष्यमाणं ग्रहजनिप्रतोद्भवं सूतकं ग्रहो ग्रहणं जनिर्मन्म प्रंतो मरणं एष्यः उद्भूतं सूतकं ग्रहणसू-  
तकं जन्मसूतकं मृतसूतकमिति तेषु ग्रहणसूतकं वक्ष्यमाणं दुश्चिन्हानि कार्यारंभसमये श्रुतदुर्वचः श्रवणा-  
दीनि मनोविभंगं अंतःकरणस्य अप्रवर्तनं व्याधिज्वरः तमपि रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमाम  
यइतिवाग्भटः । ज्वरितस्य मंगलं न कुर्यादित्यर्थः । तथा चोक्तं ज्योतिःप्रकाशे । जन्माधिपविलग्नेशचंद्र  
भार्गव मंत्रिणां । विरश्मिन् जन्ममासोजन्मभं जन्मवासरः ॥ दुर्निमित्तं मनोभंगः क्षयमासाधिमासकौ ।  
मृतजातकयोश्चैव सूतकं ग्रहणस्य च ॥ ज्वरोत्पत्तिं रजो मातुः पित्रोः क्षयदिनं तथा । गंडांतत्रितयं  
कालः संधिर्भस्य तिथेस्तनोः । क्रांतिपातो व्यतीपातो वैधृतिः परिघार्धकं । भानोः संक्रांतिभोगश्च  
कुलिकश्चार्धयामकः ॥ क्रूरैर्भुक्तं युतं भोग्यं सराहुशिखिभूमितं । धिण्यं ग्रहणं पापैर्विद्धं सौम्यैश्च  
पादतः ॥ विष्टीः क्रूरयुतं लग्नं लग्नशो रिपुमृत्युगः । जन्मतो दुःस्थितचंद्रो लग्नस्थे निधनोपगः । जन्म-  
भाज्जन्मलग्नश्च लग्नलग्नशंकाष्टमौ ॥ पापयोगेध्यगं लग्नं क्षीणदुः कुनवांशकः । क्रूरवारे पापहोरादुष्ट  
योगा ग्रहोद्भवाः । तिथिवृद्धिः क्षयो भानां नाडिका विषसंज्ञिता ॥ प्लूते दोषाः समाख्याताः शुभ  
कर्मणि गहिताः ॥ दशारिष्टोद्भवाश्चान्ये गोचरोत्थास्तथापरे । लक्षैर्कार्गलच्छंडाश्चकालवेलाश्चपंचकम्  
। मृत्युयोगोपग्राहाद्याः स्वे स्वे देशे तु निदिता इति ॥ ३ ॥

टीका—आतां नाना प्रकारचे मुहूर्त सांगण्याकरितां इच्छा करणारा ग्रंथकार अगोदर शुभकारक कर्म करण्या-  
करितां सोडावयास योग्य काय आहे ते तीन शार्दूलविक्रीडित वृत्तांनीं सांगतो. यामार्धादिक शुभ कर्माविषयीं सोडावेत असा  
अन्वय आहे. पैकीं यामार्ध व कुलिक हे दोन पुढें विवाह प्रकरणाचे वीसाव्या श्लोकांत सांगवयाचे आहेत. दिनार्द्धं द्विजने  
दिनद्विद्वि त्याचा अर्थ असा कीं, ज्या वेळेस तिथि ही सूर्योदयापासून साठ घटिका येऊन पुनः तीच तिथि दुसरे दिवसास  
उरते. तिला दिनद्विद्वि द्विजने अन्वय हा० नाश अर्थात् तिथीचा क्षय तो प्रसिद्ध आहे. परिम्पनामक योग आहे त्याचे  
पूर्वार्धं विष्टि द्विजने भद्रा पुढें विवाह प्रकारचे अठरावे श्लोकांत सांगितली आहे. वैधृति नांवाचा योग, पैत हा० व्यतीपात

संकमण हा० सूर्य चंद्र इत्यादि ग्रहांचे एका राशीवरून दुसऱ्या राशीवर जाणे त्या वेळेस किती घटका टाकाव्यात ते विवाह प्रकरणाचे सतराव्या श्लोकांत सांगितले आहे. गंडांत तीन प्रकारचे आहेत ते विवाह प्र० एकोणिसाव्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. एकागल त्याज्य प्र० त्याच श्लोकांत सांगावयाचा आहे. कृष्ण पक्षांतील त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या व शुद्ध प्रतिपदा हे चार दिवस वर्ज्य आहेत कारण त्या वेळेस चंद्रमा फारच क्षीण असतो. कित्येकांचे मताने द्वादशीपासून साडेपाच दिवस त्याज्य आहेत. दुसऱ्या कित्येकांच्या मताने कृष्ण पक्षांतील शेवटले तीनच दिवस त्याज्य आहेत. त्या तीन पक्षांपैकीं येथे मध्यम पक्षाचा स्वीकार केला आहे, सूर्य आणि चंद्र कांतीचे समत्व हे गणिताने समजण्याजोगे आहे. तथापि ते कधी पाहावे हे पुढे विवाह प्रकरणाचे एकविसावे श्लोकांत सांगावयाचे आहे. पापग्रहांची होरा ही पुढे विवाह प्रकरणाचे बत्तिसाव्या श्लोकांत सांगावयाची आहे.

दिनार्थ व रात्र्यर्थ ह्यांचा अर्थ दुसऱ्या ग्रंथांत असा सांगितला आहे कीं, महाकाळ हा मूर्तिमान् मध्यरात्री व मध्याह्नी रहात असतो ह्यास्तव बारा वाजावयाचे पूर्वी दहा पळे आणि बारा वाजल्यावर दहा पळे मिळून बीस पळे सोडावीत. माता पिता ह्या दोघांचे प्रतिवार्षिक श्राद्धाचा दिवस. मातेचे रजस्वलाचे दिवस. चार सोडावेत. ॥ १ ॥

जन्म कालचा मास इत्यादि ह्मणजे जन्ममास, तिथि, जन्मतिथि, जन्मनक्षत्र, जन्मयोग, इत्यादि ग्रहणनक्षत्र हे पुढे विवाह प्रकरणाचे सतराव्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. चंडायुध हे पुढे विवाह प्रकरणाचे एकोणिसाव्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. दुःक्षण ह्मणजे. दुष्ट मुहूर्त तो कोणता हे त्याच प्रकरणाचे विसाव्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. प्रथम झालेला अपत्याचा ज्येष्ठमास असेल तर तो सोडावा. पापग्रह हे पुढे सांगावयाचे आहेत ते सोडावेत आणि त्यांपैकीं एखाद्या पापग्रहाने युक्त असे, मागील एक नक्षत्र व पुढील एक नक्षत्र अशीं तीन नक्षत्रे सोडावीत. विद्व नक्षत्र हे पुढे विवाह प्रकरणाचे पंधराव्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. क्षयमास आणि अधिकमास हे दोन पुढे संक्रांतीचे प्रकरणांत २ श्लोकांत सांगावयाचे आहेत. वि. ह्म. विष्कम्भ, व्या. ह्म. व्याघात, शू. ह्म. शूल, व. ह्म. वज्र, गं. ह्म. गंड, अति. ह्म. अतिगंड, ह्या साहा योगांच्या क्रमाने त्रि. ह्म. ३, अंक. ह्म. ९ अर्थ. ह्म. ५ अंक. ह्म. ९ रस. ह्म. ६ ऋतु ह्म. ६ अशा आरंभाच्या घटिका टाकाव्यात. ह्या घटिकांना विष असे नांव आहे. अश्विनी इत्यादि नक्षत्रांच्या कोणत्या विषघटि आहेत ते विवाह प्रकरणाच्या वाक्यासाव्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. ॥ २ ॥ लत्ता ही पुढे विवाह प्रकरणाचे सोळाव्या श्लोकांत सांगावयाची आहे. पंचक ह्म. पापग्रहांचे वर्ग हे ही विवाह प्रकरणाचे ३५ व्या श्लोकांत सांगावयाचे आहे. गोचर अशुभचंद्र हा गोचर प्रकरणांत १ श्लोकांत सांगावयाचा आहे तो त्याज्य आहे. जातक शास्त्रावरून जाणलेली ग्रहांची अरिष्ट कारक दशा. जन्म राशीचा स्वामी, गुरु व शुक्र ह्यांचा अस्त ह्मणजे सूर्याच्या तेजाने त्यांचे तेज लुप्त होणे. सूर्य आणि चंद्र ह्या दोघांनी पाप-ग्रहाने झालेला कर्तरी ह्मणजे लग्नाचे दोहों बाजूस व चंद्राचे दोहोंबाजूस पापग्रह असतील तर ती पापकर्तरी जाणावी. तिचे सर्व लक्षण पुढे सांगावयाचे आहे. गोचरामध्ये दुष्ट ग्रह अधिक असतील तर ते सोडावेत. तेंही पुढे सांगावयाचे आहे. ग्रहण वृद्धि (सोयर) आणि सूतक हीं तीन सोडावीत पैकीं ग्रहणाचे सूतक पुढे सांगावयाचे आहे कामाचे आरंभी दुषिन्हें झाल्यास तीं सोडावीत तीं दुषिन्हें अशीं कीं, शिंका, दुष्ट भाषण ऐकणे इत्यादि मनाचा भंग ह्मणजे अंतःकरणाची प्रवृत्ति न होणे व्याधि ह्म० ज्वर कारण, वाग्भट्टाने सांगितले आहे कीं, रोग हा पापी असून तो व्याधि आहे व तो विकार आहे. तो दुःख आहे तो आमय आहे. ज्वर आलेल्याने मंगल करूं नये असा निषेध आहे. हा सर्व प्रकारच अर्थ ज्योतिःप्रकाशग्रंथांत सांगितला आहे तो असा कीं, जन्म स्वामी, लग्न स्वामी, चंद्र, गुरु, शुक्र, ह्यांचा अस्त, जन्ममास, जन्म नक्षत्र, जन्म दिवस, दुर्घनिमित्ते, मनाचा भंग, क्षयमास, अधिकमास, मरणाशीच, जननाशीच, ग्रहणाचे सूतक, माता व पित्याचे मरण दिवस, तीन गंडांत, कालाचा संधिसमय, राशीचा, तिथीचा, तनूचा क्रांतिपात, व्यतिपात, वैधृति, परिघार्ध, सूर्यसंकमण कुलिक, अर्धग्रहण, कूराने युक्त, भोगलेले, भोग्य अशीं तीन नक्षत्रे, राहुसहित शिखीने धूमित, ग्रहणाचे संबंधी पापांनी युक्त, झौम्यांनी पादांशी युक्त, विष्टि, कूरयुक्त लग्न, लग्नाधिपति शत्रु आणि मृत्युस्थानी असलेला, जन्मकाली चंद्र दुःस्थित असलेला लग्नस्थ असून मृत्युस्थानी असलेला, जन्म राशीपासून अथवा जन्मलग्नापासून लग्न आणि लग्नांशकाचा अष्टम ह्या दोन पापग्रहांच्या मध्ये असलेले लग्न, क्षीणचंद्र, कुनवांशक, कूरवार, पापहोरा, दुष्ट ग्रहा पासून झालेले दुष्ट योग, तिथिवृद्धि, दिनक्षय, नक्षत्रांच्या विषयुक्त घटिका हे सर्व दोष शुभकर्म करण्यामध्ये निघ ह्मणजे अग्राह्य असे सांगितले आहे. रिष्टदशेपासून झालेले गोचर ग्रहापासून झालेले दोष, लत्ता, अर्गल, चंड, अन्न, कालवेला, पंचक, मृत्युयोग, उपग्रह, इत्यादि दोष आपापल्या दशामध्येच निंदित आहेत. ॥ ३ ॥

उपग्रहदोष.

नो कुर्याद्रविभादगेंद्रधृतितोयुग्मेषुपंचाशयोः ।

स्वर्गात्पंचसु शोभनानि तनुयादेष्टृशस्त्रादिकम् ॥  
 मासर्त्वायनवारयोगतिथिभादीनां च सिद्धाभिधा ।  
 ज्ञातव्याः पुनरुक्तिरस्ति कुहचित्सा तत्स्मृतिप्राप्तये ॥ ४ ॥  
 इति श्रीमदनंताख्यचातुर्मास्ययाजिपुत्रनारा० मु०

मा० त्याज्यप्रकरणम् ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—ज्या नक्षत्रावर सूर्य आहे त्या नक्षत्रापासून ७-८-१४-१५-१८-१९-५-१०-२१-२२-२३-२४-२५ सातवे ह्यापासून तों २५ पंचवीसावे ह्यांपैकी कोणतेही नक्षत्र असेल तर त्या नक्षत्रावर शुभ कर्म करू नये. शुभाचे विरुद्ध अशुभ ह्यांजे उग्र कर्म, जसें दहन, घात, पात इत्यादिक शस्त्रांपासून होणारी कापण्याची कामे करावीत. दुसऱ्या ग्रंथांत मास, ऋतु, अयन, वार, योग, तिथि, नक्षत्र इत्यादिकांच्या ज्या जसजशा संज्ञा सांगितल्या आहेत त्याच संज्ञा येथेही समजाव्यात. कदाचित् कोठे पुनः सांगितल्या आहेत ह्यापुन पुनरुक्तिदोष आहे तो पूर्वी सांगितलेल्या विषयाच्या स्मरणाकरितां समजावा. ॥ ४ ॥

अथोपग्रहांतर्वर्तिदोषांतरं वृत्तार्थेनाह-नोऽकुर्यादिति । रविभात् सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात् अग्रेद्रधृति मितानि यानि नक्षत्राणि तेभ्यो युग्मेषु एतदुक्तं भवति । सप्तमाष्टमयोः चतुर्दशपंचदशयोः अष्टादशैको- नविंशयोरिति तथा पंचाशयोः रविनक्षत्रात् पंचमदशमयाः तथा स्वर्गात्पंचसु एकविंशात्पंचसु नक्षत्रेषु २१-२२-२३-२४-२५ शोभनानि कर्माणि नो कुर्यात् एषु उग्रशस्त्रघातादिकं तनुयात् विस्तार येत् कुर्यादित्यर्थः । उक्तं च । विद्युत्पंचम भेक्षितेश्च चलनं स्यात्सप्तमे सूर्यभाच्छूलश्चाष्टममे शनिश्च दशमे केतुस्तथाऽष्टादशे । दंडः पंचदशे चतुर्दश इह प्रोक्तो निपातो बुधैरुलकाकालविदां गणैर्निग- दित्वा चैकोनविंशेऽर्कभादिति ॥ दैवज्ञवल्लभेऽपि । क्रमशोमोहनिर्घातभूकंपा वज्र एव च । परिवेषश्च विज्ञेया नक्षत्रादेकविंशतेः ॥ एतेष्विदुसुतेषु कुर्यात्कर्म न शोभनं । दहनास्त्रविषैः साध्यं यत्तत्सिद्धि- मुपैति चेति ॥ अन्यानपि दोषानग्रे प्रसंगतो वक्ष्यामि । अथास्मिन् ग्रंथे मासादीनां संज्ञा लोक सिद्धा ज्ञेया इति । तथा पुनरुक्तिनिर्दूषणं वृत्तार्थेनाह-मासर्त्वायनेति । मासाश्चैत्रादयः ऋतवो वसं- तादयः अयने दक्षिणोत्तरे वाराः सूर्यादयः योगा विष्कंभादयः तिथयः प्रतिपदादयः भान्यश्रिन्या दीनि इत्यादीनां करणराशिभावादीनां सिद्धाभिधाः शास्त्रांतरसिद्धाः संज्ञा ज्ञातव्याः । तथा इहा- स्मिन् ग्रंथे कुहचित्कुत्रचित् पुनरुक्तिर्वर्तते सातस्य दूरांतरितस्य स्मृतिप्राप्तये स्मरणायेति न दोषः ॥ ४ ॥ इति स्वीकृतमुहूर्तमार्तंडटीकायां मार्तंडवल्लभायां त्याज्यप्रकरणम् ॥ १ ॥

टीकार्थ—आतां उपग्रहांचे आंत असलेले दुसरे दोष अर्था वृत्ताने सांगतो. ज्या नक्षत्रावर श्रीसूर्याचे अधिष्ठान आहे अशा नक्षत्रापासून अंग ह्य० ७ सातवे इंद्र ह्य० चवदावे धृति ह्य० अठरावे अशी जी नक्षत्रे त्यांपैकी युग्मनक्षत्रावर हें सांगितलेलें होतें. सातवे आणि आठवे. चवदावे आणि पंधरावे. अठरावे आणि एकोणीसावे नक्षत्रांमध्ये. तसेंच पांचवे आणि दहावे नक्षत्र हें सूर्यनक्षत्र असल्यामुलें पांचवे आणि दहावे नक्षत्रांमध्ये शुभकर्म करूं नये, तसेंच स्वर्गापासून ह्य० एकवीसांपासून पुढे पांच ह्यांजे २१-२२-२३-२४-२५ ह्या नक्षत्रांवर शुभकर्म करूं नयेत. परंतु ह्या नक्षत्रांवर भयं- कर शस्त्रादिकांचा घात करणें हें कर्म करावें. असें सांगितलें आहे कीं, सूर्य नक्षत्रापासून पांचव्या नक्षत्रावर विजेचा प्रहार होतो ह्यापुन शुभकर्म करूं नये. सातव्या नक्षत्रावर पृथ्वीचें चलन होतें ह्यापुन शुभकर्म करूं नये, आठव्या नक्ष- त्रावर शूल होतो ह्यापुन शुभकर्म करूं नये. दहाव्या नक्षत्रावर शानि असतो ह्यापुन शुभकर्म करूं नये. आठराव्या नक्ष- त्रावर केतु असतो ह्यापुन शुभकर्म करूं नये. पंधराव्यावर दंड असतो. चवदाव्यावर पात असतो ह्यापुन शुभकर्म करूं नये. तसेंच एकविसावे नक्षत्रावर शुभकर्म करूं नये असें उल्का आणि काल जाणणाऱ्या पंडितांनीं सांगितलें आहे. दैवज्ञवल्लभ ग्रंथांत असें सांगितलें आहे कीं, सूर्य नक्षत्रापासून २१-२२-२३-२४-२५ ह्या पांचांना क्रमानें मोह, निर्घात, भूकंप, वज्र, परिवेष असे क्लेश आहेत ह्यापुन त्या नक्षत्राशी चंद्राचा योग असेल तरी सुद्धां शोभनकर्म करूं नये, तर अशा नक्षत्रांवर अग्नि, अन्न, विष ह्यांनीं होणारी उग्रकर्में केलीं असतां त्यांची सिद्धि होते. ह्या शिवाय दुसरेही कि- त्येक दोष आहेत ते पुढें प्रसंगानुसार सांगेन. ह्या ग्रंथांत मास इत्यादिकांच्या ज्या संज्ञा लोकसिद्ध आहेत त्याच सम-

जाव्यात. पुनरुक्ति झाली आहे त्याचे निवारण अर्ध्या वृत्तानें सांगितों कीं, चैत्रादि महिने, वसंतादिक ऋतु, दक्षिणोत्तर अयनें, सूर्य इत्यादि वार, विष्कंभादि योग, प्रतिपदादि तिथि, अश्विनी इत्यादि नक्षत्रे इत्यादिकांची तसेंच करण, राशि-भाव इत्यादिकांच्या ज्या संज्ञा अन्य शास्त्रांत सांगितल्या आहेत. त्या तशाच तशाच जाणाव्यात. तसेंच ह्या ग्रंथांत कोठें कोठें पुनरुक्ति झाली असेल तर ती फार दूर असलेल्या संज्ञांचे स्मरण करण्याकरितां केली असें जाणावें. ह्याजें पुनरुक्तीचा दोष नाही ॥ ४ ॥ अशा रीतीने आपणच केलेल्या मुहूर्तमार्तंडाची आपणच केलेल्या मार्तंडवल्लभाटीकेंतील त्याज्य प्रकरणाची समाप्ति झाली ॥ १ ॥

असें हें त्याज्य प्रकरण पुरें झालें.

## नक्षत्रप्रकरणम् २

नक्षत्रांचे स्वामी.

मेशा दस्यमाभिर्केदुगिरिशाः प्रोक्ता अदित्यंगिराः ।

सर्पाः कव्यभुजो भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात् ॥

इंद्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्र निर्ऋतिनीरं च विश्वे विधिः ।

वैकुण्ठो वसुपाश्यजैकचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—अगोदर नक्षत्र घालून त्याचे पुढें त्यांचे स्वामी घातले असा क्रम समजावा. जसें—अश्विनी नक्षत्र घालून त्याचे पुढें त्या नक्षत्राचा स्वामी दस ह० अश्विनी कुमार सांगितला, अशाच रीतीने अष्टावीस नक्षत्रांचे अष्टावीस स्वामी दाखविले आहेत ते असे—

| नक्षत्र. स्वामी.  | नक्षत्र. स्वामी.      | नक्षत्र. स्वामी.      | नक्षत्र. स्वामी.    |
|-------------------|-----------------------|-----------------------|---------------------|
| १ अश्विनी—दस.     | ८ पुष्य—गुरु.         | १५ स्वाती—वायु.       | २२ अभिजित्—विधि.    |
| २ भरणी—यम.        | ९ आश्लेषा—सर्प.       | १६ विशाखा—इंद्राग्नी. | २३ श्रवण—विष्णु.    |
| ३ कृत्तिका—अग्नि. | १० मघा—पितर.          | १७ अनुराधा—मित्र.     | २४ धनिष्ठा—वसु.     |
| ४ रोहिणी—ब्रह्मा. | ११ पूर्वाषाढा—भग.     | १८ ज्येष्ठा—इंद्र.    | २५ शतता—वरुण.       |
| ५ मृगशीर्ष—चंद्र. | १२ उत्तराषाढा—अर्यमा. | १९ मूल—निर्ऋति.       | २६ पूर्वाभा—अजैकचर. |
| ६ आर्द्रा—शिव.    | १३ हस्त—रवि.          | २० पूर्वाषाढा—जल.     | २७ उ. भा.—अहिर्बु.  |
| ७ पुनर्वसु—अदिति. | १४ चित्रा—त्वष्टा.    | २१ उत्तराषाढा—विश्वे. | २८ रेवती—पूषा.      |

अथ साधारणनक्षत्रप्रकरणं विवक्षुरादौ नक्षत्रदेवताश्च वृत्तेनैकेनाह—अस्मिन् प्रकरणे सर्वाणि शार्दूलविक्रीडितानि । मेशा इति । अश्विन्याः सकाशात् क्रमेण मेशा बुधैः प्रोक्ता इत्यन्वयः । भानां नक्षत्राणामेशाः स्वामिनः । दस्यौ अश्विन्याः । यमो भरण्याः अग्निः कृत्तिकायाः । को ब्रह्मा रोहिण्याः इंदुर्मृगस्य । गिरिशो महादेव आर्द्रायाः । अदितिः पुनर्वसोः । अंगिरा गुरुः पुष्यस्य । सर्पाः प्रसिद्धा आश्लेषायाः । कव्यभुजः पितरः मघायाः । भगः पूर्वाषाढागुन्याः । अर्यमा उत्तराषाढा । रविर्हस्तस्य । त्वष्टा चित्रायाः । समीरो वायुः स्वात्याः इंद्राग्नी देवताद्वयं विशाखायाः । मित्रः अनुराधायाः । इंद्रो ज्येष्ठायाः । निर्ऋतिः राक्षसो मूलस्य । नीरं जलं पूर्वाषाढायाः विश्वे उत्तराषाढायाः । विधि-ब्रह्माभिजितः वैकुण्ठो विष्णुः श्रवणस्य । वसवो धनिष्ठायाः । पाशी वरुणः शततारकायाः । अजैक-चरणः पूर्वाभाद्रपदायाः । अहिर्बुध्न्य उत्तराभाद्रपदायाः । पूषा रेवत्याः । देवताप्रयोजनं नक्षत्रज्ञानार्थं शांतिकादौ यजनार्थं च ॥ १ ॥

**टीकाथ—**आतां साधारण नक्षत्रांचें प्रकरण सांगण्याच्या इच्छेनें अगोदर नक्षत्रांच्या देवता एकावृत्तानें सांगतो, ह्या प्रकरणांत सर्वच शार्दूलविक्रीडितवृत्तें समजावीत. अश्विनी नक्षत्रापासून क्रमानें यांचे ह्यणजे नक्षत्रांचे ईश ह्य० स्वामी समजावेत जसें अश्विनीचे दस ह्यणजे अश्विनीकुमार, भरणीचा यम, कृत्तिकेचा अग्नि, रोहिणीचा ब्रह्मदेव, मृगशीर्षाचा चंद्र, आर्द्राचा गिरिश ह्यणजे महादेव, पुनर्वसूचा अदिति, पुष्याचा अंगिरा ह्य० गुरु, आश्लेषाचा सर्प, मघाचा कव्यभुक् ह्य० पितर, पूर्वाफाल्गुनीचा भग, उत्तराफाल्गुनीचा अर्थमा, हस्ताचा रवि, चित्रेचा त्वष्टा, स्वातीचा समीर ह्य० वायु, स्वातीचे इंद्र आणि अग्नि असे दोन स्वामी, अनुराधाचा मित्र, ज्येष्ठाचा इंद्र, मूळाचा निर्ऋति राक्षस, पूर्वाषाढेचा नीर ह्य० जल, उत्तराषाढेचा विश्वेदेव, अभिजिताचा विधि ह्य० ब्रह्मदेव, श्रवणाचा वैकुण्ठ ह्य० विष्णु, धनिष्ठेचा वसु आठ आहेत, शततारकेचा पाशी ह्य० वरुण, पूर्वाभाद्रपदेचा अजैकचरण ह्य० वक्र्याचा एक पाय असलेला देव, उत्तराभाद्रपदेचा अहिर्बुध्न्य ह्य० अष्टमूर्ति, रेवतीचा पूषादेव नक्षत्रांचे स्वामी सांगण्याचें कारण, नक्षत्रज्ञान होण्याकरितां ह्यणजे अमुक देवावरून त्याचें अमुक नक्षत्र ओळखतां यावें आणि शांति कर्म करण्यामध्ये यजन करण्याच्या उद्देशानें त्या त्या नक्षत्रांचे स्वामी समजणें आवश्यक आहे ॥ १ ॥

### नक्षत्रांच्या स्थिरादिसंज्ञा आणि शुभ व पापग्रह.

ब्राह्मं त्र्युत्तरयुक्ध्रुवं स्थिरमथो पूर्वामघायाम्यभम् ।  
 क्रूरोग्रं श्रवणत्रयादितियुता स्वाती चराख्या चला ॥  
 दत्ताकाराभिजिदीज्यभं लघु तथा क्षिप्रं च मैत्रांतिमे- ।  
 न्दुत्वाष्ट्रं मृदुमैत्रमग्निभविशे मिश्रे च साधारणे ॥ २ ॥  
 मूलाहीन्द्रशिवं च दारुणमदस्तीक्ष्णं मुनींद्रैः स्मृतम् ।  
 संज्ञातुल्यमिहाचरन्ति सुधियः कार्यं हि संसिद्धये ॥  
 सूर्याद्याः स्थिरचंचलोग्रमिलिताः क्षिप्रो मृदुर्दारुणः ।  
 क्षीणेंद्रर्केयमारराहुशिखिनः पापाबुधस्तैर्युतः ॥ ३ ॥

**श्लोकार्थ—**सात ग्रह सांगून त्यांपैकी कोणत्या ग्रहास कोणत्या संज्ञा आहेत आणि नक्षत्रांना कोण कोणत्या संज्ञा आहेत ह्यणजे त्या त्या नक्षत्रांस स्थिर चर इत्यादिक संज्ञा आहेत त्याही सांगितल्या आहेत जसें क्षीणचंद्र, रवि, शनि, मंगळ, राहु, केतु हे पापग्रह आहेत ह्या साहां वरोवर बुधाचा योग झाला असतां तोही पापग्रह होतो. बाकीचे उरलेले ह्य० पूर्णचंद्र, गुरु, शुक्र हे शुभ ग्रह होत. त्या त्या नक्षत्रांच्या स्थिरचरादि संज्ञां प्रमाणें त्याचें कार्य त्या त्या नक्षत्रांवर विद्वान् लोक सिद्धि होण्याकरितां करितात जसें—

| ग्रह.  | संज्ञा.        | नक्षत्रे.  |
|--------|----------------|--|
| रवि.   | ध्रुव-स्थिर.   | १ रोहिणी, २ उत्तराफाल्गुनी, ३ उत्तराषाढा, ४ उत्तराभाद्रपदा.      |
| चंद्र. | चर-चल.         | १ श्रवण, २ धनिष्ठा, ३ शततारका, ४ पुनर्वसु, ५ स्वाती.             |
| मंगळ.  | क्रूर-उग्र.    | १ पूर्वाफाल्गुनी, २ पूर्वाषाढा, ३ पूर्वाभाद्रपदा, ४ मघा, ५ भरणी. |
| बुध.   | मित्र-साधारण.  | १ कृत्तिका, २ विशाखा.  |
| गुरु.  | लघु-क्षिप्र.   | १ अश्विनी, २ हस्त, ३ अभिजित, ४ पुष्य.                            |
| शुक्र. | मृदु-मैत्र.    | १ अनुराधा, २ रेवती, ३ मृग, ४ चित्रा.                             |
| शनि.   | दारुण-तीक्ष्ण. | १ मूळ, २ आश्लेषा, ३ ज्येष्ठा, ४ आर्द्रा.                         |

अथ नक्षत्राणां स्थिरचरादिसंज्ञामाह-ब्राह्ममिति । ब्राह्मं रोहिणी । किलक्षणं ब्राह्मं त्र्युत्तरयुक् तिस्र-  
 णामुत्तराणां समाहारस्त्र्युत्तरं तेन युक् युक्तं ध्रुवं स्थिरमिति द्वयभिधानं मुनींद्रैः स्मृतमित्यन्वयः ।



अथो पूर्वामघायाम्यभं पूर्वोत्रयं मघाभरणीतिपंचकं क्रूरोग्रं क्रूरं उग्रं चोक्तं श्रवणत्रयादितियुता स्वाती श्रवणधनिष्ठाशततारका अदितिः पुनर्वसुः एभिः सहिता स्वाती चराख्या चला चोक्ता श्रवणत्रयादिपंचकं चराख्यं चलं प्रोक्तमित्यर्थः । दसार्काभिजिदीज्यभं दसौ अश्विनी अर्को हस्तः अभिजिदक्ष्यमाणलक्षणः ईज्यो गुरुस्तस्य भं पुष्य इति चतुष्टयं लघु तथा क्षिप्रं प्रोक्तं मैत्रातिमंदु-त्वाष्टं मैत्रमनुराधा अंतिमं रेवती इंदुर्मृगः त्वाष्टं चित्रा एतच्चतुष्टयं मृदु तथा मैत्रं प्रोक्तं अग्निभविशे अग्निभं कृत्तिका विशा विशाखा एते द्वे मिश्रे साधारणे प्रोक्तम् ॥ २ ॥ मूलं प्रसिद्धं अहिरा-श्लेषा इंद्रो ज्येष्ठा शिव आर्द्रा एतच्चतुष्टयं दारुणं अदः इदं तीक्ष्णं चोक्तं इह एषु ध्रुवादिसंज्ञेषु नक्षत्रेषु संज्ञातुल्यं कार्यं सुधियः पंडिता आचरन्ति किमर्थं संसिद्धये । एतदुक्तं भवति । स्थिर-नक्षत्रेषु स्थिरं स्तंभप्रतिष्ठादिकं चरे चरमित्यादि कुर्वतीति स्पष्टं । अत्र समानार्थसंज्ञाद्वयकरणं कवित्वबंधनार्थं । अत्र प्रसंगेन सूर्यादीनामपि स्थिरादिसंज्ञाः सौम्यपापत्वं च वृत्तार्थेनाह-सूर्याद्या इत्यादि । सूर्यः स्थिरः चंद्रश्चंचलः भौमः उग्रः बुधः मिलितः मिश्रः गुरुः क्षिप्रः शुक्रो मृदुः शनिर्दो-रुणः । अथ पापसौम्यान् ग्रहानाह-क्षीणेति । क्षीणेंदुः कृष्णाष्टम्यूर्ध्वं प्रतिपत्पर्यंतं क्षीणः अर्कः सूर्यः यमः शनिः आरो भौमः राहुः प्रसिद्धः शिखी केतुः एते क्षीणेंद्रादयः पापाः क्रूराः तैः पापैर्युतो बुधः पापः स्यात् । उक्तं च जातकोत्तमे । क्षीणेंद्रार्काकिंभौमाः स्युः पापाः सौम्योऽपि तद्युतः । राहुकेतू पापतरौ पापः पापयुतस्तथेति । अर्थादन्ये सौम्याः । एषां प्रयोजनं क्रूरसौम्यकर्मसाधने ॥ ३ ॥

टीकाार्थ—आतां नक्षत्रांच्या स्थिर चर इत्यादि संज्ञा सांगतो. ग्रहा ज्याचा स्वामी आहे असे नक्षत्र ह्य० रोहिणी हे, तीन उत्तरा ह्य० उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा ह्या तीर्थांसहवर्तमान हीं ध्रुव आणि स्थिर आहेत. तसेंच तीन पूर्वा ह्य० पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपदा आणि मघा व यम देवतेचें नक्षत्र ह्य० भरणी हीं पांच नक्षत्रें क्रूर व उग्र आहेत. श्रवणादि तीन ह्य० श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, हीं तीन अदिति ह्य० पुनर्वसु ह्या चौर्थांसहवर्तमान स्वाती ह्यणजे एकंदर पांच नक्षत्रें हीं चर व चल आहेत. दस देवतेचें नक्षत्र ह्य० अश्विनी, अर्काचें नक्षत्र ह्य० हस्त, अभिजित् नक्षत्र पुढें सांगावयाचें तें, ईज्य, ह्य० गुरु त्याचें नक्षत्र पुष्य, हीं चार नक्षत्रें लघु तर्थांच क्षिप्र आहेत. मित्राचें नक्षत्र अनुराधा अंतिम ह्य० शेवटलें रेवती नक्षत्र इंदूचें नक्षत्र मृगशीर्ष, त्वष्टाचें नक्षत्र चित्रा, हीं चार नक्षत्रें मृदु आणि मित्र आहेत. अग्नीचें नक्षत्र ह्य० कृत्तिका आणि विशाखा हीं दोन नक्षत्रें मिश्र व साधारण आहेत॥२॥ राक्षसाचें नक्षत्र मूल, अहि ह्य० सर्प त्याचें नक्षत्र आश्लेषा इंद्राचें नक्षत्र ज्येष्ठा, शिवाचें नक्षत्र आर्द्रा हीं दारुण व तीक्ष्ण आहेत. त्यासर्वांचा असा अर्थ निघतो कीं, स्थिर नक्षत्रांवर स्थिरकार्य ह्यणजे स्तंभ स्थापन करावयाचें कार्य, चर नक्षत्रांवर चर कार्य करितात हें स्पष्ट आहे. ह्या संज्ञांमध्ये एक अर्थाच्या दोन संज्ञा केल्या आहेत तें करणें कविता बांधण्याकरितां आहे, ह्या प्रसंगामध्यें सूर्य इत्यादि सात ग्रहांनाही स्थिर, चर संज्ञा आणि त्या ग्रहांना पापत्व व सौम्यत्व अर्ध्या वृत्तानें सांगतो. सूर्य स्थिर आहे व चंद्र चर आहे मंगळ उग्र आहे. बुध मिश्र आहे. गुरु क्षिप्र आहे. शुक्र मृदु आहे. शनि दारुण आहे. आतां ग्रहांमध्ये पाप कोणते आणि सौम्य कोणते हें सांगतो. कृष्णाष्टमीपासून तो प्रतिप्रदेपर्यंतचा चंद्र हा क्षीण असतो तो क्षीणचंद्र, सूर्य, यम, ह्य० शनि, आर ह्य० मंगळ, राहु, शिखी ह्य० केतु हे पाप ह्यणजे क्रूर ग्रह आहेत, ह्या क्रूरांसह बुध असेल तर तोही पाप समजावा. हींच गोष्ट जातकोतमग्रंथांत सांगितली आहे, ती अशी कीं, क्षीणचंद्र, सूर्य, शनि, मंगळ हे पापी आहेत त्यांबरोबर सौम्य ग्रह आला तर तो पापी होतो, राहु व केतू अधिक पापी आहेत. परंतु पापानें युक्त झाला तर तसा पापी होतो अर्थात् ह्या शिवाय बाकीचे उरलेले पूर्णचंद्र, शुक्र, गुरु आणि नुसता बुध हे शुभ समजावेत ॥ ३ ॥

दिनरात्रि नक्षत्रें.

अह्नः स्युः शिवसार्पमित्रपितरो वस्वंबुविश्वेऽभिजित् ।  
केंद्रेंद्राग्निनिशाचरा अपि जलाधीशार्यमाख्यौ भगः ॥  
रात्रेः स्युः स्मरहात्रयोऽजचरणात्पंचाश्वितोऽथोऽदितिः ।  
जीवो विष्णुरिनात्रयस्तिथिलवाः कर्मेषु भोक्तं स्मृतम् ॥ ४ ॥  
इति श्रीमदनंताख्यचातुर्मास्ययाजिपुत्रनारायणविरचिते  
मुहूर्तमार्तंडे नक्षत्रप्रकरणम् ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—दिवसाचीं नक्षत्रे—१ आर्द्रा, २ आश्लेषा, ३ अनुराधा, ४ मघा, ५ धनिष्ठा, ६ पूर्वाषाढा, ७ उत्तराषाढा, ८ अभिजित्, ९ रोहिणी, १० ज्येष्ठा, ११ विशाखा, १२ मूळ, १३ शततारका, १४ उत्तरा, १५ पूर्वा. असे दिनमानाचे किंवा रात्रिमानाचे १५ भाग करावे. आणि प्रत्येक भागास एक एक नक्षत्र समजावें जसे— दिवसाचे पहिल्या भागास ह्मणजे पहिला मुहूर्त १ आर्द्रा २ मुहूर्त आश्लेषा ह्याच प्रमाणे—

रात्रीचीं नक्षत्रे—१ आर्द्रा, २ पूर्वाभाद्रपदा, ३ उत्तराभाद्रपदा, ४ रेवती, ५ अश्विनी, ६ भरणी, ७ कृत्तिका, ८ रोहिणी, ९ मृगशीर्ष, १० पुनर्वसु, ११ पुष्य, १२ श्रवण, १३ हस्त, १४ चित्रा, १५ स्वाती. अशीं हीं नक्षत्रे आहेत, रात्रीचे दिनमानाचे १५ भाग केल्यावर पहिल्या भागाचा ह्मणजे पहिला मुहूर्त १ आर्द्रा आला. २ दुसरा पूर्वाभाद्रपदा ह्याप्रमाणे पुढे जाणावेत. जें कर्म ज्या नक्षत्रावर करावयास सांगितलें असेल तें कर्म त्या नक्षत्रावर करावें. मग तें नक्षत्र दिवसास असो अथवा रात्रीं असो तें तसें कर्म करावें ॥ ४ ॥

अथ प्रसंगेन नक्षत्रसमाननाथान् दिनरात्रिमुहूर्तान्नक्षत्रोक्तकार्यसाधकान्वृत्तेनैकेनाह । एतेऽहो दि-  
वसस्य तिथि १५ लवाः पंचदशांशा मुहूर्ताः शिवादयः स्युः प्रथमः शिवः द्वितीयः सर्पः तृतीयो मित्रः  
चतुर्थः पिता पंचमो वसुः षष्ठोऽबु सप्तमो विश्वे अष्टमोऽभिजित् नवमो ब्रह्मा दशम इंद्रः एकादश  
इंद्राक्षी द्वादशो निशाचरः त्रयोदशो जलाधीशो वरुणः चतुर्दश अर्यमाख्यः पंचदशो भगः । अथ  
रात्रेः प्रथमः स्मरहा शिवः अजचरणात् त्रयः अजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाह्वाः क्रमेण द्वितीयोऽजचरणः तृ-  
तीयोऽहिर्बुध्न्यः चतुर्थः पूषा पंचाश्वित इति अश्वितः पंच दस्यमाग्निर्देवः पंचमो दस्यः षष्ठो  
यमः सप्तमोऽग्निः अष्टमः कः ब्रह्मा नवम इंदुः अथोऽदितिर्दशमः एकादशो जीवः गुरुः द्वादशो  
विष्णुः इनात् त्रयः रवित्वष्ट्रनिलाः त्रयोदशो रविः चतुर्दशस्त्वष्ट्रा पंचदशोऽनिलः वायुः । प्रयोजनमाह-  
कर्मेषु भोक्तं स्मृतं एषु मुहूर्तेषु भोक्तं नक्षत्रोक्तं कर्म स्मृतं मुनींद्रैरित्यध्याहारः । एतदुक्तं भवति ।  
शिवमुहूर्ते आर्द्रानक्षत्रोक्तं सार्पमुहूर्तेऽऽश्लेषोक्तं मित्रमुहूर्तेऽनुराधोक्तं कर्म कुर्यादित्यादि । तदुक्तं रत्नमा-  
लायां । यस्मिन् धिष्ये यच्च कर्मोपदिष्टं तद्देवत्ये तन्मुहूर्तेऽपि कार्यं इति । लोके हि स्वामिशब्दं सेवके  
प्रयुजाना दृश्यंते अतो देवताशब्दस्तन्नक्षत्रतिथ्यादिषु स्मर्यंते तथाविधवृद्धप्रयोगदर्शनाच्च । नागो  
द्वादशनाडीभिर्दिक्पंचदशभिस्तथा । भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दृष्यत्युत्तरां तिथिमिति ॥ नागपंचमी  
दिग्दशमी भूतश्चतुर्दशीतिवत् ॥ ४ ॥ इति स्वोक्तमुहूर्तमार्तंडटीकायां नक्षत्रप्रकरणम् ॥ २ ॥

टीकार्थ—आतां प्रसंगाने दिवसाचे मुहूर्त व रात्रीचे मुहूर्त मिळून जेवढे मुहूर्त आहेत तेवढ्या मुहूर्तांचीं नक्षत्रे  
सांगतो कारण कीं, त्या त्या नक्षत्रांचे नाथ पूर्वी सांगितले आहेतच व ज्या नक्षत्रांवर जें कर्म करावयास सांगितलें आहे तें  
कार्य त्या नक्षत्रावर करावयास त्याच मुहूर्ताचा उपयोग आहे ह्या करितां हे सर्व एका वृत्तानें सांगतो. दिवसाचे ( तिथिचे )  
१५ अंश पाडून तितके मुहूर्त समजावे, पैकीं पहिल्या मुहूर्ताचा ह्मणजे आर्द्राचा स्वामी शिव आहे, दुसऱ्याचा सर्प, तिस-  
ऱ्याचा मित्र, चवथ्याचा पितर, पांचव्याचा वसु, सहाव्याचा जल, सातव्याचे विश्वेदेव, आठवा अभिजित् त्याचा स्वामी  
विधि, नवव्याचा ब्रह्मा, दहाव्याचा इंद्र, अकराव्याचा इंद्र, अग्नि असे दोघे, बाराव्याचा राक्षस, तेराव्याचा वरुण, चवदाव्याचा  
अर्यमा, पंधराव्याचा भग. आतां रात्रीचा पहिला मुहूर्त आर्द्रा नक्षत्र आहे. त्याचा स्वामी स्मरहा ह्मणजे शिव आहे, अज  
चरणापासून तिथे ह्मणजे २ अजचरण, ३ अहिर्बुध्न्य, ४ पूषा हे क्रमानें २ पूर्वाभाद्रपदा ३ उत्तराभाद्रपदा आणि ४ रेवती ह्या ति-  
घांचे स्वामी आहेत. अश्विनीपासून पांच नक्षत्रांचे पांच मुहूर्तांचे स्वामी क्रमानें ५ अश्विनीचा दस ह्म० अश्विनीकुमार २  
भरणीचा यम, ३ कृत्तिकेचा अग्नि, ४ रोहिणीचा ब्रह्मा, ५ मृगशीर्षाचा चंद्र ह्मणजे, ५ अश्विनीनक्षत्राचे मुहूर्ताचा अश्विनीकुमार,  
६ भरणीनक्षत्राचे मुहूर्ताचा यम, ७ कृत्तिकानक्षत्राचे मुहूर्ताचा अग्नि, ८ रोहिणीनक्षत्राचे मुहूर्ताचा ब्रह्मा, ९ मृगशीर्षाचे  
नक्षत्राचे मुहूर्ताचा स्वामी चंद्र, १० पुनर्वसुनक्षत्राचे मुहूर्ताचा अदिति, ११ पुष्यनक्षत्राचे मुहूर्ताचा स्वामी जीव ह्म० गुरु,  
१२ श्रवणनक्षत्राचे मुहूर्ताचा स्वामी विष्णु, १३ हस्तनक्षत्राचे मुहूर्ताचा रवि, १४ चित्रानक्षत्राचे मुहूर्ताचा त्वष्टा, १५  
स्वातीनक्षत्राचे मुहूर्ताचा वायु, असे हे त्या त्या नक्षत्राचे स्वामी ते त्या त्या नक्षत्राचेवरील मुहूर्ताचे स्वामी समजावेत. ह्यांचे  
प्रयोजन सांगतो ते असे कीं, ह्या नक्षत्रांवर सांगितलेलें कर्म त्या नक्षत्राच्या मुहूर्तावर करावें असे श्रेष्ठमुनींनीं सांगितलें आहे.  
व ह्याचा स्पष्ट अर्थ असा कीं, आर्द्रानक्षत्रावर जें कर्म करावयास सांगितलें तें आर्द्रानक्षत्राचा शिव मुहूर्त आहे, त्यावर  
करावें. तसेंच आश्लेषानक्षत्रावर जें कर्म सांगितलें तें सर्प मुहूर्तावर करावें. अनुराधानक्षत्रावर करावयास सांगितलेलें कार्य  
मित्रमुहूर्तावर करावें. तोच अर्थ रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलेला आहे कीं, ज्या नक्षत्रावर जें कर्म सांगितलें तें कार्य त्या  
नक्षत्राची जी देवता असेल त्याचे त्या मुहूर्तावर करावें. लोकांतही असाच प्रचार दिसतो कीं, स्वामीचीं जो शब्द असतो तो

सेवकाला लावतात ह्मणून देवताही त्या त्या तिथिनक्षत्राची स्वामी असते, ह्मणून स्वामीचा शब्द त्या त्या सेवकरूपीनक्षत्र तिथ्यादिकांला लागतो व तसाच वृद्धविद्वानांचा व्यवहारही दिसत आहे. जसे—नाग ( नागपंचमी ) हा वारा नाडिकांनीं व दिशा ( दशमी ) ही पंचरांनीं, भूत ( चतुर्दशी ) अठरांनीं, पुढल्या तिथिला दृषित करतात ह्यांत नाग ही देवता असून तो शब्द पंचमी तिथिला लावला आहे, तसेंच पुढेही समजावें ॥ ४ ॥ अशा रीतीने आपण केलेल्या मुहूर्तमांतिड टीकेंतील नक्षत्र प्रकरण पुरें झालें ॥ २ ॥

## अथ संस्कारप्रकरणम् ३

प्रथम रजोदर्शनीं अशुभ.

आद्यतौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवाराः ।

रिक्तामार्कोष्टपष्टयः परगृहकुपदे रात्रिसंध्यापराह्णाः ॥

मिश्रोग्रामूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाल्पाधिकासं गराष्टोत् ।

पातः पापस्य लग्नं न सङ्गरुणजरनीलचित्रांबरं च ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—प्रथमतः रजोदर्शन होतानां जें अशुभ तें सांगतां—महिन्यांमध्ये—१ पौष, २ ज्येष्ठ, ३ कार्तिक ४ चैत्र, ५ आषाढ, ६ भाद्रपद हे सहा महिने अशुभ आहेत.

योगांमध्ये—१ विष्कंभ, २ अतिगंड, ३ शूल, ४ गंड, ५ व्याघात, ६ वज्र, ७ व्यतिपात, ८ परिघ, ९ वैधृति हे नऊ योग अशुभ आहेत.

वारांमध्ये—पाप ग्रहांचे वार ह्मणजे १ मंगळ, २ रवि, ३ शनि हे अशुभ आहेत.

तिथींमध्ये—रिक्तातिथि, ( चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ) अमावास्या, द्वादशी, अष्टमी ह्या तिथि अशुभ आहेत. गृहांमध्ये—पतिवांचून दुसऱ्याचें घर, अशुभ स्थान ( मार्ग अथवा नीचांचे घर. )

वेळेमध्ये—रात्र, प्रातःकाळ, सायंकाळ, अपराण्ह, ( दिवसाचा तिसरा भाग. )

नक्षत्रांमध्ये—मिश्र ह० कृत्तिका व विशाखा, उग्र ह० तीन पूर्वा, मघा, भरणी. तीक्ष्ण ह० आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा हीं दहा नक्षत्रें अशुभ आहेत. ह्यांशिवाय बाकीचीं सर्व नक्षत्रें शुभ आहेत.

संधि—तिथींचा संधि व नक्षत्रांचा संधि अशुभ आहे.

रक्त—फारच लाल नसून तें अधिक नसावें व फार थोडेंही नसावें असें रक्त अशुभ आहे.

कृष्ण—गर नाम करणापासून आठ करणें अशुभ आहेत.

उत्पात—ग्रहण, उत्पात, पापग्रहाचें लग्न हीं अशुभ आहेत.

वस्त्र—फार लाल, फाटकें, निळें व अनेक रंगाचें वस्त्र हीं सर्व प्रथम रजोदर्शनीं अशुभ आहेत. ॥ १ ॥

अथ गर्भाधानादिसंस्कारप्रकरणम् विवक्षुस्तावद्गर्भाधानस्य ऋतुसंबंधात्प्रथमर्तुफलं स्वधरावृत्ते-  
नाह-आद्यतौविति । तत्राऽऽदौ मासफलमाह आद्यतौ प्रथमतौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः संतो न  
स्युरित्यन्वयः । अर्थाद्विभक्तिविपरिणामः पौषः प्रसिद्धः शुक्रो ज्येष्ठः ऊर्जः कार्तिकः मधुश्चैत्रः शुचिरा-  
षाढः नभस्यो भाद्रपदः एते षणमासाः न शुभा इत्यर्थः । अर्थादन्ये शुभाः । तदुक्तं ज्योतिर्निबंधे । प्र-  
थमतौ मघौ नारी विधवा भवति भुवं । वैशाखे धनपुत्राख्या ज्येष्ठे रोगान्विता भवेत् ॥ आषाढे च मृता-  
पत्या श्रावणे च धनान्विता । भाद्रपदे दुर्भगा च आश्विने च तपस्विनी । ऊर्जेऽल्पायुष्मती नारी  
मार्गशीर्षे बहुप्रजा । पौषे तु पुंश्वली नारी माघे पुत्रसुखान्विता ॥ फाल्गुने श्रीमती साध्वी क्रमान्मा  
सफलं स्मृतमिति ॥ योगफलमाह-कुयुगिति । कुयोगो विष्कंभादिकः । योगेषु नव योगाः दुष्टाः सन्ति  
विष्कंभातिशूलगंडव्याघातवज्रव्यतीपातपरिघवैधृतयः । एते योगा न शुभा इत्यर्थः । अर्थादन्ये शु-  
भाः । तदुक्तं । आद्यतौ दुर्भगा नारी विष्कंभे चेद्रजस्वला । वंध्या चैवातिगंडे च शूले शूलवती भ-

१ मात्र मूळ नक्षत्र सोडावे. २ हे संधि पुढे सांगण्याचे आहेत.

वत् ॥ गंडे च पुंश्चली नारी व्याघाते वाऽऽत्मघातिनी । वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च परिघा-  
तिनी ॥ परिघे मृतबंध्या च वैधृतौ पतिमारिणी । शेषाः शुभावहा योगा यथानामफलप्रदा इति ॥  
वारफलमाह-पापवारा इति । क्षीणैर्द्वर्कयमाराः पापस्तेषां वारा न शुभा अर्थादन्ये शुभाः । उक्तं च  
कारिकायां । आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव मृतप्रजा । अंगारके स्वसुहृन्नी बुधे कन्याप्रसूमेव ।  
पुत्रिणी गुरुवारे च कन्यापुत्रवती भृगौ । शनौ तु पुंश्चली नारी प्रथमतो विदुर्बधा इति ॥ तथाच ना-  
रदः । रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी । पतिप्रिया क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् इति ॥  
कारिकावचने सोमवारफलं-मृतप्रजेति । नारदवचने पतिव्रतेति एवं द्वयोर्विरोधे मृतप्रजेति कृष्णपक्ष-  
सोमवारविषयं पतिव्रतेति शुक्लपक्षीयसोमवारविषयमिति व्यवस्थापनीयं । अतो मार्तंडवचनं पापवारा  
इत्येतदतिप्रशस्तं । तिथिफलमाह-रिक्तामार्काष्टवष्टय इति । रिक्ताश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः । अमा अमावा-  
स्या अर्को द्वादशी द्वादश्याः स्वामी अर्कोऽथवा अर्कसंख्याऽपि द्वादशवाचका संख्ययाऽपि द्वादशी  
भवति । तिथिदेवताऽपि रत्नमालायां । तिथिपाश्चतुर्मुखविधानुविष्णव इत्यादयः । अष्ट अष्टमी षष्ठी  
प्रसिद्धा एताः सप्त तिथयो न शुभा अर्थादन्याः शुभाः । उक्तं च । आद्यतो सुभगा नारी प्रतिपत्सु र-  
जस्वला । द्वितीयायां भाग्यवती तृतीयायां सुतान्विता । चतुर्थ्यां विधवा नारी पंचम्यां धनदायिनी ।  
षष्ठ्यां च क्लेशभाक् नारी सप्तम्यां धनवर्धिनी । अष्टम्यां राक्षसी नारी नवम्यां पापवर्धिनी । दशम्यां  
प्रीतिकृन्नारी एकादश्यां सुतान्विता । द्वादश्यां दुर्भगा नारी त्रयोदश्यां हिरण्यदा । चतुर्दश्यां पुंश्चली  
स्यात्पौर्णमास्यां सुपुत्रिणी । यदि भद्रा न जायेत दशं स्याच्चौरिका भ्रुवमिति ॥ स्थानफलमाह-परगृहकुपद  
इति ॥ परगृहं भर्तृगृहादन्यत् । कुपदं कुत्सितस्थानं एते उभे निचे । अर्थादन्यच्छुभं । उक्तं च । देवस्थाने  
पितृस्थाने निंद्यस्थानेऽन्यवेश्मनि । पुष्पवत्याः फलं न स्यान्मार्गे चांडालवेश्मनीति देवस्थानं देवालये ।  
पितृस्थानं श्मशानं निंद्यस्थानं कुत्सितस्थानमन्यवेश्म भर्तृगृहादन्यत् गृहं । अन्यत्सुगमं । नन्वत्र श्लोके  
बहूक्तमत्र कथं परगृहकुपदे इत्येवोक्तं सत्यं यत्स्थानद्वयमुक्तं तस्मिन्नेव सर्वश्लोकोक्तमधितिष्ठति ।  
तद्यथा । देवस्थानान्यवेश्मचांडालवेश्मेतिपदत्रयं परगृह इत्येतस्मिन्पदेऽधितिष्ठति अन्यत् श्लोकोक्तं  
कुपदे वर्तते । ननु मार्गः कथं कुपदेऽस्ति स तु कुत्सितो न भवति अस्ति मार्गेऽपि दुष्टत्वं सर्वजनसं-  
चारान्धर्मशास्त्रप्रसिद्धं तर्हि पूर्वश्लोकोक्तं बहुभाषणं व्यर्थं स्यात् । मैवं तदुक्तं बहुभाषणं त्वधिकाधि-  
कदोषविवक्षयोक्तमिति न दोषः । वेलाफलमाह-रात्रिसंध्यापराह्णा इति । रात्रिः प्रसिद्धा संध्ये द्वे  
अपराह्णखेधा विभक्तस्याहस्तृतीयो भागः एते चत्वारः काला न शुभाः । अर्थादन्यौ पूर्वाह्णमध्याह्नौ शुभौ ।  
उक्तं च । पुत्रिणी सुभगा पुण्या पूर्वाह्णे या रजस्वला । मध्याह्ने तु शुभप्रातिः स्वैरिणी चापराह्णे ।  
संध्ययोरुभयोर्वेश्या निशायां विधवा तथेति ॥ नक्षत्रफलमाह-मिश्रोग्रामूलतीक्ष्णमिति । मिश्रे  
कृत्तिकाविशाखे उग्राणि पूर्वात्रयभरणीमघाः अमूलतीक्ष्णानि मूलरहिततीक्ष्णानि आश्लेषा ज्येष्ठाऽऽ-  
र्द्रा इत्येतन्नक्षत्रदशकं न शुभं अर्थादन्यानि शुभानि । तदुक्तं नारदीयसंहितायां । श्रीयुता सुभगा  
पुत्रवती सौख्यान्विता स्थिरा । कुलाधिका मानवती चाश्विन्यां प्रथमार्तवा ॥ १ ॥ दुःशीला स्वैरिणी  
स्वस्य गर्भपातनतत्परा । परप्रेष्या काकबंध्या भरण्यां प्रथमार्तवा ॥ २ ॥ अनर्था पुंश्चली बंध्या  
गर्भपातनतत्परा । प्रेष्या मृतप्रजा वाऽपि वह्निमे प्र० ॥ ३ ॥ सुशीला सुप्रजा मान्या पतिभक्ता दृढ-  
व्रता । गृहार्चनरता नित्यं धातृमे प्र० ॥ ४ ॥ गुणान्विता धर्मरता नारी सर्वसहा सती । पतिप्रिया  
सुताढ्या च चंद्रमे प्र० ॥ ५ ॥ कुलटा दुर्भगा कष्टा मृतपुत्रा खला जडा । दुष्टा व्रतपरिभ्रष्टा रौद्रमे  
प्र० ॥ ६ ॥ पतिभक्ता पुत्रवती वरसंतानमोदिनी । कुलाचारानुरक्ताऽढ्याऽदितिमे प्र० ॥ ७ ॥ पति-  
प्रिया पुत्रवती नानाभोगवती शुभा । स्वकर्मनिरता दक्षा तिष्यमे प्रथमार्तवा ॥ ८ ॥ परभर्तृरता प्रेष्या  
कोपिनी निर्घृणाऽलसा । मृषावागीशदुष्पुत्रा भौजगे प्र० ॥ ९ ॥ निर्द्वेष्या रोगसंयुक्ता सर्वदा गेय-  
लोलुपा । पितृवेश्मरता मान्या पितृमे प्र० ॥ १० ॥ परकार्यरता दीना दुष्पुत्रा क्लेशभागिनी । मलिना  
कर्कशा क्रुद्धा भाग्यक्षे प्र० ॥ ११ ॥ प्रजावती धर्मरता निर्वैरा मित्रपूजिता । सती मातृगृहासक्ता  
अर्यमक्षे रजस्वला ॥ १२ ॥ निर्द्वेष्या भूरिविभवा पुत्राढ्या भोगभागिनी । प्रधाना दानकुशला हस्तक्षे  
प्रथमा ॥ १३ ॥ चित्रकर्मा भोगिनी च कुशला क्रयविक्रये । विकीर्णकामा श्लक्ष्णाढ्या त्वाष्ट्रमे प्र०  
॥ १४ ॥ बहुवित्तवती नीरुक्कुशला शिल्पकर्मणि । पुत्रपौत्रवती साध्वी वायुमे प्र० ॥ १५ ॥ नीचकर्मरता  
दुष्टा पानासक्ता परप्रिया । विपुत्रा मलिना क्रुद्धा द्विदैवे प्र० ॥ १६ ॥ स्वामिपक्षांर्चिता स्वस्य गुणैः  
सम्यग्निभूषिता । सुपुत्रा सुभगा कांता मित्रमे प्र० ॥ १७ ॥ दुश्चरित्ररता क्लेशिन्यनर्था पुंश्चली व्यसुः ।

दुःसंतानवती ज्येष्ठानक्षत्रे प्र० ॥ १८ ॥ संतानार्थगुणैर्नाल्पैर्युताऽन्यक्लेशमोचनी । स्वकर्मनिरता नित्यं  
मूलक्षेत्रे प्र० ॥ १९ ॥ प्रच्छन्नपापा दुष्पुत्रा प्राणिर्हिसनतत्परा । अजस्रं व्यसनासक्ता तोयमे प्र०  
॥ २० ॥ कार्याकार्येषु कुशला सदा धर्मानुवर्तिनी । गुणाश्रया भाग्यवती विश्वमे प्र० ॥ २१ ॥ पुत्र-  
पौत्रान्विता भोगधनधान्यवती सती । कुलानुमोदिनी मान्या विष्णुमे प्र० ॥ २२ ॥ धनधान्यवती  
भोगपुत्रपौत्रसमन्विता । स्वकर्मनिरता साध्वी वसुमे प्र० ॥ २३ ॥ बहुपुत्रा धनवती स्वकर्मनिरता सती ।  
कुलानुमोदिनी मान्या वारुणे प्र० ॥ २४ ॥ बंधकी बंधुविद्वेष्या नित्यं दुष्टरता खला । शिल्पकार्येषु  
कुशलाऽजात्रिमे प्र० ॥ २५ ॥ आढ्या पुत्रवती मान्या सुप्रसन्ना प्रतिप्रिया । बंधुपूज्या धर्मवत्याहिर्बु-  
द्ध्ये प्र० ॥ २६ ॥ दृढव्रता धर्मवती पुत्रसौख्यार्थसंयुता । विख्याता गुणसंपन्ना पौष्णमे प्रथमार्तवा  
॥ २७ ॥ अथ संधिफलमाह-विवरमिति । तिथिभादीनां विवरं संधिः न शुभं । उक्तं च । दुर्भगा  
सर्वसंधिष्विति । रक्तफलमाह-अनरुणालपाधिकास्त्रमिति । अनरुणादन्यदनरुणं अनरुणं च अल्पं च  
अधिकं च अनरुणालपाधिकं तच्च तदस्त्रं च अनरुणालपाधिकास्त्रं न सत् स्यात् अनरुणं नाम यत्सुरंगं  
आरक्तं न भवति अस्त्रं रक्तं अन्यत्सुगमं अर्थादन्यच्छुभं । उक्तं च । प्रथमतो फलं स्त्रीणामुच्यते रजसो-  
ऽधुना । सुभगा पुत्रसंयुक्ता शुक्लवर्णे तथाऽऽर्तवे ॥ शशशोणितसंकाशे यद्वाऽलक्तकसन्निभे । पुत्रक-  
न्याप्रसूतिः स्यान्नीले तु स्यान्मृतप्रजा ॥ कर्बुरे त्रियते सा च पिंगटे च मृतप्रजा । कृष्णे तु विधवा  
नारी रजस्येवं विनिर्दिशेत् ॥ शोणिते बिंदुमात्रे तु स्वैरिणी चालपशोणिता । वरा मध्यस्त्रवा स्यात्तु  
दुर्भगा बहुशोणितेति ॥ ग्रंथांतरेऽप्युक्तं । रक्ते रक्ते भवेत्पुत्राः कृष्णे च मृतपुत्रका । पिच्छलामे भवे-  
द्ब्रह्मा काकबंध्या च पांडुरे ॥ पीते च स्वैरिणी प्रोक्ता सुभगा गुंजवर्णके । सिंदूराभे भवेत्कन्या रजः  
शोणितलक्षणमिति ॥ करणफलमाह-गराष्टेती । गराष्ट्र गराष्ट्र गराष्ट्रकरणानि बवपर्यंतानि न संति  
न शुभानि स्युः । अर्थादन्यानि शुभानि । उक्तं च । बवे पुष्पवती नारी बंध्या वा विधवा भवेत् ।  
बालवे पुत्रिणी नारी कौलवे प्रमदा भवेत् । तैतिले सन्मतवती गरे नारी विनश्यति । नष्टप्रजा वणि-  
क्संज्ञे विष्टया बंध्या धनोद्धिज्ञता ॥ शकुनौ च चतुष्पादे नारी वैधव्यमाप्नुयात् । नागे न रमते  
रामां किंस्तुम्ने विधवा भवेत् इति । अथोत्पातफलं-उत्पातस्त्रिविधः सत् न स्यात् तथा च  
नारदः । संख्यासूपप्लवे विष्टयामशुभं प्रथमार्तवमिति ॥ अथ लग्नफलमाह-पापस्य लग्नमिति ।  
पापग्रहस्य लग्नं न सत्स्यात् । क्षीणैर्द्वर्क्यमाराः पापास्तेषामन्यतमस्य लग्नमित्यर्थः । पापग्रहस्य  
मेषसिंहवृश्चिकमकरकुम्भा एतानि लग्नानि न शुभानीत्यर्थः । अर्थादन्यानि शुभानि । कर्कलग्ने शुक्लपक्षे  
शुभं कृष्णपक्षे अशुभं स्वामित्वात् लग्नस्वामिनो वक्ष्यमाणाः उक्तं च । आत्मघ्नी भ्रुणहा मेषे वृषे पुत्रवती  
भवेत् । द्वंद्वे कन्याप्रसूनी मृतापत्या च कर्किणी ॥ सिंहे वैधव्यमाप्नोति कन्यायां स्त्रीप्रसूर्भवेत् ।  
तुलायां बहुपुत्राढ्या दुष्टकर्मरताऽलनि ॥ चापे पुत्रधनाढ्या स्यान्मकरे दुःखिनी भवेत् । सङ्कटप्रजा-  
वती कुंभे मीने चालपप्रजा भवेत् । नारदोऽपि । कुलीरवृषचापांत्यन्युक्त्यातुलाधनाः । राशयः शुभदा  
ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तव इति ॥ अत्रापि कर्कलग्नस्य द्वैधे चंद्रस्य सौम्यत्वपापत्ववशाद्यवस्था ज्ञेया ।  
अथ वस्त्रफलमाह-अरुणजरनीलचित्रांबरमिति । न सत् स्यात् अरुणमारक्तं जरत् जीर्णं नीलं प्रसिद्धं  
चित्रं नानावर्णै रंजितं एवंविधमंबरं न सत् स्यात् न शुभं स्यादित्यर्थः अर्थात् दृढं शुभं पीतं वस्त्रं  
शुभं । उक्तं च । सुभगा श्वेतवस्त्रा च रोगिणी रक्तवाससा । नीलांबरधरा नारी विधवा प्रथमार्तवे ॥  
भोगिनी पीतवस्त्रा च दृढवस्त्रा पतिव्रता । दुर्भगा जीर्णवस्त्रा च सुभगा चारुवस्त्रिणी ॥ अत्रानुक्तमपि  
त्याज्यप्रकरणोक्तमन्यदृष्टं विचारणीयं अत्रास्मिन्नुक्ते निषिद्धकाले रजोदर्शने सति अक्षततिलघृतैर्देव्या  
इज्यया यजनं स्यात् देव्या गायत्रीमंत्रेण संख्यानुपादानादक्षततिलघृतानामष्टोत्तरशतं होमो यथा-  
शक्ति स्वर्णगोभूतिलदानं च कार्यम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्वोक्तमुहूर्तमार्तडटीकायां प्रथमार्तवप्रकरणम् ॥ ३ ॥

टीका—आतां गर्भाधान इत्यादि संस्कारांचें प्रकरण सांगण्याच्या इच्छेनें गर्भाधानाला ऋतूची आवश्यकता असल्याकारणानें अगोदर ऋतूचें फल स्वधरावृत्तानें सांगतों. अगोदर मासांचें फल सांगतों. प्रथम ऋतुदर्शनाचे वेळीं पौष, ज्येष्ठ, कार्तिक, चैत्र, आषाढ, भाद्रपद हे सहा महिने शुभकारक नाहींत. अर्थात् यादून बाकी राहिलेले सहा महिने ह्यणजे माघ, फाल्गुन, वैशाख, श्रावण, अश्विन, मार्गशीर्ष हे शुभकारक आहेत. तोच अर्थ ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितला आहे कीं, प्रथम ऋतु चैत्रांत आला तर ती स्त्री विधवा होते. वैशाखांत आला असतां धन आणि पुत्र ह्यांनीं संपन्न होते. ज्येष्ठांत आला असतां रोगिणी होते. आषाढांत आला असतां तिचे पुत्र मर-



तात. श्रावणांत आला असतां धनवती होते. भाद्रपदांत आला असतां अभाग्यवती होते. आश्विनांत आला असतां तपस्विनी ह्य० सदाचार संपन्न होते. कार्तिकांत आला असतां अल्पायुष्याची होते. मार्गशीर्षांत आला असतां पुष्कळ संतति देणारी होते. पौषांत आला असतां दुराचरणी होते. माघांत आला असतां पुत्रांचे सुखांनीं संपन्न होते. फाल्गुनांत आला असतां लक्ष्मीवान् होते. असें हे कमनां मासांचें फल सांगितलें. योगांचें फल सांगतां तें असें कीं, १ विष्कंभ, २ अतिगंड, ३ शूल, ४ गंड, ५ व्याघात, ६ वज्र, ७ व्यतिपात, ८ परिघ, ९ वैधृति हे नऊ योग यांचेर प्रथम ऋतू आला असतां तो अशुभ होतो. अर्थात् ह्या नवांशिवाय बाकी राहिलेले अठरा योग शुभ आहेत. तोच अशुभकारक अर्थ असा सांगितला आहे कीं, प्रथम ऋतू विष्कंभावर आला असतां दुर्भगा ह्य० विधवा होते. अतिगंडावर आला असतां वांझ होते. शूलावर आला असतां तिला शूल होतो. गंडावर आला असतां जार कर्म करणारी होते. व्याघातावर आला असतां आत्महत्या करणारी होते. वज्रावर आला असतां स्वच्छंद फिरणारी होते. पातावर आला असतां परिघात करणारी होते. परिघावर आला असतां मृत वांझ होते. वैधृतिवर आला असतां पतिला मारणारी होते. बाकी राहिलेले योग शुभकारक आहेत. त्यांचीं जशीं नावे आहेत तसें ते फल देणारे आहेत. वारांचें फल सांगतां—क्षीणचंद्र, सूर्य, शनि, मंगळ हे पापग्रह आहेत त्यांचे वार अशुभ आहेत अर्थात् बाकीचे वार शुभ आहेत. तोच अर्थ कारिकेंत सांगितला आहे तो असा, रविवारीं प्रथम ऋतू आला असतां स्त्री विधवा होत. सोमवारीं आला असतां तिच्या प्रजा मरतात. मंगळवारीं आला असतां बहिणीला मारणारी होते. बुधवारीं आला असतां तिला कन्या प्रजा होते. गुरुवारीं आला असतां ती पुत्रवती होते. शुक्रवारीं आला असतां कन्या आणि पुत्र दोनही होतात. शनवारीं आला असतां जारिणी होते, असें विद्वान् जाणतात. तोच विचार नारदानें सांगितला आहे. तो असा रविवारचे कमनां १ रोगी २ पतिव्रता ३ दुःखी ४ पुत्रवती ५ भोगभोगणारी, ६ पतीला प्रिय, ७ क्लेश भोगणारी, आतां कारिका वचनांत सोमवारचें फल मृतप्रजा असें आहे आणि नारदवचनांत पतिव्रता असें सोमवारचें फल आहे ह्यानून दोन वचनांचा विरोध आला असतां कृष्णपक्षांतील सोमवाराचें फल मृतप्रजा असें आहे कारण त्यावेळेस चंद्र क्षीण असतो आणि पतिव्रता हे फल शुक्लपक्षांतील सोमवाराचें आहे कारण त्या वेळेस चंद्र वृद्धिगत असतो अशी व्यवस्था समजावी. ह्यानून मार्तंडानें सांगितलेल्या पापग्रहांचे वार हे फारच प्रशस्त आहेत. तिथीचें फल सांगतां—रिक्ता तिथि ह्य० (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी,) अमावास्या, अर्क ह्य० द्वादशी कारण द्वादशीचा स्वामी अर्क आहे अथवा अर्क ही संख्या बारा आहे ह्यानून ही द्वादशीच येते. तिथीच्या देवता रत्नमाला ग्रंथांत सांगितल्या आहेत त्या अशा तिथींचे पति चतुर्मुख, विधाता, विष्णु असे तिचे इत्यादि आहेत. अष्ट ह्य० अष्टमी, षष्ठी ह्या सात तिथी अशुभ आहेत, अर्थात् बाकीच्या शुभ समजाव्या. हाच विचार सांगितला आहे तो असा कीं, प्रथम ऋतू दर्शन होतांना प्रतिपदा असेल तर ती स्त्री सौभाग्यवती, द्वितीयेस भाग्यवती, तृतीयेस पुत्रवती, चतुर्थीस विधवा, पंचमीस धन देणारी, षष्ठीस क्लेश करणारी, सप्तमीस धन वाढविणारी, अष्टमीस राक्षसी, नवमीस पाप वाढविणारी, दशमीस प्रीति करणारी, एकादशीस पुत्रवती, द्वादशीस दुर्भगा ह्य० दुष्ट भाग्याची, त्रयोदशीस सुवर्ण देणारी, चतुर्दशीस जार कर्म करणारी, पौर्णिमेस सुपुत्र देणारी, जर भद्रा नसतील तर अमावास्येस ऋतू पाहिला तर खरोखर चोरी करणारी होते. आतां घराचा विचार सांगतां. पतिवांचून दुसऱ्याच्या घरी, कुत्सितस्थानीं हीं दोन स्थानें निंघ ह्य० अशुभ आहेत अर्थात् ह्यांहुन बाकीचीं स्थानें शुभ आहेत. असें सांगितलें आहे कीं, देवस्थानीं ह्य० मंदिरांत, पितृस्थानीं ह्य० स्मशान भूमीवर, निंघस्थानीं, दुसऱ्याचे घरी, चांडालाचे घरी, ऋतुमती झाल्याचें फल शुभकारक असत नाहीं. आतां अशी शंका येते कीं, ह्या श्लोकांत पुष्कळ स्थानें निंघ ह्यानून सांगितलीं आहेत मग मार्तंडांत परग्रह आणि कुपद ह्य० कुस्थान एवढीं दोनच कां सांगितलीं ? हे ह्याणें खरें आहे. परंतु जीं दोनच स्थानें सांगितलीं त्यांमध्येंच श्लोकांतील सर्व स्थानांचा समावेश आहे. तो असा कीं, परग्रह ह्या शब्दामध्यें देवस्थान, दुसऱ्याचें घर, चांडाल घर इतक्यांचा समावेश होतो आणि बाकीच्यांचा समावेश कुपद शब्दांत होतो आतां अशी शंका येते कीं, मार्ग ह्याणजे रस्ता ह्याचा कुपदांत समावेश कसा होईल ? कारण तो मार्ग काहीं कुत्सित असत नाहीं. परंतु धर्म शास्त्राच्या दृष्टीनें पाहिलें असतां मार्गामध्यें सभे प्रकारच्या जनांचा संचार असल्या कारणानें तो दुष्ट असतो. असें जर आहे तर पूर्वीच्या श्लोकांतील पुष्कळ बोलणें फुकट होईल असें ह्याणू नका. कारण कीं, पुष्कळ बोलणें हे एकापेक्षां एक अधिक दोष युक्त आहे असें सांगण्याच्या इच्छेनें आहे ह्याणून तो दोष येत नाहीं, आतां वेळचें फल सांगतां—रात्रि, दोन संध्या आणि अपराण्ह ह्य० दिवसाचा तिसरा भाग. अपराण्ह काल ह्याणजे एका दिवसाचे तीन भाग केल्यावर जो तिसरा भाग असतो त्याला अपराण्ह काल ह्याणतात. हे चार काळ प्रथम रजो दर्शनास शुभ नाहींत. अर्थात् दुसरे मध्यान्ह आणि पूर्वाण्ह हे शुभ आहेत. असें सांगितलें आहे कीं, पूर्वाण्ह जी रजोदर्शन पावते ती पुत्रवती होते व सौभाग्यवती होते. मध्यान्ह रजोदर्शन पावणाऱ्या स्त्रियेला शुभ फल प्राप्त होतें. अपराण्ह पावणारी स्त्रैरिणी ह्याणजे स्वच्छंद गमन करणारी होते. दोन संध्येचे वेळीं ऋतू प्राप्त होणारी वेदयां होते. रात्रीं ऋतू प्राप्त झालेली स्त्री विधवा होते. नक्षत्रांचें फल सांगतां—मिश्र ह्याणजे कृत्तिका व विशाखा हीं दोन. उग्र ह्याणजे तीन पूर्वा ह्य०

पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा ही तीन आणि भरणी व मघा अशीं ही पांच नक्षत्रे. व मूळ नक्षत्राशिवाय बाकीचीं सर्व तीक्ष्ण नक्षत्रे, ह्य० आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, इतकीं नक्षत्रे शुभ नाहीत. ह्य० ह्यांवर ऋतु आलेला शुभकारक नाही. अर्थात् बाकीचीं सर्व राहिलेलीं नक्षत्रे शुभ आहेत. तोच विचार नारदसंहितेंत सांगितला आहे कीं, १ अश्विनी नक्षत्रावर प्रथम ऋतु आला तर ती स्त्री लक्ष्मीवती, सौभाग्यवती, सौख्यवती, कुलामध्ये श्रेष्ठ, मानवती अशी होते. २ भरणी नक्षत्रावर प्रथम ऋतु आला तर दुष्ट स्वभावाची स्वच्छंद गमन करणारी, आपला गर्भ पाडणारी, दुसऱ्याच्या घरी चाकरी करणारी, ह्य० दासी, काकवंध्या होते. ३ अश्वि देवतेच्या ह्यणजे कृत्तिका नक्षत्रावर ऋतु प्राप्त झाला तर दरिद्री, जार कर्म करणारी, वांझ, गर्भघात करणारी, दासी, मृतप्रजा होते. ४ धातुदेवतेचे नक्षत्रावर ह्य० रोहिणीवर ऋतु आला तर सुखभावाची, सुप्रजावती, मान्य, पतिसेवातत्पर, दृढव्रत करणारी, गृहाचे कृत्यांत तत्पर अशी होते. ५ चंद्रदेवतेच्या ह्य० मृगशीर्ष नक्षत्रावर ऋतु आला तर गुणवती, धर्माचरणांत तत्पर, क्षमावती, पतिप्रिया, पुत्रसंपन्न अशी होते. ६ रुद्रदेवतेच्या नक्षत्रावर ह्य० आर्द्रा नक्षत्रावर ऋतु आला तर कुलटा ह्य० जारिणी, दुर्भाग्यवती, कष्ट देणारी, मृतपुत्रा, खल आणि जड स्वभावाची, पाति, त्रत्यापासून भ्रष्ट होणारी होते. ७ अदिति देवतेचे ह्यणजे पुनर्वसु नक्षत्रावर ऋतु आला तर. पतीची सेवा करणारी, पुत्रवती-उत्तम संतानानें आनंद पावणारी, कुलाचारानें वर्तन करणारी अशी होते. ८ पुष्य नक्षत्रावरची स्त्री, पतिप्रिय, पुत्रवती, नानाप्रकारचे भोग भोगणारी, आपल्या स्वकर्तव्यकर्मांत तत्पर, चतुर, अशी होते. ९ सूर्यदेवतेच्या ह्य० आश्लेषा नक्षत्रावर ऋतु आला असतां दुसऱ्याच्या पतिबरोबर रत होणारी, दासी, रागीट, निर्दय, आळसी, खोटे बोलणारी, दुष्ट पुत्रवती होते. १० पितृदेवतेच्या ह्य० मघा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री द्वेष न करणारी, रोगी, नेहेमी गायनप्रिय, बापाचे घरी रहाण्यास तत्पर, मान्य अशी होते, ११ भगदेवतेच्या ह्य० पूर्वा फाल्गुनीवर ऋतु आलेली स्त्री दुसऱ्याचें काम करण्यांत तत्पर, दीन स्वभावाची, दुष्ट पुत्राची, क्लेश भोगणारी, मलिना, कर्कशा आणि क्रोधी होते. १२ अर्यमादेवतेच्या ह्य० उत्तराफाल्गुनीवर ऋतु आलेली स्त्री प्रजासंतति युक्त, धर्मतत्पर, वैररहित, मित्राकडून मान मिळविणारी, पतिव्रता, मातेच्या घरी राहणारी, अशी होते. १३ हस्त नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री द्वेष न करण्याजोगी, पुष्कळ धनवती, पुत्रांनीं संपन्न, भोग भोगणारी, दान करण्यांत कुशल, प्रधान ह्य० श्रेष्ठ स्वभावाची अशी होते. १४ त्वष्टादेवतेचा ह्य० चित्रा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री चित्रकर्म करण्यांत कुशल, भोग भोगणारी, कयविक्रय करण्यामध्ये कुशल, मोठमोठ्या इच्छा करणारी, प्रीतियुक्त अशी होते. १५ दायुदेवतेच्या ह्य० स्वाती नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री पुष्कळ वित्त असलेली, रोगरहित, शिल्प कामांत चतुर, पुत्र, पौत्र असलेली, पतिव्रता, अशी असते. १६ दोन देवता ज्याच्या आहेत अशा ह्य० विशाखा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री नीच कर्म करण्यांत तत्पर, दुष्ट स्वभावाची, मद्यपानाविषयी आसक्त, परप्रिय, पुत्ररहित, मलिन आणि क्रोधी अशी असते. १७ मित्रदेवतेच्या ह्य० अनुराधा नक्षत्रावर ऋतु आला असतां ती स्त्री आपल्या पतिकडील माणसांकडून आदर केलेली, आपल्या स्वतःच्या गुणांनीं उत्तम शोभायमान, सुपुत्रवती, सौभाग्यवती, रमणीय अशी होते. १८ ज्येष्ठा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री दुराचरणांत तत्पर, क्लेश करणारी, द्रव्यरहित, जारकर्म करणारी, दुष्ट प्रजा उत्पन्न करणारी आणि शेवटीं मरण पावणारी होते. १९ मूल नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री संतान, संपत्ति इत्यादि नाना गुणांनीं युक्त, दुसऱ्याचें दुःख नाश करणारी, नेहेमी आपल्या कर्तव्यकर्मांत तत्पर असणारी होते. २० जलदेवतेच्या ह्य० पूर्वाषाढा नक्षत्रावरची स्त्री चोरून पाप करणारी, दुष्ट पुत्रवती, प्राण्यांची हिंसा करण्यांत तत्पर, नेहेमी संकटांत पडून दुःख भोगणारी होते. २१ विश्वेदेवदेवतेच्या ह्य० उत्तराषाढा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री कर्तव्य आणि अकर्तव्य ह्यांविषयी कुशल, नेहेमी धर्माला अनुसरून वागणारी, गुणांनीं युक्त, भाग्यवती अशी असते. २२ विष्णुदेवतेचे ह्य० श्रवण नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री पुत्र, पौत्र ह्यांनीं युक्त, उत्तमभोग, धन, धान्य ह्यांनीं संपन्न, पतिव्रता, कुलाला आनंद देणारी. सर्वांना मान्य अशी असते. २३ वसुदेवता असलेल्या ह्य० धनिष्ठा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री धन आणि धान्य ह्यांनीं संपन्न, उत्तम भोग, पुत्र, पौत्र ह्यांनीं संपन्न, आपल्या कर्तव्यकर्मांत तत्पर, पतिव्रता असते. २४ वरुण देवतेच्या ह्य० शततास्का नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री पुष्कळ पुत्र असलेली, धनवती, स्वकर्तव्यकर्मांत तत्पर, पतिव्रता, कुलाला आनंद करणारी, मान्य अशी होते. २५ अजैकचरणदेवतेच्या ह्य० पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री बंधुजनांकडून द्वेष करण्याजोगी, नेहेमी दुष्ट कामांत तत्पर, दुष्ट, शिल्प कामांत कुशल अशी असते. २६ अर्ह्युष्य देवतेचे ह्य० उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रावर ऋतु आलेली स्त्री श्रीमान्, पुत्रवती, मान्य, सुप्रसन्न, पतिप्रिया, बंधुनीं पूज्य, धर्माचरणवती अशी उत्तम असते. २७ पूषादेवतेच्या ह्य० रेवती नक्षत्रावर प्रथम ऋतु आलेली स्त्री नियम करण्यांत दृढव्रताची, धर्माचरणवती, पुत्र व पौत्र आणि संपत्ति ह्यांनीं संपन्न, प्रसिद्ध गुणसंपन्न, अशी होते. आतां संधीचें फल सांगतो-तिथि, नक्षत्र इत्यादींचे संधींवर प्रथम ऋतु आला तर तो शुभकारक नाही ह्यणूनच सांगितलें आहे कीं, सर्व प्रकारच्या संधींवर ऋतु आला तर ती स्त्री दुर्भाग्य होते. रक्ताचें फल सांगतो-फार थोडें व फार अधिक असून फार लाल रक्त नसावें. अर्थात् त्याहून निराळें शुभ जाणावें. हीच गोष्ट अन्य ग्रंथांत सांगितली आहे कीं, प्रथम ऋतु काळी स्त्रियांचें रज ह्यणजे रक्त पांढूरक्या वर्णाचें असेल तर ती स्त्री सौभाग्यवती व पुत्रसंयुक्त होईल. शशाच्या रक्तासारखें रज असेल अथवा

अळत्यासारखें असेल तर पुत्र व कन्या ह्यांना जन्म देणारी होईल. नील वर्णाचें रज असेल तर ती मृतप्रजा होईल. कर्पूर ह्या चित्रविचित्र वर्णाचें असेल तर ती स्वतःच मरेल. पिंगट वर्णाचें रज असेल तर ती मृतप्रजा होईल. काळ्या वर्णाचें रज असेल तर ती विधवा होईल. रज बिंदुमात्र असेल ह्याजें फारच थोडें असेल तर ती स्वैरिणी ह्या यथेच्छ फिरणारी होईल. मध्यम स्त्राव असेल तर ती श्रेष्ठ समजावी. फारच रजाचा स्त्राव असेल तर ती दुर्भगा ह्या दुष्टभाग्याची होईल. दुसऱ्याही ग्रंथांत असें सांगितलें आहे कीं, रज रक्त असेल तर तिला पुत्र होतील, काळें असेल तर पुत्र मरतील, पिच्छल वर्णाचें ह्या चित्र वर्णाचें असेल तर ती वांझ होईल. पांढरें असेल तर काकवंच्या होईल. पिवळें असेल तर स्वैरिणी ह्या यथेच्छ गमन करणारी, गुंजेसारखें असेल तर सुभगा ह्या श्रेष्ठ होईल. सिंदूरासारखें रज असेल तर कन्या होईल असें हें रजाचें लक्षण जाणावें. करणाचें फल सांगतो—गर नांवाच्या करणापासून बवापर्यंत जे आठ करण आहेत ते शुभ नाहींत. अर्थात् बाकीचे शुभ आहेत. ग्रंथांत असें सांगितलें आहे कीं, बवावर ऋतु आलेली स्त्री वांझ अथवा विधवा होईल, बालवावर स्त्री पुत्रवती होईल, कौलवावरची स्त्री उत्तम कामयुक्त होईल, तैतिलावर उत्तम बुद्धिवती होईल, गरावरची स्त्री नाश पावते, वणिक् करणावरची स्त्री नष्ट प्रजा होते, विष्टि करणावरची स्त्री वांझ आणि निर्धन होईल, शकुनि करणावरची व चतुष्पाद करणावरची स्त्री विधवा होईल. नागावरची स्त्री रमण पावत नाहीं. किंस्तुग्रावरची स्त्री विधवा होईल. आतां उत्पाताचें फल सांगतो—तीन प्रकारचा उत्पात शुभकारक नाहीं. तेंच नारदानें सांगितलें आहे कीं, संध्याचेवेळीं, ग्रहणाचे काळीं, विष्टिवरचा प्रथम ऋतु शुभकारक होत नाहीं. आतां लग्नाचें फल सांगतो—पापग्रहांचें लग्न शुभकारक नाहीं. पापग्रह ह्या क्षीणचंद्र, सूर्य, शनि, मंगळ हे चार आहेत. त्यांपैकीं प्रत्येकाचें लग्न अशुभ आहे तीं लग्ने ह्याजें मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर आणि कुंभ हीं अशुभ आहेत अर्थात् बाकीचीं लग्ने शुभ आहेत. कर्कलग्न शुक्लपक्षांत शुभ आणि कृष्णपक्षांत तें अशुभ आहे, लग्नाचे स्वामी पुढें सांगावयाचे आहेत. असें सांगितलें आहे कीं, मेष लग्नावरची स्त्री आत्महत्या, भ्रूणहत्या करणारी होईल. वृषावर पुत्रवती होईल. मिथुनावरची स्त्री कन्या प्रसवणारी होईल. कर्कावरची स्त्री मृतापत्या होईल. सिंहावरची स्त्री विधवा होईल कन्यावरची स्त्री कन्या प्रसवणारी होईल. तुलावरची स्त्री बहु पुत्रवती होईल. वृश्चिक लग्नावरची स्त्री दुष्ट कर्म तत्पर होईल. धन लग्नावरची स्त्री पुत्र आणि धन ह्यांनीं संपन्न होईल. मकरावरची स्त्री दुःखी होईल. कुंभावरची स्त्री एक पुत्रवती होईल मीनावरची स्त्री अल्पप्रजा होईल. नारदही असें सांगतो कीं, स्त्रियांचे प्रथम ऋतुला, कर्क, वृष, धनु, मीन, मिथुन, कन्या, तुल, धन, इतक्या राशी शुभकारक आहेत. अर्थात् बाकीच्या अशुभ आहेत. येथेही कर्कलग्न हें चंद्राचें आहे ह्यापून त्याची व्यवस्था शुक्लपक्षांतील चंद्राचें कर्कलग्न शुभ व कृष्णपक्षांतील चंद्राचें कर्कलग्न अशुभ अशी व्यवस्था जाणावी. आतां वस्त्राचें फल सांगतो—लाल, फाटके, निळें, चित्रविचित्र ह्या बहुरंगाचें असें वस्त्र शुभकारक नाहीं अर्थात् मजबूत, पांढरें, पिवळें, वस्त्र शुभ आहे. असें सांगितलें आहे कीं, शुभ वस्त्राची स्त्री शुभ. लाल वस्त्राची रोगी होईल. निळें वस्त्राची स्त्री विधवा होईल. पिवळे वस्त्राची स्त्री भोगवती होईल. बळकट वस्त्राची स्त्री पतिव्रता होईल. फाटक्या वस्त्राची स्त्री दुर्भगा ह्या दुर्भग्याची होईल. शुभ वस्त्राची स्त्री सौभाग्यवती होईल. येथें न सांगितलें असेल तींही त्याज्य प्रकरणांत सांगितलेलीं दुसरीं कित्येक विचार करण्याजोगी आहेत. येथें सांगितलेल्या निषिद्धकालावर रजोदर्शन झालें असतां अक्षता, तिल आणि घृत ह्यांनीं देवीचे यजन करावें. देवीचें गायत्रीमंत्रानें अमुक संख्या सांगितली नसेल तरीहि अक्षता, तिल, तूप ह्यांच्या एकशें आठ आहूतींचा होम करावा. आणि आपल्या शक्त्यनुसार सुवर्ण, गाय, भूमि, तिल ह्यांचें दान करावें. ॥ १ ॥ अशा रीतीनें आपण केलेल्या मुहूर्तमार्तंडीकेचें पहिल्या ऋतूचें प्रकरण समाप्त झालें. ॥ ३ ॥

### साधारण लग्नबल.

प्रायश्चंद्रं त्यजांत्याष्टमारिपुतनुगं भांशकौ मूढनाथौ ।

क्रूरेंद्राग्रौ खलांशं मृतिगतस्वचरं मृत्युतत्पौ तनुस्थौ ॥

सौम्याः केंद्रत्रिकोणेष्वरिभवसहजेष्वन्यस्वेटाः प्रशस्ताः ।

सर्वत्रैतत्प्रयोज्यं प्रकरणपठितांस्तद्विशेषान्विदित्वा ॥२॥

॥ इति साधारणलग्नबलम् ॥

श्लोकार्थ—ह्यापुढें जेवढे मुहूर्त सांगावयाचे आहेत त्या सर्वांना लग्नाचें ग्रहबल पाहातांना बहुधा बारावा, आठवा, सहावा, पहिला ह्या स्थानाचा चंद्र सोडावा. अस्तंगत ग्रहाचें लग्न व नवांश सोडावे. पापानें किंवा चंद्रानें शुक्त लग्न व त्याचे नवांश सोडावेत. पापाचा नवांश सोडावा, ज्या लग्नाचा पति आठव्या स्थानीं असेल तें लग्न

सोडावें. जन्मराशी आणि जन्मलग्न ह्यां पासूनचें आठवें लग्न सोडावें आणि त्याच अष्टम स्थानचे अधिपति इष्ट-  
लग्नीं सोडावेत. त्रिकोणांत आणि केंद्रांत शुभ ग्रह असावा आणि ६-११-२ ह्या स्थानीं पापग्रह हे शुभ जाणावेत.  
पुढें प्रत्येक प्रकरणांत विशेष लग्नबल सांगितलें असेल तें जाणून हें सामान्य लग्नबल सर्व कार्यांचे वेळीं योजावें ॥ २ ॥

अथ साधारण लग्नबल सगंधरावृत्तेनाऽऽह- प्राय इति । इह वक्ष्यमाणे गर्भाधानादिकृत्ये प्रायो  
बाहुल्येन चंद्रं अंत्याष्टमरिपुतनुगं त्यज जहीति अंत्यं द्वादशं अष्टमं प्रसिद्धं रिपुः षष्ठं तनुर्लभं एतान्प्रति  
गतं चंद्रं त्यजेति । तथा भांशकौ त्यज किलक्षणौ भांशकौ मूढनाथा मूढः नाथो ययोस्तौ तथा अस्तं-  
गतस्य लग्ननवांशावित्यर्थः । पुनः किलक्षणौ क्रूरद्रातौ क्रूरग्रहचंद्राणामन्यतमेन युक्तौ । तथा खलांशं  
त्यज यत्र कुत्रापि लग्ने पापग्रहनवांशं त्यज । तथा मृतिगतखचरं त्यज लग्नादष्टमं ग्रहं त्यजेदित्यर्थः ।  
तथा मृत्युतत्पौ तनुस्थौ त्यज मृत्युर्जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यामष्टमं त्याज्यं तत्पस्तत्पतिस्त्याज्यः एतौ  
तनुस्थौ त्यजेदित्यर्थः । लग्नगोचरमाह-सौम्याः इति । सौम्या साम्यग्रहाः केंद्राणि लग्नचतुर्थसप्तमद-  
शमानि त्रिकोणे नवपंचमे एतेषु केंद्रत्रिकोणेषु सौम्या ग्रहाः प्रशस्ताः । अरिभवसहजेषु अन्यखेटाः  
अरिः षष्ठं भवः एकादशं सहजं तृतीयं एषु स्थानेषु अन्ये खेटाः सौम्येभ्योऽन्ये पापग्रहाः प्रशस्ताः स्युः  
सर्वत्रैतत्प्रयोज्यमेतत् श्लोकोक्तं सर्वत्र गर्भाधानादिकृत्ये प्रयोज्यं साधारणत्वात् किं कृत्वा प्रकरण-  
पठितांस्तद्विशेषान् विदित्वा पृथक्कृत्ये प्रकरणपठितविशेषान् ज्ञात्वा ॥ २ ॥ इति साधारणलग्न-  
बलप्रकरणम् ॥

टीका—आतां साधारण लग्नबल सांगण्याकरितां सगंधरावृत्तानें सांगतो—पुढें सांगावयाच्या अशा गर्भाधान इत्यादि  
कार्यामध्यें बहुतकरून बारावा, आठवा, सहावा आणि पहिला ह्मणजे लग्न इतक्या स्थानचा चंद्र सोडावा. ज्या लग्नाचा  
स्वामी मूढ ह्मणजे अस्तंगत झालेला अशीं लग्नें सोडावीत, तसेंच अस्तंगत झालेल्याचे नवांशही सोडून द्यावेत. तसेंच क्रूर-  
ग्रहानें आणि चंद्र ह्यांपैकीं एकानें युक्त असलेलें लग्न व त्याचे नवांशही सोडावेत. तसे जेथें कोठें ही लग्नावर पापग्रहां-  
चा नवांश सोडून द्यावा. तसाच लग्नापासून आठव्यास्थानीं ह्य. मृत्युस्थानीं जो ग्रह असेल त्याचें जें लग्न असेल तें सोडून  
द्यावें. तसेंच मृत्युस्थानचा ग्रह आणि त्याचा स्वामी हे दोन ग्रह जर तनु ह्मणजे लग्नीं असतील तर तें लग्न सोडावें.  
लग्नाचे गोचर सांगतो—जर सौम्य ह्मणजे शुभग्रह केंद्रांत ह्मणजे लग्न, चतुर्थस्थान, सप्तमस्थान, दशम या स्थानीं असतील,  
अथवा त्रिकोणांत ह्मणजे नवम आणि पंचमस्थानीं असतील तर ते फारच प्रशस्त आहेत. आणि दुसरे ह्मणजे पापग्रह जर  
अरि ह्मणजे षष्ठस्थान, भव ह्मणजे अकरावें स्थान, सहज ह्मणजे तृतीयस्थान ह्या तीन स्थानांचे पापग्रह फारच प्रशस्त  
आहेत. हा नियम सर्वठिकाणीं लागू करण्याजोगा आहे. श्लोकांत सांगितलेला सर्व प्रकार गर्भाधान इत्यादि कृत्यांत योजावा.  
कारण तो साधारण प्रकार आहे, परंतु प्रकरणविशेषामध्यें सांगितलेले ते ते विशेष जाणून घ्यावेत आणि निराळ्या कृत्या-  
मध्यें दुसऱ्या प्रकरणांत सांगितलेले विशेषही जाणून घ्यावेत. ॥ २ ॥ अशारीतीनें साधारण लग्नाचें बलप्रकरण सांगितलें.

### गर्भाधानकाल.

स्वस्त्रीं प्राङ्निट्चतुष्कासमदिनविवरश्राद्धतत्प्राग्दिनानि ।

त्यक्त्वा मूलं मघांत्ये वसुकलिजनिभाहानि पर्वाणि चतौ ॥

याहीज्याकेंदुलभैर्विषमभलवगैरुद्धलैर्भौमुतार्थिन् ।

व्यस्तैरेतैर्द्वाद्वैवायुगहानि मुदितः कन्यकेच्छो सुचंद्रे ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ—स्त्रीला प्रथम ऋतु आल्यावर पहिल्यापासूनच्या चार रात्रि, विषमदिवस, तिथि, नक्षत्रें इत्या-  
दिकांचा संधि, आई बापाचे श्राद्धाचा दिवस व त्याचा पूर्व दिवस, मूल, मघा, रेवती, हीं तीन नक्षत्रें, अष्टमी,  
चतुर्दशी, जन्मनक्षत्रादिवस आणि पूर्वे हीं सोडून पुत्र होण्याची इच्छा करणाऱ्यानें गुरु, रवि, चंद्र, हे लग्न बल-  
वान् असून विषमराशींत व विषमनवांशांत स्वस्त्रीशीं गमन करावें. वरील तिथि, नक्षत्र इत्यादि सोडून गुरु, रवि,  
चंद्र आणि लग्न बलवान् असून समराशींत व समाननवांशांत असतां विषमदिवशीं कन्येची इच्छा करणाऱ्यानें  
स्वस्त्रीशीं गमन करावें परंतु त्या स्त्रीला व त्या पुरुषाला दोघांनां चंद्रबल असलेच पाहिजे आणि रतिसुखाचे वेळीं  
दोघांनीं आनंदांत असावें ॥ ३ ॥

अथ गर्भाधानं लग्धरावृत्तेनाऽऽह- भोः सुतार्थिन् ऋतौ मुदितः सन् स्वस्त्रीं प्रति याहि गच्छ इत्यन्वयः । सुतं अर्थयतेऽसौ सुतार्थी तस्य संबोधनं भोः सुतार्थिन् ऋतौ रजोदर्शनादारभ्य षोडश रात्रयः ऋतुः तस्मिन् मुत् हर्षः संजातो यस्य स मुदितः एवंविधः सन् स्वस्त्रीं प्रति गच्छेत्यर्थः । यतोऽत्र स्त्री गर्भधारणं करोति अत्र ह्यपि हर्षिता भाव्या । तथा च मनुः । ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृता इति ॥ किं कृत्वा प्राङ्निद्वचतुष्कासमदिनविवरश्राद्धतत्प्राग्दिनानि त्यक्त्वा प्राचां निशां चतुष्कं प्राङ्निद्वचतुष्कं पूर्वरात्रिचतुष्टयं असमदिनं विषमदिनं विवराणि दिनरात्रि-तिथिभादीनां संधयः श्राद्धं स्वपित्तोः श्राद्धदिनं तत्प्राग्दिनं तस्य श्राद्धस्य पूर्वदिनं एतानि त्यक्त्वे-त्यर्थः । एवं मूलं त्यक्त्वा तथा मघांत्ये त्यक्त्वा मूलमघे प्रसिद्धे अंत्यं रेवती एतानि त्यक्त्वेत्यर्थः । तथा वसुकलिजनिभाहानि त्यक्त्वा वसुरष्टमी कलिश्चतुर्दशी जनिभं जन्मनक्षत्रं अहो दिवा एतानि त्यक्त्वेत्यर्थः । तथा पर्वाणि च त्यक्त्वा पर्वाणि दर्शपौर्णिमाव्यतीपातवैधृतिसंक्रांतिमहापातादीनि त्यक्त्वा स्त्रियं प्रति गच्छेत्यर्थः । तथा च नारदः । रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम् । ततः शुद्धा क्रियास्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिरिति ॥ वसिष्ठः । उपप्लवे वैधृतिपातयोश्च विष्ट्यां दिवा पारिघ-पूर्वभागे ॥ संध्यासु सर्वास्वपि मातृपित्रोर्मृतेहि पत्नीगमनं विवर्ज्यम् ॥ दिनेषु युग्मेषु च वक्ष्यमाणयोगैः सुतार्थी स्वसतीमुपेयात् । दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी हित्वा च गंडांस्तिथिलग्नभागान् ॥ ज्योति-षार्के । ऋतौ युग्मनिशि स्वस्त्रीं गच्छत्पुत्राय सद्विधौ । मघामूलान्त्यपक्षांतभूतदर्शाष्टमीस्त्यजेदिति । कैः ईज्याकंदुलग्नैः विषमभलवगैः ईज्यो गुरुः अर्कः प्रसिद्धः इंदुश्चंद्रः लग्नं प्रसिद्धं एतैर्विषमभलवगैः भं राशिः लवो नवांशः विषमराशिर्विषमनवांशस्थितैरित्यर्थः । न केवलं विषमभलवगैरपि उद्बलैः उत् उत्कृष्टं बलं येषां तानि तथा तैः । अथ कन्याकामिनो विशेषमाह- भोः कन्यकेच्छो इहैव अनंतरोक्कलक्षणे काले अयुगहनि विषमे दिने मुदितः सन् स्त्रीं प्रति याहि कैः एतैर्व्यस्तैः एतैः ईज्याकंदुलग्नैः व्यस्तैरिति समभलवगैः समराशिसमांशस्थैः तथा च बृहज्जातके । ओजक्षै पुरुषांश-केषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विदुभिः पुंजन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषित इति । कस्मिन्सति सुचंद्रे शोभने चंद्रे सति गोचरेण चंद्रबले सतीत्यर्थः । सुचंद्र इति अनन्यगतिकं विना सर्वत्र योज्यं । पूर्ववल्लग्नबलम् ॥ ३ ॥

टीकार्थ-गर्भाधानं ह्ये लग्धरावृत्तौ नै सांगतो-हे पुत्राची इच्छा करणाऱ्या, तू ऋतुकाळी मोठ्या आनंदाने आपल्या स्त्रीबरोबर गमन कर परंतु तें गमन करण्याच्या पूर्वी पुढें सांगावयाचा तो विचार कर. तो असा कीं, ऋतुकाळ ह्याजें ऋतु-दर्शनापासून सोळा रात्री हा आहे. त्या सोळा रात्रीं मध्ये पुढें सांगितलेल्या गोष्टी वर्ज्य करून आनंदाने गमन कर. कारण कीं, त्या रात्रीमध्ये स्त्री गर्भधारण करीत असते त्या वेळेस स्त्री ही हर्ष युक्त असावी. तोच ऋतुकाळ किती आहे हें मनु सांगतो कीं, स्त्रियांना स्वाभाविक ऋतुकाळ ह्याजें सोळा रात्री आहे, गमन करावयाचे पूर्वी काय करावें तें सांगतो-पहिल्या चार रात्री, असमदिन ह्याजें विषमदिवस, जसे ५-७-९-११-१३-१५ वगैरे, दिवस ( रात्रि ) तिथि, नक्षत्रें, ह्यांच्या संधि, आपल्या आईचा आणि बापाचा श्राद्धदिवस व त्याचे पूर्वीचा दिवस असे ४ दिवस इतक्यांचा त्याग करून स्वस्त्रीबरो-बर गमन करावें. तसेंच मूल नक्षत्र, मघा आणि रेवती नक्षत्र आणि जन्मनक्षत्र आणि दिवस इतक्यांचा त्याग करावा. तसेंच पर्व ह्याजें अमावास्या, पौर्णिमा, व्यतीपात, वैधृति, संक्रांति, महापात इत्यादिकांचा त्याग करून स्त्रीबरोबर गमन करावें. तेंच नारद सांगतो कीं, रजोदर्शन झाल्यापासून स्त्रिया ह्या चार रात्री पर्यंत अस्पृश्य ह्याजें शिवण्याजोग्या असत नाहीत, त्या नंतर ह्या स्त्रिया क्रिया करण्यामध्ये शुद्ध समजाव्यात. हा विधि सर्व वर्णांना ह्याजें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र ह्यांना सारखाच आहे. वसिष्ठ सांगतो कीं, ग्रहणामध्ये ह्याजें चंद्र, सूर्याच्या ग्रहणांत, वैधृति आणि व्यतीपातामध्ये, विष्टियोगांत, दिवसास, पारिघयोगाच्या पूर्वभागी, सर्व संध्यांमध्ये, तिथि, नक्षत्रादिकांच्या सर्व संधींमध्ये, आईबापांचे श्राद्धाचे दिवशीं, पत्नीबरोबर गमन करणें निषिद्ध आहे. समदिवसावर पुढें सांगावयाच्या योगांचा योग असतां पुत्रेच्छु पुरुषाने स्वस्त्रीबरोबर गमन करावें. अयुग्म ह्यो विषमदिवसावर कन्येची इच्छा करणाऱ्याने तिथि, लग्न, भाग असे सर्व गंडांतांचा त्याग करून स्वस्त्रीबरोबर गमन करावें. ज्योतिषार्के ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ऋतुकाळी उत्तमविधीवर समदिवशीं स्वस्त्रीबरोबर गमन करावें परंतु त्यावेळेस मघा, मूल, रेवती ह्या नक्षत्रांचा त्याग करावा. पौर्णिमा, अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी ह्यांचा त्याग करावा. कोणते योग असावेत तें सांगतो-ईज्य ह्यो गुरु, अर्क ह्यो सूर्य, इंदु ह्यो चंद्र, लग्न ह्यो लग्न हीं सर्व विषम-राशि आणि विषमनवांश ह्यांवर असलीं पाहिजेत ह्याजें गुरु, रवि, चंद्र, हे विषम राशीचे असून विषमनवांशाचे असावेत. तसेंच लग्न विषमराशीचे असून विषमनवांशाचे असावेत. नुसते विषमराशि व विषमनवांशाचे असावेत एवढेंच नाही तर



त्यांना उत्कृष्ट बल असावे. आतां कन्येची इच्छा करणाऱ्याला जेवढा विशेष आहे तेवढा सांगतो—अरे कन्येची इच्छा करणाऱ्या पुरुषा, वर सांगितलेल्या लक्षणात्मक काळीं. विषम दिवशीं, गुरु, रवि, चंद्र आणि हे व्यस्त ह्मणजे समराशीचे व समनवांशाचे असावेत तींच गोष्ट बृहज्जातकग्रंथांत सांगितली आहे कीं, नक्षत्राचें बल असतां पुरुषनवांशावर लग्न, गुरु, रवि, चंद्र हे बलवान् असून त्यावेळेस गमन करणाऱ्यास पुत्र होईल असें सांगावें आणि ते तसेचेंतसे सर्व लग्नादिक समांशावर असतील तर कन्या होईल असें सांगावें. परंतु दोन्ही वेळेस चंद्राचें उत्तम बल असलें पाहिजे ह्मणजे गोचरीचा चंद्र बलवान् असावा परंतु दुसरा कांहीं उपाय नसेल ह्मणजे वर लिहिलेला निदोष दिवस न सांपडला तर मग कांहीं दोष असतांही स्वस्त्रीबरोबर गमन करावें. अशी योजना करावी पूर्वप्रमाणें लग्नाचें बल जाणावें ॥ ३ ॥

पुंसवन आणि सीमंतोन्नयन.

पुंभेऽकेंज्यारवारे विमिथुनविषमांगांशयोः पुंसवं स्यात् ।

सीमंताख्यं च सत्सुव्ययसुतग्रहयोः पर्वरिकोनतिथ्याम् ॥

मासे द्वित्रिप्रसंख्ये प्रथमकमपरं तुर्यपष्टाष्टमेषु ।

प्रोक्तं पुंगर्भलग्नं ग्रहबलमनयोर्योज्यमाद्यश्च पक्षः ॥ ४ ॥

श्लोकार्थ—पुरुषनक्षत्रावर ह्मणजे पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, अश्विनी ह्या सर्व नक्षत्रांवर द्वादश आणि पंचम स्थानीं पापग्रह नसतानां, मिथुनलग्नाशिवाय दुसऱ्या कोणत्याही विषमलग्नां आणि विषमनवांशावर, रवि, गुरु आणि मंगळ ह्या वारांवर, पौर्णिमा, अमावास्या आणि रिक्ता ह्या तिथी तोडून मग गर्भधारणोत्तर दुसऱ्या किंवा तिसऱ्या महिन्यांत पुंसवन करावें आणि चवथ्या, साहाय्या आणि आठव्या महिन्यांत सीमंतोन्नयन करावें. ह्या दोन संस्कारांला मागच्या श्लोकीं सांगितल्या प्रमाणें पुरुष गर्भधारण होणारें लग्नाचें ग्रहबल आणि शुक्लपक्षाची योजना करावी ॥ ४ ॥

अथ पुंसवनसीमंतोन्नयने स्रग्धरयाऽऽह—पुंभेति । पुंभे पुंनक्षत्राणि चैतानि पुष्यो हस्तः पुनर्वसुः । अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनुराधाश्विनयुक् तथेति ॥ प्रौष्ठपात् पूर्वाभाद्रपदा एषामन्यतमे पुंनक्षत्रे अकेंज्यारवारे रविगुरुभौमवारे विमिथुनविषमांगांशयोः अंगं च अंशश्च अंगांशौ विगतं मिथुनं याभ्यां तौ विमिथुनौ तौ च तौ अंगांशौ च तथा तयोर्मिथुनरहिते विषमलग्ने विषमनवांशे इत्यर्थः । पुंसवं पुंसवनं सीमंताख्यं च सीमंतोन्नयनमिति सत्स्यात् नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणं । कयोः सतोः सुव्ययसुतग्रहयोः सतोः पापग्रहरहितयोः व्ययसुतभवनयोः सतोरित्यर्थः । पर्वरिकोनतिथ्यां पूर्णिमामारिकातिथिरहिततिथ्यां मासे द्वित्रिप्रसंख्ये प्रथमकं पाठोक्त्या प्रथमकं पुंसवनं गर्भाधानाद्वित्रिप्रसंख्ये मासि द्वितीये तृतीये वा मासि सत्स्यात् अपरं सीमंतोन्नयनम् तुर्यपष्टाष्टमेषु गर्भाच्चतुर्थपष्टाष्टमेषु मासेषु सत्स्यात् यत् पुंगर्भाय लग्नबलमुक्तं ईज्याकंदुलग्रैरित्यादिकं तदनयोः पुंसवनसीमंतोन्नयनयोर्योज्यं । आद्यः पक्षः शुक्लपक्षश्च योज्यः न कृष्णः । अत्र गर्भाद्यन्नाशनांतेषु गुरुशुक्रमौढ्यादिकं न चित्यमित्यग्रे वक्ष्यति । लग्नबलं पूर्ववत् । जातूकर्ण्यः । द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमंतेन सहायवा ॥ नृसिंहः । रिक्तां च पर्व नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः ॥ वृत्तशते । सीमंतोन्नयनं बुधैस्तुहिनगोपुत्रामधिष्ण्ये स्थिते कुर्यात् पुंसवनं च सूर्यदिवसे भौमस्य जीवस्य वेत्यादि । बुहस्पतिः । कुलीरं मिथुनं कन्यां हित्वा शेषाः शुभावहा इति ॥ नारदः । चतुर्थे मासि षष्ठे वाऽप्यष्टमे वा तदीश्वरे । बलोपपन्ने दंपत्योश्चंद्रताराबलान्विते ॥ अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे । तीक्ष्णमिश्रोग्रवर्ज्येषु पुंलग्ने पुंनवांशके ॥ शुद्धेऽष्टमे जन्मलग्नात्तयोर्लगे न नैधने । शुभग्रहयुते दृष्टे पापखेटायुतेक्षिते ॥ पंचेष्टके चतुर्भिर्वा श्रेष्ठेऽकेंद्राज्यपूर्वकैः । स्त्रीणां तु प्रथमे गर्भे सीमंतोन्नयनं शुभं ॥ शुभग्रहेषु धीधर्मकेंद्रेष्वरिभवत्रिषु । पापेषु सत्सु चंद्रेऽन्यनिधनाद्यरिर्वर्जिते ॥ क्रूरग्रहाणामेकोऽपि लग्नादंत्यात्मजाष्टमः । सीमंतिनीं वा तद्गर्भे बली इति न संशय इति ॥ ४ ॥

टीका—आतां पुंसवन आणि सीमंतोन्नयन हे दोन संस्कार स्रग्धरावृत्तानें सांगतो—पुरुषनक्षत्रांवर ( पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित् पूर्वाभाद्रपदा ) इतक्यां पैकीं कोणत्यातरी एका नक्षत्रावर रविवार, गुरुवार आणि मंगळवार ह्यां पैकीं

एका वारावर, मिथुनलमाशिवाय दुसऱ्या कोणत्याही विषमलक्ष्मीं व विषमनवांशावर पुंसव ह्मणजे पुंसवन आणि सीमंतोन्नयन नांवाचे संस्कार करावेत. आतां पुंसव आणि सीमंत ह्या शब्दांनीं पुंसवन आणि सीमंतोन्नयन असे पूर्ण शब्द घ्यावेत. कारण असा एक न्याय आहे की, नामाचा एक अवयव उच्चारला असतां त्यापासून सर्व नाम घ्यावे ह्मणून पुंसव ह्या एका अवयवानें पुंसवन हा शब्द आणि सीमंत ह्या एका अवयवानें सीमंतोन्नयन हा शब्द घ्यावा. पुंसवन व सीमंतोन्नयन करावयाचे वेळीं पंचमस्थानी आणि द्वादशस्थानी पापग्रह नसावा. पूर्णिमा, अमावास्या, रिक्ता ह्यांशिवाय दुसऱ्या कोणत्याही तिथि असाव्या, दुसरा किंवा तिसरा महिना असावा. प्रथमक असा पाठ आहे. त्यानें प्रथमक ह्मणजे पहिलें पुंसवन असा अर्थ आहे. गर्भाधानापासून दुसऱ्या, तिसऱ्या महिन्यांत केलेलें उत्तम असतें. दुसरें ( सीमंतोन्नयन ) गर्भाधानापासून चवथ्या, साहाव्या आणि आठव्या महिन्यामध्ये केलेलें फारच प्रशस्त आहे. पूर्वी पुरुषगर्भ होण्याकरितां जें लग्नाचें बल सांगितलें. गुरु, रवि, चंद्र इत्यादिक जे सर्व पूर्वी सांगितले ते सर्व ह्या पुंसवन आणि सीमंतोन्नयन संस्कारा विषयीं योजावे. पहिला पक्ष ह्म. शुक्लपक्ष योजावा. कृष्णपक्ष नसावा. ह्या गर्भाधानापासून तों अन्नप्राशना पर्यंतच्या सर्व संस्कारांमध्ये शुक्र, गुरु ह्यांचें अस्तादिक पाहाण्याची आवश्यकता नाही, असें पुढें सांगावयाचें आहे. लग्नाचें बळ पूर्वी प्रमाणें पाहावें. जातूकर्थ असे सांगतो की, दुसऱ्या अथवा तिसऱ्या महिन्यांत पुंसवन संस्कार करावा. अथवा गर्भ व्यक्त झाल्यावर सीमंतोन्नयन बरोबर तरी पुंसवन करावें. नृसिंह असें सांगतो की, रिक्तातिथी, पर्व आणि नवमी इतक्यांचा त्याग करून बाकीच्या सर्व तिथि पुंसवन संस्कारास शुभकारक आहेत. वृत्तशत ग्रंथांत सांगितलें आहे की, चंद्र पुरुषनामक नक्षत्रावर असेल त्यावेळेस रविवारी, गुरुवारी अथवा मंगळवारी विद्वानांनीं सीमंतोन्नयन संस्कार करावा. बृहस्पति असें सांगतो की, कर्क, मिथुन आणि कन्या इतकीं लग्ने सोडून बाकीचीं सर्व लग्ने शुभकारक आहेत. नारद असें बोलतो की, चवथ्या मासी, साहाव्या मासी अथवा आठव्या मासी त्यांचा स्वामी बलवान् असावा. दंपतीला ह्मणजे स्त्रीपुरुषांना चंद्र आणि तारा ह्यांचें बल असावें. रिक्ता आणि पर्व नसावेत. मंगळ, गुरु, रवि हे वार असावेत. तीक्ष्ण, मित्र आणि उग्र हीं नक्षत्रें नसावीत. पुरुष लग्न असावें आणि पुरुष नवांश शुद्ध असावा. जन्मलग्नापासून अष्टम आणि षष्ठ स्थानचा ग्रह नसून त्या स्थानचा अधिपती जो असेल तो लग्नी नसावा. लग्न शुभ ग्रहांनीं युक्त असावें व त्यांनीं दृष्ट असावें. पंचमस्थानी अथवा अष्टमस्थानी पापग्रह नसावा व तीं स्थाने पापग्रहांनीं पाहिलेलीं नसावीत. रवि, चंद्र, गुरु इत्यादिकांनीं पाहिलेलें असें पंचमस्थान व अष्टमस्थान असावें. अशावेळेस स्त्रियांच्या प्रथम गर्भाचे वेळीं सीमंतोन्नयन करावें, पंचमस्थान, नवमस्थान आणि केंद्र ह्मणजे १-४-७-१० ह्या स्थानां शुभ ग्रह असावेत. आणि ६-११-३ ह्या स्थानां पापग्रह असावेत. १२-८-६ ह्या स्थानां चंद्र नसावा. लग्नापासून १२-५-८ ह्या स्थानां एक जरी पापग्रह असला तर तो जिचे सीमंतोन्नयन करावयाचें त्या गर्भिणी स्त्रीचा आणि त्या गर्भाचा नाश करतो ह्मणून तसा ग्रह नसावा ॥ ४ ॥

### जातकर्म व नामकरण.

सूतौ जातं विदध्यादपिजनिमरणाशौचके वा तदन्ते ।

क्षिप्रैर्ब्राह्मोत्तराभिश्चरमृदुभिरथो नामवर्णा विदध्युः ॥

सूतेः सूर्याष्टिविंशाकृतिमितदिवसे जातभैर्वा चरांगम् ।

रिक्ताष्टम्यारमंदान् व्ययगतस्वचरं प्रोज्झ्य रात्रिं पराह्णम् ॥ ५ ॥

श्लोकार्थ—स्त्रीप्रसूत होता क्षणींच तत्काळ जातकर्म करावें. मग त्या विळेस कदाचित् जननाशौच ह्मणजे वृद्धि असेल अथवा मरणाशौच ह्मणजे सूतक असेल तरी त्याची हरकत नाही. कदाचित् कांहीं अडचणीमुळे प्रसूति-काळीं घडलें नाही तर मग पुढें क्षिप्र, श्रुव, चर आणि मृदु ह्या नक्षत्रांवर जातकर्म करावें. ब्राह्मणानें प्रसूति दिव-सापासून १२ दिवशीं, क्षत्रियानें १६ दिवशीं, वैश्यानें २० दिवशीं, शूद्रानें २२ दिवशीं, नामकरण ह्मणजे नांव ठेवण्याचा विधि करावा. त्यावेळेस चर लग्नें, रिक्ता व अष्टमी तिथी, मंगळ आणि शनि हे वार, लग्नापासून १२ ग्रह, रात्रि व अपराह्ण काळ इतके वर्ज्य करावेत ॥ ५ ॥

अथ जातकर्मविधिं स्रग्धरावृत्तेनाऽऽह-सूताविती । सूतौ प्रसूतौ जातायां जातं जातकर्म विद-ध्यात् कुर्यात् । अथ कदाचित् सूतकमध्ये प्रसूतौ जातायां सत्यां स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतक इति शास्त्रेण जातकर्मणोऽवरोधे प्राप्ते तदपवादमाह-जनिमरणाशौचकेऽपि । अयमर्थः

कदाचिज्जातकमृतसूतकयोः प्रसूतिर्भवति तदा जातकर्मविषये सूतकांतरदोषो नास्तीतिभावः । सूतकांतरे सत्यपि जाते पिता सचैलं स्नानं कुर्यादिति स्वस्वगृहोक्तं कर्म कुर्यादित्यर्थः । यतः पूर्वाशौचेनैवास्य शुद्धिः । पितुरिति कर्तुरूपलक्षणं वा तदंते पूर्वाशौचांते वा एतस्यांते वा क्षिप्रादिभिर्नक्षत्रैः कुर्यात् । क्षिप्राणि अश्विनीहस्ताभिजित्पुष्याः ब्राह्मं रोहिणी उत्तरास्तिस्रः चराणि श्रवणत्रयपुनर्वसुस्वात्यः मृदूनि अनुराधारेवतीमुगचित्रा एभिरित्यर्थः । लग्नबलं पूर्ववत् । उक्तं च । तस्मिन् जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकांतेऽथवा शिशोः । जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम् ॥ क्षिप्रैश्चरैर्ध्रुवैर्मिश्रैर्द्वादशे प्रथमेऽह्नि वा । केंद्रे गुरौ भृगौ कार्यं जातकर्म सनातनमिति ॥ प्रजापतिः । सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यतीति ॥ संवर्तः । जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । तच्च शीतोदकेन कार्यं । तत्र जाबालिः । कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव चेति ॥ एतच्च रात्रावपि कार्यं । तत्र वसिष्ठः । पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ॥ तच्च उत्तराभिमुखं कार्यं तदुक्तं तेनैव । श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातक इति ॥ रात्राबुदकादिगमनाशक्तौ विशेषमाह सांख्यायनः । दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसन्निधाविति ॥ अथ नामकर्माऽऽह-अथो नामवर्णा विदध्युः सूतेः सूर्याष्टिविंशतिमितदिवस इति । अथोऽनंतरं वर्णा ब्राह्मणादयः क्रमेण सूतेः प्रसूतेः सकाशात् सूर्या १२ ष्टि १६ विंशा २० कृति २२ मितदिवसे द्वादशषोडशविंशद्वाविंशमितदिवसे नाम विदध्युः कुर्युरित्यर्थः । अयमर्थः ब्राह्मणो द्वादशे दिवसे क्षत्रियः षोडशे वैश्यो विंशतिमिते शूद्रो द्वाविंशतिमिते दिवसे नाम कुर्यादित्यर्थः । तच्चोक्तं बृहस्पतिना । द्वादशे दिवसे वाऽपि जन्मतो दिवसे शुभे । षोडशे विंशतौ चैव द्वाविंशे वर्णतः क्रमादिति ॥ अत्रान्येऽपि विकल्पाः संति तत्र व्यासः । नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छंति सूरयः । द्वादशेऽन्त्याहुरन्ये तु मासे पूर्णे तथा परे । अष्टादशेऽहनि तथा वदंत्यन्ये मनीषिण इति ॥ प्राप्तकालेऽपि विशेषमाह गर्गः । व्यतीपाते च संक्रांतौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेऽपि मानवः ॥ अमासंक्रांतिविष्टादौ प्राप्तकालेऽपि नाऽऽचरेदिति ॥ यत्र । कालनिरोधस्तत्र दोषो नास्ति । यस्यां क्रियायां सर्वोक्तः कालो मासदिनैरपि । तस्यां न दोषो मूढत्वं वक्तुं वा जीवशुक्रयोरिति ॥ अथ कालातिक्रमे नक्षत्राण्याह-जातमैवैति । जातमैजातकर्मोक्तनक्षत्रैर्भैः क्षिप्रैरित्यादिभिर्वा कार्यं । तदुक्तं नारदेन । देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगे भृगावीज्ये तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥ चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभवासरे । चंद्रताराबलोपेते दिवसे च शिशोः पितेति ॥ अथात्र त्याज्यविशेषमाह-चरांगमिति । चरांगं चरलग्नं रिक्ताष्टम्यारमंदान् रिक्ताश्चतुर्थान् वमीचतुर्दश्यः अष्टमी प्रसिद्धा आरो भौमवारः मंदः शनैश्चरः तान् । व्ययगतखचरं । व्ययभागवतं सौम्यं असौम्यं वा । रात्रिः प्रसिद्धा । अपराह्णो दिनतृतीयोऽंशः । एतान् प्रोज्झ्य त्यक्त्वा । लग्नबलं पूर्ववत् । तथाच बृहस्पतिः । पूर्वाह्णः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्ने मध्यमः स्मृतः । अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणीति ॥ नृसिंहः । सायाह्ने दुष्टयोगे च शनिभूमिजवारयोः । रिक्तापूर्वाष्टमीविष्टिः किंस्तुघ्नं च विशेषतः ॥ एतेर्दौवैर्युते काले रात्रावपि न कारयेदिति ॥ बृहस्पतिः । शुभवारे च षड्वर्गे शुभानां नामसंपदे । राशयश्च स्थिराः श्रेष्ठा द्विःस्वभावाः शुभैर्युताः ॥ नृसिंहः । लग्नाद्वययाष्टमे सर्वे न शुभा नामकर्मणीति ॥ केषां नाम कार्यमिति संग्रहे उक्तं । देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वाऽपि-कूपयोः । सर्वोपकरणानां च चिह्नायां योषितां नृणां ॥ काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः । राजप्रासादसंज्ञानां नामकर्म विशिष्यत इति ॥ ५ ॥

टीका—आतां जातकर्मविधि सगंधरावृत्तानं सांगतो-प्रसूति झाल्यावर जातकर्म करावें. आतां कदाचित् सूतक असतां त्यामध्ये प्रसूति झाली असतां स्मृतींत सांगितलेल्या कर्मांचा त्याग ग्रहणाशिवायच्या सूतकांमध्ये करावा. असें शास्त्र आहे झणून जातकर्मोचा प्रतिबंध करावा. असें प्राप्त झालें असतां त्याचा अपवाद सांगतो-कदाचित् जातकसूतक आणि मरण सूतक ह्यांपैकी एक असतां किंवा दोन्ही असतां प्रसूति होईल तर जातकर्म करावें जातकर्म करण्याविषयी दुसऱ्या कोणत्याही सूतकाचा प्रतिबंध नाही. दुसरें सूतक जरी असलें तरी प्रसूति झाल्याबरोबर बापानें सचैल स्नान करावें आणि आपल्या गृह्यसूत्रांत सांगितल्याप्रमाणें जातकर्म करावें. कारण पहिल्या आशौचानेंच ह्याची शुद्धि होते बापानें सचैल स्नान करावें ह्या वरून बाप जवळ नसेल किंवा मुलीच नसेल तर दुसऱ्या योग्य अधिकाऱ्यानें सचैल स्नान करून जातकर्म करावें, असें

सुचविले आहे. अथवा पहिले असलेले आशौच संपल्यावर किंवा हे सूतकाशौच संपल्यावर क्षिप्र, चर आणि मृदु नक्षत्रांवर जातकर्म करावे. क्षिप्र नक्षत्रे येणेप्रमाणे—अश्विनी, हस्त, अभिजित, पुष्य, रोहिणी, तीन उत्तरा, ह्य० ( उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी ). चरनक्षत्रे येणेप्रमाणे—श्रवणत्रय, ह्य० ( श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, ) पुनर्वसु आणि स्वाती. मृदु नक्षत्रे—अनुराधा, रेवती, मृगशीर्ष, चित्रा ह्या नक्षत्रांवर जातकर्म करावे. लग्नबल पूर्वीप्रमाणे जाणावे. असे सांगितले आहे की, प्रसूति झाल्याबरोबरच अथवा त्या जन्मकालच्याच मुहूर्तावरही किंवा पहिले असलेले सूतक संपल्यावर अथवा बालकाचे जननाशौच पुरे झाल्यावर जातकर्म संस्कार करावा ज्यामध्ये पूर्वी पितृदेवतांचे पूजन असते. क्षिप्र, चर, ध्रुव, मित्र ह्या नक्षत्रांवर बारावे दिवशीं अथवा पहिले दिवशीं केंद्रामध्ये गुरु किंवा शुक्र असतां हे सनातन ह्यणजे फारच दिवसापासून चालत आलेले जातकर्म करावे. प्रजापति सांगत आहे की, सूतक असतांना जर पुत्र जन्म झाला तर जातकर्म करणाऱ्याला स्नानाने तेवढ्या कर्मापुरती पूर्वाशौचाची शुद्धि होते. संवर्त असे सांगतो की, पुत्र झाल्यावर पित्याने सचेल स्नान करावे. ते स्नान थंड पाण्याने करावे. जाबालि सांगतो की, नैमित्तिक स्नान थंड पाण्याने करावे अथवा काम्य कर्माबद्दलचे स्नान थंड पाण्याने करावे. हे कर्म रात्रीसही करावे. त्याविषयी वसिष्ठ सांगतो की, पुत्र जन्म झाल्यावर, यज्ञामध्ये, सूर्याच्या संक्रमणांत, चंद्राचे ग्रहणांत, रात्री स्नान करणे प्रशस्त ह्याशिवाय दुसऱ्या कोणत्याही कर्मास रात्री स्नान प्रशस्त नाही ते स्नान उत्तर दिशेस तोंड करून करावे. तेंच त्याने सांगितले आहे की, बापाने पुत्र झाला असे ऐकून सचेल स्नान करावे. उत्तर दिशेस तोंड करून नदीवर अथवा तलावावर अथवा आडावर करावे. रात्रीस तलावादिक लांब असून जाण्यास अशक्त असेल तर त्याविषयी विशेष प्रकार सांख्यायन सांगतो—दिवसास जे पाणी आणले असेल त्यांतच सुवर्ण टाकून स्नान करावे. कारण की, रात्रीस स्नान प्राप्त झाले असतां अग्नि समीप स्नान करावे. आतां नामकर्म सांगतो—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र ह्या चार वर्णांनीं क्रमानेंच प्रसूति झाल्यापासून १२ बारावे, १६ सोळावे, २० विसावे आणि २२ बावीसावे दिवशीं नांव देण्याचा संस्कार करावा. तेंच बृहस्पति सांगतो की, वर्णाच्या क्रमाने जन्म झाल्यापासून १२-१६-२०-२२ दिवशीं नांव देण्याचा संस्कार करावा. ह्याविषयी दुसरे कित्येक विकल्प आहेत त्याविषयी व्यास सांगतो—कित्येक विद्वान् दहावे दिवशीं नाम कर्म करावे असे इच्छितात. कित्येक बारावे दिवशीं, कित्येक महिना पुरा झाल्यावर, दुसरे कित्येक अठरावे दिवशीं करावे असे विद्वानांचे विकल्प आहेत. नामकर्माचा काल प्राप्त झाला असतांही त्याविषयी गर्ग सांगतो की, व्यतीपात, संक्रांति, ग्रहण, वैश्वति, इत्याद्या ठिकाणीं श्राद्ध मात्र करावे त्याशिवाय दुसरे कोणतेही मंगलकार्य करूं नये. त्याचा चूरी. काळ आला असला तरी ते कर्म करूं नये. तसेंच अमावास्या, संक्रांति, विष्टि ह्यांवर प्राप्तकाल असेही मंगलकार्य करूं नये. जेथे कालाचा प्रतिबंध आहे तेथे दोष नाही. ज्या क्रियेविषयी महिना आणि दिवस ह्यांनीं सर्व प्रकारचा काळ सांगितला त्या क्रियेविषयी गुरु किंवा शुक्र ह्यांचा अस्त अथवा वक्कीभवन ह्यांचा दोष नाही. आतां सांगितलेल्या काळाचे अतिक्रमण झाल्यावर कोणत्या नक्षत्रावर ते कर्म करावे तीं नक्षत्रे सांगतो—जातकर्मास सांगितलेलीं जीं नक्षत्रे आहेत त्यांवर जातकर्म करावे. तेंच नारदाने सांगितले आहे की, देश, काल, उपघात इत्यादिकांनीं जर कालाचे अतिक्रमण होईल तर गुरु आणि शुक्र ह्यांचा अस्त नसेल त्यावेळीं उत्तरायणामध्ये चर, स्थिर, मृदु, क्षिप्र ह्या नक्षत्रांवर, शुभ बारावर, चंद्र आणि तारा ह्यांचे बल असेल त्यादिवशीं बापाने बालकाचे जातकर्म करावे. ह्याविषयी त्याज्य काय ते सांगतो—चर लग्न, रिक्ता ( चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ), अष्टमी, मंगळवार, शनिवार तसा व्ययस्थानीं ह्यणजे द्वादशस्थानीं असलेला ग्रह मग तो सौम्य अथवा पाप कसाही असो. रात्रि, अपराण्हकाळ ह्य० दिवसाचा तिसरा भाग हे सर्व टाकून नामकर्म करावे. लग्नबल पूर्वीप्रमाणेच घ्यावे. तेंच बृहस्पति सांगतो—पूर्वाण्ह उत्तम आहे, मध्याण्ह मध्यम आहे, अपराण्ह आणि रात्रिही नामकर्मास वर्ज्य आहेत. नृसिंह सांगतो की, लग्नापासून बारावे आणि आठव्या स्थानीं कोणतेही ग्रह असले तरी ते नामकर्माला शुभ कारक नाहीत. नांव कोणाचे ठेवावे असा विचार संग्रहांत सांगितला आहे तो असा की, देवालय, हत्ती, घोडा, वृक्ष, कूप अथवा सर्व प्रकारची जेवढी उपकरणे आहेत त्यांचीं, स्त्रियांचीं, पुरुषांचीं, काव्य इत्यादिकांचीं, कुवींचीं, पशु इत्यादिकांचीं, राजाच्या वाण्यांचीं नामे ठेवावीत, असा हा विशेष सांगितला ॥ ५ ॥

पालकारोहण, भूम्युपवेशन, दुग्धपान व निष्क्रमण.

जन्माहाद्वादशेऽह्नि ध्रुवमृदुलधुर्भैर्वा न्यसेत्पालकेऽर्धम् ।

सौम्याश्वीज्यध्रुर्वेदैर्भुवि शुभदिवसे पंचमे मासि दध्यात् ॥

एकत्रिंशे दिने वाऽशननिगदितभैः कंबुना योज्यमर्भे ।

व्यग्वाशास्ये पयोऽथास्य गमवदुदितो निष्क्रमोमासि तुर्ये ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—ज्या दिवशीं जन्म झाला असेल त्यापासून बाराव्या दिवशीं किंवा त्या दिवशीं कांहीं अडचणीं मुळें न झाल्यास ध्रुव, मृदु, लघु ह्या नक्षत्रांवर बालकाला पाळण्यांत ठेवावें. नंतर पांचव्या महिन्यांत मृगशीर्ष, अश्विनी, पुष्य, ध्रुव आणि ज्येष्ठा ह्या नक्षत्रांवर शुभ दिवशीं बालकाला भूमीवर ठेवावें. जन्म झाल्यापासून बरोबर ३१ एकतिसावे दिवशीं किंवा पुढें अन्नप्राशनास सांगितलेल्या नक्षत्रावर ज्या दिशेस राहु नसेल अशा दिशेस बालकाचें तोंड करून शंखानें बालकाला दूध पाजावें. राहु हा गुरु आणि रवि ह्या दोन वारीं पूर्वेस, सोम व शुक्र ह्या दोन वारीं दक्षिणेस, मंगळवारीं पश्चिमेस, बुध आणि शनि ह्या दोन वारीं उत्तरेस असतो. बालकाला जन्मापासून चवथ्या महिन्यांत यात्रा प्रकरणांत सांगितलेल्या गमनाच्या मुहूर्तावर घरांतून बाहेर न्यावें ॥ ६ ॥

अथ पालकारोहणं भूम्युपवेशनं दुग्धपानं निष्क्रमणं चेति चतुष्टयं वृत्तेनैकेनाऽऽह-जन्माहादिति। जन्माहात् प्रसूतेः सकाशात् द्वादशे दिवसे पालके खट्वायां वा अर्भं बालकं न्यसेत् निदध्यात् उक्तकालातिक्रमे ध्रुवमृदुलघुभैर्वा नक्षत्रैर्निदध्यात्। लग्नबलं पूर्ववत्। सूर्यभाच्चांद्रभं यावत् पंच पंच चतुर्दिशं। मध्ये च सप्त देयानि बालकस्य हिताय वै ॥ पूर्वभागे तु रोगित्वं दक्षिणे मरणं ध्रुवं। पश्चिमे विकृतिर्बाले उत्तरे व्याधिसंभवः ॥ शेषे तु मध्यनक्षत्रे बालकस्य हिताय वै ॥ तथाचोक्तं बृहस्पतिना स्वसंहितायां। खट्वारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा। षोडशे दिवसे वाऽपि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा ॥ तथा चोक्तं भविष्योत्तरे ॥ अभीष्टदिवसे पुण्यं चंद्रताराबलान्विते। मृदुध्रुवक्षिप्रमे तु माता वा कुलयोषितः। शेषशायिनमाचित्य प्राक्शीर्षं विन्यसेच्छिशुमिति ॥ भूम्युपवेशनमाह-सौम्येति। सौम्यो मृगः अश्विनी प्रसिद्धा ईज्यः पुष्यः ध्रुवाणि पूर्वोक्तानि ज्युत्तरारोहिण्यः इंद्रो ज्येष्ठा एभिर्नक्षत्रैः शुभदिवसे रिक्तादिवर्जिते जन्मतः पंचमे मासि भुवि भूम्यां अर्भं निदध्यात् उपवेशयेदित्यर्थः। तथाचोक्तं ब्रह्मपुराणे। पंचमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्। तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौमोऽप्यत्र विशेषतः ॥ तिथिं विवर्जयेद्रिकां शस्तान्याशृणु भानि मे। उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यक्षं शक्रदैवतं ॥ प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभं। वराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजान्। भूभागमुलपलिप्याथ तत्र कृत्वा तु मंडलं। वाद्यपुण्याहशब्देन भूमौ तमुपवेशयेदिति ॥ उपवेशनमंत्रस्तत्रैवोक्तः। रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शिशुं। आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये इति ॥ दुग्धपानमाह-एकत्रिंशे दिन इति। एकत्रिंशमिते दिवसे अर्भं बालके कंबुना शंखेन पयः दुग्धं योज्यं पाययेदित्यर्थः। अत्र नृसिंहः। एकत्रिंशे दिने चैव पयः शंखेन योजयेदिति ॥ अथ मातुः स्वल्पपयस्त्वे पश्चांतरमाह-वा अशननिगदितमैरिति। अन्नप्राशननक्षत्रैर्योज्यं मैरित्युपलक्षणं अन्नप्राशनोक्तं अन्यदपि विचार्य किलक्षणे अर्भं व्यग्वाशास्ये विगतः अगुः राहुर्ह्यस्याः सा व्यगुः सा चासौ आशा च तस्यां आस्यं मुखं यस्य स तथा तस्मिन् राहुवर्जितदिङ्मुख इत्यर्थः। व्यग्वाशास्य इत्युपलक्षणं तेन रुद्रयोगिन्यादिकमपि वर्ज्यं। तथा चोक्तं ज्योतिर्निबन्धे। योगिनीराहुरुद्रादिमुखं चैव विवर्जयेत्। राहुलक्षणं। गुरुभान्वोर्वसेत्प्राच्यार्मिदौ शुके च दक्षिणे। कालाराहुः कुजे प्रत्युगुत्तरे बुधमंदयोः ॥ लक्षणांतरं। इंद्रे वायौ यमे रौद्रे तोयाग्निशशिराक्षसे। यामार्धमुदयाद्राहुर्भ्रमत्येवं दिगष्टक इति ॥ उदयात्सूर्योदयात्। रुद्रलक्षणं। हरिसोमवहिराक्षसयमवरुणानिलहरालयेष्वेवं। उदयादि भ्रमति सदा घटिका रुद्रो महालयेत्यादि ॥ हरिरिंद्रः। अथ निष्क्रमणमाह-अथास्य गमवदुदितो निष्क्रमो मासि तुर्ये तुर्ये चतुर्थे मासि अस्यार्भकस्य निष्क्रमो निष्क्रमणं गमवत् गमनवदिति यावत्। उदितः उक्तः। पूर्वैः अत्र यात्राप्रकरणोक्तं सर्वं योज्यमित्यर्थः। निष्क्रमणं बृहस्पतिनोक्तं। अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः। अकृतायां क्रियायां स्यादायुः श्रीनाशनं शिशोरिति ॥ यमः। उपनिष्क्रमणं कुर्याच्चतुर्थे मासि सावन इति ॥ कारिकायां। चतुर्थे मासि पुष्यक्षे शुक्ले निष्क्रमणं भवेत्। स्नातं खलंकृतं स्वाभिः कृतस्वस्त्ययनं शिशुमिति ॥ आदाय गेहाभिर्गम्य गच्छेयुर्देवतालयं। अभ्यर्च्य देवतां सम्यगाशिषो वाचयेदथ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं गेहमानयंति ततः स्वकं। मातृवस्तृगृहं गत्वा मातुलादेर्गृहं नयेत् ॥ तदाशीर्वचनाद्यैश्च दीर्घायुरभिर्नदितः। जयंतस्य मतेनार्यं लिखितः शिशुनिष्क्रमः ॥ स्वगृहानुसारं योजयेत् ॥ ६ ॥

टीकार्थ—आतां पाळण्यांत ठेवणें, जमिनीवर बसविणें, दूध पांजणें, घरांतून बाहेर निघणें हीं चार कृत्यें एका वृत्तानें सांगतो—जन्मदिवसापासून बाराव्या दिवशीं पाळण्यांत अथवा पलंगावर बालकास ठेवावें. सांगितलेला बारावा दिवस



जर चुकला तर मग ध्रुव, मृदु, लघु ह्या नक्षत्रांवर पाळण्यांत ठेवण्याचें करावें. लग्नाचें बल पूर्वीप्रमाणें जाणावें. सूर्य नक्षत्रापासून तां चंद्र नक्षत्रापर्यंत एकंदर २७ नक्षत्रे आहेत. पैकीं प्रत्येक दिशेस पांच पांच नक्षत्रे कल्पना करावीत आणि मध्यें सात नक्षत्रे हीं बालकाच्या हिताकरितां ठेवावीत. पूर्वभागीं रोगित्व, दक्षिणेस मरण, पश्चिमेस विकृति, उत्तरेस व्याधीचा संभव, आतां वाकीचें जें शेष नक्षत्र राहिलें तें बालकाच्या हिताकरितां आहे. बृहस्पतीनें आपल्या संहितेंत तसाच अर्थ सांगितला आहे कीं, जन्मापासून दहावे किंवा बारावे दिवशीं बालकाला पलंगावर ठेवावें, अथवा सोळावे दिवशीं किंवा बावीसावे दिवशीं ही पलंगावर ठेवावें. तसेंच भविष्योत्तर पुराणांत सांगितलें आहे कीं, चंद्र आणि ग्रह ह्यांचें बल असेल अशा पुण्यकारक आपल्या आवडत्या दिवसावर मृदु, ध्रुव व क्षिप्र ह्या नक्षत्रांवर आईनें अथवा दुसऱ्या कुलीन स्त्रियांनीं शेषशायी श्रीलक्ष्मीनारायणाचें चिंतन करून बालकाचें डोकें पूर्वेस करून त्याला पलंगावर अथवा पाळण्यांत निजवावें. भूईवर बसविणें सांगतो-सौम्य ह्य. मृगशीर्ष, अश्विनी, ईज्य ह्य. पुष्य, ध्रुव ह्यणजे पूर्वी सांगितलेलीं नक्षत्रे, तीन उत्तरा ह्य. उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, इंद्र ह्यणजे ज्येष्ठा ह्या नक्षत्रांवर उत्तम दिवशीं रिक्तादि वर्ज्य तिथी सोडून जन्मापासून पांचव्या महिन्यांत बालकाला भूईवर ठेवावें. तेंच ब्रह्म पुराणांत सांगितलें आहे कीं, पांचव्या महिन्यांत बालकाला भूईवर बसवावें. त्यावेळेस सर्व ग्रह प्रशस्त आहेत त्यांत विशेषें करून मंगळ प्रशस्त असावा. मात्र रिक्तातिथीचा त्याग करावा. नक्षत्रे कोणतीं प्रशस्त आहेत तीं सांगतो- एक-तीन उत्तरा प्रशस्त आहेत, सौम्य ह्यणजे मृगशीर्ष, पुष्य नक्षत्र, इंद्र दैवत्य ह्य० ज्येष्ठा, प्राजापत्य ह्य. रोहिणी, हस्त, अश्विनी, मित्र देवतांचें नक्षत्र ह्य. अनुराधा ह्या नक्षत्रांवर श्रीवाराह देवाची पूजा करावी. पृथ्वीची पूजा करावी. तशीच ब्राह्मणांची पूजा करावी. पृथ्वीचा भाग सारवावा. त्यावर उत्तम मंडल करावें. मंगल बायें वाजवीत पुण्याह शब्द बोलत बोलत बालकाला भूईवर ठेवावें. बसवितांना जो मंत्र आहे तो तेथेंच सांगितला आहे त्याचा अर्थ असा कीं, हे पृथ्वी देवी! चोहोंकडे इकडे तिकडे फिरणाऱ्या ह्या बालकाचें रक्षण कर. हे श्रीहरि प्रिये पृथ्वी! ह्याला पूर्ण आयुष्य दे. एकतिसावे दिवशीं दूध पाजावें हें सांगतो-एकतिसावे दिवशीं बाळकाला शंखानें दूध पाजावें ह्याविषयीं नृसिंह सांगतो-एकतिसावे दिवशीं बाळकाला शंखानें दूध पाजावें. आतां मातुश्रीला स्तनांत दूध कमी असेल तर दुसरा एक पक्ष सांगतो-अन्नप्राशन करण्याकरितां सांगितलेल्या नक्षत्रांवर येथें नक्षत्रच नुसतें घ्यावें असें नाहीं, तर अन्नप्राशनाला सांगितलेलें दुसरें सर्व जें असेल तें सर्व विचारावें त्या बालकाचें तोंड राहु नसलेल्या दिशेस करावें, राहु असलेल्या दिशेचा त्याग करावा एवढेंच नाहीं; तर रुद्र योगीनी इत्यादिकांचाही त्याग करावा. तेंच ज्योतिर्निबंधग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, योगिनी, राहु, रुद्रादि मुखही वर्ज्य करावें. राहुचें लक्षण असें कीं, गुरुवारी आणि रविवारी राहु पूर्वेस राहतो, सोमवारी आणि शुक्रवारी दक्षिणेस राहतो, मंगळवारी पश्चिमेस राहतो, बुध आणि शनी ह्या दोन वारी उत्तरेस राहतो. दुसरें लक्षण असें आहे कीं, इंद्र, वायु, यम, रुद्र, वरुण, अग्नि, चंद्रमा, राक्षस, ह्या अशा आठ लोकपालांच्या आठदिशेमध्ये सूर्योदयापासून यामार्धपर्यंत राहु भ्रमण करीत असतो. रुद्राचें लक्षण असें आहे कीं, इंद्र, चंद्र, अग्नि, राक्षस, यम, वरुण, वायु, हराचें आलय ह्यणजे उत्तर, इतक्या ह्या आठ लोकपालांचे आठ दिशेस सूर्योदयापासून एक घटिकापर्यंत नेहेमी रुद्र फिरत असतो. आतां घराबाहेर निघण्याचें सांगतो-पूर्वीच्या विद्वानांनीं यात्रा प्रकरणांत जे सर्व सांगितलें आहे तें सर्व निष्क्रमणास लावावें बृहस्पतीनें निष्क्रमण सांगितलें आहे कीं, निष्क्रमण ह्यणजे घरांतून पहिल्या प्रथम बाहेर पडणें. हा बाहेर निघण्याचा संस्कार न केला तर आयुष्याचा आणि लक्ष्मीचा नाश होतो यम सांगतो कीं, सावनमानाच्या चवथ्या महिन्यांत बाहेर निघण्याचें करावें. कारिकेंत सांगितलें आहे कीं, चवथ्या महिन्यांत व शुक्लपक्षांत शुभनक्षत्रावर बाहेर निघणें करावें, त्या बालकाला स्नान घालावें, अलंकार घालावेत, स्वकीय आप्त अशा सुवासिनींनीं स्वस्तिवाचन करून बाळकाला घेऊन घरांतून निघून देवमंदिरांत जावें. तेथें उत्तम शीतीनें देवाचें पूजन करावें, अंतर बाळकाला उत्तम आशीर्वाद बोलवावेत, मग देवाला प्रदक्षिणा घालून नंतर आपल्या घरी माघारें आणावें. मग मावशीच्या घरी जाऊन नंतर मामा इत्यादिकांचे घरी बाळाला न्यावें. मावशी, मामी इत्यादि वडिलांच्या आशीर्वादांनीं बाळकाला दीर्घायुष्यांनीं आनंदित करावें हा बाळकाला घराबाहेर निघण्याचा प्रकार जथंताचें मतानें लिहिला आहे. आपापल्या गृहसूत्रानुसारें करून बालकाचें निष्क्रमण करावें ॥ ६ ॥

#### कर्णवेध.

मैत्रैः क्षिप्रैः स्थिरभचरभैर्व्यानिलांभःपकर्क्षैः ।

चैकाफापौष्विनशानिकुजक्षार्शवारानपास्य ॥

रिक्तापर्वेश्वरवसुतिथीन् रात्रिसंध्ये समाब्दम् ।

पुंस्त्रीकर्णौ सविधिपटुना दक्षवामादि वेध्यौ ॥ ७ ॥



श्लोकार्थ—स्वाती, शततारका, रोहिणी हीं तीन नक्षत्रे सोडून स्थिर व चर नक्षत्रांवर मंत्र व क्षिप्र नक्षत्रांवर, चैत्र, कार्तिक, फाल्गुन व पौष ह्या चार महिन्यांत, रवि, शनि ह्यांचे वार व त्यांचे लग्न नवांश सोडून रिक्तातिथी, पर्व, एकादशी, अष्टमी ह्या तिथी सोडून रात्री व संध्याकाळ सोडावा, चतुर पुरुषानें विधियुक्तमुलाचा प्रथम उजवा कान आणि मुलीचा प्रथम डावा कान टोंचावा ॥ ७ ॥

अथ कर्णवेधं मंदाक्रांतयाऽऽह- मैत्रैरिति । मैत्रैः अनुराधारेवतीमृगचित्राभिः । क्षिप्रैः दस्यार्काभिजिदीज्यभैः । स्थिरभचरभैः स्थिराणि उत्तरात्रयरोहिण्यः । चराणि श्रवणत्रयपुनर्वसुस्वात्यः तैः कथंभूतैः स्थिरभचरभैर्व्यानिर्लाभः पक्षैः विगतानि अनिलांभः पक्षार्काणि येभ्यस्तानि तथा तैः अनिलं स्वाती अंभः पः शततारका कर्क्ष रोहिणी तद्रहितैरित्यर्थः । चैकाफापौषु चैत्रकार्तिकफाल्गुनपौषेष्वित्यर्थः । पुंस्त्रीकर्णौ पुरुषस्त्रियोः कर्णौ पटुना कुशलेन सविधि यथा स्यात्तथा दक्षवामादि वेध्यौ पुरुषस्य दक्षिणकर्णादि स्त्रियाः वामकर्णादि वेध्यावित्यर्थः । कर्णवेधने सूचीमाह बृहस्पतिः । सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः । शूद्रस्य त्वायसी सूची मध्यमाऽष्टांगुलात्मिका ॥ कर्णवेधविधिस्तु गृहपरिशिष्ट उक्तः । अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा पुष्येदुहरिचित्रारेवतीषु पूर्वाह्णे प्राङ्मुख उपविश्य दक्षिणं कर्णमभिमंत्रयते भद्रं कर्णेभिरिति सव्यं वक्ष्यतीवेदिति कुमाराय मधुरं दत्त्वाऽथ भिंधात्ततो ब्राह्मणभोजनमिति । किं कृत्वा इति कुजक्षौशवारान् अपास्य रात्रिशनि कुजानां ऋक्षाणि लग्नानि अंशा नवांशाः वाराः प्रसिद्धास्तांस्यक्त्वेत्यर्थः । पुनः किं कृत्वा रिक्तापर्वेश्वरवसुतिथीन् अपास्य रिक्ताश्रुतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः पर्वणी पौर्णिमाऽमावास्ये संक्रांतिश्च ईश्वरतिथिरैकादशी वसुरष्टमी एतान् अपास्य । पुनः किं कृत्वा रात्रिसंध्ये अपास्य स्पष्टं । पुनः किं कृत्वा समाव्दमपास्य समवर्षे त्यक्त्वा विषमे वर्षे कर्तव्यमित्यर्थः लग्नबलं प्राग्वत् । अत्र नृसिंहः ॥ वेध्यौ कर्णावदंतस्य विषमेऽब्देऽपि वा शिशोः शुक्रपक्षे शुभे वारे चैत्रपुष्योर्जफाल्गुने ॥ एकादश्यष्टमीपर्वरिक्तावज्याः शुभा । वहाः । शिश्राश्च तिथयः सर्वाः कृष्णे चात्यत्रिकं विना ॥ कर्णद्वयादिति क्षिप्रमृदुभैस्त्रयायनैः शुभैः - गुरौ लग्ने च केऽप्याहुस्तारासु श्रुतिं व्यधेदिति ॥ अगस्त्यः । द्वयोश्च संध्योर्लग्ने न कुर्यात्कर्णवेधनं । रात्रावपि तथा लग्ने नक्षत्रतिथिसंधिषु ॥ कर्णवेधं न कुर्वीत कुर्याच्चेच्छेदनं भवेदिति ॥ बृहस्पतिः मंदार्कांशवाराः स्युर्वज्याः कर्णस्य वेधने । गुरुशुक्रेदुर्जदूनां पूज्या वारांशकोदया इति ॥ संग्रहे । शातकुंभमयी सूची वेधनेषु शुभप्रदा । राजती वाऽऽयसी वाऽपि यथाविभवतः शुभा ॥ सुभूमौ प्रांगणे रम्ये शुचौ देशेऽवरे खौ । संस्थिते वेधयेत्कर्णौ स्त्रीपुंसौर्वीमदक्षिणौ ॥ शुक्रसूत्रसमायुक्तताम्रसूच्याऽथ वेधयेत् । वेधात्तृतीयनक्षत्रे क्षालयेदुष्णवारिणेति ॥ देवलः कर्णरंध्रे रवेश्छाया न विशेषग्रजन्मनः । तं दृष्ट्वा विलयं यांति पुण्यौघाश्च पुरातना इति ॥ ७ ॥

टीका—आतां कान टोंचण्याचा संस्कार मंदाक्रांता वृत्तानें सांगतो—मित्र नक्षत्रे ह्मणजे अनुराधा, रेवती, मृग चित्रा. क्षिप्र नक्षत्रे ह्मणजे अश्विनी, हस्त, अभिजित्, पुष्य. स्थिर नक्षत्रे ह्मणजे तीन उत्तरा व रोहिणी. चर नक्षत्रे ह्मणजे श्रवणत्रय, ह्मणजे श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, पुनर्वसु, स्वाती इत्याद्या नक्षत्रांवर ह्मणजे मित्र, क्षिप्र, स्थिर व चर ह्या नक्षत्रांवर परंतु त्यांतून स्वाती, शततारका, रोहिणी हीं वर्ज्य करावीत. महिन्यामध्ये चै ह्मणजे चैत्र, का ह्मणजे कार्तिक, फा ह्मणजे फाल्गुन, पौ ह्मणजे पौष, ह्या महिन्यांत कान टोंचावेत. पुरुषाचे व स्त्रीचे कान चतुर पुरुषानें यथाविधि ह्मणजे पुरुषाचा अगोदर उजवा मग डावा आणि स्त्रीचा अगोदर डावा आणि मग उजवा अशा क्रमानें टोंचावेत. कान टोंचण्याला सुई कशी असावी तें बृहस्पती सांगतो—राजपुत्राला सोन्याची, ब्राह्मण आणि वैश्य ह्यांना सण्याची, शूद्राला लोखंडाची असावी ती मध्यम आठअंगुल असावी. कान टोंचण्याचा विधि गृहपरिशिष्टांत सांगितला आहे. आतां कान टोंचण्याचा विधि तिसऱ्या अथवा पांचव्या वर्षी पुष्य, मृगशीर्ष, ज्येष्ठा, चित्रा, रेवती ह्या नक्षत्रांवर पूर्वाह्णी पूर्वेस तोंड केलेल्या बाळकास बसवून उजवा कान “ अभिमंत्रयते भद्रं कर्णेभिरिति ” ह्या मंत्रानें. डावा कान “ वक्ष्यति वेदेति ” ह्या मंत्रानें बाळकाना मधुर पदार्थ देऊन टोंचावा नंतर ब्राह्मणांना भोजन द्यावें त्या दिवशीं रवि, शनि आणि मंगळ ह्यांचीं नक्षत्रे ह्यांचे वार, आणि ह्यांचे नवांश नसावेत. तसेंच रिक्तातिथी ह्मणजे चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, पर्व ह्मणजे पौर्णिमा, अमावास्या, संक्रांति, ईश्वरतिथि ह्मणजे एकादशी, वसु ह्मणजे अष्टमी हे नसावेत. त्याचप्रमाणें रात्र आणि संध्याकाळ नसावा. व समवर्षे नसावे अर्थात् विषम वर्षी कान टोंचावा. लग्नाचे बल पूर्वीप्रमाणे पाहावें. ह्याविषयी नृसिंह सांगतो कीं, दांत येण्याचे पूर्वी विषम वर्षावरही बाळकाचे कान टोंचावेत. चैत्र, कार्तिक, पौष, फाल्गुन ह्या महिन्यामध्ये, शुक्रपक्षी, शुभवारी मात्र एकादशी,

अष्टमी, पूर्व, रिक्ता इतक्या तिथि वर्ज्य आहेत. वाकीच्या सर्व तिथि शुभकारक आहेत मात्र कृष्णपक्षातील शैवटल्या तीन ह्यणजे त्रयोदशी, चतुर्दशी आणि अमावास्या ह्या वर्ज्य आहेत. क्षिप्र मृदु नक्षत्रें, स्थिर चर नक्षत्रें उत्तम प्रकारचीं असावीत. गुरु हा लग्नीं असतानां कित्येक उत्तरा नक्षत्रावर कान टोचावा असें ह्यणतात. अगस्त्य असें बोलतो कीं, दोन संध्येच्या वेळीं कान टोचणें करूं नये रात्रीही करूं नये तसेंच लग्नीं हीं करूं नये, नक्षत्र, तिथी, ह्यांच्या संधीमध्ये कान टोचणें करूं नये जर केलें तर कानाचा छेद होतो. बृहस्पति सांगतो—शनि, रवि, मंगळ हे वार वर्ज्य करावेत आणि गुरु, शुक्र, बुध, चंद्र ह्यांचे वार आणि नवांश हे पूज्य ह्यणजे शुभकारक आहेत. संप्रहांत सांगितलें आहे कीं, कान टोचण्याकरितां सोन्याची सुई उत्तम अथवा ती न मिळाल्यास रुप्याची, किंवा लोखंडाची घ्यावी जशी शक्ती असेल त्याप्रमाणें घ्यावी. उत्तम भूमीवर, रम्य देशीं, आंगणांत, सूर्य नारायण आकाशांत असतां स्त्री आणि पुरुष ह्यांचे कान क्रमानें अगोदर डावा मग उजवा असे टोचावे ह्यणजे स्त्रीचा अगोदर डावा मग उजवा पुरुषाचा अगोदर उजवा मग डावा असा टोचण्याचा क्रम ठेवावा. अथवा पांढऱ्या सुतानें गुक्त तांब्याच्या सुईनें कान टोचावेत. टोचल्यानंतर तिसऱ्या नक्षत्रावर ऊन पाण्यानें स्नान घालावें. देवल असें सांगतो कीं, ब्राह्मणाच्या मुलाचा कान टोचल्यावर मग त्या पडलेल्या भोकांत सूर्याचें किरण पडूं नये इतकें बारीक भोंक असावें. कारण तसें सूर्याचें किरण आंत पडलेलें पाहिलें असतां पूर्वीचें सर्व पुण्य नाहीसें होतें ॥ ७ ॥

### अन्नप्राशन.

मासे षष्ठेऽष्टमे तुर्निगदितमशनं पंचमे सप्तमे वा ।

भीरोरुज्झंति नंदाहरिवसुरजनीरिक्तकाः स्वर्क्षमेके ॥

सहृकांशाह्यचांद्रे ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभेऽजालिमीनो— ।

नांगे कैंद्रत्रिकोणांत्यमृतिषु विमलास्विदुःरिष्टोऽखिलोऽंगे ॥ ८ ॥

लोकार्थ—जन्म झाल्यापासून ६ किंवा ८ महिन्यांत पुत्राला आणि ५—अथवा ७ महिन्यांत कन्येला अन्नप्राशन करावें. त्यावेळेस नंदातिथि, द्वादशी, अष्टमी, रात्रि, रिक्तातिथि आणि एकाच्या मतानें जन्मनक्षत्रही सोडावें. शुभग्रहाचे द्रष्टाकण व नवांश हे चंद्रापासूनचे घ्यावेत. ध्रुव, मृदु, चर, क्षिप्र ह्यांपैकीं नक्षत्र घ्यावें. मेष, वृश्चिक, मीन ह्यांशिवाय दुसरें लग्न घेऊं नये अर्थात् हीं चार लग्नें घ्यावीत. आणि कैंद्रांत ह्यणजे १-४-७-१० ह्या ठिकाणीं पापग्रह नसावा. त्रिकोणांत ह्यणजे ५-९ ह्या ठिकाणीं पापग्रह नसावा. १२ वारा आणि ८ आठ ह्या ठिकाणीं पापग्रह असूं नये. अन्नप्राशनाचे वेळीं लग्नीं पूर्ण चंद्र असून तो शुभ असावा ॥ ८ ॥

अथान्नप्राशनं वृत्तैकेनाऽऽह-जन्मतः षष्ठमासे अष्टमे वा मासे नुः नरस्य अशनं अन्नप्राशनं निगदितं प्रोक्तं । भीरोः कन्यायाः पंचमे सप्तमे वा मासे अशनं प्रोक्तं । अन्नं नंदाहरिवसुरजनीरिक्तकाः उज्झंति मुनयः नंदाः प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः हरिर्द्वादशी वसुरष्टमी रजनीरात्रिः रिक्ताश्चतुर्थनिवमीचतुर्दश्यः ताः स्वर्क्षं जन्मनक्षत्रं च एके आचार्या अन्न उज्झंति । तथा चोक्तं । जन्मर्क्षे श्रीक्षयं विद्यादिति । जन्मर्क्षे तु पुंविवाहान्नप्राशनादिषु बहुभिर्गृह्यते तदग्रे वक्ष्यते । पुनः कस्मिन् सहृकांशाहिदृक्को दृक्काणः अंशो नवांशः अहो दिनं एषां समाहारः दृकांशाहः सतो ग्रहस्य दृकांशाहः सहृकांशाहः तस्मिन् कथंभूते सहृकांशाहि अचांद्रे न विद्यते चांद्रदृकांशो यस्मिन्तदचान्द्रं तस्मिन् चंद्रस्य दृकांशाहानि निद्यानि क्षीणश्चेत् पूर्णं तु न दोषः अन्येषां शुभग्रहाणां शुभानीत्यर्थः । पुनः कस्मिन् ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभे ध्रुवादीनि प्रसिद्धानि पूर्वमेवोक्तानि तत्रेत्यर्थः । पुनः कस्मिन् अजालिमीनोनांगे अजो मेषः अलिर्बृश्चिकः मीनः प्रसिद्धः । एभिरूनलग्रे मेषवृश्चिकमीनलग्नान्यन्नप्राशने न शुभानीत्यर्थः । कासु सतीषु कैंद्रत्रिकोणांत्यमृतिषु विमलासु सतीषु । कैद्राणि प्रथमचतुर्थसप्तमदशमानि । त्रिकोणे नवपंचमे अंत्यं द्वादशं मृतिरष्टमं “पर्वलिंगं द्वंद्वतत्पुरुषयोः” एतासु विमलासु पापग्रहरहितासु सतीषु पापग्रहोऽत्रानिष्टकारीत्यर्थः । इंदुश्चंद्रः अखिलः पूर्णः अंगे लग्ने इष्टः अन्नप्राशने पूर्णचंद्रो लग्ने शुभ इत्यर्थः । अन्यलग्नबलं पूर्ववत् अन्न नारदः । षष्ठे मास्यष्टमेऽपि पुंतां स्त्रीणां तु पंचमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शिशोः ॥ रिक्तां दिनक्षयं नंदां द्वादशीमष्टमीं समां । त्यक्त्वाऽन्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासरा इति ॥ ज्योतिर्विवरणे । जन्मर्क्षे श्रीक्षयं विद्यात्कर्मक्षे चातिसौख्यकृत् । आधानर्क्षे च बालानां प्राशने रोगनाशनं ॥ वृद्धनारदः । जीवसौम्यसितानां तु दृक्काणदि-

वसांशकाः । बालान्नप्राशने शस्ता न चंद्रार्काकजासृजामिति ॥ अर्णवे । गौश्वो कुंभस्तुला कन्या सिंहः कर्किसृगौ यमः । एताश्च राशयः शस्ता न मेषहृषवृश्चिका इति । नारदः । चरस्थिरमृदुक्षि प्रनक्षत्रेषु न नैधन इति ॥ रवौ लग्ने कुष्टीत्याह ॥ ८ ॥

**टीकाथ—**अन्न प्राशनाचा संस्कार एका वृत्ताने सांगतो—जन्मापासून सहाव्या अथवा आठव्या महिन्यांत पुत्राचे अन्नप्राशन सांगितले आणि भित्री स्वभावाचे ह्मणजे कन्येचे पांचव्या आणि सातव्या महिन्यांत सांगितले आहे. ह्याविषयी नंदा ह्मणजे प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, हरी ह्मणजे द्वादशी, वसु ह्मणजे अष्टमी, रजनी ह्मणजे रात्रि, रिक्ता ह्मणजे चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी इतक्या तिथि, जन्म नक्षत्र इतक्या गोष्टी कित्येक आचार्य सोडतात. तेंच सांगितले आहे कीं, जन्म नक्षत्रा पासून लक्ष्मीचा नाश होतो. बाकी जन्मनक्षत्र पुरुषविवाह अन्नप्राशन इत्यादि पुष्कळ कार्यांमध्ये पुष्कळांनी घेतले आहे. तें- पुढे सांगूं. क्षीणचंद्राचे दृक्काण आणि नवांश ह्याशिवाय बाकीच्या शुभ ग्रहांचे दृक्काण व नवांश ज्या दिवशीं असतील अशा दिवशीं अन्नप्राशन करावें आणि त्या दिवशीं धुव, मृदु, चर आणि क्षिप्र अशीं हीं नक्षत्रे असावीत; तीं पूर्वी सांगितलीं आहेत त्यादिवशीं बालकाला अन्नप्राशन करावें. आणखी मेष, वृश्चिक, मीन ह्या लग्नांशिवाय दुसरीं लग्ने अन्नप्राशनास शुभ आहेत तसेंच केंद्र ह्मणजे १-४-७-१० हीं स्थाने, त्रिकोण ९-५ हीं स्थाने, अंत्य ह्मणजे बारावें, मृति ह्मणजे ८ आठवें हीं स्थाने निर्मल असावीत अर्थात् ह्या स्थानांवर पापग्रह नसावेत कारण ह्या ठिकाणाचा पापग्रह अनिष्ट करणारा आहे. आणि लग्नी पूर्ण चंद्र असेल तर तो फारच शुभ आहे. बाकीचे लग्न पूर्वीप्रमाणेच जाणावें. नारद असें सांगतो कीं, सहाव्या किंवा आठव्या महिन्यांत बालकाला अन्नप्राशन करावें कन्येला अन्नप्राशन पांचव्या अथवा सातव्या महिन्यांत करावें. त्या दिवशीं रिक्ता तिथि, दिनक्षय, नंदा, द्वादशी, अष्टमी इतक्या तिथींचा त्याग करून बाकीच्या तिथि उत्तम आहेत आणि शुभ वार असावेत. ज्योतिर्विवरण ग्रंथांत सांगितले आहे कीं, जन्मनक्षत्रावर बालकाला अन्नप्राशन करविलें तर लक्ष्मीचा नाश होतो. काचे ह्मणजे ब्रह्माचे नक्षत्रावर ह्मणजे रोहिणी नक्षत्रावर अतिशय सौख्य होतें. आधानाचे नक्षत्रावर अन्नप्राशन करविलें तर रोगांचा नाश होतो. वृद्ध नारद सांगतो कीं, गुरु, बुध आणि शुक्र ह्यांचे दृक्काण आणि ह्यांचे वार व ह्यांचे नवांश हे अन्न प्राशनाला प्रशस्त आहेत, परंतु क्षीणचंद्र, सूर्य, शनि आणि मंगळ ह्यांचे दृक्काण, नवांश आणि वार हे प्रशस्त नाहींत. अर्णव ग्रंथांत सांगितले आहे कीं, मेष, मीन, वृश्चिक ह्या तीन राशि प्रशस्त नाहींत त्याशिवाय बाकीच्या सर्व- राशि अन्न प्राशनास प्रशस्त आहेत. नारद सांगतो कीं, चर, स्थिर, मृदु आणि क्षिप्र इतक्या नक्षत्रांवर अन्न प्राशन करावें, परंतु नैधनावर करूं नये. रवीचे लग्नी अन्न प्राशन करविलें असतां कुष्टी होतो ॥ ८ ॥

अस्ताचा निर्णय चंगरे.

गर्भाद्यन्नाशनांतेषु न गुरुसितयोर्बाल्यवार्धे च मौढ्यम् ।

जह्यात्कालस्य रोधाद्धरिगुरुमयनं याम्यमूनाधिमासौ ॥

एतच्चौलादिषूज्जेदथ गुरुसितयोर्बाल्यवार्धे नगाहे ।

चाथो शाखेशमौढ्ये व्रतमपिनिगमारंभमार्यो न कुर्यात् ॥ ९ ॥

**श्लोकाथ—**गर्भाधान संस्कारापासून तों अन्न प्राशन संस्कारापर्यंतच्या सात संस्कारांचा काल फारच थोडा आहे. ह्यासर्व त्याकरितां गुरु व शुक्र ह्यांचें बाल्य, वार्ध, अस्त आणि सिंहस्य गुरु, दक्षिणायन, क्षयमास, अधिकमास, हीं सोडूं नये, पुढील चौल इत्यादि संस्कार करतांना हीं सर्व सोडावीत. आतां गुरु आणि शुक्र ह्यांचा उदय झाल्यापासून सात सात दिवसपर्यंत बालक असतें आणि दोघांचा अस्त होण्यापूर्वी सात सात दिवस वार्ध असतें. त्याची जी शाखा असेल त्या शाखेच्या अधिपतीचा अस्त असेल तर उपनयन व वेदाचा आरंभ करूं नये ॥ ९ ॥

अथ येषु संस्कारेषु गुरुशुक्रास्तादिदोषाभावः येषु दोषः बालत्ववृद्धत्वप्रमाणं शाखेशस्य मौढ्ये किं न कार्यमिति चतुष्टयं वृत्तैर्नैकेनाऽऽह- गर्भादीति । गर्भाद्यन्नाशनांतेषु गर्भाधानादिषु अन्नप्राशनांतेषु कर्मसु । गुरुसितयोर्बाल्यवार्धे च परं मौढ्यं गुरुशुक्रमूढत्वं न जह्यात् न त्यजेत् कस्माद्धेतोः कालस्य रोधात् यतः शाखे गर्भाधानाद्यन्नप्राशनांतानां कर्मणां कालनिरोधः कृतोऽस्ति तस्माद्धेतोः । तथा च मांडव्यः । नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनांतेषु सप्तसु । वधूप्रवेशमांगल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोरिति ॥ हरि- गुरुं सिंहस्थितं वृहस्पतिं याम्यमयनं दक्षिणायनं ऊनाधिमासौ क्षयमासाधिमासौ न त्यजेत् कालस्य

रोधादित्येतत्पदं बुद्ध्यावगंतव्यं तद्यथा प्रसूतिसमय एव जातकर्म विहितं तत्र कालनिरोधात् किमप्यस्तादिकं न चित्यं अन्नप्राशनं तु मासे षष्ठेऽष्टमे वेति विकल्पेन मासद्वये विहितं तत्र यस्मिन्मासे मौढ्यादिकं न स्यात्तत्र कर्तव्यं कालस्य सावकाशत्वात् तयोरपि मासयोर्यदि सिंहस्थगुर्वादिनिरोधः स्यात् सोऽप्यत्र न चितनीयः एवं गर्भाद्यन्नाशनांतेषु विचारणीयं । अनन्यगतिकं कुर्यान्नित्यं नैमित्तिकं तथेति स्मरणात् संस्कारकमस्तु कात्यायनगृह्यकारिकायामप्युक्तः । गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं ततः । जातकर्माभिधेयं च निष्क्रमप्राशने क्रमात् ॥ चूडोपनयनं वेदव्रतानां च चतुष्टयं । गोदानं मेखलामोको विवाहः षोडश क्रिया इति ॥ अनेन क्रमेण गर्भाद्यन्नाशनांतेषु मौढ्यादिकंबुद्ध्याऽवलोकयेदित्यर्थः । तथा च बृहस्पतिः । मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः । न दोषकृत्तदा मासलक्षणो बलवानिति ॥ यमोऽपि गर्भं वार्धुषिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके । सर्पिडीकरणे नित्ये नाग्निमासं विवर्जयेत् ॥ भृगुः सीमंतजातकादीनि प्राशनांतानि च क्रमात् । कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पंचाननगते गुराविति ॥ कात्यायनस्मृतौ । गर्भाधानादिका अन्नप्राशनांता मलिस्तुचे । आकर्णवेधाः कर्तव्या नान्या इत्याह-भास्कर इति । अस्तादिकं चूडादिषु वर्जनीयमित्याह एतच्चौलादिषूज्जेदिति । एतद्गुरुसितास्तादिकं चूडादिषु कर्मसु उज्जेत् त्यजेत् । अथ बालत्ववृद्धत्वप्रमाणमाह-अथ गुरुसितयोरिति । गुरुसितयोरुशुक्रयोर्बाल्यवार्धे बालत्ववृद्धत्वे नगाहे सप्ताहे सप्ताहं बाल्यं सप्ताहं वार्ध्यमिति बालत्वं वृद्धत्वं बहुविधमस्ति तत्र मध्यमः पक्षोऽत्रांगीकृतः । अथ शाखेशस्य अस्ते वर्जमाह-अथो शाखेशमौढ्य इति । शाखेशो वेदपतिर्वक्ष्यमाणः तस्य मौढ्ये अस्ते व्रतं मौजीबंधनं निगमारभमपि आर्यः श्रेष्ठो न कुर्यात् तस्यास्ते व्रतादिके कृते सति बटोर्मुखत्वं स्यात् । ननु वेदारभे मूर्खत्वं घटते वेदपतित्वात् व्रते मूर्खत्वं किमुक्तं । उच्यते व्रतबंधनस्तु वेदाध्ययनार्थं क्रियते तस्मात्तत्रापि मूर्खत्वं घटते । तथाच याज्ञवल्क्यः । उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकं । वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥ प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पंच वा । ग्रहणांतिकमित्येके केशांतश्चैव षोडश इति ॥ यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणां । वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥ तथाच कात्यायनगृह्यसूत्रे । वेदं समाप्य स्नायाद्ब्रह्मचर्यं वाऽष्टाचत्वारिंशकं द्वादशकेऽप्येके गुरुणाऽनुज्ञात इत्यादि ॥ ९ ॥

टीकार्थ—आतां ज्या संस्कारांमध्यं गुरु, शुक्र ह्यांच्या अस्तांचा दोष नाही, ज्या संस्कारास दोष आहे, त्याग्रहांचें बालत्व व वृद्धत्व ह्यांचे प्रमाण, शाखाधिपतीचा अस्त असतां काय करूं नये, हीं चार एका वृत्तानें सांगतो—गर्भाधानापासून तो अन्न प्राशना पर्यंतचे जे संस्कार आहेत त्या संस्कारकर्माविषयीं गुरु आणि शुक्र ह्यांचें बालत्व, वृद्धत्व, त्यांचा अस्त इतक्यांचा त्याग करूं नये अर्थात् इतके असतां हे ७ संस्कार करावेत. कारण ह्या सातही संस्कारांच्या काळाचा नियम शास्त्र-कारांनीं बांधून टाकिला आहे. तेंच मांडव्य सांगतो कीं, रोजच्या प्रवासाला, जुन्या घराचे डागडुजी करण्याला, गर्भाधानापासून अन्न प्राशनापर्यंतच्या सात संस्कारांला, वधू प्रवेश करण्याला, गुरु आणि शुक्र ह्यांच्या अस्ताचा बाध नाही, सिंहस्थ गुरु, दक्षिणायन, क्षयमास, अधिकमास, ह्यांचाही बाध नाही ह्याजें हे असतांना वरील मंगल कार्यें करावीत. कारण कीं, ह्यांन काळाचा नियम केला आहे असा अर्थ बुद्धीनें जाणावा. तें असें कीं, प्रसूतिकालीं सांगितलेलें जातकर्म त्या वेळेस केलेंच पाहिजे. तेथें अस्तादिक पाहून चालणार नाही. अन्न प्राशन साहाय्या किंवा आठव्या महिन्यांत असें विकल्पानें दोन महिन्यांत सांगितलेलें कर्म आहे ह्याणून ज्या महिन्यांत अस्त नसेल त्या महिन्यांत तो संस्कार करावा. कारण तेथें काळाचा अवकाश आहे. आतां दोनही महिन्यांत जर सिंहस्थ गुरु आहे तर मात्र त्या गुरुचा विचार न करतां संस्कार करावा कारण दोन महिने गेल्यावर त्याचा काळ निघून जाईल. अशाच रीतीनें गर्भाधाना पासून तो अन्न प्राशनापर्यंत जें कर्म न राह-ण्यासारखें असेल तें त्यावेळेसच करावें व तें नित्य, नैमित्तिकही तसेंच करावें. संस्कार करण्याचा क्रम कात्यायन गृह्य-कारिकेतही सांगितला आहे. तो असा कीं, १ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमंतोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकर्म, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूडाकरण, ९ उपनयन १०-११-१२-१३ चार वेदांचे चार ग्रहणसंस्कार. १४ गोदान, १५ मेखलामोचन, १६ विवाह असे हे १६ सोळा संस्कार आहेत. ह्याक्रमानें गर्भाधाना पासून तो अन्न प्राशनापर्यंत अस्तादिक हें आपल्या बुद्धीनें पाहावें. तोच अर्थ बृहस्पतीनें सांगितला आहे कीं, जें कार्य अमुक महिन्यांत करावें ह्याणून सांगितले आहे तेथें गुरु आणि शुक्र ह्यांचा अस्त पाहूं नये. कारण मासाचें कार्य अस्त पाहिल्यानें बंद पडणार आहे व त्याला पुढें काळ नाही. यमही असें सांगतो कीं, गर्भाधान, वृद्धत्व, भृत्य, श्राद्ध कर्म, मासिक, सर्पिडीकरण, नित्यकर्म इतक्या कर्मांमध्यें अधिक मास पाहूं नये. भृगु सांगतो कीं, गुरु सिंहस्थ असतां सीमंतोन्नयन, जात कर्म इत्यादि आणि अन्न प्राश-

नपर्यंतचे संस्कार करावेत ते करण्यास दोष नाही, कात्यायन स्मृतींत सांगितलें आहे कीं, गर्भाधाना पासून अन्न प्राशना पर्यंतच्या क्रिया आणि कान टोंचणें ह्या क्रिया अधिक महिन्यांत कराव्या, त्या शिवाय दुसऱ्या क्रिया करूं नयेत. असें भास्कर सांगत आहे. चूडा इत्यादि कर्मांमध्ये ते अस्तादिक सोडावेत हे सर्व प्रकार “ एतच्चौलादिषूक्षेत् ” ह्या श्लोकांत सांगवयाचे आहेत. गुरु, शुक्र ह्यांचे अस्तादिक चौलादिक संस्काराविषयीं पहावेत ह्याजें अस्तांत ते चौलादि करूं नयेत. आतां बालत्व आणि वृद्धत्व ह्यांचें प्रमाण सांगतो—गुरु आणि शुक्र ह्यांचें बालत्व आणि वृद्धत्व सात सात दिवस असतें. पैकीं वृद्धत्व पुष्कळ प्रकारचें आहे पैकीं मध्यम पक्ष येथें घेतला आहे. आतां शाखाधिपतीचा अस्त असतां काय वर्जावें हें सांगतो—शाखेचा अधिपति ह्याजें वेदाचा अधिपति तो कसा व कोण असतो हें पुढें सांगवयाचें आहे त्याचा अस्त असेल तर मौजीबंधन आणि वेदांचा आरंभ हीं विद्वान् पुरुष करीत नाहीत. जर अस्तांत तीं दोन्ही केलीं तर तो बटु मूर्ख होतो. आतां अशी शंका येते कीं, वेदाचा आरंभ करण्याविषयीं मूर्ख होतो हें ह्याणें बरोबर दिसतें, कारण तो वेदाधिपति आहे परंतु मौजी बंधनाविषयीं मूर्ख होतो हें ह्याणें बरोबर नाही, कारण मौजीबंधन हें वेदाचे अध्ययनाकरितां आहे ह्याणून तेथेंही मूर्खत्व येणें योग्य आहे; तसेंच याज्ञवल्क्य सांगतो कीं, गुरूनें शिष्याचें मौजीबंधन करावें आणि त्याला प्रणवपूर्वक वेद शिकवावा आणि शौच आचार ही शिकवावा. प्रत्येक वेदाकरितां बारा बारा वर्षे ब्रह्मचर्य अथवा पांच पांच वर्षे ब्रह्मचर्य किंवा ग्रहणांतिक संस्कारापर्यंत किंवा केशांत संस्कार सोळावे वर्षीं असतो तेथपर्यंत तरी ब्रह्मचर्य ठेवावें. यज्ञाकरितां, शुभकारक कर्म करण्याकरितां द्विजांना वेद हाच फारच निःश्रेयस ह्म० अक्षय कल्याण करणारा आहे. तसेंच कात्यायन गृह्यसूत्रांत सांगितलें आहे कीं, प्रत्येक वेदास बारा बारा वर्षे ह्याप्रमाणें चार वेदानां अष्टेचाळीस वर्षे ब्रह्मचर्य अथवा बारा वर्षे किंवा गुरूची आज्ञा होईपर्यंत ब्रह्मचर्य धारण करून वेद शिकावेत. ते संपविल्यावर मग गुरूच्या आज्ञेनें विवाह करावा ॥ ९ ॥

### चौलाचा काळ व निर्णय.

चौलं माघादिपंचस्वमधुषु गदितं द्वित्रिपंचोन्मितेऽब्दे ।  
स्वाचाराद्रा सगर्भा यदि भवति जनन्यत्र नो कार्यमेतत् ॥  
साकं यत्रोपनीत्या क्रियत इह तदाऽयं निरोधो न हि स्यात् ।  
जह्यादंबार्तवेऽदोव्रतमुपयमनं चाविशुद्धेः शुभार्थी ॥ १० ॥

श्लोकार्थ—चैत्राशिवाय माघ महिन्यापासून पांच महिन्यांत अर्थात् चैत्र नसल्यामुळें माघ, फाल्गुन, वैशाख आणि ज्येष्ठ ह्या चारच महिन्यांत चौल करावें. तें जन्मापासून दुसऱ्या, तिसऱ्या किंवा पांचव्या वर्षीं करावें. अथवा जसा कुलाचार असेल त्या वर्षीं करावें. बालकाची माता गर्भिणी असल्यास चौल करूं नये. उपनयना बरोबर करावयाचें असल्यास वर सांगितलेला प्रतिबंध नाही. फक्त माता रजस्वला असेल तर चौल आणि उपनयन व विवाह करूं नयेत. ॥ १० ॥

अथ चौलं सनिर्णयं वृत्तेनैकेऽनाह—चौलमिति । कार्यं वर्षैरित्यग्निमश्लोकेनान्वयः । चौलं चूडाकरणं माघादिपंचसु मासेषु अमधुषु चैत्ररहितेषु गदितं उक्तं तथा चोक्तं नारदेन । माघादिपंचके चौलं हित्वा क्षीणविधुं मधुमिति द्वित्रिपंचोन्मितेऽब्दे द्वितीये तृतीये पंचमे वर्षे स्वाचाराद्रा स्वकुलाचारतो वा । उक्तं च कात्यायनगृह्ये । सांवत्सरिकस्य चूडाकरणं तृतीये वाप्रतिहते षोडशवर्षस्य केशांतो यथामंगलं वा सर्वेषामिति ॥ सांवत्सरिकस्य अतिक्रांताब्दस्येति । हरिहरमिश्रैर्व्याख्यानं कृतं । तथा च सद्गुरुशिष्यः । आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पंचमस्ये द्वितीयके । उपनीत्या सहैवेति विकल्पः कुलधर्मत इति ॥ सगर्भा यदी भवति जनन्यत्र नो कार्यमेतत् । अत्र उक्तवर्षेषु द्वित्रिपंचमाब्दकेषु जननी कुमारस्य माता यदि सगर्भा भवति स्यात् तदा एतच्चौलं नो कार्यं । पंचमाब्दादूर्ध्वं गर्भिण्यां सत्यामपि कार्यमित्यर्थ—सिद्धं । अत्र नारदः । सूनीर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पंचाब्दात्प्रागतोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ उपनयनेन सहक्रियमाणे न दोष इत्याह साकं यत्रोपनीत्या क्रियत इह तदाऽयं निरोधो न हि स्यादिति । यत्र उपनीत्या साकं उपनयनेन सह क्रियते तदा इहास्मिन् चौले अयमुक्तो निरोधश्चैत्रमासमातृगर्भलक्षणो न ह्येव स्यात् । तदुक्तं तेनैव । सऽहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यत इति ॥ अंबार्तवे निषेधमाह—जह्यादंबार्तवेऽदो व्रतमुपयमनं चाविशुद्धेः शुभार्थीति ।



अंबातवे मातुरजसि अदः अनंतरोक्तं चौलमित्यर्थः । व्रतं मौंजी उपयमनं विवाहः आविशुद्धेः शुद्धिपर्यंतं शुभार्थी नरः एतच्चयं जहात् न कुर्यादित्यर्थः । तथा च मनुस्मृतौ । उद्वाहव्रतचूडासु-  
माता यदि रजस्वला । तदा न मंगलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेच्छुभिः । अन्यमुद्घातलाभे कारिका  
निबंधे । शांतिकमुक्तं । अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे तु संस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो  
मंगलमाचरेत् ॥ हेमं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनाऽर्चयेत् । प्रत्युचं पायसं हुत्वाऽभिषिच्य शुभ-  
माचरेत् ॥ सूतिकोदक्ययोः शुद्धौ गां दद्याद्धेमपूर्वकम् । प्राप्ते कर्मणि शुद्धिः स्यादितरस्मिन्नशुद्धच-  
तीति ॥ उदक्या रजस्वला ॥ १० ॥

टीका—चौलाचा निर्णय एकावृत्ताने सांगतो—चौल करावयाचें तें चार वर्णांनीं चैत्राशिवाय बाकीच्या ह्यणजे  
माघपासून ज्येष्ठ महिन्यापर्यंत ह्यणजे माघ, फाल्गुन, वैशाख आणि ज्येष्ठ ह्या चार महिन्यांत करावें असें सांगितलें आहे.  
तेंच नारदानें सांगितलें आहे कीं, क्षीणचंद्र असलेला चैत्र सोडून बाकीचा माघापासून ज्येष्ठापर्यंत चौल करावें. दुसऱ्या,  
तिसऱ्या पांचव्या वर्षी अथवा आपल्या घराचा जसा कुलाचार असेल त्या वर्षी चौल करावें. तेंच कात्यायन गृह्यांत  
सांगितलें आहे कीं, संवत्सर अतिक्रमण झालेल्या चौलाचा काळ सोळा वर्षपर्यंत आहे. जसा केशांत संस्कार असतो तो  
सर्वांना मंगळकारक असतो असें व्याख्यान हरिहरमिश्रांनीं केलें आहे. तेंच सहस्रशिष्य असें सांगतो कीं, कित्येक पहिल्या  
वर्षी, दुसरे कित्येक पांचव्या वर्षी, तिसरे कित्येक दुसऱ्या वर्षी, चौथे कित्येक उपनयनावरोबर, आणि आपल्या कुलाचारा  
प्रमाणेही कित्येक चौल कारितात. मात्र माता गर्भिणी असेल तर करूं नये. ह्या सर्व सांगितलेल्या काळांत जर बालकाची  
माता गर्भिणी असेल तर चौल करूं नये. पांच वर्षे झाल्यावर जरी माता गर्भिणी असेल तरीही करावें. ह्या विषयीं नारद  
सांगतो कीं, माता गर्भिणी असेल तर पांच वर्षपर्यंत चौल करूं नये. आणि पांच वर्षे झाल्यावर माता गर्भिणी असेल  
तरीही चौल करावें. उपनयनावरोबर चौल केल्यास कोणताच दोष नाही. जेथे उपनयनावरोबर चौल करतात त्या वेळेस  
चैत्र महिना, माता गर्भिणी हा सांगितलेला दोष नाही तेंच त्यानें सांगितलें आहे कीं, उपनयनावरोबर चौल  
केलें तर हा कोणताच दोष नाही. माता रजस्वला असेल तर हें चौल, उपनयन, आणि विवाह हीं तीनही  
माता शुद्ध होई पर्यंत करूं नयेत. ह्यणजे त्यापासून कर्त्यास शुभ होतें. तेंच मनुस्मृतींत सांगितलें आहे कीं, विवाह,  
चौल आणि उपनयन ह्या वेळीं जर माता रजस्वला असेल तर हीं तीन मंगलें कल्याणाची इच्छा करणाऱ्यानें करूं नयेत.  
दुसरा मुहूर्त मिळत नाही आणि माता रजस्वला असेल तर कारिकानिबंधांत सांगितलेली शांति आहे; ती अशी  
कीं, दुसरा मुहूर्त मिळत नसेल आणि माता तर रजस्वला आहे ह्यणून श्रीशांति यथाविधीनें करून हें मंगल करावें एक  
माशाची सुवर्णमय अशी लक्ष्मी करून तिच्यावर श्रीसूक्तानें अभिषेक करून तिची षोडशोपचारांनीं पूजा करावी. प्रत्येक  
कचेनें पायसाचा होम करून व तिला अभिषेक घालून मंगळकार्य करावें. सूतिका ह्यणजे बाळंतीण आणि रजस्वला ह्यांची  
शुद्धि झाल्यावर सुवर्ण पूर्वक एका गार्हचें दान करावें. प्राप्त झालेल्या कर्मापुरती तिची शुद्धि होते परंतु दुसऱ्या कर्माविषयीं  
शुद्धि होत नाही ॥ १० ॥

चौलाचे वार, नक्षत्रें व लग्नबल.

कार्यं वर्षेनिराकारिकं शनिपु निखिलैर्ज्ञत्रये शुक्लसोमे ।

द्वयंत्यद्वयादित्यशार्केदुभिरिनहरितस्त्रिभिश्चौलकर्म ॥

यनेऽकाराकिंशुक्रा गतकविनिखिला मृत्युगा मृत्युदास्युः ।

व्यब्जाः संतोत्य इष्टास्त्यज गुहशशिनौ रात्रिसंध्ये च रिक्ताः ॥ ११ ॥

श्लोकार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र ह्यांना कर्मानें ब्राह्मणास रविवार, क्षत्रियास मंगळवार,  
वैश्यास शनिवार आणि शूद्रास शनिवार असे उक्त आहेत आणि सर्व वर्णांनीं बुध, गुरु, शुक्र ह्या तीन वारीं  
आणि शुक्रपक्षां, सोमवारीं, चौल करावें. आतां रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, ज्येष्ठा, मृगशीर्ष, हस्त, चित्रा,  
स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका ह्या बारा नक्षत्रांवर चौल करावें. तिथीमध्ये षष्ठी, पूर्णिमा, रवि, संध्याकाळ,  
रिक्तातिथी इतक्या सोडून बाकीच्या तिथींवर चौल करावें. इष्ट लग्नापासून रवि, मंगळ, शनि, शुक्र हे सप्तमस्थानीं  
मृत्यु देणारे आणि शुक्राशिवाय सर्व ग्रह अष्टमस्थानीं मृत्यु देणारे होतात. चंद्राशिवाय सर्व शुभ ग्रह हे द्वादश  
स्थानीं शुभ जाणावेत ॥ ११ ॥



**टीकाथ—**आतां अमुक वर्णास अमुक वार आणि नक्षत्रें व लग्नबल हें एका वृत्तानें सांगतो—ब्राह्मणादिकांनीं क्रमानें रवि, मंगळ, शनि, शनि ह्या वारीं चौल कर्म करावें. इनः ह्मणजे सूर्य, आरः ह्मणजे मंगळ, अर्किः ह्मणजे शनि शनिः ह्मणजे शनि. असा अर्थ झाला कीं, ब्राह्मणानें रविवारीं, क्षत्रियानें मंगळवारीं, वैश्यानें शनिवारी, शूद्रानें शनिवारी चौल करावें. शूद्राला वारा संस्कार सांगितले आहेत. ते असे कीं, वेदग्रहण, उपनयन, महानात्री, महाव्रत ह्या चार संस्कारांशिवाय बाकीचे वारा संस्कार नुसते नाम हाच मंत्र उच्चारून आहेत. अथवा चारही वर्णांनां बुध, गुरु, शुक्र हे वार सांगितले आहेत. आणि शुक्रपक्षांत सोमवारीं चौल करावें कृष्णपक्षांतील सोमवार वर्ज्य आहे कारण त्यावेळेस चंद्र क्षीण आहे. ह्याविषयीं नारद सांगतो कीं, पर्व आणि रिक्ता तिथी सोडून शुक्र, गुरु, बुध, सोम इतक्या वारांवर चौल करावें. वृहस्पति सांगतो कीं, शुक्रपक्षांतील सोमवार ग्राह्य आहे आणि कृष्णपक्षांतील सोमवार निन्द्य आहे. जरी पापग्रह युक्त असला तरी बुध हा शुभकारक आहे. पापग्रहाचे वारामध्ये ब्राह्मणांना रवि शुभ देणारा, क्षत्रियांना मंगळवार शुभ देणारा आणि वैश्यांना व शूद्रांना दोघांना शनि शुभ देणारा आहे. नक्षत्रांमध्ये १ रेवती, २ अश्विनी, ३ पुनर्वसु, ४ पुष्य, ५ शुक्र ह्य० ज्येष्ठा, ६ इंद्र ह्य० मृग, ७ अश्लेष, ८ मृगशिरा, ९ अश्विनी, १० मृग, ११ अश्लेष, १२ मृगशिरा, १३ अश्विनी, १४ मृग, १५ अश्लेष, १६ मृगशिरा, १७ अश्विनी, १८ मृग, १९ अश्लेष, २० मृगशिरा, २१ अश्विनी, २२ मृग, २३ अश्लेष, २४ मृगशिरा, २५ अश्विनी, २६ मृग, २७ अश्लेष, २८ मृगशिरा, २९ अश्विनी, ३० मृग, ३१ अश्लेष, ३२ मृगशिरा, ३३ अश्विनी, ३४ मृग, ३५ अश्लेष, ३६ मृगशिरा, ३७ अश्विनी, ३८ मृग, ३९ अश्लेष, ४० मृगशिरा, ४१ अश्विनी, ४२ मृग, ४३ अश्लेष, ४४ मृगशिरा, ४५ अश्विनी, ४६ मृग, ४७ अश्लेष, ४८ मृगशिरा, ४९ अश्विनी, ५० मृग, ५१ अश्लेष, ५२ मृगशिरा, ५३ अश्विनी, ५४ मृग, ५५ अश्लेष, ५६ मृगशिरा, ५७ अश्विनी, ५८ मृग, ५९ अश्लेष, ६० मृगशिरा, ६१ अश्विनी, ६२ मृग, ६३ अश्लेष, ६४ मृगशिरा, ६५ अश्विनी, ६६ मृग, ६७ अश्लेष, ६८ मृगशिरा, ६९ अश्विनी, ७० मृग, ७१ अश्लेष, ७२ मृगशिरा, ७३ अश्विनी, ७४ मृग, ७५ अश्लेष, ७६ मृगशिरा, ७७ अश्विनी, ७८ मृग, ७९ अश्लेष, ८० मृगशिरा, ८१ अश्विनी, ८२ मृग, ८३ अश्लेष, ८४ मृगशिरा, ८५ अश्विनी, ८६ मृग, ८७ अश्लेष, ८८ मृगशिरा, ८९ अश्विनी, ९० मृग, ९१ अश्लेष, ९२ मृगशिरा, ९३ अश्विनी, ९४ मृग, ९५ अश्लेष, ९६ मृगशिरा, ९७ अश्विनी, ९८ मृग, ९९ अश्लेष, १०० मृगशिरा, १०१ अश्विनी, १०२ मृग, १०३ अश्लेष, १०४ मृगशिरा, १०५ अश्विनी, १०६ मृग, १०७ अश्लेष, १०८ मृगशिरा, १०९ अश्विनी, ११० मृग, १११ अश्लेष, ११२ मृगशिरा, ११३ अश्विनी, ११४ मृग, ११५ अश्लेष, ११६ मृगशिरा, ११७ अश्विनी, ११८ मृग, ११९ अश्लेष, १२० मृगशिरा, १२१ अश्विनी, १२२ मृग, १२३ अश्लेष, १२४ मृगशिरा, १२५ अश्विनी, १२६ मृग, १२७ अश्लेष, १२८ मृगशिरा, १२९ अश्विनी, १३० मृग, १३१ अश्लेष, १३२ मृगशिरा, १३३ अश्विनी, १३४ मृग, १३५ अश्लेष, १३६ मृगशिरा, १३७ अश्विनी, १३८ मृग, १३९ अश्लेष, १४० मृगशिरा, १४१ अश्विनी, १४२ मृग, १४३ अश्लेष, १४४ मृगशिरा, १४५ अश्विनी, १४६ मृग, १४७ अश्लेष, १४८ मृगशिरा, १४९ अश्विनी, १५० मृग, १५१ अश्लेष, १५२ मृगशिरा, १५३ अश्विनी, १५४ मृग, १५५ अश्लेष, १५६ मृगशिरा, १५७ अश्विनी, १५८ मृग, १५९ अश्लेष, १६० मृगशिरा, १६१ अश्विनी, १६२ मृग, १६३ अश्लेष, १६४ मृगशिरा, १६५ अश्विनी, १६६ मृग, १६७ अश्लेष, १६८ मृगशिरा, १६९ अश्विनी, १७० मृग, १७१ अश्लेष, १७२ मृगशिरा, १७३ अश्विनी, १७४ मृग, १७५ अश्लेष, १७६ मृगशिरा, १७७ अश्विनी, १७८ मृग, १७९ अश्लेष, १८० मृगशिरा, १८१ अश्विनी, १८२ मृग, १८३ अश्लेष, १८४ मृगशिरा, १८५ अश्विनी, १८६ मृग, १८७ अश्लेष, १८८ मृगशिरा, १८९ अश्विनी, १९० मृग, १९१ अश्लेष, १९२ मृगशिरा, १९३ अश्विनी, १९४ मृग, १९५ अश्लेष, १९६ मृगशिरा, १९७ अश्विनी, १९८ मृग, १९९ अश्लेष, २०० मृगशिरा, २०१ अश्विनी, २०२ मृग, २०३ अश्लेष, २०४ मृगशिरा, २०५ अश्विनी, २०६ मृग, २०७ अश्लेष, २०८ मृगशिरा, २०९ अश्विनी, २१० मृग, २११ अश्लेष, २१२ मृगशिरा, २१३ अश्विनी, २१४ मृग, २१५ अश्लेष, २१६ मृगशिरा, २१७ अश्विनी, २१८ मृग, २१९ अश्लेष, २२० मृगशिरा, २२१ अश्विनी, २२२ मृग, २२३ अश्लेष, २२४ मृगशिरा, २२५ अश्विनी, २२६ मृग, २२७ अश्लेष, २२८ मृगशिरा, २२९ अश्विनी, २३० मृग, २३१ अश्लेष, २३२ मृगशिरा, २३३ अश्विनी, २३४ मृग, २३५ अश्लेष, २३६ मृगशिरा, २३७ अश्विनी, २३८ मृग, २३९ अश्लेष, २४० मृगशिरा, २४१ अश्विनी, २४२ मृग, २४३ अश्लेष, २४४ मृगशिरा, २४५ अश्विनी, २४६ मृग, २४७ अश्लेष, २४८ मृगशिरा, २४९ अश्विनी, २५० मृग, २५१ अश्लेष, २५२ मृगशिरा, २५३ अश्विनी, २५४ मृग, २५५ अश्लेष, २५६ मृगशिरा, २५७ अश्विनी, २५८ मृग, २५९ अश्लेष, २६० मृगशिरा, २६१ अश्विनी, २६२ मृग, २६३ अश्लेष, २६४ मृगशिरा, २६५ अश्विनी, २६६ मृग, २६७ अश्लेष, २६८ मृगशिरा, २६९ अश्विनी, २७० मृग, २७१ अश्लेष, २७२ मृगशिरा, २७३ अश्विनी, २७४ मृग, २७५ अश्लेष, २७६ मृगशिरा, २७७ अश्विनी, २७८ मृग, २७९ अश्लेष, २८० मृगशिरा, २८१ अश्विनी, २८२ मृग, २८३ अश्लेष, २८४ मृगशिरा, २८५ अश्विनी, २८६ मृग, २८७ अश्लेष, २८८ मृगशिरा, २८९ अश्विनी, २९० मृग, २९१ अश्लेष, २९२ मृगशिरा, २९३ अश्विनी, २९४ मृग, २९५ अश्लेष, २९६ मृगशिरा, २९७ अश्विनी, २९८ मृग, २९९ अश्लेष, ३०० मृगशिरा, ३०१ अश्विनी, ३०२ मृग, ३

मरण बरें, असा एक न्याय आहे ह्मणून दोष नाही. कवि ह्म० शुक ह्या शिवाय बाकीचे सर्व ग्रह अष्टमस्थानी असतील ते मृत्यु देणारे आहेत. ह्याविषयी बृहस्पतीचें असें मत आहे कीं, अष्टमस्थानचे सर्व ग्रह शुभकारक नाहीत. परंतु त्यांत शुक मात्र शुभकारक आहे कारण चौल कर्मांत अष्टमस्थानचा शुक सर्व संपत्ति देणारा आहे. अब्ज ह्म० चंद्र त्याखेरीज सर्व ग्रह अंत्य ह्म० द्वादशस्थानी असलेले शुभकारक आहेत. तेंच नारद सांगतो कीं, चौल आणि अन्नप्राशनास सर्व शुभ ग्रह आठवे आणि बारावे स्थानचे शुभकारक आहेत, परंतु चंद्र हा आठवे आणि बारावे स्थानी मात्र शुभकारक नाही. हें त्याचेंच वचन आहे. बाकीचे लग्नबल पूर्वीप्रमाणें सर्व जाणावें. आतां तिथीमध्ये षष्ठी, पौर्णिमा, रात्रि, संध्या ह्यांचा त्याग चौलकर्मांमध्ये करावा. नारदाचें वचन असें आहे कीं, पापवार, रात्रि, रिक्तातिथी, षष्ठी, संध्या, जन्मनक्षत्र हे सर्व योग सत्पुरुषांनीं वर्ज्य करावेत ॥ ११ ॥

### क्षौरनिर्णय आणि गर्भिणीपतिधर्म.

भुक्ताभ्यक्तोपवासीश्वरजनयुवतिप्राग्वयस्काश्च योगी ।

यात्रायुद्धोन्मुखा ये कृतदिनविधयोऽस्त्यंबकास्ते न मुंड्याः ॥

सीमंतोर्ध्वं नपत्युर्नखकचलवनं दूरदेशप्रयाणम् ।

वृक्षच्छेदः समुद्राप्लुतिमृतहरणे स्याद्वतेऽवश्यकार्यात् ॥ १२ ॥

श्लोकार्थ—जेवलेला, तेल लावलेला, उपोषण करणारा, राजाचा सेवक, सौभाग्यवती स्त्री, पन्नास वर्षांचे आंतला तरुण, योगी ह्म० योग साधन करणारा, यात्रेस आणि युद्धास निघालेला, संध्यादि सर्व केलेला, आणि जीवत्पितृक ह्मणजे बाप जिवंत असलेला इतक्यांनीं क्षौर करूं नये. गर्भिणीपतीनें सीमंतोन्नयन संस्कार केल्यावर मग नख छेदन, केश छेदन, दूर देशीं गमन, वृक्ष छेदन, समुद्रयान, प्रेतवाहन इतकीं कर्मेंं आवश्यक कार्यावांचून करूं नयेत ॥ १२ ॥

अथ प्रसंगात्क्षौरनिर्णयं सार्धवृत्तेनाऽऽह-भुकेति । भुक्तः कृतभोजनः अभ्यक्तः कृताभ्यंगः उपवासी प्रसिद्धः ईश्वरजनो राजसेवकः समर्थो वा युवतीः स्त्री सौभाग्यवती प्राग्वयस्काः प्रथमवयस्काः पंचाशद्वर्षपर्यंतं पूर्ववयः योगी राजयोगी गीतादौ प्रसिद्धः यात्रायुद्धोन्मुखाः । यात्रा प्रयाणं युद्धं प्रसिद्धं तौ प्रति ये उन्मुखाः प्रचलिता यात्रोन्मुखा युद्धोन्मुखाश्चेत्यर्थः । कृतः दिनविधिः आह्निकं यैस्ते कृतदिनविधयः अस्त्यंबको जीवत्पितृकः तेन मुंड्या मुंडनार्हान् भवन्ति अवश्यकार्यादत इत्युत्तरार्थोक्तमत्रानुसंधेयं यत्रावश्यं मुंडनकारणं भवति तत्रावश्यं मुंड्याः ॥ अथ क्षौरनिषेधः प्रसंगाद्दुर्विणीपतेर्निषिद्धं सापवादमाह-सीमंतोर्ध्वमिति । सीमंतोर्ध्वं सीमंतोन्नयनादूर्ध्वं पत्युः कृतसीमंतसंस्कारस्य पत्युः भर्तुरवश्यकार्याद्वते नखकचलवनादिकं न स्यात् नखकचलवनं नखकेशच्छेदनमन्यत्सुगमं अवश्यकार्याद्वते न स्यादित्यनेन आवश्यकं न दोष इत्यर्थात्सिद्धं यथा पितृमरणे क्षौरादि देशविप्लवे देशांतरगमनं इत्यादि विचारणया आवश्यकं न दोष इत्यर्थः । कृताश्याधानस्य मुंडनपक्षांगीकारे मुंडनमावश्यकं । मासि मास्युपासनिकस्य पक्षे पक्षेऽग्निहोत्रिण इति ॥ १२ ॥

टीका—आतां प्रसंगानें चालू असलेला क्षौराचा निर्णय दीड श्लोकानें सांगतो—भोजन केलेला, अभ्यंग झालेलेला, उपवास करणारा, राज सेवक, अथवा समर्थ, सौभाग्यवती स्त्री, पन्नास वर्षांचे आंतला तरुण, पन्नास वर्षपर्यंत पूर्व वय समजावें, राजयोगी गीतेंत सांगितलेला, यात्रा आणि युद्धास जाणारा, अर्थात् त्यांचे तयारीत असणारा, ज्यांनी दिवसाचे अन्हिक कर्म केले आहेत ते, ज्यांना माता पिता जीवंत आहेत ते, इतक्यांनीं क्षौर कर्म करूं नये. मात्र अवश्य कार्य असेल तर त्यांना मुंडण्यास अधिकार आहे. असा अर्थ अनुसंधान करावा. ह्मणजे जेथें अवश्य मुंडण्याचा प्रसंग येतो तेथें मुंडण केलेंच पाहिजे. आतां क्षौराचा प्रसंग चालला आहे, त्यामध्ये गर्भिणी पतिला काय निषिद्ध आहे तें अपवादसहित सांगतो—गर्भिणीपतीनें सीमंतोन्नयन संस्कार झाल्या नंतर आवश्यक कार्याशिवाय एरव्ही नख आणि केश ह्यांचे छेदन करूं नये. आवश्यक कार्याशिवाय असें हाटल्यामुळे आवश्यक कार्याचे वेळेस नखाचें कर्तन आणि केशांचे छेदन करण्यास हरकत नाही असें अर्थात् सिद्ध झाले. जसें बाप मेल्यावर क्षौरादि केलेंच पाहिजे. देशाचा नाश झाला असतां दुसऱ्या दूर देशास गमन केलेंच पाहिजे. असा विचार केला असतां तशा अडचणीच्या कामास दोष नाही. ज्यांनीं अग्नीचें आधान केलें आहे त्यांना

मुंडनाचा स्वीकार करण्याचा प्रसंग प्रत्येकपक्षीं आहे व तो आवश्यक आहे. कारण उपासनाकाने प्रत्येकमास आणि अभिहोत्र्याने प्रत्येक पक्षास मुंडन करावे असा नियम आहे ॥ १२ ॥

क्षौर आणि अक्षरारंभ.

क्षौरं चौलोक्तभादौ गदितमथ रविक्षेत्रगंगाध्वराश्या- ।  
धाने पित्रोर्विनाशे द्विजनृपकथने सर्वदा क्षौरमिष्टम् ॥  
मित्रत्र्यर्कादितींद्रांतिमहरितुरगैः पंचमेऽब्दे व्रतात्प्राक् ।  
विद्यारंभोक्तकालेऽक्षरविधिरघटे सौम्यसंज्ञेऽयनेऽर्के ॥ १३ ॥

श्लोकार्थ—क्षौर करावयाचें तें चौलाचें नक्षत्र, तिथि इत्यादिकांवर करावें, गंगेत, भास्कर क्षेत्रां गेलें असतां. यज्ञामध्ये, अग्नि होत्रांत, माता व पिता मेलीं असतां, ब्राह्मणाची व राजाची आज्ञा झाली तर तत्काळ क्षौर करावें. त्या वेळेस नक्षत्रादिकांचा नियम नाही, विद्येचा आरंभ करावयाचा तो अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, रेवती, श्रवण, अश्विनी ह्या नक्षत्रांवर जन्मापासून पांचव्या वर्षी, उपनयनचे पूर्वी कुंभावाचून उत्तरायणांत सूर्य असतां करावा ॥ १३ ॥

अथोक्तेभ्योऽन्येषां क्षौरार्थं नक्षत्रादिकमाह-क्षौरमिति । चौलोक्तभादौ क्षौरं गदितं प्रोक्तं चौलार्थमुक्तश्चौलोक्तः स चासौ भादिश्च तस्मिन्नक्षत्रतिथ्यादिकाले क्षौरं गदितं प्रोक्तं । अथ क्षौरनिमित्ता-  
न्याह-रविक्षेत्रगंगाध्वराश्याधाने पित्रोर्विनाशे इत्यादि । रविक्षेत्रं भास्करक्षेत्रं गंगा प्रसिद्धा अध्वरो  
यागः अश्याधानमग्निहोत्रं तस्मिन् पित्रोर्विनाशो मरणं तस्मिन् द्विजनृपकथने ब्राह्मणाज्ञायां राजाज्ञा-  
यां च सत्यां सर्वदा क्षौरमिष्टं स्यात् क्षौरं नक्षत्रादिनियमो नास्तीत्यर्थः । तदुक्तं वृत्तशते । भुक्ता-  
भ्यक्तनिराशनेरित्यादि । रत्नमालायां । आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनामित्यादि । बृहस्पतिः । राजकार्ये  
नियुक्तानां नराणां भूपसेविनां । श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनं ॥ ज्योतिर्निबंधे । राज-  
योगी पुरंध्री च मातापित्रोश्च जीवतोः । मुंडनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्विष्णीपतिः ॥ स्मृत्यंतरे । सिंधु-  
स्नानंदुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनं । विदेशगमनं चैव न कुर्याद्विष्णीपतिः ॥ क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे  
सत्यपि भुवं । पित्रोः प्रेतविधानं च न दोषस्तत्र विद्यते ॥ गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतोऽहनि ।  
आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते ॥ अंतर्वर्त्यां तु जायायां तीर्थे क्षौरं न कारयेत् । प्रेतवाहा-  
दिकं नैव सीमंतोन्नयनादनु ॥ पंचाशद्धायनात्पूर्वं क्षौरं नैमित्तिकं विना । न कुर्यात्तत ऊर्ध्वं तु स्वेच्छया  
वपनं चरेत् इति ॥ अथाक्षरारंभं वृत्तार्धेनाऽऽह-मित्रत्र्यर्केति । मित्रादिभिर्नक्षत्रैः जन्मतः पंचमे वर्षे  
व्रतात् व्रतबंधात्प्राक् प्रथमं विद्यारंभोक्तकाले वक्ष्यमाणलक्षणेऽक्षरविधिः प्रथमाक्षरारंभविधिः शुभः  
स्यादित्यव्याहारः । कस्मिन् सति सौम्यसंज्ञे अयने अर्के सति कथं भूतं सौम्यसंज्ञं अयनं अघटे न  
विद्यते घटो यस्मिन् तथा तस्मिन् कुंभरहित उत्तरायण इत्यर्थः । ब्रह्मतुल्ये अयनलक्षणं कर्कशृगा-  
दिषट्के ते चायने दक्षिणसौम्यायने इति । मित्रमनुराधा त्र्यर्के हस्तत्रयं अदितिः इंद्रो ज्येष्ठा अंति-  
मं रेवती हरिः श्रवणः तुरगोऽश्विनी शेषं प्रथममेव व्याख्यातं व्रतात्प्रागित्यनेन व्रतबंधादुपरि निषेधोऽ-  
र्थोऽस्ति सद्धः पंचमे वर्षे पठनरुद्धया व्रतबंधोऽग्रे वक्ष्यते । तथा चोक्तं बृहस्पतिना । द्वितीयजन्मतः पूर्व-  
मारभेताक्षरान् सुधीरिति ॥ उक्तं च संग्रहे । उद्गयति भास्वति पंचमेऽब्दे प्रातःक्षरस्वीकरणं शिशूनां ।  
सरस्वतीं विघ्नविनायकं च गुडौदनाद्यैरभिपूज्य कुर्यादिति ॥ नृसिंहः । अक्षरस्वीकृतिः प्रोक्ता नास्ते  
पंचमहायने । उत्तरायणने सूर्ये कुंभमासं विवर्जयेदिति ॥ १३ ॥

टीका—आतां पूर्वी जीं सांगितलीं त्याहून बाकीच्यांना क्षौर करण्याचीं नक्षत्रादिक सांगतो—चौलाकारतां जो  
नक्षत्रादिक काळ सांगितला त्याच नक्षत्रादिक काळावर क्षौर करावे असें सांगितलें. आतां क्षौर करण्याचीं निमित्ते सांगतो-  
भास्कर क्षेत्री, गंगा क्षेत्री, यज्ञांत, अग्निहोत्रांत, आईवापांच्या मरणीं, ब्राह्मणानें आणि राजानें आज्ञा केली अत्रतां सर्वदा  
क्षौर करणे इष्ट आहे, तथा वेळीं क्षौर करण्यास नक्षत्रादिकांचा नियम नाही. तोच अर्थ वृत्तशतांत सांगितला आहे कीं,  
भोजन केलेला, तेल लावलेला, उपवासी ह्यांनी क्षौर करूं नये. रत्नमाला ग्रंथांत सांगितले आहे कीं, ब्राह्मणाच्या आणि

राजाच्या आज्ञेने क्षौर करावे त्याला नक्षत्रादिकांचा नियम नाही. बृहस्पति असे सांगतो की, राजकीयकार्यामध्ये नेमलेल्या मनुष्यांना राजाची सेवा करणाऱ्यांना क्षौर करणे, नखच्छेदन, ह्याविषयी काळ पाहावयाचे कारण नाही. ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितले आहे की, राजयोग्यान, सौभाग्यवती स्त्रिया, मातापिता जिवंत असलेल्या पुत्रांना, गर्भिणी पतिने सर्व तीर्थांवर मुंडन करू नये. दुसऱ्या स्मृतींत सांगितले आहे की, गर्भिणीपतीने समुद्रस्नान, वृक्षच्छेदन, वपन ह्यांजे क्षौर, प्रेतवाहन, परदेशीं गमन, इतकीं कामे करू नयेत. जरी असा निषेध आहे तरीसुद्धा निमित्ताने आलेले क्षौर करावे. मातापित्यांचे प्रेतवाहन व त्याबद्दल क्षौर करण्यास दोष नाही. कारण गंगातीर्थी, भास्करक्षेत्री, मातापित्यांचे मरणोत्तर, अग्नीच्या आधानांत, सोमलतेच्या यज्ञांत अर्थात् सोमयज्ञांत ह्या सहा कार्यां क्षौर करावे स्त्री गर्भिणी असेल तर तीर्थांवर क्षौर करवू नये. सीमंतोन्नयनानंतर प्रेतवाहन करू नये. पन्नास वर्षांच्या आत निमित्ताशिवाय क्षौर करू नये. पन्नास वर्षांनंतर आपल्या इच्छेप्रमाणे क्षौर करावे. आतां अक्षरारंभ अर्थात् वृत्ताने सांगतो—जन्मापासून पांचवे वर्षी उपनयन ह्यांजे मौंजी बंधनाचे पूर्वी विचारंभाचे वेळेस पुढे सांगावयाचा अक्षरारंभाचा विधि केला असता तो शुभकारक होतो. त्या वेळेस उत्तरायण असावे आणि त्या उत्तरायणांत कुंभेचा सूर्य नसावा. ब्रह्मतुल्यामध्ये अयनाचे लक्षण सांगितले आहे ते असे की, कर्कापासून सहा राशींस सूर्य असला तर दक्षिणायन ह्यांजे कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन ह्या सहा राशींवर सूर्य असतो, ते दक्षिणायन होते आणि मकरापासून सहा राशींस सूर्य असला तर उत्तरायण ह्यांजे मकर, कुंभ, मीन, मेष, वृषभ, मिथुन, इत्याद्या सहा राशींवर सूर्य असला तर उत्तरायण होते. नक्षत्रांमध्ये मित्र ह्य० अनुराधा, अर्कापासून तीन ह्य० हस्त, चित्रा, स्वाती, अदिति ह्य० पुनर्वसु, इंद्र ह्यांजे ज्येष्ठा, अंतिम ह्य० रेवती, हरि ह्य० श्रवण, तुरग ह्य० अश्विनी इत्याद्या नक्षत्रांवर अक्षरारंभ करावा. हा आरंभ व्रतबंधाचे पूर्वी करावा असे ह्य० ह्य० मुळे अर्थात् व्रतबंधानंतर त्याचा निषेध आहे. पांचव्या वर्षी शिकण्याची रुचि असल्यामुळे व्रतबंध पुढे सांगावयाचा आहे. तेच बृहस्पतीने सांगितले आहे की, बुद्धीवानाने दुसरा जन्म उपनयन संस्काराचे पूर्वी अक्षराचा ह्यांजे शिकण्याचा आरंभ करावा. संग्रहग्रंथांत सांगितले आहे की, सूर्यनारायण उत्तरायणी असतां पांचव्या वर्षी विद्या शिकण्याचा आरंभ करावा. त्या वेळेस श्रीपरस्वती, श्रीविप्रविनायक ह्यांचे गुरू, ओदन इत्यादि पक्वान्नांनी पूजन करून मग विद्येचा आरंभ करावा. त्रिसह सांगतो की, पुत्राच्या पांचव्या वर्षी कुंभ संक्रांती सोडून उत्तरायणांत अक्षर शिकविण्याचा आरंभ करावा ॥ १३ ॥

#### उपनयनकाल.

विप्रादेर्गर्भतोव्देऽष्टशिवरविमिते जन्मतो वा व्रतं स्यात् ।

दत्रानिष्टेऽपि जीवेऽनिमिषरविमधौ कार्यमवदस्य दाढ्यात् ॥

स्वाव्दादूर्ध्वं क्रमादा द्विगुणितशरदो निचमवदक्रमेण ।

पंचाष्टांकावदतो वा प्रपठनरुचितः शस्तमेषां तदाहुः ॥ १४ ॥

श्लोकार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय आणि वैश्य, ह्या तिघांना जन्मापासून अथवा गर्भधारणापासून क्रमाने ८-११-१२ ह्या वर्षी गुरु अनिष्ट असला तरी मुख्य काळ जातो ह्यांजून चैत्र मासी मीन राशीला सूर्य असेल तर उपनयन संस्कार करावा. आतां वर सांगितलेल्या काळाचा दुप्पट ह्यांजे १६-२२-२४ वर्षपर्यंत उपनयनाचा अवधि आहे. परंतु तो उत्तरोत्तर अधिक निच आहे, श्रेष्ठ लोकांचे मत असे आहे की, पुत्राला वेदपठणाची इच्छा असेल तर ब्राह्मण, क्षत्रिय आणि वैश्य ह्यांना क्रमाने ५-८-९ हीं वर्षेही उपनयनाचा काळ आहे व त्यावेळीं उपनयन करावे ॥ १४ ॥

अथ ब्रह्मक्षत्रविशां मुख्यं गौणं च व्रतबंधकालं बृहस्पतेः विप्रादेरिति । गर्भतः गर्भाधानाज्जन्मतो वा अष्टशिवरविमिते अव्दे विप्रादेर्व्रतं स्यात् विप्रस्याष्टमे क्षत्रियस्य शिवमिते एकादशे वर्षे स्यात् वैश्यस्य रविमिते द्वादशे वर्षे स्यात् । अत्र स्वस्ववर्षे जीवे गुरौ अनिष्टेऽशुभे सत्यपि व्रतं कार्यं क अनिमिषरविमधौ अनिमिषे रविः अनिमिषरविः अनिमिषरविणा विशिष्टो मधुः अनिमिषरविमधुः तस्मिन् मीनस्थे रवौ सति चैत्रे व्रतं कर्तव्यमित्यर्थः । अव्दस्य दाढ्यात् वर्षबलात् । तदुक्तं संग्रहे । शुद्धिर्न विद्यते यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभं ॥ जन्मभादृष्टो सिंह नाच वा शरुभे गुरौ । मौंजीबंधः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ अशुभेऽव्दे ग्रहाः सर्वे शुभगोचरगा अपि । शांत्यभावाच्छुभं नैव त्याज्यवदः कालमृत्युवदिति ॥ अथ गौणकालफलमाह—स्वाव्दादूर्ध्वं क्रमा-

दिति । स्वाब्दात् स्ववर्षादूर्ध्वं क्रमात् आ द्विगुणितशब्दः द्विगुणिता चासौ शब्दश्च द्विगुणितशब्दत् वर्षं तां मर्यादीकृत्येति तथा तस्याः अवक्रमेण निधं तद्यथा ब्राह्मणस्याष्टमं वर्षं मुख्यं तद्विगुणितं षोडशं अष्टमवर्षान्तं षोडशवर्षपर्यंतं ब्राह्मणस्य एकादशवर्षाद्वाविंशवर्षपर्यंतं क्षत्रियस्य द्वादशवर्षाच्चतुर्विंशतिवर्षपर्यंतं वैश्यस्य अवक्रमेणोत्तरोत्तरं निधं अर्थादतः अनधिकाणि भवन्ति । तदुक्तं संग्रहे । नृपा १६ कृति २२ जिना २४ ज्ञातं नातिकालस्ततः परं । पातित्वं स्यादप्रजादेर्वात्यस्तोभो विशेषनमिति ॥ तथाच कात्यायनगृह्ये । आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः काल आ द्वाविंशत्क्षत्रियस्याचतुर्विंशत्क्षत्रियस्यात ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति नैनालुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न वैभिव्यवहरेयुः कालातिक्रमे नियतवच्चिपुरुष पतितसावित्रीकाणामपत्ये संस्कारो नाध्यापनं तेषां संस्कारेषुर्वात्यस्तोमेनेष्टाकाममधीयीन् व्यवहार्या भवन्तीति वचनादिति । अथ स्वाब्दाप्यापि अध्ययनौत्सुक्यादुपनयनकालमाह-पंचमृत्कावदतो वेति । पंचमाष्टमनवनववर्षेभ्यः संस्कारादेयां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमेण प्रपठनरुचितः वेदादिपठनरुच्या तद्वत् शस्तमाहुर्मुनयः । उक्तं संग्रहे । ब्रह्मवर्चसमूर्जश्च विद्याऽऽयुः श्रीर्यशः सुखं । विप्रदेरुपनीतस्य पंचमृत्कावदतः कलम् ॥ १४ ॥

टीका-आतां ब्राह्मण, क्षत्रिय आणि वैश्य ह्यांचा व्रतबंध करण्याचा मुख्य काळ आणि गौण काळ ही दोन्ही एका वृत्तानें सांगतो-गर्भाधानापासून अथवा जन्मापासून ब्राह्मणांला आठवे वर्षी, क्षत्रियांला शिव ह्म० ११ वे वर्षी, वैश्याला रवि ह्म० चारावे वर्षी उपनयन संस्कारात्मक व्रत करावें. त्यावेळीं अनिमिष ह्म० मोन राशीवर रवि असून वैश मास असावा. कारण हें वर्ष फारच बळकट ह्मणजे अति आवश्यक आहे. तेंच संग्रह ग्रंथांत सांगितलें आहे की, ज्याला आठवे वर्ष बसले असेल त्याचा उपनयन संस्कार करण्याला कोणत्याही प्रकारची काळशुद्धि पाहावयास नको सात्र चैत्र महिना व मीतावर मुने असला ह्मणजे तो काळ उपनयनाला शुभकारक आहे. फार तर जन्मराशी पासून आठवा गुरु असेल, शिंदेचा असेल, नीचीचा असेल, शत्रुस्थानी असेल तरीही चैत्रांत मीनाचे सूर्यावर सौजीव्यन शुभकारक आहे. वर्ष अशुभ असले आणि सर्व ग्रह शुभ असले तरीही तो शांतिकारक काळ नव्हे ह्मणून तें वर्ष शुभकारक होत नाही. तर तो वर्षाचा काळ कालमुत्सृजनाणें समजावा. आतां गौण काळ सांगतो- ज्याला जें वर्ष सांगितलें आहे. त्याच्या दुप्पट काळ ह्म० ब्राह्मणांला ८ वर्षांचे दुप्पट १६ वर्षे, क्षत्रियांना ११ वर्षांचे दुप्पट २२ वर्षे, वैश्यांना १२ वर्षांचे दुप्पट २४ वर्षे वा वर्षांत उपनयन करण्याच्या काळाचा अवधि आहे. परंतु तो काळ प्रति वर्षास अधिक अधिक निध आहे. ह्मणजे ब्राह्मणांला आठ वर्षांपुढे प्रत्येक वर्ष अधिक निध आहे. ह्मणजे आठव्यापेक्षां नववें व नवव्यापेक्षां दहावें असे उत्तरोत्तर अधिक निध आहे. ह्मणजेच क्षत्रियांचे अकरा वर्षांपुढील प्रत्येक वर्ष उत्तरोत्तर अधिक निध आहे. आणि वैश्यांचेही बारा वर्षांनंतर पुढें प्रत्येक वर्ष उत्तरोत्तर अधिक निध आहे. अर्थात् त्या अवधीपुढें मग ते उपनयनाचे अधिकारी रहात नाहीत. तेंच संग्रहग्रंथांत सांगितलें आहे की, नृप ह्म० १६ कृति ह्म० २२ जिना ह्म० २४ इतक्या वर्षांनंतर कमार्ने ब्राह्मण, क्षत्रिय आणि वैश्य ह्यांना काळ रहात नाही. त्या पुढें राहिलेले ब्राह्मणादि तिथे पतित होतात आणि त्यांच्या त्या पातित्याचे दोषनाशकरीत ब्राह्मणसोम केला पाहिजे. तेंच कात्यायन गृह्यसूत्रांत सांगितलें आहे की, ब्राह्मणांला १६ वर्षेपर्यंत काळ आहे, पुढें क्षत्रियांना २२ वर्षे आणि वैश्यांना २४ वर्षे पर्यंत काळाचा अवधि आहे. त्या पुढें ते पतित ह्म० उपनयन देण्यास अधिकारी राहत नाही, मग त्यांना उपनयनही नाही आणि वेदाध्ययन शिकवूं नये. त्यांच्याकडून यजन ही करवूं नये. त्यांच्या कोपेर अन्नादि व्यवहार ही करूं नये. कालाचा अतिक्रम झाल्यामुळे त्यांचे पुढील तीन पिढीपर्यंत सर्व पुढप गावत्री संत्रापासून व्रत झालेले समजावेत. त्यांच्या पुत्रपौत्रांनाही संस्कार नाही, अध्यापन नाही. त्यांना संस्कार करावा अशी इच्छा करणाऱ्याने ब्राह्मणसोमनाम यजन करावें मग त्यांनी अध्ययन करावें नंतर मग ते संस्कार करण्यास योग्य होतात. आतां उपनयनाला सांगितलेल्या काळाचे पूर्वाही अध्ययनाविषयी उत्सुकता असेल तर उपनयनाचा दुसरा काळ सांगतो- ब्राह्मणांला पांचवे वर्षी, क्षत्रियांला आठवे वर्षी, वैश्याला ९ वे वर्षी उपनयन संस्कार करावा आणि त्या मुलांच्या इच्छेप्रमाणें त्यांना वेदाध्ययन सुरू करावें. असें मुनीचें प्रशस्त मत आहे. तेंच संग्रहांत सांगितलें आहे की, ब्राह्मणादि तिघां वर्गांना, ब्रह्मतेज, विद्या, आमुच्य, लक्ष्मी, यश आणि सुख ह्यांची इच्छा असेल तर ५-८-९ ह्या वर्षी उपनयन संस्कार करानें करावा ॥ १४ ॥

गुरुचे बलाबलाचा विचार.

राशेः षट्त्रयाद्यस्वस्थो गुरुरिह शुभदः पूजयास्यात्तयाऽपि ।

प्रांत्योबुस्थोऽमो नो यदि निजगृहगस्तुंगमोऽत्रापि शस्तः ॥



एवं कन्यर्क्षतः स्यादतितरगुणिनो लब्धये वाऽतिकाले ।

ऽनिष्टो पीह द्विरर्च्योऽष्टमभवनगतः शोभनः स्यान्निरर्च्यः ॥ १५ ॥

श्लोकार्थ—जर पुत्राचे जन्मराशीपासून ६-३-१-१० ह्या स्थानीं गुरु असेल तर त्याची पूजा करावी. ह्मणजे तो घेण्यास प्रशस्त आहे. १२-४-८ ह्या स्थानाचा गुरु पूजेनेही प्रथस्त नाही. तथापि गुरु आपल्या घरीं ह्मणजे धन आणि मीन ह्या राशींवर असेल किंवा उर्चीचा ह्मणजे कर्क राशीचा असेल तर तो मात्र शुभ जाणावा. असेंच कन्येविषयीही जाणावे. उत्तम गुणवान् पति मिळत आहे तर किंवा अतिकाल होत असेल तर अनिष्ट गुरुचें दोन वेळा पूजन आणि अष्टम गुरुचें पूजन तीन वेळां केल्याने तो शुभ होतो ॥ १५ ॥

अथात्र गुरुबलाबलं वस्तेनैकेनाऽऽह-राशेरिति । राशेः जन्मराशेः सकाशात् षट्त्रयाद्यस्वस्थो गुरुः इहास्मिन्नत्रबंधे पूजया शुभदः स्यात् षट् षष्ठं त्रि तृतीयं आद्यं जन्मराशिः खं दशमं एषु तिष्ठतीति तथा । तयाऽपि पूजयाऽपि प्रांत्यो द्वादशः अंबु चतुर्थः अष्टमः न शुभदः स्यात् पूजयाऽपि अशुभदः स्यादित्यर्थः । स यादि निजगृहगः स्वगृहगः धनुर्मीनग इत्यर्थः । तुंगगो वा यदि भवति तदा इह दुष्टस्थानेषु वर्तमानः शस्तः स्यात् अस्य तुंगं कर्केटः । तदुक्तं बृहज्जातके अजवृषभमृगांगनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुंगाः । दश १० शिखि ३ मनुयुक् २८ तिथीं १५ द्रियांशे ५ स्त्रिनवक २७ विंशतिभि २० अ तैस्तनीचा इति । अर्थादुक्तस्थानेभ्योऽन्यस्थानगः शुभदः स्यात् एवं कन्यर्क्षतः स्यात् कन्यर्क्षतः कन्याराशेः सकाशात् एवमुक्तवत् शुभाशुभः स्यात् । अतितरगुणिनो वरस्य लब्धये अतिकाले वा अनिष्टोऽपि गुरुर्द्वादशचतुर्थाष्टमः द्विरर्च्यः षट्त्रयाद्यस्वस्थस्य शास्त्रे या पूजोक्ता तत्प्रमाणतो द्विरर्च्यः तेन द्विगुणार्चनेन शोभनः स्यात् एवं सामान्येनोक्त्वा अष्टमस्य विशेषमाहाष्टमभवनगतः निरर्च्यः तेन शोभनः स्यात् । अत्र बृहस्पतिः । झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचर । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥ व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टार्चनात्सकृत् । शुभोतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥ उद्वाहतत्वे । कन्यर्क्षद्विसुतद्युनायनवमे श्रेष्ठो गुरुश्चान्यथा पूज्योऽष्टांत्यं सुखेति काल इह तु प्राज्ञैर्द्विरर्च्यः शुभः ॥ रिःफांनुभिधनाभ्रगेर्यदि ग्रहैः श्रेष्ठोऽपि विज्जोह्यसन्वा-माद्विद्ध इहेष्टदो न निधने वेधस्त्रिरर्च्यः शुभ इति ॥ १५ ॥

टीकार्थ—आतां गुरुचें बळ आणि अवळ हें एका वृत्तानें सांगतो— जन्मराशीपासून सहा ६ तनि ३ आय १ ह्या १० इतक्या ठिकाणचा गुरु ह्या व्रतबंधकार्यात पूजा केल्यानें शुभ होतो. तसाच बारावा प्रांत्य ह्या० बारावा, अंबु, ह्या० चौथा, आठवा हे तीन गुरु पूजा करूनही शुभ होत नाहीत ह्मणजे ते अशुभच आहेत. परंतु तो जर आपल्या घरीं ह्मणजे धनेचा आणि मीनेचा असेल किंवा तुंग ह्या० उर्चीचा ह्मणजे कर्केचा असेल आणि दुष्टस्थानीं जरी असला तरी तो शुभ आहे. तेंच बृहज्जातकांत सांगितलें आहे कीं, अज ह्मणजे मेष ह्याचा सूर्य उच्च, वृषभेचा चंद्र उच्च, मृग ह्या० मकरेचा मंगळ उच्च, व अंगना ह्मणजे कन्या ह्याचा बुध उच्च, कुलीर ह्या० कर्केचा गुरु उच्च, झष ह्या० मीनेचा शुक्र उच्च, वणिक् ह्मणजे तूळेचा शनि उच्च आहे. ह्या इतक्या ग्रहांच्या उच्च राशी सांगितल्या त्या राशींच्या वरही रवि १० चंद्र ३ मंगळ २८ बुध १५ गुरु ५ शुक्र २७ शनि २० इतक्या अंशांनीं उच्च समजावा अर्थात् ह्या उच्च स्थानाशिवाय दुसऱ्या स्थानावरचे गुरु नीच समजावेत. अशाच रीतीनें कन्येच्या राशीपासून पूर्वीप्रमाणें असेल तर शुभ समजावा आणि त्याहून निराळा अशुभ जाणावा. अतिशय उत्तम वर मिळण्याचा योग आला असेल अथवा कन्येचा विवाहकाळ निघून जात असेल तर जरी गुरु अनिष्ट ह्मणजे १२-४-८ ह्या स्थानाचा असेल तर त्या गुरुची दोन वेळां पूजा करावी. ६-३-१-१० ह्या ठिकाणचा असेल तर शास्त्रांत जी पूजा सांगितली त्या प्रमाणानें त्या गुरुची पूजा करून कार्य करावें दुष्पट पूजा करावी असें सांगितलें आहे. असें सामान्य रीतीनें सांगून आठवा गुरु हा विशेष आहे ह्मणून त्याचा विशेष सांगतो कीं, अष्टमस्थानीं असलेला गुरु फारच अशुभ आहे, ह्मणून त्याची तीन वेळां पूजा करावी ह्मणजे तो शुभकारक होतो. ह्या विषयीं बृहस्पतीचें असें मत आहे कीं, मीन, धन, कर्क ह्या ठिकाणचा गुरु जरी अशुभस्थानचा असला तरी तो विवाह, उपनयन इत्यादिकार्यांमध्ये फारच शुभ कारक होतो. १-३-१०-६ ह्या ठिकाणचा गुरु मौजोबधनामध्ये पूजा केल्यानें शुभ देणारा आहे आणि ४-८-१२ ह्या ठिकाणचा गुरु दोन वेळां पूजा केल्यानें शुभप्रद होतो. उद्वाह तत्वांत असें सांगितलें आहे कीं, कन्या राशीपासून २-५-७-११-९ ह्या स्थानाचा गुरु फारच श्रेष्ठ आहे ह्याशिवाय दुसरे ठिकाणचा गुरु पूजेनें श्रेष्ठ होतो. उत्तम वराचा लाभ अथवा काळाचें उल्लंघन होत असेल तर ८-१२ ठिकाणचाही गुरु दोन वेळां पूजा केल्यानें शुभप्रद आहे. गुरु श्रेष्ठ असूनही



तो जर १२-४-३-२-१० ह्या स्थानावरील ग्रहांनीं विद्ध असेल तर तो अशुभ जाणावा. वाम वाजने जर विद्ध असेल तर इष्ट देणारा आहे. अष्टम स्थानचा वेध असलेला गुरु तीन वेळा पूजा केल्यानेही इष्ट फल देणारा होत नाही ॥ १५ ॥

गुरुचा वेध व उपनयनाचे मासादि.

द्विष्वायागांकसंस्थो व्ययजलनिधनत्र्यभ्रगैश्चैव विद्धः ।

शस्तोऽनिष्टोऽपि वामं शुभ इह खचरैर्वेधितो नोऽष्टमस्थः ॥

शुक्ले माघादिपंचस्विनशुभदिवसे प्राग्दलेऽह्नो व्रतं सत् ।

त्यक्त्वाऽनध्यायरिक्तातिथिमुनिमदनौचंद्रभागं प्रदोष्य ॥ १६ ॥

श्लोकार्थ—जन्मराशीपासून १२-४-८-३-१० ह्या स्थानीं कोणताही ग्रह नवत अनुक्रमाने २-५-११-७-९ ह्या स्थानीं गुरु असेल तर तो शुभ जाणावा. आतां १२-४-८-३-१० ह्या स्थानचा गुरु अशुभ आहे हें खरें. परंतु त्या गुरुवर २-५-११-७-९ ह्या स्थानच्या कोणत्याही ग्रहांचा वेध असेल तर तो अशुभही गुरु शुभ जाणावा. आठवा गुरु कोणाच्याही वेधानें शुभ होत नाही (परंतु तर्कची तीन वेळां पूजा केल्यानें शुभ जाणावा) शुक्लपक्षांत, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख आणि ज्येष्ठ ह्या पांच महिन्यांत रविवारी अथवा दुसऱ्या शुभ वारी पूर्वाधीत उपनयन करणें शुभ आहे परंतु अनध्याय, रिक्तातिथी, सप्तमी, त्रयोदशी हीं सोळावीत. तसेंच कर्क लग्नाचा नवांश सोडून व्रतबंध करणें शुभ आहे ॥ १६ ॥

अथ गुरोर्वामवेधमाह-द्विष्वायागांकसंस्थो गुरुस्तदा शुभः स्यात् तदा कदा यदि व्ययजल-निधनत्र्यभ्रगैः खचरैः विद्ध स्यात् । द्विर्तीयं इषुः पंचमं आय एकादशं अंगः सप्तमं अंकः नवमं एतत्संस्थो गुरुः व्ययं द्वादशं जलं चतुर्थं निधनं अष्टमं त्रि तृतीयं अन्नं दशमं एतत्संस्थः खचरैः यदि नो विद्धो भवति तदा शुभः स्यात् २५।११।७।२।४।८।३।१० वेधितश्चेदशुभ इत्यर्थः । अनिष्टोऽपि व्ययजलनिधनत्र्यभ्रगोऽपि वामं विद्धः सत् द्विष्वायागांकसंस्थैः खचरैर्वेधितः सन्नित्यर्थः । इह अस्मिन्व्रतबंधे विवाहे वा शुभः नोऽष्टमस्थः अष्टमस्थो वेधितो न शुभः स्यादित्यर्थः । सोऽति कालादौ त्रिगुणार्चनेनैव शुभः स्यात् । तथाच बृहस्पतिः । रजस्वला यदा कन्या गुरुशुद्धिं न धितयेत् । अष्टमेषु प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ अथोपनयने मासादिकमाह-शुक्ल इति । शुक्ले शुक्लपक्षे माघादिपंचमासेषु ज्येष्ठांत्येषु इनशुभदिवसे इनः सूर्यः शुभाः वर्धमानंदुर्गुरुदुष्टशुक्राः एषां दिवसः तस्मिन् अहः प्राग्दले दिवसस्य पूर्वाधे व्रतउपनयनं सत् शुभं स्यात् किंत्वा अनध्यायरिक्तातिथि-मुनिमदनान् चंद्रभागं प्रदोषं त्यक्त्वा अनध्याया वक्ष्यमाणा रिक्तातिथयश्चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः मुनिः सप्तमी मदनत्रयोदशी एतान् चंद्रभागः कर्काशः पाषांशादिकं पुरैव निषेधितं प्रदोषोऽनध्याय-प्रकरणोक्तः तं त्यक्त्वा ॥ १६ ॥

टीकार्थ—आतां गुरुचा वाम वेध सांगतो— द्वि, इषु, आय, अंग, अंक ह्यं २-५-११-७-९ ह्या स्थानाचा गुरु शुभकारक आहे परंतु तो जर व्यय, जल, निधन, त्रि, अन्न ह्यं १२-४-८-३-१० ह्या स्थानीं असलेल्या ग्रहांनीं विद्ध नसेल तर तो शुभ जाणावा. ह्यं गुरु जरी २-५-११-७-९ ह्या उत्तम स्थानचा आहे परंतु त्यावर १२-४-८-३-१० ह्या वरील ग्रहांचा वेध पोहोचतो तर तो गुरु अशुभ जाणावा. ह्या उपनयनामध्ये आणि विवाहामध्ये आठवे स्थानाचा गुरु वेधितही शुभ होत नाही, तो आठवा गुरु लग्नाचा अति काळ होत असेल तर तिप्पट पूजा केल्यानें शुभ होतो. तेच बृहस्पति सांगतो कीं, जर कन्या रजस्वला आहे तर मग कालाची शुद्धि पाहें नये, मग आठवा गुरु असला तरी तिप्पट पूजा करून विवाह करावा. आतां उपनयनाला मासादिक सांगतो—माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख आणि ज्येष्ठ ह्या पांच महिन्यांत रविवारी अथवा दुसऱ्या वाढणाऱ्या शुभ ग्रहांचे वारी ह्यं सोम, गुरु, बुध आणि शुक्र ह्या वारी दिवसाच्या पहिल्या अर्धीत उपनयन करावें परंतु अनध्यायतिथि, रिक्तातिथि, सप्तमी आणि त्रयोदशी इत्यादी तिथि सोळाव्यात. चंद्र भाग ह्यं कर्काचा नवांश, पाषांशादिक पूर्वांच सांगितले. प्रदोषकालही अनध्याय प्रकरणांत ननायचा आहे तो सोडून व्रतबंध करावा ॥ १६ ॥

उपनयनाची नक्षत्रे, वेदपाति व लग्नबल.

शस्तो द्वीशाग्रिशाक्रांतकपितूरहितैः सर्वभैमौजिवंधो ।  
वेदेशे ज्ञे बलाढ्ये गुरुसितकुजवित्संज्ञका वेदपाः स्युः ॥  
स्वर्क्षांशांशेषु सौम्याः श्रुतिपतिरपि चेत्केंद्रकोणस्थिताः स्युः ।  
वर्णा वेदार्थवेत्ता पशुगृहधनवानत्र मंदेऽत्यसेवी ॥ १७ ॥

श्लोकार्थ—उपनयन करतानां विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, भरणी, मघा, हीं पांच नक्षत्रे सोडून बाकीच्या कोणत्याही नक्षत्रावर करावें, वेदपति आणि बुध हे बलवान् असावेत. ऋग्वेदाचा गुरु, यजुर्वेदाचा शुक्र, सामवेदाचा मंगळ आणि अथर्ववेदाचा बुध असे हे चार वेदांचे चार पति आहेत, शुभ ग्रह आणि वेदपति स्वगृहीं खोचस्थानीं स्वनवांशीं असून केंद्रीं व त्रिकोणीं असतील तर कुमार वेदार्थ जाणारा आणि पशू, गृह, धन ह्यानीं युक्त होतो, केंद्रीं, त्रिकोणीं शनि असतां तो कुमार नीच जातीचा सेवक होतो ॥ १७ ॥

अथ व्रतबंधे नक्षत्राण्याह—स्पष्टं । उक्तं च मघा च भरणी ज्येष्ठा विशाखा चैव कृत्तिका । नक्षत्रपंचकं प्राज्ञैर्न ग्राह्यं व्रतबंधने । वेदेशे वेदपतौ ज्ञे बुधे बलाढ्ये सति स्थानादिवलसमृद्धे सति ते के वेदेशा इत्यपेक्षायामाह गुरुसितकुजवित्संज्ञकाः क्रमात् वेदपाः वेदाधिपतयः स्युः गुरुः ऋग्वेदस्य शुक्रो यजुर्वेदस्य कुजः सामवेदस्य वित् बुधोऽथर्वणवेदस्य पतिरित्यर्थः । अथ लग्नां चरबलमाह—स्वर्क्षांशांशेषु सौम्या इति । सौम्याः स्वोच्चस्वभांशेषु वर्तमानाः श्रुतिपतिरपि वेदपतिरपि स्वोच्चस्वभांशे वर्तमानश्चेद्यदि केंद्रकोणस्थिताः स्युस्तदा वर्णा ब्रह्मचारी वेदार्थवेत्ता स्यात् न केवलं वेदार्थवेत्ता स्यात् अपि तु पशुगृहधनवान् स्यात् । अत्र केंद्रकोणे शनौ मंदे सति अंत्यसेवी अंत्यजसेवकः स्यात् तस्मात्केंद्रकोणे शनिर्न भावितव्यः । उक्तं च संग्रहे । केंद्रस्थितैरिनाद्यैर्नृपसेवी विद्वक्तियः श्रवृत्तिश्च । वेदाभ्यासी यज्वा ऋतुकर्ता हीनसेवको भवतीति ॥ १७ ॥

टीकार्थ—आतां उपनयनाविषयीं नक्षत्रे सांगतो—एके ठिकाणीं सांगितलें आहे कीं, ग्राह्य लोकांनीं व्रतबंधाविषयीं मघा, भरणी, ज्येष्ठा, विशाखा आणि कृत्तिका हीं नक्षत्रे घेऊं नयेत. वेदाचे पति, बुध, हे बलवान् असतां ज्ञान इत्यादि बल समृद्धि असतां व्रतबंध करावा. वेदपति कोणते ही शंका आली असतां तिचें उत्तर सांगतो—गुरु, शुक्र, मंगळ, बुध हे क्रमानें वेदांचे अधिपति आहेत. ह्य० ऋग्वेदाचा गुरु, यजुर्वेदाचा शुक्र, सामवेदाचा मंगळ आणि अथर्ववेदाचा बुध असे चार वेदांचे चार अधिपति आहेत. आतां लग्न गोचरबल सांगतो—सौम्य ग्रह आपल्या उच्चावर आणि आपल्या राशीच्या नवांशांत राहाणारे असावेत. वेदपतिही आपल्या उच्चीं व आपल्या राशीच्या नवांशांत राहाणारे असतील आणि केंद्रीं आणि त्रिकोणीं राहाणारे असतील तर तो ब्रह्मचारी वेदार्थ जाणणारा होतो. नुसता वेदार्थ जाणणारा होतो इतकेंच नाही तर तो पशु, धन, धान्य ह्यांनीं समृद्ध होतो. आतां जर केंद्रीं आणि त्रिकोणीं शनि असेल तर तो ब्रह्मचारी अंत्यजाची ह्य० नीचाची सेवा करणारा होतो. ह्मणून केंद्रांत शनि नसावा असें लग्न पाहावें. संग्रहांत सांगितलें आहे कीं, केंद्रामध्ये रवि, चंद्र, मंगळ, बुध, गुरु, शुक्र, शनि हे ग्रह असतील तर तो ब्रह्मचारी क्रमानें राजसेवक, व्यापारी, सेवा करणारा, वेदाभ्यासी, याज्ञिक कर्म करणारा, यज्ञ कर्ता, हीनाचा सेवक असा होतो ॥ १७ ॥

उपनयनाला अशुभ ग्रह आणि विचारंभ काळ.

चंद्रकूरा विलम्बे शशिसिततनुपाः षष्ठगेहे सितोऽस्त्ये ।  
सर्वे रंध्रे बटुग्राः क च तनुगइनः श्रेष्ठ उच्चंदुरेके ॥  
विद्यां मौज्युक्तकाले स्थिरचरहरिज्ज्युत्तरब्राह्महीने ।  
मौज्या ऊर्ध्वं गणेशं गिरमपि विधिवत्पूजायित्वाऽऽरभेत ॥ १८ ॥

श्लोकार्थ—ब्रह्मचान्याला घात करणारे इतके आहेत कीं, इष्ट लग्नीं चंद्र आणि पापग्रह षष्ठस्थानीं शुक्र आणि लग्नपति, द्वादशस्थानीं शुक्र व अष्टमस्थानीं सर्वोपैकीं कोणतेही ग्रह असले तर घातक आहेत आतां ह्या

अशा दुष्ट लग्नांवांचून दुसरें लग्न न मिळेल तरी लग्नीं रवि असेल तर तो शुभ जाणावा. कित्येकांचे मतानें लग्नीं वृषभांचा ह्य० उर्वाचा चंद्र शुभकारक आहे. उपनयन झाल्यावर विचारंभ करावयाचा तो स्थिरलग्न, चरलग्न, आणि उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी ह्यांशिवाय व्रतबंधाच्या नक्षत्र तिथि इत्यादिकांवर गणपति व सरस्वति ह्यांची यथाविधि पूजा करून विचारंभ ह्मणजे वेदाचा आरंभ करावा ॥ १८ ॥

अथ लग्नभंगानाह-चंद्र इति । चंद्रकूराः क्रूरग्रहाः विलग्नौ शशिसिततनुपाः पष्टे गेहे शशी चंद्रः सितः शुक्रः तनुपो लग्नपः षष्ठ्येहे सितः शुक्रः अंत्ये द्वादशस्थाने शेषं सुगमं सर्वे रंघे अष्टमस्थाने एते प्रत्येकं बटुग्राः बटुमारका भवन्ति किंच कचित् अन्यलग्नाभावे तनुगः लग्नगः इनः रविः श्रेष्ठः । उक्तं च मौजीपटले । शुभदो बलवान् भानुर्लग्नगो दशमस्तथा । सर्वशाखाधिपो यस्मात्सर्वेषां व्रतबंधने ॥ सर्वशाखाधिपो भानुः केचिदूचुर्महर्षयः । तस्माद्गत्यंतराभावे लग्नस्थोर्कः प्रशस्यते ॥ उच्चैदुरेक इति एके मुनयः उच्चैदुः उच्चस्थश्चंद्रः तनुगश्च श्रेष्ठ इति वदन्ति । तद्वाक्यं । चंद्रोदयेऽभिशास्तः स्यात्क्षयरोगी सितेतर । सितपक्षे भवेद्यज्ञा स्वभे तुंगे विशेषतः इति । अस्यार्थः सितेतरं कृष्णपक्षे चंद्रोदये चंद्रयुक्ते लग्ने सति व्रती अभिशास्तः स्यात् क्षयरोगी च स्यात् । अभिशास्तो नाम मिथ्याभिशास्तः मिथ्याभिशांसी अनेनेदं पातकं कृतमिति यं लोका मिथ्या वदन्ति सोऽभिशास्तः क्षयरोगी स्यादिति कृष्णपक्षे लग्नस्थे चंद्रफलमुक्तं सितपक्षे भवेद्यज्ञेति वाक्यं स्पष्टं । अयं श्लोकः पुनःसंस्कारविषय इति भाति यतः कृष्णपक्षे व्रतबंधे चंद्रस्य फलमुक्तं तस्य दिवा असंभवात् पुनःसंस्कारार्हस्य तु कर्मलोपमयात् । रात्रावपि संस्कारो विहितो नान्यस्य प्रथमव्रतबंधस्तु सर्वग्रंथकारैर्दिवैव पूर्वाह्णे विहितो न रात्रौ अतः कारणादिदं वचनं पुनःसंस्कारविषयं प्रतिभाति पुनः संस्कारनिमित्तानि रासभारोहणादीनि धर्मशास्त्रप्रसिद्धानि । तादृशं वाक्यं रत्नमालायां । त्रिपटुखगोऽर्कस्त्रिधनास्तकर्मगश्चंद्रस्त्रिषष्टः शनिराहुभौमाः । सर्वे च लाभे द्वित्रिकोणकेंद्रगाः शुभाशुभाः स्युर्व्रतबंधकाल इति ॥ अत्र तृतीयस्य षष्ठस्य सूर्यस्य रात्रिगते लग्ने संभवः नारदेन तु लग्नस्थचंद्रो निर्दिष्ट एव तद्वाक्यमेवं । स्वोच्चसंस्थोऽपि शीतांशुर्व्रतितो यदि लग्नगः । तं करोति शिशुं निःस्वं सततं क्षयरोगिणमिति-अन्यलग्नबलं पूर्ववत् । अथ विचारंभं वृत्तार्धेनाऽऽह-विद्यां मौज्युक्तकाल इति । मौज्या ऊर्ध्वं मौज्युक्तकाले विद्यामारभेत मौज्युक्तः स चासौ कालश्च तस्मिन् विद्यां वेदं आरभेत मौज्या ऊर्ध्वमित्यनेन मौज्याः प्रागनधिकारः सूचितः । किं कृत्वा गणेशं गिरमपि सरस्वतीमपि विधिवद्विध्युक्तमार्गेण पूजयित्वा कथंभुते मौज्युक्तकाले स्थिरचरहरिज्युत्तरब्राह्मणेन स्थिरचरहरिजं स्थिरलग्नं चरलग्नं तिसृणामुत्तराणां समाहारख्युत्तरं ब्राह्मं रोहिणी एभिर्हीनं रहिते मौज्यर्थमेतानि गृहीतानि विचारंभेऽप्राह्याणीत्यर्थः । जाड्यं स्थिरे द्रव्यं लग्ने सुविद्याप्तिश्चरे भ्रम इति श्रवणात् ॥ १८ ॥

टीका-आतां लग्नाचे घातक कोण आहेत ते सांगतो-लग्नस्थानी चंद्र आणि पापग्रह, षष्ठस्थानी चंद्र, शुक्र, लग्नपति, वाराचे स्थानी शुक्र, हे घात करणारे आहेत आणि अष्टमस्थानी हे प्रत्येक ग्रह बटूला मारक आहेत. कदाचित् ह्या शिवाय दुसरें नाहींच मिळालें तर ज्या लग्नीं रवि असेल ते लग्न ध्यावें. हें श्रेष्ठ आहे. मौजीपटलांत सांगितलें आहे कीं, लग्नीं असलेला भानु हा बलवान् असून शुभ देणारा आहे. तसाच दशमस्थानाचाही आहे. कारण तो रवि सर्व शाखांचा अधिपति आहे ह्मणून सर्वांना व्रतबंधनाविषयी श्रेष्ठ आहे. कित्येक महर्षींचे असे मत आहे कीं, रवि हा सर्व शाखांचा अधिपति आहे ह्मणून दुसरा कांहीं उपाय नसेल तर लग्नीं रवि असेल तर तो प्रशस्त आहे. कांहीं मुनींचे मत आहे कीं, उर्वाचा चंद्र ह्मणजे वृषभेचा आणि लग्नीं चंद्र प्रशस्त आहे. ते वाक्य असें कीं, कृष्णपक्षांतील चंद्रमाच्या उदयीं चंद्र युक्त लग्न असेल तर तो ब्रह्मचारी मिथ्याभिशांसी ह्मणजे ह्यानें हें पाप केले अशा रीतीनें ज्याला लोक ह्मणतात तसा होईल. आणि क्षयरोगी होईल. शुक्लपक्षांतील चंद्र लग्नीं असला तर बटु यज्ञ करणारा होईल. तो चंद्र आपल्या राशीवर व उर्वा असेल तर विशेषें करून फारच श्रेष्ठ गुणवान् तो बटु होईल. हा श्लोक पुनःसंस्कार विषयक आहे असें वाटते, कारण कृष्णपक्षांतील व्रतबंधाबद्दल चंद्राचें फल सांगितलें तसा चंद्र दिवसास तर भिळणार नाहीं. पुनःसंस्कारास जो योग्य असतो त्याचा संस्कार रात्रीही होतो. कारण त्याचे कर्माचा लोप असतो ह्यास्तव त्याला रात्रीही संस्कार करण्यास सांगितलें आहे. दुसऱ्या कोणाचा संस्कार रात्रीस होत नाहीं. प्रथम व्रतबंध संस्कार तर सर्व ग्रंथकारांनीं दिवसास पूर्वाह्ण काळीं सांगितला आहे. रात्रीस सांगितला नाहीं ह्या कारणास्तव हें वचन पुनःसंस्कार विषयक आहे असें मला वाटते. पुनः संस्कार करण्याचीं कारणे गणनावर बसणें इत्यादिक धर्मे शास्त्रांत प्रसिद्ध आहेत, तसेच वाक्य रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलें आहे

कीं, ३-६-१० ह्या स्थानचा रवि ३-२-१०-९ ह्या स्थानचा चंद्र ३-६ ह्या स्थानचे शनि, राहु आणि मंगळ आणि ११-२-५-९-१-४-७-१० ह्या स्थानीं असलेले सर्वच ग्रह व्रतबंध करणाऱ्याकरितां शुभ व अशुभ आहेत असें समजावें. ह्यांत तिसरा आणि सहावा रवि हा रात्रीस असलेल्या लग्नाचाच संभवतो. नारदानें सांगितलें आहे कीं, लग्नाचा चंद्र निंदितच आहे. त्याचें वाक्य असें आहे कीं, चंद्रमा आपल्या उच्चस्थानीं जरी आहे तरी तो जर लग्नां असेल तर त्या शिशूला दारिद्र्य, आणि नेहेमी रोगी असा करतो. बाकीच्या लग्नाचें बल पूर्वीप्रमाणें जाणावें. आतां विद्यारंभ ह्मणजे वेदविद्येचा आरंभ अर्थां वृत्तांतें सांगतो—मौजी बंधनाचा जो काळ ह्मणजे तिथ्यादि त्याच काळावर विद्येचा आरंभ करावा. मौजीबंधन झाल्यावर विद्यारंभ असें ह्मटल्यामुळे मौजी बंधनाचे पूर्वी विद्यारंभास अधिकार नाही असें सुचविलें जातें. विद्यारंभाचे पूर्वी श्रीगणपतीचें, सरस्वतीचें यथाविधीनें पूजन करावें. तो विद्यारंभाचा काळ घेतानां त्यावेळीं स्थिर लग्ने, चर लग्ने, उत्तरात्रय ह्म० उत्तराफल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी इतकीं नक्षत्रें वज्र करवीत. ह्या शिवाय बाकीचीं व्रतबंधांचीं सर्व नक्षत्रें तिथि इत्यादिक जें सर्व काहीं सांगितलें आहे तें विद्यारंभाकरितां घ्यावें. स्थिर लग्न असेल तर विद्या शिकतानां जडत्व येतें. चर असेल तर उत्तम विद्या प्राप्ति होते. जर चर लग्न असेल तर श्रम होतो. असें वचनावरून ऐकण्यांत येत आहे ॥ १८ ॥

केशांत, समावर्तन व छूरिकाबंध.

केशांत चौलवत्स्यानृपमितशरदीत्याहुरार्या व्रतोक्ते ।

काले मौजीविमोक्षं गुरुबलमनयोर्नावलोक्यं सुधीभिः ॥

शूद्राणां मौज्यभावात्तदुदिततिथिभेऽनस्तभौमेज्यशुकैः ।

व्यारे वारे लवे मास्युपयमविहिते छूरिकाबंधमाहुः ॥ १९ ॥

॥ इति मुहूर्तमार्तंडे गर्भाधानादिसंस्कारप्रकरणम् ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ—जन्मापासून सोळाव्या वर्षी जो चौलास मुहूर्त सांगितला आहे त्याच मुहूर्तावर केशांत नावाचा संस्कार करावा आणि त्यानंतर उपनयनाच्या मुहूर्तावर समावर्तन (सोडमुंज) हा संस्कार करावा असें श्रेष्ठ लोक ह्मणतात. ह्या दोहोंला गुरुबल नको शूद्राला मौजीबंधन नाही ह्मणून उपनयनाच्या तिथि, नक्षत्रादिकांवर मंगळ, गुरु, शुक्र, ह्यांचें अस्त असतां, मंगळवाराशिवाय दुसऱ्या वारी आणि नवांशावर विवाहाच्या मासांत शूद्राच्या कवेरस छूरिकाबंध सांगितला आहे ॥ १९ ॥ इति संस्कारप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ केशांतमौजीविमोक्षं च वृत्तार्धेनाऽऽह—केशांतमिति । तदुक्तं मनुना । केशांतः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबंधोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वाधिके तत इति ॥ केशांतं कर्म नृपमितशरदि षोडशे वर्षे चौलवत्स्यादित्यार्या आहुः सर्वं चौलोकुतमत्र ग्राह्यमित्यर्थः । व्रतोक्ते काले मौजीविमोक्षमाहुः । स्पष्टं । अनयोः केशांतमौजीविमोक्षयोः गुरुबलं सुधीभिर्नावलोक्यं । अथ शूद्राणां मौज्यभावाच्छूरिकाबंधं वृत्तार्धेनाऽऽह—शूद्राणां मौज्यभावात्तदुदिततिथिभे मौज्युक्ततिथिनक्षत्रे अनस्तभौमेज्यशुकैः उदितैः भौमगुरुशुकैः व्यारे वारे आरो भौमः तद्रहितवारे लवे नवांशे यत्र कुत्रापि लग्ने भौमनवांशवर्जित इत्यर्थः । उपयमविहिते मासि विवाहोक्तमासे विवाहोपयमौ समावित्यमरः । छूरिकाबंधं कटिप्रदेशे छूरिकाबंधनमाहुः । तथाच संग्रहे । शूद्राणां राजपुत्राणां मौज्यभावेऽस्त्रबंधनं । मौजीबंधोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना । नारदः । छूरिकाबंधनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ॥ जीवे शुके च भूपुत्रे चंद्रताराबलान्विते । मौजीबंधक्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ तेषां नवांशके कर्तुरष्टमोदयवर्जिते शुद्धेऽष्टमे विधौ लग्नषडष्टांत्यविवर्जिते ॥ धनत्रिकोणकेंद्रस्थैः शुभैरुयायारिगैः परैः । छूरिकाबंधनं कार्यमर्चयित्वा सुरान्पितृन् ॥ अर्चयेच्छूरिकां सभ्यं देवतानां च सन्निधौ । ततः सुलझे बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुतां ॥ तस्यास्तु लक्षणं वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । संमितं छूरिकायामं विस्तारेणैव ताडयेत् ॥ आजितं गजसंख्यैश्च अंगुलान्पारकल्पयेत् । शेषं चैव फलं वक्ष्ये ध्वजाये धनवान् भवेत् ॥ धूमाये मरणं सिंह जयः श्वायेऽतिरोगिता ॥ धनलाभो वृषेऽन्यंतं दुःखी भवति गर्दभे । गजायेऽन्यंतं संप्रीतिर्ध्वान्ने वित्तविनाशनमिति ॥ सर्वत्र त्याज्यप्रकर-

णोक्तं विलोक्यं । अस्मिन्प्रकरणे कर्णवेधवृत्तं विना सर्वाणि स्रग्धरावृत्तानि ॥ १९ ॥ ॥ इति स्वोक्त-  
मुहूर्तमार्तडटीकायां मार्तडवल्लभायां गर्भादानादिसंस्कारप्रकरणम् ॥ ३ ॥

टीकार्थ—केशांत संस्कार आणि मौजी मोक्ष ( सोडभुंज ) हे संस्कार अर्ध्या वृत्तानें सांगतो— तोच अर्थ मनूनें सांगितला आहे कीं, सोळावे वर्षी केशांत संस्कार ब्राह्मणाला सांगितला. क्षत्रियांना बावीसावे वर्षी आणि वैश्यांना त्याहून दोन अधिक ह्मणजे चौवीसावे वर्षी सांगितला आहे. जसें चौल कर्म असतें तसेंच एक कर्म सोळावे वर्षी करावें असें विद्वान् लोक सांगतात. चौलास जें जें सांगितलें आहे. तें सर्व ह्या केशांतविषयीं समजावें. मौजी वृत्ताला जें सांगितलें आहे तें सर्व मौजी मोक्ष ह्मणजे सोडभुंजीलाही समजावें. केशांत आणि मौजी मोक्ष ह्याबद्दल गुरुबल पाहूं नये असें विद्वानांचें मत आहे. आतां शूद्रांना मौजी नाही ह्मणून छुरिका बांधावी हें अर्ध्या वृत्तानें सांगितो—शूद्रांना मौजी नसल्याकारणानें मौजीला सांगितलेल्या लग्नावर, तिथीवर, मंगळ, शुक्र आणि गुरु ह्यांचा अस्त नसेल अशा वेळीं मंगळवार नसतांना नवांशावर कोणत्या तरी लग्नावर मात्र मंगळचा नवांश नसावा अशा वेळीं विवाहास सांगितलेल्या महिन्यामध्ये छुरिका कंबरेस बांधावी असें सांगितलें आहे. तेंच सार संप्रदांत सांगितलें आहे कीं, राजाचे पुत्र असून ब्रह्म असतील तर त्यांना मौजीबंधन नसल्याकारणानें अन्न ह्मणजे छुरिका बांधावी. तो बांधण्याचा काळ ह्मणजे मौजी बंधनाचा जो काळ तोच-काळ समजावा. नारद असें सांगतात कीं, राजानां विवाह होण्याच्या पूर्वी कंबरेस छुरिका ह्मणजे लहान तरवार बांधावी असें मी सांगेन तें बंधन विवाहास सांगितलेल्या महिन्यातच आहे शुक्लपक्षी, शुक्र, गुरु आणि मंगळ ह्यांचा अस्त नसावा. चंद्राचें व ग्रहांचें बल असावें, मौजी बंधनाच्या तिथि, नक्षत्रें वगैरे असावीत. मंगळवार मात्र वज्र्य करावा. त्यांचा शुक्र व गुरु आणि मंगळचा नवांश असावा. अष्टमस्थानी मंगळादिकांचा उदय नसावा. शुद्ध अष्टमाच्या विधीवर लग्नीं, षष्ठ्यानीं, अष्टमस्थानीं, द्वादशस्थानीं ते पूर्वीचे तीन ग्रह नसावेत. २-५-९-१-४-७-१० इतक्या स्थानीं शुभ ग्रह असावेत आणि ३-६-११ ह्या स्थानीं पापग्रह असावेत. अशा वेळीं देव आणि पितर ह्यांची पूजा करून मग छुरिका बंधन करावें. त्या वेळीं छुरिकेचें उत्तम रीतीनें दुसऱ्या देवतांच्या जवळ पूजन करावें. नंतर उत्तम लग्नावर सुलक्षण युक्त अशी ती लहानशी तरवार कंबरेस बांधावी. त्या तरवारीचें लक्षण जें पूर्वी ब्रह्मदेवानें सांगितलें आहे तें सांगेन. छुरिकेचीं जेवढीं अंगुळें लांबी असेल आणि जेवढीं अंगुळें रुंदी असेल त्या लांबी रुंदीचा गुणाकार करावा आणि त्याला आठानीं भागावें. आतां आठानीं भागावयाचें कारण कीं एकंदर आठ आय आहेत ते असे कीं, १ ध्वजाय २ धूमाय ३ सिंहाय ४ श्वाय ५ वृषाय ६ गर्दभाय ७ गजाय ८ ध्वांशाय असे आठ आय आहेत. जर गुणाकाराला ८ नीं भागून बाकी १ राहिला तर ध्वजाय समजून त्याचें फळ धनवान् होईल. २ राहिले तर धूमाय समजून त्याचें फळ मरण होईल. ३ राहिले तर सिंहाय समजून त्याचें फळ जय होईल. ४ राहिले तर श्वाय समजून त्याचें फळ अतिरोग होईल. ५ राहिले तर वृषाय समजून त्याचें फळ श्रम लाभ होईल. ६ राहिले तर गर्दभाय समजून त्याचें फळ दुःखी होईल. ७ राहिले तर गजाय समजून त्याचें फळ उत्तम प्रीति होईल. ८ राहिले तर ध्वांशाय समजून त्याचें फळ वित्ताचा नाश होईल ॥ १९ ॥

॥ इति संस्कार प्रकरण ॥

## ॥ अथ विवाहप्रकरणम् ॥ ४ ॥

घटित वर्णविचार.

शुद्धां गोत्रकुलादिभिर्गुणयुतां कांतां वरश्चोद्वहेत् ।  
वर्णो वश्यभयोनिसेचरगणाः कूटं च नाडी क्रमात् ॥  
वर्णाद्या बलिनो यथोत्तरमहीदूर्ध्वं गुणैक्यं शुभम् ।  
वर्णा विप्रमुखा श्लषादिह वरो वर्णोत्तमः स्याच्छुभः ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—गोत्र, कुल, शील इत्यादिकांनीं उत्तम गुणवती व रूपानें सुंदर असलेल्या अशा कन्येबरोबर वरानें विवाह करावा. वरवरी गोत्रादिक उत्तम गुणवान् असून सुंदर असावा. वर्ण, वश्य, नक्षत्र, योनि, ग्रह, गण, कूट, नाडी असे हे आठ घटित होण्याचे प्रकार आहेत. त्यांचे वर्णापासून तों नाडीपर्यंत एक दोन तीन

वगैरे वाढते गुण असतात. सर्व मिळून गुण ३६ छत्तीस आहेत त्यांचे अर्धे ह्ये १८ अठरा गुण आहेत. त्यापेक्षा अधिक गुण असले ह्मणजे ते घटित शुभ जाणावे. पूर्ण ३६ येतील तर फारच उत्तम. मीनापासून ते मिथुनपर्यंतच्या चार राशि ह्ये ० मीन, मेष, वृषभ, मिथुन, हे चार क्रमाने मीन ह्मणजे ब्राह्मण, मेष-क्षत्रिय, वृषभ-वैश्य, मिथुन-शूद्र, असे आहेत. असाच क्रम पुढच्या आठ राशिबद्दल जाणावा. वधूपेक्षा वराचा वर्ण श्रेष्ठ असावा हे शुभ आहे ॥ १ ॥

अथ विवाहप्रकरणं विवक्षुस्तावत् घटितगुणविचारं द्वादशभिर्वृत्तैराऽऽह । अतः परमत्र ग्रंथे सर्वाणि शार्दूलविक्रीडितानि । वरः गोत्रकुलादिभिः शुद्धां कांतां कमनीयां कन्यां उद्वहेत् चकाराद्वरोऽपि एवंविधो भाव्यः । गोत्रशुद्धिग्रंथांतराज्ज्ञातव्या कुलमपि पंचसप्तनिर्णयमपि एतद्वयं ग्रंथांतरात् ज्ञात्वा अन्यदत्रावलोकयेत् । अथ यथोत्तरं बलिष्ठं घटितक्रममाह-वर्णः इति । वर्णः १ वश्यं २ भं ३ योनिः ४ खेचरः ५ गणः ६ कूटं ७ नाडी ८ क्रमाद्यथोत्तरं बलिनः स्युः । अर्हद्दूर्ध्वं अष्टादशाधिकं गुणैक्यं यथोत्तरं शुभं स्यात् । तत्राऽऽदौ वर्णलक्षणमाह । श्वात् मीनात्सकाशात् विप्रमुखाः ब्राह्मणादयो वर्णाः पुनर्गणनया ज्ञेयाः तद्यथा । मीनो ब्राह्मणः मेषः क्षत्रियः वृषो वैश्यः मिथुनः शूद्रः पुनः कर्को ब्राह्मणः सिंहः क्षत्रिय इत्यादि । इहास्मिन् राशिमेलने वर्णात्तमो वरः शुभः स्यात् नान्यथेत्यर्थात्सिद्धम् ॥ १ ॥

टीका—विवाहप्रकरण सांगण्याच्या इच्छेने अगोदर घटिताचे गुणांचा विचार बारा वृत्तांनी सांगतो—ह्यापुढे ह्या ग्रंथांत सर्वच शार्दूलविक्रीडितवृत्ते आहेत. वराने गोत्र, कुल इत्यादिकांनी शुद्ध अशी रमणीय सुंदर स्त्रीबरोबर विवाह करावा. श्लोकांतच असे अव्यय आहे ह्मणून वरही गोत्रादिकांनी शुद्ध असून सुंदर असावी. गोत्र शुद्ध आहे किंवा कसे हे दुसऱ्या ग्रंथापासून जाणून घ्यावे आणि कुलही, ही पांचवी आहे किंवा सातवी आहे वगैरे विचार दुसऱ्या धर्मशास्त्राच्या ग्रंथापासून जाणावा. आतां एकापेक्षा एक अधिक आहे असा घटिताचा क्रम सांगतो—वर्ण १ वश्य २ भं ३ योनि ४ खेचर ५ गण ६ कूट ७ नाडी ८ अशा क्रमाने एकापेक्षा एकाने अधिक असे गुण आहेत. ह्मणजे वर्णाचा १ गुण, वश्याचे २ गुण, भावे ह्ये ० नक्षत्राचे ३ गुण असा क्रम जाणावा. अहि ह्ये ० ८ आणि इंदु ह्ये १ मिळून अंकाची गति उलटी असते ह्या रीतीने १८ गुणांपेक्षा अधिक गुण आले तर शुभ आहे, त्यापेक्षा अधिक गुण असले तर जसे जसे अधिक गुण असतील तसतसे अधिक शुभ जाणावे. अगोदर वर्णांचे लक्षण सांगतो—ते असे की, मीनापासून ब्राह्मणाचा क्रम समजावा. जसे मीन-ब्राह्मण, मेष-क्षत्रिय, वृषभ-वैश्य, मिथुन-शूद्र, पुनः कर्क-ब्राह्मण, सिंह-क्षत्रिय, कन्या-वैश्य, तूळ-शूद्र, वृश्चिक-ब्राह्मण, धन-क्षत्रिय, मकर-वैश्य, कुंभ-शूद्र अशा रीतीने गणना करतांना जो उत्तम वर्णाचा वर असतो तो शुभ समजावा. तसे नसेल तर शुभ समजू नये ॥ १ ॥

वश्य, नक्षत्र, योनि.

नुर्भक्ष्या जलजा वशा विहरयो वश्या विकौर्प्या हरेः ।

अस्यालिर्न शुभो नुरब्जहरयो नेष्टाः स्युरन्यज्जनात् ॥

मे गण्येऽकहते मिथद्वयगशराः शेषं न सच्चाश्विभात् ।

अश्वेभाव्यहिभोगिनः श्ववृकमुद्गमेपाश्वुमुद्ग्युंदुराः ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—जलचर राशीही सर्व मनुष्यांना भक्ष्य आहे आणि सिंहाशिवाय बाकीचे सर्व वश्य ह्मणजे स्वाधीन आहेत. सिंह राशीला वृश्चिकाशिवाय सर्व राशी वश्य आहेत, एक वृश्चिक राशी मात्र शुभ नाही. मनुष्यराशीला जलचरराशि आणि सिंह हे अनिष्ट आहेत. ह्याशिवाय आणखी वश्याचा विचार लोकव्यवहाराने करावा. तो असा की, मनुष्यराशीला चतुष्पदराशि वश्य आहेत. परंतु यवनादिकांला भक्ष्य आहेत. वराचे नक्षत्रापासून वधूचें नक्षत्र आणि वधूच्या नक्षत्रापासून वराचें नक्षत्र मोजावे नेतर त्या आलेल्या दोन संख्येला ९ नी भागून ३-७-५ बाकी रहातील तर ते नक्षत्र अशुभ जाणावे. पुढे लिहिलेल्या. अश्विन्यादि नक्षत्राच्या योनि जाणाव्या ॥ २ ॥



अथ वृत्तार्थेन वक्ष्यमाह-नुर्मक्ष्या इति । नुः नुराशेः मनुष्यराशेः जलजा जलचरा भक्ष्याः तस्यैव विहरयाः सर्वे वक्ष्याः विगतः हरिः सिंहो येभ्यस्ते विहरयः सिंहरहिताः सर्वे वक्ष्या इत्यर्थः । हरेः सिंहस्य विकौर्प्याः वक्ष्याः कौर्प्यो वृश्चिकः विगतः येभ्यस्ते विकौर्प्याः सिंहस्य वृश्चिकरहिताः सर्वे राशयो वक्ष्याः अथानंतरोक्तस्य हरेः अलिर्वृश्चिको न शुभः वैरीत्यर्थः । नुः मनुष्यराशेः अजहरयः नेष्टाः स्युः अज्जा जलजा हरिः सिंह एते नेष्टा मेलनं न कर्तव्यमित्यर्थः । अन्यज्जात अन्यत् वक्ष्यभक्ष्यादिकं जनाज्ज्ञेयं तद्यथा नुः पुरुषस्य गौर्वक्ष्या भवति अत्र परस्परं मित्रत्वं दृश्यते तस्माद्वयोर्मेलनं शुभं स्यात् । इदमेव म्लेच्छजातीयवधूवरयोर्न शुभं म्लेच्छानां गौर्मक्ष्यं इत्येवं लोकप्रचारतो विचारणीयमित्यर्थः । राशिस्वरूपं बृहज्जातकवशादवगंतव्यं । बृहज्जातके । मत्स्यौ घटी नृमिश्रुनं सगदं सवीणं चापी नरो श्वजघनो मकरो मृगास्यः । तौलीससस्यदहना पुवगा च कन्या शेषाः स्वनामसदृशाः खचराश्च सर्वे ॥ अथ भयोनी द्वावपि वृत्तेनैकेनाऽऽह-भे गण्य इति । मिथः परस्परं वधूवरयोर्भे नक्षत्रे वधूनक्षत्राद्वरनक्षत्रं गण्यं वरनक्षत्रात्कन्यानक्षत्रं गण्यं उभे अपि नवभिर्भाजिते कार्ये शेषं त्र्यगशराः त्रिसप्तपंच भवन्ति तदा न सत्स्यात् । अथ योनिमाह-अश्विमादिति । अश्विमात्सकाशात् भानां नक्षत्राणां अश्वदयो योनयो भवन्ति । अश्वऽश्विन्याः । इमो भरण्याः । अविमेषः कृत्तिकायाः । अहिः सर्पो रोहिण्याः । भोगी सर्पो मृगस्य । श्वा श्वान आर्द्रायाः । वृकं उंदुरं भुनक्तीति वृक्भुक् मार्जारः पुनर्वसोः । मेषः प्रसिद्धः पुष्यस्य । आशुभुक् मार्जार आश्लेषायाः । द्रुमुंदुरौ द्वौ उंदुरौ मघापूर्वाफाल्गुन्योः ॥ २ ॥

टीका—आतां अर्था वृत्तानं वक्ष्य सांगतो-मनुष्यराशीला जलचर राशि भक्ष्य असून वक्ष्यही आहेत. मात्र सिंह हा वक्ष्य नाही. सिंहराशीला वृश्चिकाशिवाय सर्व राशि वक्ष्य आहेत. आतांच जवळ सांगितलेल्या सिंह राशीला वृश्चिक राशी शुभ नाही अर्थात वैरी आहे. मनुष्यराशीला अज्जा ह्यं जलचर आणि सिंह हे शुभ नाहीत. अर्थात त्याचरोबर मेलन करूं नये. ह्याशिवाय भक्ष्य, वक्ष्य ह्यांचा विचार लोकव्यवहारानं करावा. तो असा-मनुष्याला वृषभ वक्ष्य आहे ह्याविषयी परस्पर मित्रत्व आहे. ह्याणून दोघांचें मेलन करणें शुभ आहे. हेच मेलन म्लेच्छ ह्याणजे यवनजातीचांचें शुभ नाही. कारण म्लेच्छाची गाय हें भक्ष्य आहे. असा प्रकार पाहून भक्ष्य वक्ष्याचा विचार लोकावरून जाणावा. राशीचें स्वरूप बृहज्जातक अंशावरून जाणावें तें असें कीं, मीन राशि ही दोन माशाचें युग्म आहे, कुंभ राशि ही मस्तकावर घडा घेतलेला आहे, मिथुन ह्यं स्त्रीपुरुषाचें जोडपें आहे, त्याच्या हातांत रोग आणि वाणा आहे, धनु राशि हा धनु धारण केलेला आहे, मकर राशि हा मृगासारख्या तोंडाचा आहे, तूळ राशि तागडी घेतलेला आहे, कन्या राशि ही एक स्त्री होडीत बसलेली आणि धान्य अन्नांत शेकणारी आहे, बाकीच्या राशी आपापल्या नांवाप्रमाणें जाणाव्या. आतां नक्षत्रें आणि योनी ह्या एका वृत्तानें सांगतो-वधू आणि वर ह्यं दोघांचीं नक्षत्रें गणावयाचीं तीं अशीं कीं, वधूचें नक्षत्रापासून वराचें नक्षत्र कितवें आहे तें गणावें. ती एकसंख्या, आणि वराचें नक्षत्रापासून वधूचें नक्षत्र कितवें आहे तें गणावें ती एकसंख्या मिळून ज्या दोन संख्या आल्या असतील त्याला नऊनं भागावें बाकी शेष ३-७-५ हे उरले तर तें शुभ नाही असें समजावें. आतां योनि सांगतो-अश्विनी नक्षत्रापासून रेवती नक्षत्रापर्यंत जीं सर्व नक्षत्रें आहेत त्यांच्या अशा योनि आहेत कीं, १ अश्विनीचा-अश्व, २ भरणीचा हत्ती, ३ कृत्तिकाचा मेष, ४ रोहिणीचा सर्प, ५ मृगाचा सर्प, ६ आर्द्राचा श्वान, ७ पुनर्वसूचा मांजर, ८ पुष्याचा मेष, ९ आश्लेषाचा मांजर, १० मघेचा उंदीर, ११ पूर्वाचा उंदीर, बाकीच्या नक्षत्रांच्या योनी पुढल्या श्लोकाच्या ठीकेंत सांगावयाच्या आहेत ॥ २ ॥

गौः काली पशुभुङ्महिष्यथ पशुद्विट् द्वौ मृगौ श्वा कपिः ।

द्वौ बभ्रू कर्पिसिंहवाजिहरिगोनागाः क्रमाद्योनयः ॥

सिंहं महिषाश्वमोतुखनकं श्वेणं च कीशाविगो ।

व्याघ्रं बभ्रुफणीति भीरुवरयोः प्रेष्येशयोश्च त्यजेत् ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ—सिंह हत्ती; महिषी अश्व; मांजर उंदीर; श्वान हरिण; वानर मेष; गौ व्याघ्र; मुंगूस सर्प; ह्या जोडप्या जोडप्याचें वैर आहे; ह्यावरून वधूवराच्या व स्वामीसेवकांच्या योनीचें वैर असतां तें वर्ज्य करावें ॥ ३ ॥

गौरुत्तराफाल्गुन्याः काली महिषी हस्तस्य । पशुभुक् व्याघ्रश्चित्रायाः । महिषी स्वात्याः । पशु-  
द्विद् व्याघ्रः विशाखायाः द्वौ मृगौ अनुराधाज्येष्ठयोः । श्वा मूलस्य । कपिवानरः पूर्वाषाढायाः । द्वौ  
बभ्रू उत्तराषाढाऽभिजितोः बभ्रू नकुलौ । कपिवानरः श्रवणस्य । सिंहो धनिष्ठायाः । वाजी अश्वः  
शततारकायाः । हरिः सिंहः पूर्वाभाद्रपदायाः । गौः उत्तराभाद्रपदायाः नागो हस्ती रेवत्याः । इति  
योनिमभिधाय योनिवैरमाह-सिंहमिति । सिंहश्च इमश्च सिंहभं सिंहगजं । महिषाश्वं । ओतु-  
खनकं मार्जारौदुरं । श्वेणं श्वानमृगं । कीशावि वानरमेषं । गोव्याघ्रौ बभ्रूफणी नकुलसर्पं । इति वैरं  
भीरुवरयोः बभ्रूवरयोः प्रेक्ष्येशयोः प्रेक्ष्यः सेवकः ईशः स्वामी एतयोश्च त्यजेत् वर्जयेत् ॥ ३ ॥

टीका—१२ उत्तराफाल्गुनीची गो, १३ हस्ताची महिषी, १४ चित्रेचा व्याघ्र, १५ स्वातीची महिषी, १६ विशा-  
खेचा व्याघ्र, १७ अनुराधेचा मृग, १८ ज्येष्ठेचा मृग, १९ मूलचा श्वान, २० पूर्वाषाढेचा वानर, २१ उत्तराषाढेचा  
मुंगुस, २२ अभिजिताचा मुंगुस, २३ श्रवणाचा वानर, २४ धनिष्ठेचा सिंह, २५ शततारकेचा घोडा, २६ पूर्वाभाद्रपदेचा  
सिंह, २७ उत्तराभाद्रपदेचा सिंह, २८ रेवतीचा हत्ती. अशा अष्टावोस नक्षत्रांच्या योनी सांगून त्यांचे परस्परांचे वैर सांगतो—  
सिंह आणि हत्ती ह्यांचे वैर, रेडा आणि घोडा ह्यांचे वैर, मांजर आणि उंदीर ह्यांचे वैर, कुत्रा आणि हरिण ह्यांचे वैर,  
वानर आणि मेष ह्यांचे वैर, गाय आणि वाघ ह्यांचे वैर, मुंगुस आणि साप ह्यांचे वैर, अशा शीतीने बभ्रू आणि वर  
ह्यांचे, मालक आणि चाकर ह्यांचे परस्पर वैर असेल तर ते सोडून द्यावे ॥ ३

वाश्विनी—अश्व.  
भरणी—हस्ती.  
कृत्तिका—मेष.  
रोहिणी—सर्प.  
मृग—सर्प.  
आर्द्रा—श्वान.  
पुनर्वसु—मार्जार.

पुष्य—मेष.  
आश्लेषा—मार्जार.  
मघा—उंदीर.  
पूर्वा—उंदीर.  
उत्तरा—गो.  
हस्त—महिषी.  
चित्रा—व्याघ्र.

स्वाती—महिषी.  
विशाखा—व्याघ्र.  
अनुराधा—मृग.  
ज्येष्ठा—मृग.  
मूल—श्वान.  
पूर्वाषाढा—वानर.  
उत्तराषाढा—मुंगुस.

अभिजित—मुंगुस.  
श्रवण—वानर.  
धनिष्ठा—सिंह.  
शततारका—अश्व.  
पूर्वाभाद्रपदा—सिंह.  
उत्तराभाद्रपदा—गो.  
रेवती—हस्ती.

राशी स्वामी आणि मित्र, शत्रु ग्रह.

भेशा मंशुबुचंरब्रुमगुशाः शोगुः क्रियात्सू रवे- ।  
मित्राणीज्य कुजेंदवः शनिसितौ शत्रू विधोर्नो रिपुः ॥  
मित्रे सूर्यबुधौ कुजस्य विदरिः सूर्येदुजीवा हिता ।  
ज्ञस्यार्कास्फुजितौ हितौ विधुररिः सूरः सितज्ञावरी ॥ ४ ॥  
मित्राण्यर्केकुजेंदवोऽथ भृगुजस्यारी रवींदू हितौ ।  
मंदज्ञौ च शनेः कुजेंदुरवयो नेष्टाः सितज्ञौ हितौ ॥

श्लोकार्थ—पुढल्या कोष्टकांतिल मेषापासून तों मीनपर्यंतच्या बारा राशींचे स्वामी समजावेत जसे मेषाचा  
मं हं मंगळ, वृषभाचा शु हं शुक्र असे समजावे—

|       |     |     |     |     |     |     |     |     |     |    |      |     |
|-------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|------|-----|
| राशि. | मे० | वृ० | मि० | क०  | सि० | क०  | तु० | वृ० | ध०  | म० | कुं० | मी० |
| ग्रह. | मं० | शु० | बु० | चं० | रं० | बु० | शु० | मं० | शु० | श० | श०   | गु० |

मुढील कोष्टकावरून रवि, चंद्र इत्यादि ग्रहांचे मित्र कोण, सम कोण, शत्रु कोण ते जाणावेत, रविचे गुरु,  
मंगळ, चंद्र हे मित्र. शनि, शुक्र हे शत्रु आणि बुध हा सम आहे इत्यादि समजावे ॥ ४ ॥

| ग्रह.  | रवि.        | चंद्र.        | मंगळ.      | बुध.       | गुरु.      | शुक्र.  | शनि.       |
|--------|-------------|---------------|------------|------------|------------|---------|------------|
| मित्र. | गु. मं. चं. | र. बु.        | र. चं. गु. | र. शु.     | र. मं. चं. | श. बु.  | शु. बु.    |
| सम.    | बु.         | मं श. गु. शु. | श. श.      | मं. गु. श. | श.         | मं. गु. | गु.        |
| शत्रु. | श. शु.      | ०             | बु.        | चं.        | शु. बु.    | र. चं.  | मं. चं. र. |

अथ ग्रहाणां वैरावैरं विवक्षुस्तावद्राशिनाथानाह-भेशा इति । क्रियान्मेपात्सकाशात् भानां राशीनामीशा भेशा एते क्रमेण स्युः मं मंगळो मेषस्य शु शुक्रो वृषभस्येत्यादिस्पष्टं । रवेः ईज्यकुजेंदवो मित्राणि ईज्यो गुरुः कुजो भौमः ईदुश्चंद्र एते मित्राणि सुहृदः स्युः । शनिसितो शत्रू शनिः प्रसिद्धः सितः शुक्रः एतौ शत्रुवैरिणौ अर्थादन्ये उदासीनाः । विधोर्नो रिपुः विधोश्चंद्रस्य रिपुर्नास्ति । सूर्यबुधौ मित्रे अन्ये सर्वे उदासीनाः कुजस्य भौमस्य वित् बुधः अरिः सूर्येदुजीवाः हिताः मित्राणि अन्यो समौ । ब्रह्मस्य बुधस्य अर्कास्फुजितौ रविशुक्रौ हितौ मित्रे विधुश्चंद्रः अरिः वैरी अन्ये समाः । मरेः गुरोः सितज्ञो शुक्रबुधौ अरी वैरिणौ ॥ ४ ॥ अर्ककुजेंदवः रविभौमचंद्रा मित्राणि अन्ये समाः । भृगोः जातः भृगुजः तस्य भृगुजस्य शुक्रस्य रविदू सूर्यचंद्रौ शत्रू मंदज्ञौ शनिबुधौ हितौ मित्रे अन्ये समाः । शनेः कुजेंदुरवयः अरयः सितज्ञो मित्रे अन्ये समाः ॥

टीका—आतां ग्रहांचें वैर आणि अवैर हें सांगण्याच्या ईच्छेनं अगोदर राशींचे कोण कोण स्वामी आहेत ते सांगतो—मेषापासून तो मीनपर्यंतचे जे बारा राशी आहेत त्यांचे हे स्वामी क्रमानें आहेत ते असे. मं. मंगळ हा मेषाचा, शु. शुक्र हा वृषभेचा, बु. बुध हा मिथुनेचा चं. चंद्रमा हा कर्केचा स्वामी र. रवि धिहाचा, गु. गुरु कन्येचा, शु. शुक्र तुळेचा, मं. मंगळ वृश्चिकेचा. गु. गुरु धनाचा, श. शनि मकरेचा, श. शनि कुंभेचा, गु. गुरु मीनेचा, राशी बारा पैकीं कर्क राशीचा चंद्र आणि सिंहाराशीचा रवि असे स्वामी झाल्यावर बाकी उरलेल्या दहा राशींचे मंगळ, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, असे पांच ग्रह आहेत, ते प्रत्येक ग्रह दोन दोन राशींचे स्वामी आहेत, जसें मेष आणि वृश्चिकेचा मंगळ, कन्या आणि मिथुनेचा बुध, धन आणि मीनाचा गुरु, वृषभ आणि तुळेचा शुक्र, कंभ आणि मकर ह्यांचा शनि असे स्वामी आहेत. रवीचे मित्र गुरु, मंगळ आणि चंद्र असे तिचे आहेत. शनि आणि शुक्र हे दोघे शत्रू आहेत आणि बुध हा सम आहे. चंद्राचा कोणी शत्रू नाही व त्याचे मित्र सूर्य आणि बुध दोघे आहेत. बाकीचे सर्व सम ह्यं उदासीन असे मंगळ, शनि, गुरु, शुक्र हे आहेत मंगळाचा शत्रू बुध हा आहे, त्याचे मित्र रवि, चंद्र आणि गुरु आहेत, बाकीचे सम ह्यं उदासीन आहेत बुधाचे रवि आणि शुक्र हे मित्र आहेत, त्याचा चंद्र हा शत्रू आहे. बाकीचे सर्व ग्रह उदासीन आहेत. गुरुचे शुक्र आणि बुध हे शत्रू आहेत ॥ ४ ॥ रवि, मंगळ आणि चंद्र हे मित्र आहेत. बाकीचे सम ह्यं उदासीन आहेत. शुक्राचे रवि आणि चंद्र शत्रू आहेत त्याचे शनि आणि बुध मित्र आहेत. बाकीचे ग्रह सम ह्यं उदासीन आहेत. शनीचे मंगळ, चंद्र, रवि हे शत्रू आहेत शुक्र आणि बुध हे मित्र आहेत बाकीचे ग्रह सम ह्यं उदासीन आहेत. असें समजावें.

गण व कूट.

पूर्वाद्रांतर्ककोत्तरं नरि सुरेऽर्कात्यादितीज्यानिर्ले-

दुश्रुत्यश्विनिमित्रमन्यदसुरे दैत्यैर्नृणां स्यान्मृतिः ॥ ५ ॥

स्याद्देवासुरयोः कलिर्नृसुरयोर्मध्यं स्वयोः सौहृदं ।

नैस्व्यं द्विव्ययके षडष्टसु विपद्वैपुत्र्यमर्थाकके ॥

शेषेऽर्था विविधा विभैकचरणे भिन्नक्षराशयैककं ।

मित्रांघ्येकभमेतयोर्गणखगौ नाडी नृदूरं त ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—१ पूर्वाषाढा, २ पूर्वाषाढा, ३ पूर्वाभाद्रपदा, ४ आर्द्रा, ५ भरणी, ६ रोहिणी, ७ उत्तरा-  
षाढा, ८ उत्तराषाढा, ९ उत्तराभाद्रपदा ह्या नऊ नक्षत्रांचा मनुष्य गण आहे. १ हस्त, २ रेवती, ३ पुनर्वसु,  
४ पुष्य, ५ स्वाती, ६ मृग, ७ श्रवण, ८ अश्विनी, ९ अनुराधा ह्या नवांचा देव गण आहे. १ कृत्तिका, २ आश्लेषा,  
३ मघा, ४ चित्रा, ५ विशाखा, ६ ज्येष्ठा, ७ मूल, ८ धनिष्ठा, ९ शततारका ह्या नवांचा राक्षस गण आहे.  
दैत्य गणानें मनुष्य गणाच्याला मरण येतें ॥ ५ ॥ देव गण आणि राक्षस गण ह्यांचा कलह होतो. मनुष्य आणि देव  
ह्यांचें मध्यम जमतें. वधू आणि वर ह्यांचा एक गण असेल तर अतिशय मैत्री असते, वधू आणि वर ह्यांचा जन्म  
राशि परस्पर मोजून २-१२ होतील तर निर्धनत्व जाणावें. आणि ६-८ होतील तर विपत्ति जाणावी ५-९  
होतील तर अनपत्यता जाणावी, बाकी सर्व कूटें शुभ जाणावीं, परंतु उभयतांच्या नक्षत्राचा चरण एकच असतां तें  
अशुभ होय. दोघांचें नक्षत्र भिन्न असून एक राशि असेल तर आणि भिन्न चरण असून नक्षत्र एक असेल तर  
गण, ग्रह, मैत्री, नाडी नृदूर हीं कांहीं एक पाहावयाचें कारण नाही ॥ ६ ॥

अथ गणमाह—पूर्वास्तिस्र आर्द्रा प्रसिद्धा अंतको भरणी कः रोहिणी उत्तरास्तिस्रः एतन्नक्षत्रनवकं  
सुरे देवे नरि भवति नृगणमित्यर्थः । अर्को हस्तः अंत्यं रेवती अदितिः पुनर्वसु ईज्यः पुष्यः अनिलः  
स्वाती इंदुर्मृगः श्रुति श्रवणः अश्विनी प्रसिद्धा मित्रं अनुराधा एतन्नक्षत्रनवकं सुरे देवे भवति देवग-  
णमित्यर्थः । अन्यत् कृत्तिका आश्लेषा मघा चित्रा विशाखा ज्येष्ठा मूलं धनिष्ठा शततारका एतन्नक्षत्र-  
नवकं असुरे भवति रक्षोगणमित्यर्थः । दैत्यैर्नृणां मृतिर्भवति ॥ ५ ॥ देवासुरयोर्देवदैत्ययोः कलिः  
स्यात् नृसुरयोर्देवयोर्मध्यं स्यात् तयोर्मेलने सौहृदं स्यात् । अथ कूटमाह—द्विव्ययके द्विर्द्वादशे  
नैस्व्यं निस्वस्य भावो नैस्व्यं निर्धनत्वं स्यात् षडष्टसु विपत् मरणं स्यात् वैपुत्र्यमर्थीकके अर्थीकके  
पंचमनवमे वैपुत्र्यं अनपत्यत्वं स्यात् शेषे उर्वरिते तृतीयैकादशे चतुर्दशमे उभयसप्तमे एकक्षे वि-  
विधार्थाः धनपुत्रपश्वादयः स्युः । कथंभूते शेषे विभैकचरणे विगतं भैकचरणं नक्षत्रैकचरणं यस्मात्  
तथा तस्मिन्नक्षत्रैकचरणे कूटे अनिष्टं फलं श्रूयते । एकराशौ शुभोद्वाह एकभांशे मृतिप्रद इति । एक-  
ऋक्षस्य चत्वारो भेदा एकराशिर्भिन्नक्षे एकक्षे भिन्नराशि एकराशिनक्षत्रं भिन्नचरणं एक राशिनक्षत्र-  
चरणं चेति चत्वारो भेदाः तत्र एकराशिनक्षत्रचरणं निदितं विभैकचरण इति । अथ शुभकूटे य-  
द्विन्नक्षत्राद्यैककं भिन्ननक्षत्राद्यैकत्वं यच्च भिन्नांशेयैकमं एतयोर्गणखगौ नाडी नृदूरं च न अत्र कि-  
मपि नावलोक्यं शुभमित्यर्थः । नृदूरं वक्ष्यमाणं भिन्नांशेयैकमित्यत्र भेदद्वयमागतं भवति एकक्षे-  
भिन्नराशिकं अपरं एकराशिनक्षत्रं भिन्नचरणं तस्मात् एकराशिनक्षत्रचरणं त्यक्त्वा त्रिषु भेदेषु गणा-  
दिकं न चिंतयेत् तत्र गणादिदोषे सत्यपि शुभं स्यादित्यर्थः ॥ उक्तं च बृहस्पतिना । एकराशौ पृथक्  
धिष्ण्ये पृथग्राशौ तथैकमे । गणनाडी नृदूरं च ग्रहवैरं न चिंतयेत् ॥ कालनिर्णये । दंपत्योरेकनक्षत्रे  
भिन्नपादे शुभावहम् । दंपत्योरेकपादे तु वर्षाते मरणं भ्रुवमिति ॥ ६ ॥

टीकार्थ—आतां गण सांगतो—३ पूर्वा, १ आर्द्रा, १ अंतक ह्य० भरणी, १ क ह्य० रोहिणी, ३ उत्तरा मिळून  
नऊ नक्षत्रे मनुष्यगणाचीं आहेत, १ अर्क ह्य० हस्त २ अंश ह्य० रेवती ३ अदिति ह्य० पुनर्वसु, ४ इज्य ह्य० पुष्य  
५ अनिल ह्य० स्वाती ६ इंदु ह्य० मृगशिर्ष ७ श्रुति ह्य० श्रवण ८ अश्विनी ९ मित्र ह्य० अनुराधा हीं नऊ नक्षत्रे देवग-  
णाचीं आहेत. दुसरी राहिलेली १ कृत्तिका २ आश्लेषा ३ मघा ४ चित्रा ५ विशाखा ६ ज्येष्ठा ७ मूल ८ धनिष्ठा  
९ शततारका हीं नऊ नक्षत्रे राक्षसगणाचीं आहेत. दैत्यांबरोबर मनुष्यांचें मरण होतें. ॥ ५ ॥ देव आणि राक्षस ह्यांचा  
कलह होतो, मनुष्य आणि देव ह्यांचें मध्यमत्व असतें समान गणांचें मेलन झालें असतां चांगलें मित्रत्व रहातें. आतां कूट सां-  
गतो—वधू आणि वर ह्यांच्या परस्परांच्या राशीपासून परस्परांच्या राशी मोजाव्यात त्यांत जर २-१२ आले तर निर्धनत्व  
येतें. ६-८ आले तर विपत्ति येते. मरण येतें अथवा अपुत्रत्व येतें. ९-५ आले तर अनपत्यता येते. बाकी उरलेल्या ३-  
११-४-१०-२-७ हीं कूटें उत्तम आहेत. दोघांचेंच नक्षत्र एक असेल तर नानाप्रकारच्या संपत्ति मिळतील. ह्य० धन,  
पुत्र, पशु इत्यादिक मिळतील दोघांच्या नक्षत्रांचा एक चरण असेल तर मात्र फारच अनिष्ट फल होतें. दोघांचा एक राशि  
असेल तर विवाह शुभ जाणावा. परंतु नक्षत्राचा एक चरण असेल तर अशुभ जाणावा. एक नक्षत्राचे चार प्रकार आहेत  
ते असे कीं, १ एकराशी असून नक्षत्र भिन्न असावें. २ एकनक्षत्र असून राशि भिन्न असावी. ३ राशि आणि नक्षत्र एक  
असून चरण भिन्न असावा. ४ राशि, नक्षत्र आणि चरण एकच असावीत. पैकी राशि, नक्षत्र आणि चरण एक असतील

तर निंब समजावें. नक्षत्रांचे एक चरण असून एक नक्षत्र असेल तर तें शुभ समजावें. आतां शुभ कूटामध्ये १ भिन्न नक्षत्र असून राशी एक असेल तें, २ चरण भिन्न असून एक नक्षत्र असेल तें असें असेल तर त्या वधू आणि वराचे व बाकीचे गण, नाडी, नृदूर इत्यादि कांहींएक पाहावयाचे कारण नाही. नृदूर हें पुढें सांगावयाचें आहे. चरण भिन्न असून एक नक्षत्र असेल अशाचे दोन भेद आहेत ते असे कीं, १ एक नक्षत्र असून राशि भिन्न असेल ते, २ राशि व नक्षत्र एक असून चरण भिन्न असेल तें, ह्याणून एक राशी व नक्षत्र चरण एक असे सोडावे. तीनभेदांविषयीं ह्याणजे वर सांगितलेल्या तीनभेदां-विषयीं गण इत्यादि पाहावयाचे कारण नाही. वर सांगितलेल्या तीन भेदांमध्ये गणादिकांचा दोष असला तरीसुद्धां शुभ जाणावें. हेंच बृहस्पतीनें सांगितलें आहे कीं, एक राशी असून नक्षत्र भिन्न असतां, भिन्नराशी असून एक नक्षत्र असतां मग गण, नाडी, नृदूर, ग्रहांचें वैर इत्यादिकांचा विचार करावयाचें कारण नाही. कालनिर्णयांत सांगितलें आहे कीं, वधू आणि वर ह्यांचें नक्षत्र एक असून चरण भिन्न असेल ह्याणजे तें शुभकारक आहे. दोघांचा नक्षत्र चरण एक असेल तर एका वर्षांत निश्चयानें मरण येतें ॥ ६ ॥

कूटापवाद आणि नाडी.

षट्काष्टे समभं च षष्ठसहितं चेच्छोभनं स्यात्समं ।

अं द्विर्द्वादशके द्वितीयसहितं श्रेष्ठं स्त्रिया युग्घरिः ॥

मूर्लेर्द्रार्कभपाश्यजैकचरणादित्यार्यमेशाश्विभै- ।

र्याम्येद्वीज्यभमित्रभाग्यवसुभत्वाश्र्वाहर्बुध्न्यभैः ॥ ७ ॥

अन्यैर्नाड्यइहैकनाडिनवके स्यातां द्विभे चेन्मृति- ।

गोदादक्षिणतः कचिन्नृपमुखे पार्श्वैकनाडी हिता ॥

मैत्र्याद्विषयमर्थनंदमपिसत् षट्काष्टकं वश्यतः ।

पङ्भिः स्त्री नृगणाः वरोस्त्रपगणः सत्कूटमैत्र्योस्तदा ॥ ८ ॥

श्लोकार्थ—६-८ ह्याणजे षट्काष्टकांत सम राशीपासून ६ होतील तर तें शुभ कूट होय. तसेंच २-१२ ह्याणजे द्विर्द्वादशकांमध्ये पूर्वीप्रमाणेच सम राशीपासून मोजून २ येतील तर तेंही शुभ आहे. कन्या राशी वरोवर सिंह ही राशी शुभ आहे. जसें—वृषभापासून तूळपर्यंत सहा येतात परंतु वृषभ ही राशी सम आहे ह्याणून हे षडष्टक कूट शुभ आहे. मिथुनापासून वृश्चिक ६ होतात परंतु मिथुन विषम आहे ह्याणून हें शुभ नाही, आतां आद्य-नाडी, मध्यनाडी आणि अंत्यनाडी ह्यांचें स्वरूप सांगतो—पैकीं २७ नक्षत्रें आहेत त्यांतील १ मूल, २ ज्येष्ठा, ३ हस्त, ४ शततारका, ५ पूर्वाभाद्रपदा, ६ पुनर्वसु, ७ उत्तराफा० ८ आर्द्रा, ९ अश्विनी हीं नऊ नक्षत्रें आद्यनाडीचीं आहेत. १ भरणी, २ मृग, ३ पुष्य, ४ अनुराधा, ५ पूर्वाफाल्गु० ६ धनिष्ठा, ७ चित्रा, ८ पूर्वाषाढा, ९ उत्तरा-षाढा हीं नऊ नक्षत्रें मध्य नाडीचीं आहेत. ह्यांशिवाय १ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ आश्लेषा, ४ मघा, ५ स्वाती, ६ विशाखा, ७ उत्तराषाढा, ८ श्रवण, ९ रेवती हीं नऊ नक्षत्रें अंत्य नाडीचीं आहेत. आतां वधू आणि वर ह्यांचें नक्षत्र एका नाडींत असल्यास दोघांची एक नाडी होते ह्याणून मरण समजावें. गोदावरी नदीच्या दक्षिणेस देशांतील सर्व वर्णांला आणि सर्व देशांमध्ये क्षत्रियादिकांना दुसरी कन्या मिळणें दुर्लभ असतें. ह्याणून उभयतांचीं नक्षत्रें आद्यनाडींत अथवा अंत्य नाडींत असतांही शुभ मानावी. राशीचे स्वामी परस्परांशीं भिन्न असतील २-१२ हा० द्विर्द्वादश आणि ९-५ ह्याणजे नवपंचक शुभ असतें. शुभ कूट आणि ग्रह मैत्री असेल तर वधूचा मनुष्य गण व वराचा राक्षस गण असेल तरी हा शुभ जाणावा ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ ग्राह्यषट्काष्टकं द्विर्द्वादशं चाऽऽह-षट्काष्टे सति समभं कर्ककन्यादि चेद्यदि षष्ठसहितं स्यात्तदा शोभनं स्यात् ग्राह्यं स्यादित्यर्थः । तद्यथा वृषः समभं तस्मात्सकाशात् षष्ठेन तुलाधारेण स-हितं यदि भवति तदा ग्राह्यं स्यादित्यर्थः । तस्त्वामिनो भैश्यभावात् समभं अष्टमेन समं न ग्राह्यम् । एवमेव ग्राह्याग्राह्यं विलोकयेत् । अथ ग्राह्यं द्विर्द्वादशं चाऽऽह-द्विर्द्वादशके समभं द्वितीयसहितं यदा भवति तदा श्रेष्ठं शोभनं स्यात् विपरीतमसत् । अत्र सिंह विशेषमाह-स्त्रिया युग्घरिरिति । विष-



मोऽपि सिंहः स्त्रिया कन्यया युक् युक्तः श्रेष्ठः । अथ नाडीमाह-मूलेती । अत्र श्लोके तृतीयांतैस्त्रिभिः पादैः तिस्रो नाड्यः सूचिताः मूलं प्रसिद्धं इंद्रो ज्येष्ठा अर्कमं हस्तः पाशी शततारका अजैकचरणं पूर्वाभाद्रपदा आदित्यं पुनर्वसुः अर्यमा उत्तराफाल्गुनी ईश आर्द्रा अश्विभं अश्विनी एभिर्नक्षत्रनव-कैरेकनाडी भवति याम्यं भरणी इंद्रुर्मृगः ईज्यमं पुष्यः मित्रं अनुराधा भाग्यभं पूर्वाफाल्गुनी वसुभं धनिष्ठा त्वाष्ट्रं चित्रा अंबु पूर्वाषाढा अहिर्बुध्न्यं उत्तराभाद्रपदा एभिर्नवनक्षत्रैरेकनाडी भवति । अन्यै-रुर्वरितैर्नक्षत्रैरेकनाडी एवं तिस्रो नाड्यो भवन्ति इह विवाहविषये यदा एकनाडी नवके द्विमे वधू-वरयोर्भे नक्षत्रे चेत्स्यातां तदा मृतिर्मरणं स्यात् । अथ गौतम्यादिदक्षिणे देशे क्षत्रियादीनां च अन्य-वध्वा अलाभे गतिमाह-गोदादक्षिणतः गोदा गौतमी तस्याः दक्षिणतः दक्षिणे देशे सर्ववर्णे नृप-मुखे क्षत्रियादौ सर्वदेशस्थे क्वचित् अन्यकन्याया अलाभे सति पार्श्वैकनाडी हिता शुभा स्यान्न मध्यनाडी । उक्तं च रत्नकोशे । अग्रनाडीव्यधे भर्ता मध्यनाडीव्यधे द्वयं । पृष्ठनाडीव्यधे कन्या प्रियते नात्र संशयः । समासन्ने व्यधे शीघ्रं दूरव्यधे चिरेण तु । व्यधांतरभमानेन वर्षे दुष्टं प्रजायते । इति ब्राह्मणविषयं । जठरे निर्धनत्वं च गर्भे मरणमेव च । पृष्ठे दौर्भाग्यमाप्नोति तस्मात्तां परिवर्जयेति । ज्योतिःप्रकाशे । निधनं मध्यनाड्यां च दंपत्योर्नैव पार्श्वयोः । अस्य व्यवस्था तत्रैवोक्ता । करग्रहे पृष्ठनाड्यौ न निधे इति यद्वचः । तत्क्षत्रियादिविषयं गौतमीयाम्यतस्तथेति ॥ अथपूर्वाक्तानां द्विर्द्वा-दशादीनां शुभत्वमाह-मैत्र्येति । मैत्र्या ग्रहमैत्र्या द्विव्ययं द्विर्द्वादशं अर्धनंदं पंचमनवमं सत् शुभं स्यात् वक्ष्यादिषड्भिः षट्पाष्टकं शुभं स्यात् वक्ष्यभयोनिखेचरणनाडीभिः षडष्टकं शुभं स्यादित्यर्थः । अथ यदा स्त्री नृगणा वरोऽस्त्रपगणो रक्षोगणः स्यात्तदा तन्मेलनं सत्कूटमैत्र्योः सत्योः शुभं स्यात् ॥७॥८॥

**टीकार्थ-**आतां जे षट्काष्टक ग्राह्य आहे ते सांगतो-आणि द्विर्द्वादशकही ग्राह्य आहे ते सांगतो-सम राशीपासून जर षट्काष्ट असेल तर ते ग्राह्य आहे जसे कर्क राशीपासून अथवा कन्या वगैरे सम राशीपासून जर षष्ठाने सहित असेल तर ते षट्काष्टक शुभ समजावे. ते असे-वृष ही सम राशी आहे, त्यापासून सहावी राशी तुला आहे त्या तुलासहित जे षट्क ते ग्राह्य आहे. परंतु त्या षष्ठाचा स्वामी ह्यणजे तुलेचा स्वामी जो शुक्र आहे त्याची मित्रता आठव्या राशीच्या स्वामी बरोबर ह्यणजे धनाचा स्वामी जो गुरु त्याबरोबर मैत्री नाही. ह्यणून सम राशी आठव्या बरोबर धेळू नयेत. अशाच रीतीने ग्राह्य आणि अग्राह्य ह्याचा विचार करावा. अर्थात साहाय्या राशीचा स्वामी आणि आठव्याचा स्वामी जर मित्र असते तर ते षट्काष्टक ग्राह्य झाले असते. आतां द्विर्द्वादश सांगतो-द्विर्द्वादशकांमध्ये समराशीपासून द्वितीयाचा स्वामी आणि द्वादश राशीचा स्वामी हे जर मित्र असतील तर ते द्विर्द्वादशक शुभ जाणावे. तसे नसेल तर अशुभ जाणावे. आतां सिंहराशीविषयी विशेष सांगतो-सिंह ही जरी विषम राशी आहे तरी ती राशी कन्येशी युक्त झाली असतां शुभ जाणावी. आतां नाडीचा विचार सांगतो-ह्या श्लोकांत तृतीया विभक्त्यंत तीन पादांनी तीन नाडी सांगितल्या आहेत असे जाणावे. १ मूल, इंद्र ह्य० २ ज्येष्ठा, अर्कभम् ह्य० ३ हस्त, पाशी ह्य० ४ शततारका, अजैकचरण ह्य० ५ पूर्वाभाद्रपदा, आदित्य ह्य० ६ पुनर्वसु, अर्यमा ह्य० ७ उत्तराफाल्गुनी, ईश ह्य० ८ आर्द्रा अश्विभ ह्य० ९ अश्विनी ह्या नवांनी आद्यनाडी होते. याम्य ह्य० १ भरणी, इंद्रु ह्य० २ मृगशीर्ष, ईज्यभ ह्य० ३ पुष्य, मित्र ह्य० ४ अनुराधा, भाग्यभ ह्य० ५ पूर्वाभाद्रपदा, वसुभ ह्य० ६ धनिष्ठा, त्वाष्ट्र ह्य० ७ चित्रा, अंबु ह्य० ८ पूर्वाषाढा, अहिर्बुध्न्य ह्य० ९ उत्तराभाद्रपदा ह्या नव नक्षत्रांनी मध्यनाडी होते. बाकी उरलेल्या नव नक्षत्रांनी अंत्यनाडी होते. ह्या विवाहामध्ये वधू आणि वर ह्यांची एक नाडी असेल ह्यणजे वधू आणि वर ह्यांचे नक्षत्र एक असेल तर मरण होईल. आतां गोदावरीनदीच्या दक्षिण देशी क्षत्रियादिकांना दुसरी कन्या मिळत नसेल तर त्या विषयी उपाय सांगतो तो असा की, गोदानदीचे दक्षिणेस सर्व वर्णमध्ये क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि वर्णामध्ये कोठे कोठे सर्वही देशांत दुसरी कन्या मिळत नसेल आणि जी एकादी मिळत आहे तिची एक नाडी असेल व पार्श्वैकनाडी ह्यणजे आय किंवा अंत्यनाडी दोघांची एक असेल तर ती हितकारक समजावी. परंतु मध्य नाडी दोघांची एक असेल तर ती हितकारक नाही. तोच विचार रत्नकोश ग्रंथांत सांगितला आहे की, दोघांची आद्यनाडी एक असेल तर भर्ता मरण पावतो. मध्यनाडी एक असेल तर दोघेहि मरण पावतात. अंत्य नाडी दोघांची एक असेल तर कन्या मरण पावत्ये. ह्यांत संशय नाही. समासन्न एकनाडी असेल तर लवकर नाश होतो. दूरनाडी असेल तर वेळाने नाश पावतो. एकाचे मध्ये अंतर असेल तर एक वर्षाने दुष्ट परिणाम होतो. हे सर्व वाक्य ब्राह्मणाविषयी आहे. उदरांत असेल तर निर्धनत्व, गर्भांत असेल तर मरण, पृष्ठमार्गी असेल तर दुर्भाग्यपण येते, ह्यणून एकनाडी वर्ज्य करावी. ज्योतिःप्रकाशांत सांगितले आहे की, मध्यनाडी एक असेल तर स्त्रीपुरुषांचा दोघांचा नाश होतो. परंतु आय नाडी आणि अंत्यनाडी एक असेल तर नाश होतच नाही. ह्याची व्यवस्था तेथेच अशी सांगितली आहे की, विवाहामध्ये अंत्य आणि आय ह्या दोन नाडी एक असल्या

तर त्या निय नाहींत असें जें वचन आहे तें सर्व गोदावरी नदीच्या दक्षिण दिशेकडील देशांतील क्षत्रियादिकांबद्दल समजावें. आतां पूर्वी सांगितलेले द्विर्द्वादश इत्यादिक शुभ केव्हां असतात तें सांगतो—ग्रहांची मैत्री असेल तर द्विर्द्वादश नवपंचक ही असतांही शुभ आहे असें समजावें. वश्यादि सहा अनुकूल असल्यास षट्काष्टकही शुभ होतें असें जाणावें. ह्यणजे वश्य, भ, योनि, ग्रह, गण आणि नाडी हे यथायोग्य मिळत असल्यास षट्कांचा दोष नाहीं तें शुभच जाणावें. आतां स्त्री मनुष्यगणाची आणि वर हा राक्षस गणाचा असेल तेव्हां सत्कूट आणि मैत्री असेल तें मेलन शुभ समजावें ॥ ७ ॥ ८ ॥

नृदूर, त्याचा अपवाद व दुःकूटाचीं दाने.

रक्षः स्त्री नृ पुमान् यदा वशमुखैः षड्भिर्भुतं शोभनम् ।

स्त्रीभान्ना निकटे नृदूरमशुभं खेटोडुमैत्र्योः शुभम् ॥

द्व्यर्के ताम्रसुवर्णमष्टरिपुके गोयुग्ममर्थाकके ।

रौप्यं कांस्यमथैकनाडियुजि गोस्वर्णादि दत्त्वोद्वहेत् ॥ ९ ॥

श्लोकार्थ—वश्यादि सहा ह्यणजे १ वश्य, २ नक्षत्र, ३ योनि, ४ ग्रह, ५ कूट आणि ६ नाडी हीं जर शुभ असून कदाचित् कन्या राक्षस गणाची आणि वर मनुष्य गणाचा असेल तर तें शुभच समजावें. कन्येच्या नक्षत्रापासून पतीचें नक्षत्र जवळ असेल तर त्याला नृदूर असा दोष ह्यणतात तो अशुभ आहे. दोबांच्या राशीचे जे त्वामी असतील ते परस्पर मित्र असतील आणि योनींची मित्रता असेल तर नृदूर हा दोष शुभ आहे असें जाणावें, द्विर्द्वादशकाबद्दल सुवर्णाचें आणि तांब्याचें दान, षट्काबद्दल गाय आणि बैल जोडण्याचें दान, नवपंचक असतां रुपें आणि कांस्य ह्यांचें दान, व वधू वरांची उभयतांची एक नाडी असतां गाय, सोनें, वस्त्र, अन्न हीं सर्व दाने करून मग विवाह करावा ॥ ९ ॥

अथ यदा रक्षः स्त्री रक्षोगणा स्त्री नृ पुमान् नृगणः पुरुषः स्यात्तदा वशमुखैः षड्भिः वश्यभयो-  
निखेचरकूटनाडीत्येतैः षड्भिर्भुतं तन्मेलनं शुभं स्यात् । अथ नृदूरं सापवादमाह—स्त्रीभादिति ।  
स्त्रीभात् स्त्रीनक्षत्रात् ना इति नृनक्षत्रं यदि निकटे समीपे भवति तदा नृदूरं स्यात् । कथं भूतं नृदूरं  
अशुभं अशुभफलदं इदं नृदूरं खेटोडुमैत्र्योः सत्योः शुभं स्यात् । उडुमैत्री नक्षत्रमैत्री योनिमैत्रीति-  
यावत् । अथ संकटे दुष्टकूटादौ दानमाह—द्व्यर्केति । द्व्यर्के द्विर्द्वादशे ताम्रसुवर्णादि दत्त्वा उद्वहेत्  
अष्टरिपुके षड्ष्टके गोयुग्मं गोभित्थुनं दत्त्वा उद्वहेत् अर्थाकके पंचमनवके रौप्यं कांस्यं दत्त्वोद्वहेत् ।  
अथैकनाड्यां दानमाह—एकनाडियुजि गोस्वर्णादि दत्त्वोद्वहेत् । एकनाडीयोगे गोस्वर्णावस्त्राणि  
बहूनि दत्त्वोद्वहेत् । तथाच राजमार्तंडे । षड्ष्टकं गोभित्थुनं प्रदद्यात्कांस्यं सरौप्यं नवपंचमे च ।  
नाड्यां च धनवस्त्रसुवर्णवस्त्रं द्विर्द्वादशे ब्राह्मणतर्पणं च । उद्वाहतरत्रे । ताम्रं हेमधनव्यये रजतयुक्तांस्थं  
शरांके वृषं गां दद्याच्च षड्ष्टकं द्विजभुजि स्वर्णं च नाडीयुताविति ॥ ९ ॥

टीकार्थ—आतां जेव्हां कन्या राक्षस गणाची, पुरुष मनुष्य गणाचा असेल तेव्हां १ वश्य, २ नक्षत्र, ३ योनि,  
४ ग्रह, ५ कूट, ६ नाडी ह्या साहानीं चांगला योग असेल तर तें मेलन शुभ कारक समजावें. आतां नृदूर व  
त्याचा अपवादही सांगतो—स्त्रीचे नक्षत्रापासून पुरुषाचें नक्षत्र जर जवळ असेल तर नृदूर नांवाचा दोष असतो तो  
अशुभ आहे. परंतु तो अशुभ नक्षत्रांची मैत्री आणि योनीची मैत्री असेल तर शुभच समजावा. आतां संकट प्रसंगीं दुष्ट  
कूटांचें दान सांगतो—द्विर्द्वादशक असेल तर तांबें आणि सोनें दान करून विवाह करावा. षड्ष्टक असेल तर गाय आणि  
बैल दान करून विवाह करावा. नवपंचक असेल तर रुपें आणि कांस्य दान करून विवाह करावा. आतां एक नाडी असेल  
तर त्याचें दान सांगतो—एक नाडी असतां गाय आणि सोनें इत्यादि दान करून विवाह करावा. एक नाडीचा योग असतां  
गाय, सोनें, अन्न, वस्त्र इत्यादि पुष्कळ दान करून विवाह करावा. तेंच राजमार्तंडांत सांगितलें आहे कीं, षड्ष्टकाबद्दल गाय  
व बैल द्यावा. नव पंचकाबद्दल रुपें आणि कांस्य द्यावें. एक नाडीबद्दल गाय, अन्न, सुवर्ण, वस्त्र हीं द्यावीत. द्विर्द्वादश असेल  
तर ब्राह्मण भोजन करावें. उद्वाह तत्त्वांत सांगितलें आहे कीं, धन व्यय ह्ये द्विर्द्वादशकाबद्दल तांबें आणि सोनें,  
शरांके ह्ये नवपंचकाबद्दल बैल आणि गाय, षड्ष्टकाबद्दल ब्राह्मणभोजन आणि एक नाडीबद्दल सुवर्ण दान करावें ॥ ९ ॥

वर्ण, वश्य, नक्षत्र, योनि ह्यांचे गुण.

भूर्वर्णैक्यवरोत्तमेऽथ वशभक्ष्येऽर्थं द्वयं मित्रयोः ।

खंवैराशनके धरारिवशकेऽथो सद्गयोरग्नयः ॥

मित्रे तच्छकलं त्वथातिसुहृदोर्वेदास्त्रयो मित्रयोः ।

एकः स्याद्विषतोः स्वभावगुणयोर्द्वौ खं महद्वैरिणोः ॥ १० ॥

श्लोकार्थ—वधू राशीच्या वर्णापेक्षां वर राशीचा वर्ण उत्तम असेल अथवा दोघांच्या राशीचा वर्ण एक असेल तर १ गुण घ्यावा. आतां दोघांच्या राशी एकमेकांला भक्ष्य किंवा वश्य असतील तर -॥- गुण त्याच राशी एकमेकांला मित्र असल्यास २ गुण, शत्रु व भक्ष्य असतां मुळीच गुण नाही. शत्रु आणि वश्य असतां १ गुण जाणावा. दोघांचीं नक्षत्रें शुभ असतील तर ३ गुण. एकाचें शुभ आणि एकाचें अशुभ असल्यास १॥ गुण, दोघांच्या योनींची अति मैत्री असतां ४ गुण, सामान्य मैत्रीस ३ गुण, शत्रु असतां १ गुण. शत्रुत्व नाही व मित्रत्वही नाही असें असतां २ गुण आणि अति वैर असतां गुण नाही ॥ १० ॥

अथ गुणविचारं त्रिभिर्वृत्तराह-तन्नाऽऽदौ वर्णगुणविचारमाह-भूर्वर्णैक्येति । वर्णैक्यवरोत्तमे भूरेको गुणो ज्ञेयः वर्णयोरैक्यं यस्मिन्व्रटिते तद्वर्णैक्यं वर उत्तमो यस्मिन् तद्वरोत्तमं च उभयत्रापि एको गुणो ज्ञेयः अर्थाद्धीनवरे गुणाभावः । उक्तं च ज्योतिर्निबंधे । एको गुणः समे वर्णे तथा वर्णो-त्तमे वरे । हीनवर्णे गुणः शून्यं केष्याहुः सदृशे दलमिति ॥ अथ वश्यगुणविचारमाह-वशभक्ष्ये अर्थे एकस्यार्थे गुणः वशभक्ष्यं यथा मनुष्याणां जलजा वशा भक्ष्याश्च तत्र अर्थगुणो ग्राह्य एतत्तु द्विजादौ ज्ञेयं द्विजादयस्तु कदाचिच्छ्राद्धे पाठीनजातीयमत्स्यभक्षका भवन्ति न सर्वेषां तस्माद्वध्वर-जातिं विचार्य योजनीयं हीनजातौ शून्यं यतः खं वैराशनके इत्यास्मिन्नेव श्लोके उक्तत्वात् एवमेव सिंहस्य सर्वे वश्या भक्ष्याश्च भवन्ति। तत्र मनुष्या वैरभक्ष्यं वृश्चिकस्तु वैरी अन्ये वशभक्ष्यं अथ मित्रयोः परस्परं सुहृदोः द्वयं गुणद्वयं ज्ञेयं तत्र विचारः स्वजातौ मित्रत्वं प्रकटं मनुष्याणां मेघमृगाश्वमृगैः सह मित्रत्वं तत्र हीनजातीयानां पशवो वशभक्ष्यं तत्रार्थगुणः अन्यत्र द्वयं अथारिवशके धरा एको गुणः अरिवशकं यथा मनुष्याणां वृश्चिकः सिंहवृश्चिकयोनित्यं वैरं वृश्चिकदृष्टः सिंहो मरणमाप्नोति इति लोके प्रसिद्धं तस्मादत्र गुणाभावः प्रथमं वशभक्षणे अन्यज्जनादित्युक्तं तस्मात्सुबुद्धिर्भविष्यति वक्तव्यं । ममात्र वश्यविचारणे बुद्धिरेवं स्फुरिता अत्र यत् दुरुक्तं तत् बुधैः शोधनीयं । ननु वश्यभक्षणे कौर्ष्या न वश्यो हरेरित्येवोक्तं त्वया कथमुक्तं सिंहस्य मनुष्या वैरिभक्ष्यमिति । सत्यं तच्छ्लोकोक्तलक्षणं सर्वं सामान्यमस्ति अत एवोक्तं ग्रंथकर्त्रा अन्यज्जनादिति । सिंहस्तु नरगजादिप्रतापिमारणेऽत्यु-सुकोऽन्येषां मारणे उदासीनोऽसदृशत्वात् । उक्तं च । वैरभक्ष्ये गुणाभावो द्वयोः सत्ये गुणद्वयं । वशवैरे गुणश्चैको वशभक्ष्ये गुणार्धकमिति ॥ अथ तारागुणविचारमाह-सद्गयोः उभयतः सत्तारयोः सतोः अग्नयस्त्रयो गुणाः । एतदुक्तं भवति मे गण्येऽकहते इत्यनेन प्रकारेण उभयतोऽपि यदि सत्तारे भवतस्तदा त्रयो गुणा इत्यर्थः । मित्रे तच्छकलमिति। मित्रे एकतः शुभा तारा एकतः अशुभा एवंविधे मित्रे सति तच्छकलं तेषां त्रयाणां शकलं सार्धैको गुण इत्यर्थः । अन्यथा गुणाभाव इत्यर्था-त्सिद्धं । उक्तं च । एकतो लभ्यते तारा शुभा चैवाशुभाभ्यतः । तदा सार्धो गुणश्चैकस्ताराशुद्धे मिथस्त्रयः । उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत् ॥ अथ योनिगुणविचारमाह-अतिसुहृदो-र्वेदाश्चत्वारो गुणा मित्रयोस्त्रयः । द्विषतोर्वैरिणोरेकः स्वभावगुणयोर्द्वौ महावैरिणोः खं शून्यं गुणः स्यात् । एवं पंचप्रकारेण योनिगुणा अस्य विवेकः । अष्टाविंशतिनक्षत्राणामश्वादयः सर्वाश्चतुर्दश योनयः तत्र सिंहं महिषाश्वमित्यादि यदुक्तं तन्महद्वैरम् तत्रापि महावैरे महिषाश्वं वानरमेवकं एतद्वयं उदासीनं स्वभावगुणं परस्परघाताभावात् अथैकयोनिषु अतिमित्रत्वं ज्ञेयं एकयोनिष्वपि गजयोः श्वानयोः मार्जारयोर्व्याघ्रयोः सिंहयोरेकयोनित्वेऽपि न मित्रत्वं परस्परकलहकारणात् । एत-द्युग्मपंचकं स्वभावगुणमेतद्युग्मपंचकं तु महावैरस्थं महिषाश्वं वानरमेवमेतद्वयमित्येतद्युग्मसप्तकं । स्वभावगुणं व्याघ्रस्तु सप्तदुरुनकुलेषु उदासीनः सिंहोऽप्येवमेव उदासीनः । तथा एतौ व्याघ्रांसिंहा

अन्येषां वैरिणौ सर्पमार्जारयोर्वैरः श्वमेषयोर्मैत्रं गोमहिष्योर्मैत्रं उदुहसर्पयोर्वैरं एवं शत्रुमित्रादिकं उदासीनत्वं च विचार्य उक्तवद्वुणा ज्ञातव्या औदासीन्ये स्वभावगुणवद्वुणग्रहणं उदासीनानां गुणा यद्यपि स्वभावगुणे महिषाश्वं मेषवानरे च औदासीन्यं दृश्यते तस्मादेतद्वयं उदासीनं गुणग्रहणं कर्तव्यमित्यर्थाज्ज्ञायते । उक्तं च । महावैरे च वैरे च स्वभावे च यथाक्रमं । मैत्रे चैवातिमैत्रे च वैदुद्वित्रिचतुर्गुणा इति ॥ १० ॥

टीका—आतां गुणांचा विचार तीन वृत्तांनीं सांगतो—त्या मध्ये अगोदर वर्णांचे गुणांचा विचार सांगतो—दोघांचा एक वर्ण असतां अथवा वधू पक्षां वराचा उत्तम वर्ण असतां एक गुण समजावा. अर्थात् वधूपक्षां वराचा वर्ण हीन असेल तर गुण नाही. हेच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, दोघांचा एक वर्ण असतां अथवा वराचा वर्ण वधू पक्षां उत्तम असतां एक गुण समजावा. वराचा वर्ण वधू पक्षां हीन असेल तर विलकूल गुण नाही. कित्येकांचें मत असें आहे कीं, एक वर्ण असतां दल ह्यो गुण आहे. आतां वश्याचे गुणांचा विचार सांगतो—वश्य आणि भक्ष्य असेल तर अर्धा गुण समजावा. वश व भक्ष्य असे कीं, मनुष्यांनां जलचर प्राणी वश आणि भक्ष्य आहेत. तेथे अर्धा गुण जाणावा. हे सर्व द्विजादिकांला जाणावें. कारण द्विजादिक कदाचित् श्राद्धाचे वेळीं पायीन नांवाचे मत्स्य भक्षण करितात. परंतु हे सर्वानां लागू पडणारें नाही ह्मणून वधू आणि वर ह्यांची जाति कोण आहे ह्याचा विचार करून त्याची योजना करावी. हीन जातीला शून्य गुण आहे, कारण “खंवैराशनके” ह्या वाक्यांत ह्याच श्लोकांत तसें सांगितलें आहे, अशाच रीतीनें सिंह राक्षीचे सर्वच वश्य आणि भक्ष्य आहेत ह्मणून तेथें मनुष्य हे वैर भक्ष्य आहेत. त्याचा वैरी फक्त वृश्चिकच आहे बाकीचे वश भक्ष्य आहेत. परस्पर मित्र असतील त्यांचे दोन गुण आहेत. त्याचा असा विचार आहे कीं, आपल्या जातींत परस्पर मित्रत्व असणें हें स्पष्ट आहे. आतां मनुष्याचें मेष मृग, अश्व मृग ह्यां बरोबर मित्रत्व आहे, त्यांत हीन जातीचे पशु आहेत ते वश आणि भक्ष्य आहेत तेथें अर्धा गुण आहे, अन्य ठिकाणीं दोन गुण आहेत. आतां शत्रु आणि वश ह्यांचा एक गुण आहे, ते असे कीं, मनुष्याचा विंचू हा शत्रु आणि वश आहे. सिंहाचा शत्रु वृश्चिक आहे, कारण सिंहास विंचूनें देश केल्याबरोबर तत्काळ तो मरण पावतो असें लोकांत प्रसिद्ध आहे. ह्मणून येथें गुण सुळीच नाही. अगोदर वश आणि भक्षण सांगितलें, नंतर लोकांच्या व्यवहारावरून जाणून घ्यावें असें सांगितलें आहे. ह्मणून बुद्धिमान लोकांनीं विचार करून बोलावें माझी ह्या वश्य विचाराविषयीं अशी बुद्धि चालत आहे, ह्या मध्ये जें काहीं सांगण्यांत चुकलें असेल तें विद्वानांनीं सुधारून घ्यावें. आतां अशी शंका येते—वश्य आणि भक्ष्य ह्या मध्ये वृश्चिक हा सिंहास वश्य नाही असें तुम्ही सांगितलें आहे आणि सिंहाचे मनुष्य हे वैरी आणि भक्ष्य आहेत असेंही तुम्ही सांगितलें. हें खरें आहे त्या श्लोकांतील सर्व लक्षण सामान्य आहे, ह्मणूनच ग्रंथकार सांगत आहे कीं, सर्व बारीक विचार लोकव्यवहारावरून जाणावा. कारण कीं, सिंह हा मनुष्य, हत्ती इत्यादि प्रतापीनां मारण्याविषयीं अत्युत्सुक असतो, परंतु दुसऱ्या दुर्बल प्राण्यांना मारण्याविषयीं उत्सुक असत नाही, कारण ते प्राणी आपल्या बरोबरीचे नाहीत. हेच सांगितलें आहे कीं, वैर आणि भक्ष्य असेल तर गुण सुळीच नाही. दोघांचें सख्य असेल तर दोन गुण आहेत. वश्य आणि वैर असेल तर एक गुण वश्य आणि भक्ष्य असेल तर अर्धा गुण समजावा. आतां तारा गुणांचा विचार सांगतो—दोघांचे ग्रह चांगले ह्मणजे अनुकूल असतील तर तीन गुण आहेत. ह्याचा अर्थ असा आहे कीं, नक्षत्र गणून त्याला नवानीं भागून इत्यादि प्रकारांवरून दोघांचे ग्रह सत् असतील तर तीन गुण समजावेत. मित्र ह्मणजे एकाबाजूनें शुभ आहे व दुसऱ्या बाजूनें अशुभ आहे असें असेल तर शकल ह्मणजे १॥ दीड गुण समजावा. तसें नसेल तर अर्थात् गुण नाही असें जाणावें. असें सांगितले आहे कीं, एकीकडून शुभ ग्रह आहे आणि एकीकडून अशुभ ग्रह आहे. त्या वेळेस १॥ गुण आहे आणि दोहोंकडूनही ग्रहांची शुभता असेल तर ३ गुण जाणावेत. दोघांचेही ग्रह शुभ नसतील तर गुण सुळीच नाही असें स्पष्ट सांगवें. आतां योनीचे गुणांचा विचार सांगतो—अतिशय मित्रत्व असेल तर चार गुण समजावेत, साधारण मित्रत्व असेल तर तीन गुण समजावेत, शत्रु असतील तर एक गुण, स्वभाव गुण असतील तर दोन गुण जाणावेत. महाशत्रु असतील तर गुण सुळीच नाही. अशा रीतीनें पांच प्रकारांनीं योनीचे संबंधी गुण जाणावेत. अद्रावीस नक्षत्रांच्या अश्व इत्यादि चवदा योनी सांगितल्या आहेत. त्यांत सिंह हत्ती, रेडा घोडा ह्यांचें मोठें वैर आहे. जें महावैर ह्मणून सांगितलें त्यांतही रेडा घोडा, वानर मेष, हे दोन युग्म उदासीन जाणावे ह्मणजे स्वभाव गुण आहे, कारण हे परस्परांना ठार मारूं शकत नाहीत. आतां एक योनी असेल तर अतिशय मित्रपणा आहे असें जाणावें. परंतु एक योनी असूनही १ हत्ती, २ श्वान, ३ मांजर, ४ व्याघ्र, ५ सिंह हे अतिशय मित्र नाहीत, कारण ते परस्पर कलह करितात ही वर सांगितलेली ५ युग्मे महा वैरी आहेत. महिष अश्व, वानर मेष हीं दोन युग्मे मिळून हीं सात युग्मे स्वभाव गुण आहेत. व्याघ्र हा सर्प, उंदीर, मुंगूस ह्यांविषयीं उदासीन आहे. तसाच सिंह ही त्यांविषयीं उदासीन आहे. परंतु हे व्याघ्र आणि सिंह हे दुसऱ्यांचे वैरी आहेत. सर्प आणि मार्जार ह्यांचें वैर आहे, अश्व आणि मेष ह्यांचें मित्रत्व आहे. गाय

आणि महिषी ह्यांचे मित्रत्व आहे, उंदीर आणि सर्प ह्यांचे वैर आहे. अशा रीतीने शत्रुत्व, मित्रत्व, उदासीनत्व ह्यांचा विचार करून पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे गुण जाणावेत. उदासीनांचे गुण स्वभाव गुणाप्रमाणे जाणावेत. जरी स्वभाव गुण असलेल्या महिष अश्व, मेघ वानर ह्यां विषयी उदासीनत्व आहे असे दिसते, ह्यांनून ह्या युग्माचे उदासीनाचे गुण ध्यावेत असे अर्थात् सिद्ध होतें. असे सांगितले आहे कीं, १ महा वैर, २ वैर, ३ स्वभाव, ४ मित्रत्व, ५ अतिमित्रत्व ह्या पांचांना क्रमानें शून्य, एक, दोन, तीन, चार असे गुण जाणावेत ॥ १० ॥

ग्रहांचे व गणांचे गुण.

एकेशोभयमित्रयोः शरमिता अर्थ समारातिके ।

चत्वारः सममित्रके रिपुहिते भूमिर्द्युदासे त्रयः ॥

ना देवो मनुजा वधूरिह रसास्तद्वैपरीत्ये शराः ।

षट् साम्येऽस्त्रपपूरुषः सुरवधूरत्रैककोऽन्यत्र खम् ॥ ११ ॥

श्लोकार्थ—वर आणि वधू ह्या दोघांच्या राशीचा स्वामी एकच असेल किंवा ते स्वामी परस्पर मित्र असतील तर तेथें ५ गुण जाणावेत. ते स्वामी सम आणि शत्रु असल्यास -॥- गुण, सम आणि मित्र असतां ४ गुण, शत्रु आणि मित्र असतां १ गुण, आणि दोघेही परस्परांशीं सम असतां ३ गुण ध्यावेत. वराचा देवगण आणि वधूचा मनुष्य गण असेल तर ६ गुण, ह्यांच्या उलट ह्यांजें कन्येचा देवगण आणि वराचा मनुष्य गण असतां ५ गुण. दोघांचा एकगण असेल तर ६ गुण. वराचा राक्षस गण आणि कन्येचा देवगण असेल तर १ गुण. ह्यांशिवाय दुसऱ्या प्रकारचे गुण नाहींत ॥ ११ ॥

अथ खेचरगुणविचारमाह—एक ईशो यस्मिन् तदेकशं उभयत्र मित्रे यस्मिन् तदुभयमित्रं एकेशं च उभयत्र मित्रं च एकेशोभयमित्रे तयोः शरमिताः पंच गुणा ग्राह्या उभयत्रापि पंच पंच ग्राह्या इत्यर्थः । अर्थ समारातिके सम उदासीनः अरातिः शत्रुः एवं यस्मिन् मेलने तत्समारातिकं तत्र अर्थ एकस्यार्थे गुणाः स्युः रिपुहिते अरिसुहृदि भूमिः एकः द्युदासे त्रयः द्वौ उदासीनौ यस्मिन् तत्र त्रयो गुणाः । अनुक्ते गुणाभावः । उक्तं च । यत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुणपंचकं । चत्वारः सममित्रे च द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः ॥ मित्रवैरे गुणत्रैकः समवैरे गुणार्धकं ॥ परस्परं खेदवैरे गुणः शून्यं समादिशेदिति ॥ अथ गणगुणविचारमाह—नादेव इति । यत्र ना नरो देवगणः वधूर्मनुजा मनुष्यगणा भवति इह रसाः षट् गुणा ग्राह्याः तद्वैपरीत्ये तयोर्वैपरीत्यं तस्मिन् शरमिताः पंच गुणा ग्राह्या एतदुक्तं भवति । यत्र नरो देवगणः वधूर्मनुष्यगणाश्च पंच गुणा ग्राह्या इत्यर्थः । षट् साम्ये गणसाम्ये षट्गुणा ग्राह्याः । यत्र अस्त्रपपूरुषः दैत्यगणः पुरुषः सुरवधूः देवगणा स्त्री भवति अत्रैकः एकः गुणो ग्राह्यः अन्यत्र उक्तादन्यत्र खं शून्यं गुणो ग्राह्यः स्यात् ॥ ११ ॥

टीकार्थ—आतां ग्रहांचा गुणविचार सांगतो—दोघांच्या राशीचे स्वामी मित्र असतील तर त्याचे गुण ५ आहेत. ह्यांजें दोघांस प्रत्येकीं पांच पांच गुण जाणावेत. ते स्वामी उदासीन आणि शत्रु असतील तर त्यांचा -॥- अर्धा गुण जाणावा. एक मित्र आणि एक शत्रु असे असतील तर १ एक गुण जाणावा. दोघेही उदासीन असतील तर ३ तीन गुण जाणावेत. ज्याविषयीं सांगितले नाहीं तेथें गुण मुळींच नाहीं. असे सांगितले आहे कीं, जेथें दोघां राशीचा एक स्वामी असतो तेथें आणि दोघे स्वामी मित्र असतील तर ५ गुण समजावेत. दोघे स्वामी सम आणि मित्र असतील तर ४ गुण जाणावेत. दोघांचें समत्व असेल तर ३ गुण जाणावेत. मित्र आणि वैर असतील तर एक गुण, जाणावा. सम आणि वैर असतील तर -॥- अर्धा गुण जाणावा. दोघे परस्परांचे वैरी असतील तर शून्य गुण जाणावा. आतां गणांचे गुणांचा विचार सांगतो—जेथें वर देवगणाचा आणि वधू मनुष्य गणाची तेथें ६ गुण जाणावेत. त्यांच्या उलट असेल ह्यांजें वधूचा देव गण आणि वराचा मनुष्य गण असेल तेथें ५ गुण जाणावेत. दोघांचा गण एकच असेल तर ६ गुण आहेत. जेथें वराचा राक्षस गण आणि वधूचा देवगण असेल तर तेथें १ एक गुण जाणावा. ह्या सांगितल्याशिवाय दुसऱ्या ठिकाणीं मुळींच गुण नाहीं ॥ ११ ॥

कूटाचे व नाडीचे गुण.

दुष्कूटे यदि योनिमैत्रमबलादूरं तदांभोधयः ।

नो चेत्स्वं त्वनयोर्पदैकमिह भूर्भाण्यैक्यके खं गुणः ॥

सत्कूटे वरदूरता भरिपुता षड्भिन्नराश्यैकमे ।

पंचान्यत्र सुकूटके च गिरयोऽथो नाडिभेदे गजाः ॥ १२ ॥

॥ इति घटितम् ॥

श्लोकार्थ—योनि मैत्री, स्त्री दूरता असून जरी दुष्कूट असेल तर ४ गुण जाणावेत. योनि मैत्री आणि स्त्री-दूरता ही दोन्ही नसतील तर गुण सुळीच नाही. दोहोंपैकी एक असेल तर १ गुण जाणावा. दोघांचे नक्षत्र आणि चरण एक असेल तर सुळीच गुण नाही. शुभ कूट असून जर नृदूरता आणि योनि वैर असेल तर ६ गुण जाणावेत. दोघांच्या राशि भिन्न आणि नक्षत्र मात्र एक असेल तर ५ गुण जाणावेत. ह्याशिवाय दुसऱ्या सर्व शुभ कूटाचे ७ गुण घ्यावेत, दोघांची नाडी भिन्न असतां ८ गुण जाणावेत ॥ १२ ॥

अथ कूटगुणविचारमाह-दुष्कूट इति । दुष्कूटे द्विर्द्वादशादौ सति यदि योनिमैत्रं अबलादूरं स्त्रीदूरं स्यात् तदांभोधयश्चत्वारो गुणा ग्राह्या नो चेद्यादि योनिमैत्रमबलादूरं न स्यात्तदा खं शून्यं गुणः स्यात् । अनयोर्योनिमैत्रस्त्रीदूरयोर्मध्ये यत्र एकं स्यात् इह भूरेको गुणः भाण्यैक्यके एकनक्षत्रैकचरणे खं शून्यं गुणो ग्राह्यः । अथ सत्कूटे सति यदि वरदूरता भरिपुता उभयोर्वैरं योनिवैरं च स्यात्तदा रस्ताः षट् गुणा ग्राह्या भिन्नराश्यैकमे पंच भिन्नराशि च एकमं च अत्र पंच गुणा ग्राह्या उर्वरिते सुकूटे गिरयः सप्त गुणा ग्राह्याः । अथ नाडीविचारमाह-अथो नाडीति । नाडिभेदे गजा अष्टौ गुणा ग्राह्या अनुक्ते गुणाभावः ॥ १२ ॥ इति मुहूर्तमार्तंडे घटितम् ॥

टीकार्थ—आतां कूट गुणांचा विचार सांगतो—द्विर्द्वादश इत्यादि दुष्कूट असूनही जर योनि मैत्री आणि स्त्रीदूर असेल तर तेथे ४ गुण घ्यावेत. आणि ही दोन्ही नसून नसतें दुष्कूट असेल तर सुळीच गुण नाही. ह्या दोहोंपैकी द्वयणजे योनि मैत्री आणि स्त्री दूर ह्यांपैकी एक असेल तर एक गुण जाणावा. दोघांचे नक्षत्र आणि चरण एक असेल तर सुळीच गुण नाही. आतां सत्कूट असून जर नृदूरता असेल, व दोघांचे वैर असेल; अर्थात् योनि वैर असेल तरी सुद्धा ६ गुण घ्यावेत. राशी भिन्न असून नक्षत्र एक असेल तर ५ गुण घ्यावेत. नुसतें सत्कूटच असेल तर ७ गुण घ्यावेत. आतां नाडी विचार सांगतो—दोघांची नाडी भिन्न असेल तर ८ गुण जाणावेत. ज्याविषयी सांगितलें नाही त्याविषयी गुण सुळीच नाही ॥ १२ ॥ या प्रमाणें मुहूर्त मार्तंडांतील घटित प्रकरण समाप्त झालें.

घटिताचे गुणमेलनाचें कोष्टक पुढील पृष्ठावर दिलें आहे.



## घटिताचे गुणमेलनाचें कोष्टक.

|      |     | रा.   | मे. | मे. | मे. | वृ. | वृ. | वृ. | मि. | मि. | मि. | क.  | क.  | क. | सि. | सि. | सि. | कं. | कं. |
|------|-----|-------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|-----|-----|-----|-----|-----|
|      |     | भा.   | १   | १   | १०  | १०  | १   | १०  | १०  | १   | १०  | १०  | १   | १  | १   | १   | १०  | १०  | १   |
| रा.  | भा. | न.    | अ.  | भ.  | कृ. | कृ. | रो. | सृ. | सृ. | आ.  | पु. | पु. | पु. | आ. | म.  | पू. | उ.  | उ.  | ह.  |
| मे.  | १   | अ.    | ३६  | ३३  | ३२  | २४  | २१  | २२  | २७  | २८  | १९  | ३३  | ३१  | २८ | २७  | ३१  | ३२  | ११  | १२  |
| मे.  | १   | म.    | ३४  | ३६  | ३४  | ३१  | २२  | १४  | १९  | २६  | २७  | ३१  | ३३  | २५ | ३२  | २४  | ३२  | २१  | २०  |
| मे.  | १०  | कृ.   | ३२  | ३२  | ३६  | ३३  | १०  | १६  | २०  | २२  | २१  | २५  | २३  | २३ | २३  | २६  | २६  | १५  | १५  |
| वृ.  | १०  | कृ.   | १८  | १८  | ३६  | ३६  | ३४  | ३२  | २५  | २५  | २५  | २२  | २४  | २० | १८  | २३  | ३१  | २८  | २८  |
| वृ.  | १   | रो.   | २३  | २४  | १३  | ३४  | ३६  | ३४  | ३२  | ३२  | २९  | २६  | १८  | १२ | १०  | २४  | २७  | ३४  | ३४  |
| वृ.  | १०  | सृ.   | २४  | ११  | ११  | ३२  | ३६  | ३६  | ३५  | ३३  | २९  | २६  | २०  | २१ | १८  | १५  | २५  | ३१  | ३४  |
| मि.  | १०  | सृ.   | २८  | २९  | २३  | २७  | ३५  | ३६  | ३६  | ३४  | ३१  | २०  | १३  | १३ | २२  | १८  | २९  | ३१  | ३२  |
| मि.  | १   | आ.    | २०  | १८  | २३  | ३३  | ३२  | ३४  | ३३  | ३६  | ३४  | २३  | २३  | १५ | २३  | १९  | २१  | २४  | २४  |
| मि.  | १०  | पु.   | ३०  | २७  | २३  | २७  | ३०  | ३१  | ३०  | ३४  | ३६  | ३४  | २३  | १६ | २१  | २५  | २०  | २३  | २४  |
| क.   | १०  | उ.    | २३  | २९  | २५  | २२  | २५  | २६  | ३०  | ३३  | ३३  | ३६  | ३४  | ३२ | २२  | २६  | २२  | १८  | १८  |
| क.   | १   | पु.   | ३०  | २४  | २७  | २४  | २१  | १९  | १३  | २४  | २३  | ३४  | ३६  | ३४ | २५  | २१  | ३०  | १६  | २६  |
| क.   | १   | आ.    | २६  | २६  | २२  | १३  | १२  | २०  | १४  | १५  | १५  | ३२  | ३४  | ३६ | २०  | २१  | १४  | २१  | २०  |
| सि.  | १   | म.    | २२  | २८  | ३१  | १७  | १०  | १८  | २१  | २२  | २०  | २२  | २५  | २२ | ३६  | ३६  | ३२  | १८  | १५  |
| सि.  | १   | पू.   | २६  | २४  | ३२  | २०  | २४  | १६  | १९  | २८  | २६  | २९  | २३  | १९ | ३६  | ३६  | ३४  | ३०  | २१  |
| सि.  | १०  | उ.    | १७  | ३२  | ३२  | २०  | २६  | २५  | २८  | २०  | २०  | २३  | ३१  | ३१ | ३२  | ३४  | ३६  | ३३  | १५  |
| कं.  | १०  | उ.    | १३  | ३२  | १६  | ३४  | ३४  | ३२  | ३१  | २३  | २३  | २०  | २८  | २३ | २३  | २१  | ३४  | ३६  | ३५  |
| क.   | १   | ह.    | १३  | २०  | २७  | २८  | ३३  | ३४  | ३३  | ३२  | २३  | २०  | २८  | २३ | २४  | २८  | २०  | ३५  | ३६  |
| कं.  | १०  | चि.   | १४  | ७   | २०  | ३१  | २८  | २०  | १९  | २६  | २४  | २१  | १३  | २७ | २९  | १५  | १४  | ३०  | ३३  |
| तू.  | १०  | चि.   | २३  | १६  | १९  | २४  | २१  | १३  | २०  | २७  | ३५  | २२  | १३  | २७ | २५  | ११  | १७  | १८  | ३४  |
| तू.  | १   | स्वा. | ३०  | २९  | १७  | १२  | १५  | २७  | ३४  | ३३  | ३४  | २२  | २८  | १५ | १२  | २४  | २५  | २६  | ३४  |
| तू.  | १०  | वि.   | २२  | २४  | २१  | १६  | ११  | ९   | ३५  | २७  | २१  | २२  | २२  | १९ | १७  | १९  | १७  | १८  | २५  |
| वृ.  | १०  | वि.   | १७  | २५  | १५  | २०  | १५  | २३  | १३  | १३  | १३  | २०  | २०  | ११ | ११  | १३  | ११  | १८  | १९  |
| वृ.  | १   | अ.    | २४  | १९  | १९  | २४  | २८  | २१  | ११  | १६  | २०  | १७  | १९  | २१ | २४  | २०  | २८  | २७  | २०  |
| वृ.  | १   | ज्ये. | १२  | १९  | २४  | २९  | २३  | २३  | १३  | ३   | ५   | ११  | २१  | २६ | २३  | २०  | १५  | १२  | १२  |
| घ.   | १   | मू.   | २८  | २८  | ३३  | २०  | १४  | १४  | २१  | १३  | १३  | १०  | १९  | २६ | ३२  | २६  | १७  | १६  | १३  |
| घ.   | १   | पू.   | ३४  | २६  | ३४  | १५  | २०  | १२  | १९  | २७  | २७  | २४  | १६  | २८ | ३२  | ३४  | ३२  | ३२  | २०  |
| घ.   | १०  | उ.    | ३२  | ३३  | ३४  | १६  | ११  | १८  | २४  | २७  | २७  | २४  | २४  | १० | २३  | ३२  | ३२  | १२  | १८  |
| म.   | १०  | उ.    | २८  | २६  | १५  | २६  | २३  | २९  | २१  | २३  | २३  | २८  | २८  | १४ | १६  | २०  | २०  | २७  | २७  |
| म.   | १   | श्र.  | २८  | २७  | २५  | २१  | २१  | २४  | २५  | २२  | २३  | २८  | २८  | १५ | १३  | १८  | १९  | २६  | २७  |
| म.   | १०  | घ.    | २१  | १२  | २६  | ३१  | २८  | २०  | ११  | १८  | १६  | २०  | १२  | २६ | २६  | १५  | १२  | १८  | २०  |
| कुं. | १०  | घ.    | २१  | १२  | २६  | ३१  | २८  | २०  | १२  | १९  | १७  | १४  | १६  | २० | २५  | ११  | १८  | १४  | २९  |
| कुं. | १   | श.    | १६  | २२  | २८  | २२  | २६  | २८  | २०  | १२  | १२  | ८   | १५  | २१ | २५  | १९  | ११  | ७   | १०  |
| कुं. | १०  | पू.   | १९  | २६  | २०  | ३४  | ३२  | ३२  | २४  | १७  | १७  | १३  | २१  | १४ | १९  | २५  | १६  | १२  | १५  |
| मी.  | १०  | पू.   | २१  | २९  | २३  | ३३  | २७  | २७  | २७  | १८  | १७  | २६  | ७   | ३० | २३  | १४  | १८  | १८  | १८  |
| मी.  | १   | उ.    | ३१  | २३  | ३१  | ३१  | २७  | १९  | १९  | २७  | २८  | २६  | १९  | २० | ३०  | १५  | २५  | २९  | २८  |
| मां. | १   | रं.   | ३२  | ३०  | १८  | १८  | १८  | २७  | २७  | ३६  | २६  | २४  | २३  | १३ | १८  | २२  | २२  | २६  | २७  |

घटिताचे गुणमेलनाचें कोष्टक.

| क.  | तू. | तू.   | तू. | वृ. | वृ. | वृ.   | घ.  | घ.  | घ. | म. | म.   | म. | कुं. | कुं. | कुं. | मी. | मी. | मी. |    |
|-----|-----|-------|-----|-----|-----|-------|-----|-----|----|----|------|----|------|------|------|-----|-----|-----|----|
| ॥   | ॥   | १     | ॥   | ॥   | १   | १     | १   | १   | ॥  | ॥  | १    | ॥  | ॥    | १    | ॥    | ॥   | १   | १   |    |
| चि. | चि. | स्वा. | वि. | वि. | अ.  | ज्ये. | मू. | पू. | उ. | उ. | श्र. | घ. | घ.   | श.   | पू.  | पू. | उ.  | रे. |    |
| २४  | २२  | २९    | २३  | १९  | २४  | १५    | २१  | ३३  | ३१ | ३६ | २७   | २१ | २१   | १६   | १०   | २२  | ३१  | ३४  | १  |
| ५   | १३  | १९    | २२  | १८  | १५  | १९    | ३४  | २६  | ३४ | २८ | २७   | ११ | ११   | २७   | २५   | ३०  | २४  | ३२  | २  |
| १९  | २७  | १५    | १९  | १६  | १८  | २७    | ३३  | २८  | २० | १४ | २४   | २५ | २६   | २७   | २०   | २५  | २६  | १०  | ३  |
| २८  | २०  | ७     | १२  | २०  | १६  | ३०    | २२  | २३  | ९  | १४ | २०   | ३१ | ३०   | ३१   | २४   | २१  | २१  | १४  | ४  |
| ३४  | १७  | १३    | ६   | १४  | २९  | २४    | १५  | ३१  | १२ | १८ | २६   | ३४ | ३३   | ३१   | ३१   | २८  | २८  | ३०  | ५  |
| २१  | १०  | २३    | १५  | २३  | २१  | २५    | १६  | १२  | १८ | २३ | ३४   | २१ | २०   | २८   | २०   | २७  | २९  | २८  | ६  |
| २१  | २१  | ३४    | ३४  | २४  | ११  | १५    | २३  | १९  | १८ | २१ | २६   | ३३ | १४   | २९   | २४   | २७  | २९  | २८  | ७  |
| ३४  | ३४  | ३४    | ३४  | २१  | १७  | ४     | १४  | २८  | २८ | २४ | २९   | १९ | २०   | १३   | ८    | २०  | २८  | २८  | ८  |
| २७  | २७  | ३४    | २९  | १६  | २१  | ७     | १५  | २७  | २७ | २३ | २४   | १८ | १९   | १४   | १०   | १९  | २८  | २८  | ९  |
| २२  | २२  | २८    | २३  | २१  | २६  | ११    | १०  | २३  | २६ | २६ | २७   | २१ | १४   | ८    | ११   | २०  | ३६  | २५  | १० |
| १२  | १२  | २७    | २२  | २१  | १८  | ११    | १९  | १४  | २२ | २६ | २७   | २३ | ६    | १५   | १०   | ८   | १८  | २७  | ११ |
| २८  | २७  | ६     | १०  | १६  | २०  | २६    | २५  | १७  | ९  | २३ | २३   | २६ | ९    | २०   | १३   | २४  | ३१  | १३  | १२ |
| २८  | २४  | १०    | १९  | ३२  | २४  | ३२    | ३२  | १६  | १७ | ४  | ४    | १९ | २४   | २४   | १८   | १८  | १८  | ११  | १३ |
| १४  | १६  | २४    | १८  | २४  | २२  | ३०    | ३२  | २४  | ३२ | १९ | १८   | ५  | ९    | १८   | २४   | २४  | १६  | २४  | १४ |
| १९  | १५  | २५    | १५  | २१  | ३०  | २२    | २३  | ३२  | ३२ | १९ | १९   | १२ | १६   | १०   | १०   | १५  | २६  | २४  | १५ |
| ३०  | २०  | ३०    | २२  | १८  | २७  | १३    | २४  | २९  | २९ | १६ | २६   | १८ | १६   | ९    | ११   | १८  | ३०  | २८  | १६ |
| ३३  | २६  | ३२    | २४  | २०  | २७  | १४    | १५  | २७  | २६ | २५ | २६   | २१ | १७   | १०   | १३   | १८  | ३०  | २८  | १७ |
| ३६  | ३३  | २६    | ३०  | २४  | ११  | २५    | २६  | १२  | २२ | १८ | १९   | १८ | १९   | २२   | १७   | २०  | १२  | २२  | १८ |
| ३४  | ३६  | ३२    | ३२  | ३२  | ७   | ११    | २१  | १२  | २२ | २६ | २६   | २४ | २४   | ३०   | २६   | २४  | ५   | ५   | १९ |
| २८  | ३३  | ३६    | ३६  | २३  | २०  | २७    | २३  | २७  | १८ | २३ | २१   | २७ | २७   | २८   | ३४   | २०  | २१  | १३  | २० |
| ३२  | ३२  | ३३    | ३४  | ३६  | १७  | २१    | २६  | २०  | १४ | १८ | १६   | ३० | ३०   | ३१   | २०   | १५  | १४  | ७   | २१ |
| २६  | १९  | २६    | २६  | ३२  | ३६  | ३१    | २८  | २३  | १७ | १३ | १५   | २४ | २४   | २५   | ११   | २६  | १५  | १९  | २२ |
| १२  | ८   | ३२    | १८  | ३३  | ३६  | ३६    | २४  | ३२  | ३० | २६ | ३१   | १६ | ११   | २१   | २४   | ३१  | २५  | ३४  | २३ |
| २५  | २१  | १६    | २१  | २१  | ३६  | ३६    | ३६  | २७  | २५ | २१ | २५   | २१ | २४   | २६   | १०   | १६  | १८  | २८  | २४ |
| २७  | २७  | २६    | २७  | ३२  | १४  | २४    | ३४  | ३६  | ३२ | २२ | २६   | ३० | २७   | २०   | १३   | १६  | २६  | २८  | २५ |
| १२  | १८  | १९    | २६  | ३१  | ४   | ३२    | ३४  | ३६  | ३६ | २४ | ३४   | १६ | १३   | २३   | २७   | ३०  | १७  | ३२  | २६ |
| २१  | २७  | १९    | १९  | २३  | ३२  | ३२    | ३२  | २४  | ३६ | ३६ | २६   | ३२ | ३३   | २२   | २९   | ३२  | ३२  | २४  | २७ |
| १७  | ३१  | ३१    | २३  | १९  | २७  | २२    | २८  | २५  | ३३ | ३६ | ३६   | ३२ | ३१   | १८   | ३१   | ३०  | ३०  | २२  | २८ |
| २०  | २७  | २२    | १७  | १०  | २७  | २३    | १९  | २८  | २७ | ३४ | ३६   | ३६ | ३६   | १९   | २९   | २७  | २९  | २२  | २९ |
| १७  | २४  | २९    | ३०  | २७  | १३  | २७    | २४  | ९   | १८ | ३२ | २७   | ३४ | ३६   | २५   | २५   | २४  | २४  | २२  | ३० |
| १७  | २५  | २७    | ३१  | २६  | १२  | २६    | २२  | १५  | २४ | २६ | २९   | ३१ | ३४   | ३६   | ३२   | २७  | ८   | १५  | ३१ |
| २५  | २३  | २८    | २३  | ७   | २१  | १९    | ३२  | २४  | २४ | २६ | १८   | २५ | ३३   | ३६   | ३६   | १८  | १०  | २७  | ३२ |
| १७  | ३१  | ३३    | ३३  | २७  | २७  | ३४    | १६  | १९  | ३० | ३२ | २३   | १८ | ३३   | ३३   | ३३   | ३४  | २१  | ३३  | ३३ |
| २०  | १३  | २०    | १४  | २७  | २६  | १३    | २३  | ३०  | ३१ | २९ | ३०   | ३१ | १७   | १०   | १७   | ३४  | ३६  | ३०  | ३४ |
| ११  | ५   | २१    | १३  | २६  | १९  | ३४    | ३१  | २३  | ११ | २९ | २१   | २२ | ८    | १७   | २०   | ३३  | ३६  | ३६  | ३५ |
| १२  | १८  | १२    | ८   | १८  | २७  | २९    | २८  | ३०  | २२ | २९ | २३   | २९ | १७   | १७   | २०   | ३०  | ३४  | ३४  | ३६ |

## विवाहकाल.

स्त्रीणामष्टमवर्षतस्त्रिषु नृणां तीर्णव्रतानामयु- ।  
 द्ववदेष्वत्र च राधमाघयुगयोर्मार्गे विवाहः शुभः ॥  
 ज्येष्ठं पूर्वजयोस्त्यजेद्विभरुचिं ज्ञेज्योनखेटान्वितम् ।  
 यन्मासादिजनुर्भवं प्रथमके गर्भे त्यजेन्नानुजे ॥ १३ ॥

श्लोकार्थ—पुरुषाचा विवाह करण्याचा काळ असा कीं, वेद-व्रतें, झाल्यावर समावर्तना नंतर विषमवर्षी करावा, आणि स्त्रियांचा जन्मापासून ८-९-१० हा काळ मुख्य आहे. वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, मार्गशीर्ष हे पांच महिने विवाहाला शुभ आहेत. वधू व वर दोघें पहिल्या गर्भात झालेलीं असतील तर ज्येष्ठ मास विवाहास वर्ज्य आहे. बुध आणि गुरु ह्यांशिवाय दुसऱ्या ग्रहांनीं युक्त असलेला चंद्र सोडावा. पूर्वीच्या त्याज्य प्रकरणांत सांगितलेलें जन्म मासादि जें अशुभ आहे तें पहिल्यानें गर्भात झालेल्याला सोडावें, कनिष्ठाला सोडण्याचें कारण नाही ॥ १३ ॥

अथ स्त्रीणां विवाहकालमाह-स्त्रीणामिति । स्त्रीणामष्टमवर्षतः सकाशात् त्रिषु वर्षेषु विवाहः शुभः स्यात् अष्टमनवमदशमेषु शुभः स्यादित्यर्थः । तथा च संवर्तः । अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या द्वादशे वृषली मतेति ॥ गौरीदानान्नागलोकं वैकुण्ठे रोहिणीं ददत् । कन्यादानाद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलेति ॥ रजस्वलेति वृषलीपर्यायः । तथा च कारिकायामुक्तं । पडव्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः । सोमो भुंक्ते ततस्तद्वर्ध्वश्च तथाऽनल इति ॥ अस्य वाक्यस्य सहायिनी श्रुतिरपि । सोमः प्रथमो विविद इत्युपक्रम्य सोमोदद्वर्ध्ववीर्यं गंधर्वो दददग्नय इत्यंता । नन्वस्य विरोधो ब्रह्मपुराणे गौतमीमाहात्म्ये भानुतीर्थवर्णने विष्टिभानुसंवादे दृश्यते । भानुस्वाच । चतुर्थाद्वत्सरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्ययः । तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यः प्रयत्नत इति ॥ सत्यं । अत्र पुराणवाक्यं शूद्रादिविषयं न श्रौतस्मार्तब्राह्मणादिविषयं इत्यविरोधः सप्तमवर्षे विषमत्वाभ्रार-दादिभिः स्त्रीविवाहे नांगीकृतं तस्माच्छास्त्रतत्त्ववेदिनाऽऽचार्येण सर्ववर्णानामविरुद्धमेवोक्तं स्त्रीणामष्टमवर्षतस्त्रिष्विति । कथितकालादूर्ध्वं कदाचिद्ब्रालाभनिमित्तादौ समवर्षेषु द्वादशचतुर्दशषोडशेषु विवाहो ग्रंथांतरे उक्तः । कालनिर्णयदीपिकाविवरणे स्वयंवरार्थं कालद्वयमुक्तं जीवत्पितृकाया ऋतौ वर्षत्रयानंतरं स्वयंवरकालः । अदातृकाया अपि ऋतौ वर्षत्रयानंतरं स्वयंवरकालः । अदातृकाया इत्येतत्सर्ववर्णसाधारणं । कन्याप्रदातारः कालनिर्णयदीपिकायामुक्ताः । पिता पितामहो भ्राता मातावंधुर्यदा नहि । ऋतौ वर्षत्रयादूर्ध्वं कन्या कुर्यात्स्वयंवरमिति ॥ बौधायनोऽप्याह-वर्षाणि त्रीण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनं । ततश्चतुर्थे वर्षे तु विदेत सदशं पतिमिति । अथ पुंसां विवाहकालमाह-नृणामिति । नृणां तीर्णव्रतानां कृतव्रतविसर्गाणां अयुग्मेषु विषमेषु अर्धेषु वर्षेषु विवाहः शुभः स्यात् । नुर्विशेषे उक्तवर्षेषु कर्तव्य इत्याह-अत्र राधमाघयुगयोः अत्र विषमवर्षेषु राधो वैशाखः माघः प्रसिद्धः अनयोर्युगे युगले राधयुगं वैशाखज्येष्ठौ माघयुगं माघफाल्गुनावित्यर्थः । मार्गे मार्गशीर्षे विवाहः शुभः स्यात् । एते पंच मासा बहुसंमताः । एषु ज्येष्ठं ज्येष्ठमासं पूर्वजयोः प्रथमजा-तयोः द्वयोस्त्यजेत् अर्थादेकतरे ज्येष्ठे सति न त्यजेत् । दोषांतरमाह-विभरुचिं चंद्रं ज्ञेज्योनखेटा-न्वितं बुधगुरुरहितान्यग्रहयुक्तं पापग्रहशुक्राणामन्यतमयुक्तं त्यजेदनिष्टफलश्रवणात् । मासाद्यं जानि-संभवमिति त्याज्यप्रकरणोक्तं यत्तस्य विशेषनिर्णयमाह-यन्मासादीति । स्पष्टार्थः । नारदः । न जन्ममासे नक्षत्रे न जन्मदिवसेऽपि वा । आद्यगर्भे सुतस्यापि दुहितुर्वा करग्रह इति ॥ १३ ॥

टीकार्थ—आतां स्त्रियांच्या विवाहाचा काळ सांगतो-स्त्रियांना आठवर्षांपासून तीनवर्षांपर्यंत ह्मणजे ८-९-१० अशीं तीन वर्षे शुभकाळ आहे. तेंच संवर्तामध्ये सांगितलें आहे कीं, आठ वर्षांची स्त्री गौरी या नांवाची असते. नऊ वर्षांची रोहिणी या नांवाची असते, दहावर्षांची कन्या ह्या नांवाची असते, बारा वर्षांची स्त्री वृषली ह्मणजे शरीर समजावी, गौरीचें दान केल्यापासून नाग लोकाची प्राप्ति होते, रोहिणीचें दान केल्यापासून वैकुण्ठ लोकाची प्राप्ति होते. कन्येचें दान केल्यापासून

ब्रह्मलोकाची प्राप्ति होते. रजस्वलेवे दान केल्याने रौरव नरकाची प्राप्ति होते. रजस्वला ह्मणजे वर सांगितलेली वृषली समजावी. तेच कारिकेत सांगितले आहे की, सहावर्षीपर्यंत कन्येचा विवाह करूं नये कारण की, दोन वर्षीपर्यंत चंद्रमा भोगीत असतो, पुढे दोनवर्ष पर्यंत गंधर्व भोगीत असतो, त्या पुढे दोनवर्ष पर्यंत अग्नि भोगीत असतो, ह्या वाक्याला साहाय्य देणारी ह्मणजे मूळ भूत प्रमाण श्रुतिही आहे, ती अशी की, चंद्रमाने प्रथम भोगली नंतर त्या चंद्राने गंधर्वाला भोगण्याकरिता दिली. नंतर गंधर्वाने अग्नीला भोगण्या करिता दिली अशी आहे. आतां अशी शंका येते की, ब्रह्मपुराणांत गौतमी महात्म्यामध्ये भानुतीर्थवर्णनाचेवेळीं विष्टिभानु ह्यांचा संवाद झाला असतां भानु सांगतो की, चवथ्यावर्षापासून तो दहावर्षीपर्यंत कन्येचा विवाह वापानें मोठ्या प्रयत्नानें करावा. हें ह्मणणें खरें आहे परंतु हें पुराण वाक्य शूद्रादिकांविषयी आहे, श्रौतस्मार्तकर्माधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रियादि विषयक नाही ह्मणून त्याचा आपल्या संवत्स्मृतीला विरोध नाही. सातवें वर्ष विषम असल्यामुळे नारदादिकांनीं स्त्रीचे विवाहास घेऊं नये असें ह्मटल्यामुळे तें त्याज्य आहे. ह्मणूनच शास्त्राचें तत्त्व जाणणाऱ्या आचार्यानें सर्व वर्णांनां विरुद्ध नाही असा ८-९-१० वर्षांचा काळ सांगितला. ह्या सांगितलेल्या ८-९-१० ह्या काळाचें उल्लेखन उत्तम वर न मिळाल्यामुळे कदाचित् झालें तर समवर्षी ह्मणजे १२-१४-१६ ह्या वर्षी विवाह करावा, असें दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितले आहे. कालनिर्णयदीपिका विवरणांत स्वयंवरा करितां दोन काळ सांगितले आहेत. आईवाप जिवंत असलेल्या कन्येस ऋतुप्राप्त झाल्यावर तीनवर्ष पर्यंत बापाची लग्नाची वाट पाहून मग कन्येनें आपल्या इच्छेनें वर पसंत करावा. ज्या कन्येचें दान करणारा ह्मणजे दाता कोणी नाही, तिनें ऋतु आल्या नंतर तीनवर्षपर्यंत वाट पाहून मग स्वयंवर करावा. असे दोन काल सांगितले आहेत. जिचा दाता नाही हें सर्व वर्णांना साधारण वचन आहे. कन्येचें दान करणारे कोण कोण अधिकारी आहेत हें कालनिर्णय दीपिकेत सांगितले आहे तें असें की, बाप, बापाचा बाप, भाऊ, आई, बंधु ह्मणजे चुलतबंधु, आतेबंधु, मामेबंधु वगैरे इतके दाते जर नसतील तर ऋतु येऊन तीन वर्षे झाल्यावर मग कन्येनें स्वतःच वर पाहून स्वयंवर करावा. बौधायन ही सांगतो की, ऋतु आल्यावरही कन्येनें बापाची तीनवर्ष पर्यंत वाट पाहवी, बापानें विवाह नाहीच केला तर मग चवथ्यावर्षी कन्येनें आपल्या मनासारखा पति स्वयंवरांत वरावा. आतां पुरुषांचा विवाह काल सांगतो—ब्रतें संपल्यावर विषमवर्षी पुरुषाचा विवाह करणें शुभ आहे, पुरुषाविषयी सांगितलेल्या वर्षी विवाह करावा. त्यांतील विशेष सांगतो—विषमवर्षांमध्येही वैशाखयुग ह्मणजे वैशाख आणि ज्येष्ठ, माघ युग ह्मणजे माघ आणि फाल्गुन हे चार महिने आणि मार्गशीर्ष ह्या पांच महिन्यांत विवाह करणें शुभ आहे. हे पांच महिने सर्व संमत आहेत. ह्या पैकीं ज्येष्ठ महिना प्रथम झालेल्या पुत्र आणि कन्येस वर्ज्य आहे. अर्थात् एक पुरुष किंवा कन्या ज्येष्ठ असेल तर ज्येष्ठमास सोडण्याचें कारण नाही. दुसरा दोष सांगतो—बुध आणि गुरु ह्यां शिवाय, दुष्टपापग्रहांनीं आणि शुक्र ह्यानीं युक्त झालेला चंद्र सोडावा. कारण त्याचें अनिष्टफल आहे, असें वचनावरून ऐकण्यांत येत आहेत. “मासाद्यं जनिसंभवं” ह्या त्याज्य प्रकरणांत जें सांगितलें त्याचा निर्णय सांगतो—जें मासादि त्याज्य असेल तें वर सांगितल्या प्रमाणें समजावें नारद सांगतो की, पहिल्या गर्भांतला पुत्र अथवा कन्या कोणी असो, त्याच्या जन्ममासी, जन्मदिवशी, जन्मनक्षत्री विवाह करूं नये ॥ १३ ॥

विवाहनक्षत्रे आणि वेध.

मूलांत्यार्कमघास्थिरेंद्वनिलयुङ्मैत्रं विवाहे शुभम् ।

पापत्यक्तमनिदुभुक् खलयुतं भोग्यं च विद्धं च भम् ॥

विश्वेद्वेर्घमभिन्नयोर्द्विकभयोः पैत्र्यर्क्षहयोर्भिथो- ।

स्त्यार्यम्णोः पुनरस्रपोर्वरुणभस्वात्पोरुभाहस्तयोः ॥ १४ ॥

श्लोकार्थ—विवाह करण्यास योग्य अशीं अकरा नक्षत्रे आहेत तीं अशीं की, १ मूल, २ रेवती, ३ हस्त, ४ मघा, ५ रोहिणी, ६ उत्तराफ०, ७ उत्तराषा०, ८ उत्तराभा०, ९ मृगशीर्ष, १० स्वाती, ११ अनुराधा हीं होत. हीं नक्षत्रे पाप ग्रहानें युक्त नसावीत परंतु त्या नक्षत्राशीं चंद्राचा योग असावा. तशींच खल ग्रहानें युक्त, भोग्य आणि विद्ध अशीं नक्षत्रे विवाहाला शुभ नाहीत, आतां वेध होणाऱ्या नक्षत्रांचीं जोडणीं अशीं की, उत्तराषाढा मृग, भरणी अनुराधा, रोहिणी अभिजित, रेवती उत्तराफ०, पुनर्वसु मूल, शततारका स्वाती, उत्तराभा० हस्त ह्या पंध्र शलाक नक्षत्रांत परस्पर वेध होतो ॥ १४ ॥ मघाभिनय

अथ विवाहनक्षत्राणि सवेधान्याह—मूलांत्याकैति । मूलं प्रसिद्धं अंत्यं रेवती अर्को हस्तः मघा प्रसिद्धा स्थिराणि रोहिण्युत्तरात्रयं इंदुर्मृगः अनिलं स्वाती एभिः सहितं मैत्रं अनुराधा विवाहे शुभं शुभफलदं । अथैतेषूक्तं निधमाह—पापत्यक्तं असत् अनिदुभुक् चंद्राभुक्तं अशुभं एतदुक्तं भवति पाप-ग्रहत्यक्तं नक्षत्रं चंद्रभुक्तिरहितं न शुभं स्यात् खल्युक्तं पापग्रहयुक्तं भोग्यं विद्धं न शुभं स्यात् । अथ वेधमाह—विश्वेन्द्रोः उत्तरामृगयोः यममित्रयोः भरण्यानुराधयोः द्विकभयोः कस्य मे कमे द्वे च ते कमे च द्विकमे रोहिण्यभिजितौ तयोः । पैयक्षैर्हयोः मघाश्रवणयोः मिथः परस्परं अंत्यार्यम्णोः रेवत्युत्तराफाल्गुन्योः पुनरस्त्रपोः पुनर्वसुमूलयोः वरुणभस्वात्योः शततारास्वात्योः उभाहस्तयोः उत्तराभाद्रपदाहस्तयोः मिथः परस्परं वेधः स्यात् इत्युत्तरश्लोकेनान्वयः ॥ १४ ॥

टीका—आतां विवाहाचीं नक्षत्रे वेधसहित सांगतो—१ मूल २ अंत्य ह्य० रेवती ३ अर्क ह्य० हस्त ४ मघा ५ स्थिर ह्य० रोहिणी उत्तरातीन ह्य० ६ उत्तराफा० ७ उत्तराभा० ८ उत्तराभा० ९ इंदु ह्य० मृग १० अनिल ह्य० स्वाती ११ मैत्र ह्य० अनुराधा इतकीं नक्षत्रे विवाहास शुभ आहेत आतां हीं नक्षत्रे पापग्रहांनीं सोडलेलीं असून चंद्राच्या भोगाने रहित नसावीत अर्थात् चंद्राने भोगलेलीं असावीत. पापग्रहाने युक्त पापांनीं भोग्य आणि पापांनीं विद्धहीं शुभ नाहींत. आतां वेध सांगतो—विश्व ह्य० उत्तरा इंदु ह्य० मृगशीर्ष ह्य० दोहोंचा वेध आहे. यम ह्य० भरणी मित्र ह्य० अनुराधा ह्य० वेध आहे. दोन कचीं ह्य० ब्रह्मदेवाचीं नक्षत्रे ह्य० भरणी आणि अभिजित् ह्य० वेध आहे. पैयक्ष ह्य० मघा हरि ह्य० श्रवण ह्य० वेध आहे. अंत्य ह्य० रेवती अर्थमा ह्य० उत्तराफा० ह्य० वेध आहे. पुनर्वसु आणि असप ह्य० मूल ह्य० वेध आहे. वरुणभ ह्य० शतताराका आणि स्वाती ह्य० वेध आहे. उभा ह्य० उत्तराभा० आणि हस्त ह्य० वेध आहे. ह्यांचा वेध कसा कसा असतो तो पुढे सांगायच्या शलाका चक्रांत आहे ॥ १४ ॥

वेधनिर्णय.

वेधोऽयं करपीडने निगदितो नान्येषु तेषु स्मृतः ।

वेधः सप्तशलाकके शिवदिशः कार्शानवाद्यैर्युते ॥

वेधोऽत्यादिमयोर्द्विकत्रिमितयोरंशयोर्मिथः सद्ग्रहैः ।

विद्धे मे चरणं त्यजेत्सलस्रगैः सर्वं त्विहांश्चि कचित् ॥ १५ ॥

श्लोकार्थ—मागच्या श्लोकांतिल वेध विवाहाला मात्र सांगितला तो अन्यकर्मांला घेऊं नये. उभ्या सात रेवांवर आडव्या सात रेवा काढून त्या चक्रांत ईशान्य दिशेपासून कृत्तिकादि सर्व नक्षत्रे मांडून त्या सप्तशलाका चक्रांत होणारा वेध विवाहावांचून सर्व कर्मांला सांगितला आहे. ज्या दोन नक्षत्रांचा वेध होतो, त्यांतिल एकाच्या प्रथम चरणास ग्रह असतां दुसऱ्याच्या चतुर्थचरणास वेध होतो, आणि दुसऱ्या चरणाला असतां तिसऱ्या चरणाला वेध होतो. शुभ ग्रहांनीं वेध होत असलेल्या नक्षत्राचा विद्ध चरण सोडावा. खलग्रहांनीं वेध होणारें सर्व नक्षत्र सोडावें. अन्य मुहूर्त नसल्यास चरणही सोडावा ॥ १५ ॥

अथ कर्मविशेषेण वेधनिर्णयमाह—वेधोऽयमिति । अयं वेधः करपीडने विवाहे पूर्वं मुनिभिर्निगदितः नान्येषु अन्येषु शुभकर्मसु अयं वेधो नोक्त इत्यर्थः । तेषु विवाहान्यकर्मसु सप्तशलाकके स्मृतः किंभूते सप्तशलाकके चक्रे शिवदिशः ईशान्याः सकाशात् कार्शानवाद्यैर्युते कृशानुः देवता यस्येति कार्शानवं कृत्तिका सा आद्या येषां तानि तैर्युते ईशान्यादिप्रदक्षिणं कृत्तिकादिनक्षत्रयुक्तमित्यर्थः । विवाहादते सर्वकर्मसु सप्तशलाकाचक्रे वेधोऽवलोकनीय इति । अथ पादवेधमाह—वेधोऽत्यादिमयोरिति । अंत्यादिमयोः चतुर्थप्रथमयोः द्विकत्रिमितयोः द्वितीयतृतीययोः अंशयोश्चरणयोः मिथः परस्परं वेधः स्यात् । अथास्य निर्णयमाह—सत्स्रगैः शुभग्रहैः मे नक्षत्रे विद्धे सति चरणं त्यजेत् खलस्रगैः पापग्रहैः विद्धे सति सर्वं नक्षत्रं त्यजेदित्यर्थः । इहास्मिन् पापविद्धे कचिदन्यमुहूर्तालामे सति अंग्नि चरणं विद्धं त्यजेदित्यर्थः । उक्तं च मांडव्येन । धिष्यं सौम्यग्रहैर्विद्धं पादमात्रं परित्यजेत् । क्रूरैस्तु सकलं त्याज्यमिति वेधविनिश्चय इति । वेधनाथः । वेधमाद्यंतयोरंशयोरन्योन्यं द्वितृतीययोः । क्रूरैरपि त्यजेत्पादं केचिदुच्चमर्हय इति ॥ १५ ॥

**टीकाथ—**आतां विशेष कर्माकरितां वेधाचा निर्णय सांगतो—हा चवदाव्या श्लोकांतील पंचशलाका नक्षत्रांचा वेध विवाहामध्ये त्याज्य करावा असें पूर्वीच्या मुनींनी सांगितलें आहे. दुसऱ्या कोणत्याही शुभकार्या मध्ये हा वेध शोधावयास सांगितलें नाहीं. विवाहाशिवाय दुसऱ्या कर्माविषयीं सप्तशलाका वेध सांगितला आहे तो असा कीं, सात रेधा उभ्या व सात रेधा आडव्या काढून मग ईशान्य दिशेपासून कृत्तिका नक्षत्रा पासून प्रदक्षिणेच्या क्रमानें कृत्तिकानक्षत्र घेऊन एकसारख्या वरती सात रेधांवर सात, उजव्या हाताकडच्या सात रेधांवर सात, खालच्या सात रेधांवर सात, डाव्या हाताकडच्या सात रेधांवर सात मिळून २८ अष्टावीस नक्षत्रे मांडावांत ह्मणजे सप्तशलाका नक्षत्रांचें चक्र होत त्यावर वेध पहावा. आतां पादाचा वेध सांगतो—तो असा, पहिला आणि चवथ्यापादाचा वेध होतो. दुसऱ्या आणि तिसऱ्या पादाचा वेध होतो. आतां ह्याचा निर्णय सांगतो—शुभग्रहांनीं नक्षत्र विद्ध झालें असेल तर त्या नक्षत्राचा एक चरण सोडावा. आणि पापग्रहांनीं विद्ध असेल तर तें सर्व नक्षत्र सोडावें. आतां कदाचित् पापग्रहांनीं वेध असून दुसरे नक्षत्राचा मुहूर्त न मिळेल तर एक चरण सोडूनही कार्य करावें. हाच अर्थ मांडव्यानें सांगितला आहे कीं, शुभग्रहांनीं वेधलेलें नक्षत्र असेल त्याचा एक चरण सोडावा. क्रांतीं वेधलेलें नक्षत्र असेल तें सर्व नक्षत्र सोडावें असा वेधाचा निश्चय आहे. वेद्यनाथ असें सांगतो कीं, पहिला आणि चवथा ह्या दोन पादांचा वेध असतो व दुसरा आणि तिसरा ह्या दोन पादांचा वेध असतो कूरग्रहांनीं नक्षत्रांचा वेध झाला असेल तरीसुद्धां त्या नक्षत्राचा एक पाद सोडावा असें कित्येक महा कृपि बोलतात ॥ १५ ॥

( उभ्या पांच रेधांवर आडव्या पांच रेधा काढून त्यांच्या कोनावर दोन दोन रेधा काढिल्या ह्मणजे तें पंचशलाका चक्र होतें. त्यांत ईशान्य दिशेपासून कृत्तिकादि नक्षत्रे मांडावीं आणि त्यांवरून पंचशलाका वेध पहावा. ) पुढच्या आकृतीं वरून दोनही चक्रांचे वेध स्पष्ट समजतील.

**विवाह पंचशलाकाचक्रं.**

|    |     |    |    |    |    |      |   |      |
|----|-----|----|----|----|----|------|---|------|
|    | क   | रो | मृ | आ  | पु | पु   | आ |      |
| भ  |     |    |    |    |    |      |   | भ    |
| अ  |     |    |    |    |    |      |   | पू   |
| रे |     |    |    |    |    |      |   | उ    |
| उ  |     |    |    |    |    |      |   | ह    |
| पू |     |    |    |    |    |      |   | चि   |
| श  |     |    |    |    |    |      |   | स्वा |
| ध  |     |    |    |    |    |      |   | वि   |
|    | श्र | अ  | उ  | पू | मू | ल्ये | अ |      |

**सप्तशलाकाचक्रं. ब्रतबंधादि**

|    |     |    |    |    |    |      |   |      |
|----|-----|----|----|----|----|------|---|------|
|    | क   | रो | मृ | आ  | पु | पु   | आ |      |
| भ  |     |    |    |    |    |      |   | भ    |
| अ  |     |    |    |    |    |      |   | पू   |
| रे |     |    |    |    |    |      |   | उ    |
| उ  |     |    |    |    |    |      |   | ह    |
| पू |     |    |    |    |    |      |   | चि   |
| श  |     |    |    |    |    |      |   | स्वा |
| ध  |     |    |    |    |    |      |   | वि   |
|    | श्र | अ  | उ  | पू | मू | ल्ये | अ |      |

**सप्तशलाका वेधाचीं नक्षत्रे.**

॥ क्षेपकः ॥ भाग्याद्ये पितृयाम्यभेऽग्निहरिभे विश्वेदुर्भेऽत्यार्यभे ।

पुण्येद्रे द्विकभे स्मरारिजलभे चित्राजपादे मिथः ॥

मूलक्षोदितिभे द्विदैववसुभे सर्पानुराधे व्यधो- ।

ऽहिर्बुध्न्यर्कभयोश्च पाश्यानिलयोः सप्ताहचक्रे स्मृतः ॥ १ ॥

**क्षेपकार्थ—**पुढें दाखविलेल्या दोन दोन नक्षत्रांचा परस्परांस वेध होतो जसा पूर्वाफाल्गुनीला कोणी ग्रह असतां अश्विनीला वेध होवो आणि अश्विनीला कोणी ग्रह असतां पूर्वाफाल्गुनीला वेध होतो. जसे—भाग्य हा० पूर्वाफाल्गुनी आणि आद्य हा० अश्विनी ह्यांचा वेध. पितृ हा० मघा यम हा० भरणी ह्यांचा वेध. अग्नि हा० कृत्तिका हरि हा० श्रवण ह्यांचा वेध. विश्व हा० उत्तराषाढा इंदु हा० मृगशीर्ष ह्यांचा वेध. अंश हा० रेवता आणि अश्लेष हा० उत्तराफा० ह्यांचा वेध. पुष्य हा० पुष्य आणि इंद्र हा० ज्येष्ठा ह्यांचा वेध. दोन कर्ची हा० ब्रह्मदेवाची नक्षत्रे हा० रोहिणी आणि अभिजित् ह्यांचा वेध. स्मरारी हा० शिव त्याचें नक्षत्र आर्द्रा आणि जलाचं हा० पूर्वाषाढा ह्यांचा वेध. चित्रा आणि अजपाव हा० पूर्वाभाद्रपदा ह्यांचा वेध. मूल आणि अदिति हा० पुनर्वसु ह्यांचा वेध. दोन देवाचें नक्षत्र हा०



विशाखा आणि वसुचे नक्षत्र ह्य० धनिष्ठा ह्यांचा वेध. सर्प ह्य० आश्लेषा आणि अनुराधा ह्यांचा वेध. अहिर्बुध्न्य ह्य० उत्तरा-  
भाद्रपदा आणि अर्क ह्य० हस्त ह्यांचा वेध. पाशी ह्य० शततारका अनिल ह्य० स्वाती ह्यांचा वेध. ह्यणजे या दोघांना पर-  
स्परांचा वेध आहे ह्यणजे ह्यांपैकीं एका नक्षत्राला जर दुष्टग्रहाचा वेध असला तर त्यामुळे तें दुसरें नक्षत्रही। विद्ध समजावें.  
जसें अश्विनीनक्षत्र जर एकाद्या पापग्रहानें विद्ध असेल तर त्यामुळे पूर्वाफाल्गुनीही पापानें विद्ध समजावी किंवा पूर्वा-  
फाल्गुनीपापानें विद्ध असली तर अश्विनीही पापानें विद्ध समजावी ॥ १ ॥

वेधाचे अपवाद व लत्ता.

लग्नेशे भवगेऽथ वा शशिनि सदृष्टे शुभे वाऽगगे ।

होरायां च शुभस्य वा व्यधभयं नास्तीति पूर्वे जगुः ॥

भौमात्र्याकृतिषट्जिनाष्टनखभं हंत्यग्रतो लत्तया ।

खेटोऽर्कोऽर्कमितं शशी मुनिमितं पूर्णो न सन्मालवे ॥ १६ ॥

श्लोकार्थ—आ पण जें लग्न दृष्ट धरलेलें असेल त्याचा स्वामी लाभस्थानीं ह्यणजे १ अकरावे स्थानीं असतां किंवा २ शुभ ग्रहाची पूर्ण दृष्टि चंद्रावर असतां अथवा ३ शुभ ग्रह लग्नीं असतां किंवा ४ ती होरा शुभ ग्रहाची असतां वेधाचा दोष नाही असें पूर्वे ऋषींचें मत आहे. ह्या प्रमाणें हे चार वेधाचे अपवाद जाणवित, आतां लत्तेचा विचार सांगतो—तो असा कीं, मंगळ हा ग्रह ज्या नक्षत्रां असतो त्या नक्षत्रापासून पुढील तिसऱ्या नक्षत्रावर लत्ता मारतो, बुध २२ व्या नक्षत्रावर, गुरु साहाय्या नक्षत्रावर, शुक्र २४ व्या नक्षत्रावर, शनि ८ व्या नक्षत्रावर, राहु २० व्या नक्षत्रावर रवि १२ व्या नक्षत्रावर आणि पूर्ण चंद्र ७ व्या नक्षत्रावर लत्ता मारितो असा नियम आहे. ज्या नक्षत्रावर, लत्ता पोहोचते तें नक्षत्र मालव देशांत मंगल कार्याला शुभ नाही अर्थात् अन्य देशीं शुभ आहे, तेव्हां लत्तेचा दोष नाही असें सिद्ध झालें ॥ १६ ॥

अथ वेधभंगमाह—लग्नेश इति । लग्नेशे लग्नस्वामिनि भवगे एकादशगे साति वेधस्य दोषो नास्ती-  
त्येको भंगः । अथवा शशिनि सदृष्टे सति द्वितीयो भंगः । वा इत्यथवा शुभे शुभग्रहे चंद्रवर्जिते  
अंगगे लग्नेशे सति तृतीयो भंगः । शुभस्य होरायां चेति चतुर्थो भंगः । एषामन्यतमे सति व्यधभयं  
नास्तीति पूर्वे मुनयो जगुः आहुः तथा च वसिष्ठः । लग्ने शुभे सौम्ययुतेक्षिते वा । लग्नाधिनाथो भव-  
गस्तथा वा । कालाख्यहोरा च तथा शुभस्य भवेद्धि दोषस्य तथा विभंग इति । उद्गाहतत्वेऽपि ।  
सद्युग्रहस्तुगे शुभे व्यधभयं नो वाऽयगे लग्ने । होरायां च शुभस्य वा शशिनि सदृष्टेऽपि चार्थैरुद्धो  
रिति । अथ लत्तामाह—भौमादिति । भौमात्सकाशात् खेटो ग्रहः राह्वनः क्रमाभ्याकृत्यादि भं नक्षत्रं  
अग्रतो लत्तया हंति भौमः तृतीयं बुधः आकृतिर्द्वाविंशतिमितं गुरुः षष्ठं शुक्रः जिनामितं चतुर्विंशं  
शानिरष्टमं राहुर्नक्षत्रमितं विंशं लत्तया हंति अर्कः सूर्यः अर्कमितं द्वादशं शशी पूर्णचंद्रमाः मुनिमितं  
सप्तमं । अग्रतो लत्तया हंति तत् हतं नक्षत्रं मालवे मालवदेशे न सत् न शुभं स्यात् उक्तं च । लत्ता  
मालवके देशे पातं कोशलके तथा । एकार्गलं तु काश्मीरे वेधं सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १६ ॥

टीका—आतां वेधाचा भंग सांगतो—लग्नाचा स्वामी भव ह्य० अकरावे स्थानीं असेल तर १ वेधाचा दोष नाही.  
२ चंद्रावर शुभ ग्रहाची पूर्ण दृष्टि असेल तर वेधाचा दोष नाही. ३ चंद्राशिवाय दुसरा शुभ ग्रह लग्नस्थानीं असेल तर  
वेधाचा दोष नाही. ४ शुभ ग्रहाचा होरा असेल तर वेधाचा दोष नाही. ह्या चारां पैकीं एक जरी भंग असला तरी वेधाचा  
दोष नाही असें पूर्वीचे मुनी सांगतात. तेंच वसिष्ठ सांगतो—लग्नीं शुभ ग्रह असेल अथवा लग्नावर शुभ ग्रहाची पूर्ण दृष्टि  
असेल, किंवा लग्नाचा स्वामी एकादशस्थानीं असेल किंवा कालाची होरा शुभ ग्रहाची असेल तर ह्या चार प्रकारांपैकीं  
एक प्रकार असला तरी वेधाचा दोष नाही. उद्गाह तत्वांत सांगितलें आहे कीं, तनुस्थानीं शुभ ग्रह असेल, अथवा लग्न  
स्थानींच्या ग्रहावर शुभ ग्रहाची दृष्टि असेल, किंवा लग्नाचा स्वामी अकरावे स्थानीं असेल, किंवा होराही शुभ ग्रहाची  
असेल किंवा चंद्रावर शुभ ग्रहाची पूर्ण दृष्टि असेल तर वेधाचा दोष नाही. आतां लत्ता सांगतो—मंगळपासून तो राहु  
पर्यंत क्रमानें त्रि ह्य० ३ आकृति ह्य० २२ षट् ह्य० ६ जिने ह्य० २४ अष्ट ह्य० ८ नख ह्य० २० इतक्यांच्या नक्षत्रा-  
वर क्रमानें मंगळ, बुध, गुरु, शुक्र, शनि आणि राहु लथ मारितो, आणि रवि, रवि ह्य० १२ व्या नक्षत्रावर लथ मारतो, आणि

पूर्व चंद्रमा सुनि ह्य० सातव्या नक्षत्रावर लाथ मारतो, ज्या नक्षत्रावर लाथ पोंहवते ते नक्षत्र माळव्या प्रांतांत वर्ज्य आहे असे सांगितले आहे कीं, लगेचा दोष माळव्यांत आहे, पाताचा दोष कोसल ह्य० अयोध्येत आहे. एकागलाचा दोष काश्मीर देशांत आहे आणि वेधाचा दोष सर्व ठिकाणी आहे ह्मणजे तो सर्व ठिकाणी वर्ज्य करावा ॥ १६ ॥

ग्रहण दोष व संक्रांती दोष.

षण्मासं ग्रहणोडु चंद्रतनुगं विद्वर्क्षजन्मर्क्षके ।

त्याज्ये जन्मभलग्नके तनुगते सूर्यान्मनूडु त्यजेत् ॥

दंतद्वयंकदशोऽर्कतो युगगजास्तर्काः स्वर्णोदवो ।

नाडीः संक्रमणे त्येजदिविषदां प्रायो रवेर्दूषिताः ॥ १७ ॥

( पाठभेदः ॥ त्याज्याः संक्रमणे रवींदुकुजसौम्यानां रदद्वयंकदह ।

नाड्योऽव्यष्टगुरोः शनेः स्वतिथयः शुक्रस्य षण्णाडिकाः ॥ १७ ॥ )

श्लोकार्थ—ग्रहण ज्या वेळेस लागते त्या वेळेस जें नक्षत्र असेल तें नक्षत्र ग्रहणानंतर सहा महिनेपर्यंत जर लग्नी अथवा चंद्री आहे तर तें लग्न आणि तो चंद्र शुभ कर्माला वर्ज्य आहे. चंद्र ज्या दिवशी ज्या नक्षत्रावर जातो तें नक्षत्र त्या दिवसाचें दिवस नक्षत्र असें समजावें. ह्मणून चंद्री नक्षत्र ह्मणजे दिवस नक्षत्र असें जाणावें. प्रत्येक लग्नांत सव्वा दोन नक्षत्रे असतात. उदाहरण पहा कीं, जर अश्विनी नक्षत्रावर ग्रहण लागलें असेल तर मेष लग्नाचे १३ अंश २० कला भोगेपर्यंत अश्विनी असतें ह्मणून तें लग्न गत नक्षत्र समजावें, पुढें २६ अंश ४० कला होईपर्यंत भरणी लग्न गत होतें ह्या प्रमाणें लग्न गत नक्षत्र जाणावें. आतां विद्व नक्षत्र आणि जन्म नक्षत्र जर लग्न गत होतील तर तीं नक्षत्रे सोडावीं. जन्म राशि आणि जन्म लग्न हीं जर इष्ट लग्नी असतील तर तीं सोडावीत. ज्या नक्षत्रावर सूर्य असेल त्यापासून चौदावें नक्षत्र सोडावें. एका राशीवरून दुसऱ्या राशीवर ग्रहांचें जाणें ह्याला संक्रमण ह्मणतात. आतां रवीच्या संक्रमणाच्या ३२ घटिका, चंद्राच्या २० घटिका, मंगळाच्या ९ घटिका, बुध्याच्या २ घ० गुरुच्या ८४ घ० शुक्राच्या ६ घ० शनीच्या १५० घटिका ह्या प्रमाणें संक्रमणाचे पूर्वी अर्ध्या आणि संक्रमण झाल्यावर अर्ध्या सोडाव्यात. रविच्या घटिका फारच दोषयुक्त आहेत ॥ १७ ॥

अथ दोषांतराण्याह-षण्मासमिति । षण्मासं षण्मासपर्यंतं ग्रहणोडु ग्रहणनक्षत्रं चंद्रतनुगं चंद्रगतं लग्नगतं च त्याज्यं चंद्रगतमिति यस्मिन्दिने चंद्रमसा युक्तं भवति तच्चंद्रगतं दिननक्षत्रमिति यावत् । तनुगं यथाऽदिवन्यां ग्रहणे जाते सव्यंशत्रयोदशभागांतरमेषलग्ने सति अश्विनीलग्नस्था स्यात् एवं भरण्याद्यपि ग्रहणोडु इत्यनेनैवान्यान्यप्युत्पातदुष्टानि त्याज्यानि । विद्वर्क्षं विद्वनक्षत्रं जन्मर्क्षं जन्मनक्षत्रमेते उभे तनुगे त्याज्ये । भं च लग्नं च भलग्ने जन्मनि भलग्ने जन्मभलग्ने त एव जन्म-भलग्नके जन्मराशिजन्मलग्ने तनुगे त्याज्ये लग्नांतर्गतनक्षत्रज्ञानाय स्वकल्पितसूत्रं । नवग्रं तनुवेदासं सै-कं स्यात्तारकं तनौ । अर्कक्षार्त्त सूर्यनक्षत्रात् मनुडु चतुर्दशनक्षत्रं त्यजेत् । अथ सूर्यादीनां राशिसंक्र-मणे त्याज्यघटिका आह-त्याज्या इति । रविचंद्रकुजसौम्यगुरुशुक्रमंदानां संक्रमणे क्रमेण रदद्वयंकद-गित्यादय उक्तसंख्येनाड्यस्त्याज्याः । तद्यथा रविसंक्रमणे रदनाड्यो द्वात्रिंशद्वटिका वर्ज्याः संक्रमण-कालात्पूर्वतः षोडश घटिकाः परतः षोडश घटिका एवं द्वात्रिंशद्वटिकास्त्याज्या इत्यर्थः । तथा च चंद्रसंक्रमणे द्वे नाड्यौ भौमसंक्रमणे नव घटिका बुधसंक्रमणे द्वे घटिके त्याज्ये गुरोः संक्रमणे अव्यष्टौ चतुरशीतिघटिकाः शनेः संक्रमणे स्वतिथयः १५० पंचाशदधिकशतघटिकाः । शुक्रस्य षट् नाडिका-स्त्याज्या इत्यर्थः अत्र बाहुल्येन सर्वापेक्षया रवेः संक्रमणनाड्यो बहुभिराचार्यैर्दूषिता इत्यर्थः ॥ १७ ॥

१ धनुश्चिह्नान्तर्गतयोर्द्वयोः श्लोकाधयोः पाठतो भेदः परं चार्थतस्त्वैक्यमेवास्त्यथापि द्वितीयार्थान्तिमचरणेऽस्ति किंचिद-र्थाधिक्यमत एवाव ग्रन्थकर्त्रो द्वयोः संग्रहः कृतोऽस्तीति सुधीभिरुच्यते.

**टीकाथ—**आतां दुसरे दोष सांगतो—ग्रहणाचें जें नक्षत्र असेल तें सहा महिने पर्यंत सोडावें आणि चंद्राचें जें नक्षत्र ह्मणजे दिन नक्षत्र सोडावें ह्याचा अर्थ असा कीं, ज्या दिवशीं चंद्रानें युक्त नक्षत्र असतें तें नक्षत्र चंद्रगत असें समजावें त्यालाच दिवस नक्षत्र असेंही नांव आहे, तें नक्षत्र तनु ह्मणजे लग्नीं असेल तें लग्न सोडावें. जसें कीं, आश्विनी नक्षत्रावर ग्रहण झालें असेल तर १३ अंश आणि २० कलां पर्यंत मेष लग्न असतें तेथपर्यंत अश्विनीचें लग्न आहे असें जाणावें. ह्याचप्रमाणें भरणी इत्यादिकांचें समजावें. अशाच रीतीनें दुसरींही उत्पातादिकांचीं दुष्ट नक्षत्रें सोडावीत. विद्ध नक्षत्र आणि जन्म नक्षत्र हीं दोन्ही लग्नीं असतील तर तें लग्न सोडावें. सूर्य नक्षत्रापासून १४ चवदावें नक्षत्र सोडावें. आतां सूर्य इत्यादिग्रह एक राशीवरून दुसऱ्यावर गेले असतां त्यावेळेस किती घटिका सोडाव्यात तें सांगतो—रवि इत्यादि ग्रहांच्या घटिकांचा क्रम असा कीं, रविच्या रद ह्म० ३२ घटिका ह्म० संक्रमणाच्या पूर्वी १६ आणि संक्रमणांतर १६ घटिका सोडाव्या. ह्याचप्रमाणें चंद्राच्या २ घटिका ह्म० अगोदर १ आणि मंग १ घटिका सोडावी. मंगळाच्या ९ घटिका ह्म० अगोदर ४॥ आणि नंतर ४॥ घटिका सोडाव्यात. बुधाच्या २ घटिका अगोदर १ आणि मंग १ घटिका सोडावी. गुरुच्या ८४ घटिका पैकीं अगोदर ४२ आणि नंतर ४२ घटिका सोडाव्यात. शनीच्या १५० घटिका पैकीं अगोदर ७५ आणि नंतर ७५ घटिका सोडाव्यात. शुक्राच्या ६ घटिकां पैकीं अगोदर ३ आणि नंतर ३ घटिका टाकाव्यात. कारण त्या घटिका दोषयुक्त असतात. ह्या सर्व ग्रहांपेक्षां बहुत करून रवीच्या संक्रमणाच्या घटिका सोडाव्यात ह्या विषयीं सर्व आचार्यांचें मत आहे ॥ १७ ॥

**संधि दोषादि व भद्राकरणाचा काल.**

**षट्षष्टिर्ऋतुसंधितस्तिथिभयुक्तसंधौ द्विनाड्यौ ग्रहात् ।**

**तत्पादैर्दिवसांस्त्रिवेदषडिमान्प्रागर्थितान् संत्यजेत् ॥**

**उत्पातेऽथहमुद्रमं च शिखिनो राकाष्टमीप्राग्दले ।**

**विट्प्रांत्ये कृतरुद्रयोरबहुले कृष्णे निरेकेष्विव ॥ १८ ॥**

**श्लोकार्थ—**सर्व ऋतूंच्या ह्मणजे वसंत, ग्रीष्म इत्यादि सहा ऋतूंच्या संधीपासून ६६ घटिका त्याज्य आहेत. तिथि, नक्षत्र आणि योग ह्यांच्या संधीच्या २ घटिका त्याज्य आहेत. एक पादग्रहण असतां ३ दिवस, द्विपादाला ४ दिवस, त्रिपादाला ६ दिवस आणि पूर्ण ग्रासाला ८ दिवस त्याज्य आहेत. पैकीं ग्रहण लागण्याचे पूर्वी अर्धे आणि नंतर अर्धे सोडावेत. भूकंप, मोठा उत्कापात इत्यादि उत्पातापुढें ७ दिवस सोडावेत. जों पर्यंत धूमकेतु उदय पावत असेल तोपर्यंत शुभ कार्य करूं नये. शुक्ल पक्षामध्ये पूर्णिमा, अष्टमी ह्या दोन तिथींच्या पूर्वाधीत आणि चतुर्थी एकादशी ह्या दोहोंच्या उत्तरार्धांत बहुत करून भद्राकरण येत असतें ह्या तिथींतून एक तिथी कमी केल्यानें कृष्णपक्षांत भद्रा येणाऱ्या समजाव्या त्या अशा कीं, कृष्णपक्षांत चतुर्दशी आणि सप्तमी ह्यांच्या पूर्वाधीत आणि तृतीया दशमी ह्यांच्या उत्तरार्धांत भद्राकरण नियमानें येत असतें ॥ १८ ॥

**अथ संधिदोषमाह—**षडिति । ऋतुसंधितो वसंतादिऋतुप्रवृत्तेः षट्षष्टिः षडभिरधिका षष्टिः ६६ घटीनां षट्षष्टिस्त्याज्येत्यर्थः । ऋतुप्रवृत्तिलक्षणं रत्नमालायां । मृगादिराशिद्वयमानुभोगात् षडर्तवः स्युः शिशिरो॥वसंतः ग्रीष्मश्च वर्षा च शरच्च तद्वद्धेमंतनामा कथितोऽत्र षष्ठ इति । तिथिभयुक्तसंधौ तिथिनक्षत्रयोगानां संधौ द्विनाड्यौ पृथक् द्वे द्वे घटिके त्याज्ये । अथ पूर्वमुक्तं ग्रहजनिप्रांतोद्भवं सूतकमिति तत्र ग्रहणलक्षणसूतकमाह—ग्रहादितिग्रहणतः सकाशात् उपरि तत्पादैस्तत्तत्प्रणैर्गृहपादैः त्रिवेदषडिमान् ३४।६।८ दिवसांस्त्यजेत् । एतदुक्तं भवति पादैकमात्रग्रहणे त्रीन् दिवसांस्त्यजेत् । अर्धग्रहणे चतुरो दिवसांस्त्यजेत् । त्रिपादग्रहणे षट् दिवसांस्त्यजेत् । सर्वग्रहणेऽष्ट दिवसांस्त्यजेत्प्राग्ग्रहणात् प्राक् प्रथमतः अर्थितान् त्रिवेदादीन् दिवसांस्त्यजेत् । एतदुक्तं भवति पादग्रहणे त्रयाणामर्थं तद्यथा पादग्रहणे ग्रहणात्पूर्वं साधैकदिवसं नवति ९० घटिकास्त्याज्याः । अर्धग्रहणे चतुर्णामर्थं द्वौ दिवसौ पादत्रयग्रहणे षण्णामर्थं त्रीन् सर्वग्रहणेऽष्टानामर्थं चतुरो दिवसान् ग्रहणात्पूर्वं त्यजेत् । उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विदौ च पूष्णि चेत्यमरः । शार्ङ्गीयविवाहपटले । सर्वग्रासे दिनान्यथौ शुभकार्येषु वर्जयेत् । त्रिभागाने प्रद्विद्वसानर्थग्रासे चतुर्दिनं ॥ चतुर्थांशे त्रिरात्रं तु ग्रहणे चंद्र-

सूर्ययोरिति । अत्राप्यंतरालेऽनुपातो ज्ञेयः । तथाचाऽऽष्टिषेणः । ग्रहणात्रिदिनं पूर्वं परतो दिनसप्तक-  
मिति सर्वग्रहणविषयं ॥ ज्योतिःप्रकाशेऽपि खग्रासे सर्वपादोनं खंडांघ्र्यल्पे तु वासराः । गजाश्वेष्व-  
ब्धिरामाब्जा नेष्टाः स्युः प्राग्दले ग्रह इति । अथोत्पाते वर्ज्यकालमाहोत्पातेऽग्रहमिति । उत्पाते भूक-  
पनिर्घातमहोत्कानिपातादिकेऽग्रहं । अद्रिमितानामहां समाहारोऽग्रहं सप्ताहमित्यर्थः । उत्पाते जाते  
सति सप्ताहं शुभकर्मणि त्यजेदित्यर्थः । दोषांतरमाह-उद्रमं च शिखिनः केतोः उद्रमं उदयं त्यजेत्  
यावत्केतूदयस्तावन्मंगलं न कुर्यादित्यर्थः । तथा चाऽऽष्टिषेणः । परं सप्ताहमुत्पाते त्यजेत्केतूदये  
शुभमिति । भद्राकालमाह-राकाष्टमीप्राग्दले विद् स्यात् राका पूर्णिमाऽष्टमी प्रसिद्धा अनयोस्तिथ्योः  
प्राग्दले पूर्वार्धे विद् विष्टिः स्यात् कृतखट्वयोः प्रांत्ये कृतचतुर्थी खट्वेकादश्यनयोः प्रांत्ये विद् स्यात् ।  
एतद्भद्राचतुष्टयमबहुले शुक्लपक्षे स्यात् कृष्णे निरेकेष्विहोक्तेषु तिथिषु निरेकेष्वेकराहितेषु कृष्णे  
कृष्णपक्षे विद् स्यात् । भद्रापवादः शार्ङ्गयविवाहपटले दूषितोऽतः कारणादत्र नोक्तः ॥ १८ ॥

टीका—आतां संधि दोष सांगतो—वसंत इत्यादि ऋतु सहा आहेत त्या प्रत्येक ऋतूच्या आरंभापासून ६६ घटि-  
का त्याज्य आहेत. ऋतुचा आरंभ होतो त्याचें लक्षण रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, मृगराशीपासून दोन दोन  
राशींना सूर्याचा योग झाल्यामुळे कमार्ने सहा ऋतु होतात. जसें मकर, कुंभ ह्म० शिशिर ऋतु, मीन, मेष ह्म० वसंत, वृषभ,  
मिथुन ह्म० ग्रीष्म, कर्क, सिंह ह्म० वर्षा, कन्या, तूळ ह्म० शरत्, वृश्चिक, धन ह्म० हेमंत, तिथि, नक्षत्र आणि योग  
ह्यांच्या संधी मध्ये प्रत्येकास दोन दोन घटिका त्याज्य आहेत, ह्म० तिथीस २ घ० नक्षत्रास २ घ० योगास २ घ० सोडा-  
व्यात. आतां पूर्वी सांगितलें होतें कीं, ग्रहादिकांचें सूतक असतें त्यांपैकीं ग्रहणाचें सूतक सांगतो—चतुर्थीस ग्रास असेल तर  
ग्रहणापासून ३ दिवस, अर्धा ग्रास असेल तर ४ दिवस, पाऊण ग्रास असेल तर ६ दिवस, संपूर्ण ग्रास असेल तर ८ दिवस  
सूतक समजून तितके दिवस सोडावेत. ह्याचा अर्थ असा कीं, चंद्राचा चवथ्या भागाचा ग्रास असेल तर ३ दिवस सोडावे  
ह्मणजे ग्रहणाचे पूर्वी १॥ दिवस आणि नंतर १॥ दिवस ह्मणजे अगोदर ९० घटिका आणि नंतर ९० घटिका सोडाव्यात.  
अर्धा ग्रास असेल तर ४ दिवस म्हणजे अगोदर २ दिवस नंतर २ दिवस. तीन पाद ग्रास असेल तर ६ दिवस पैकीं,  
अगोदर ३ दिवस नंतर ३ दिवस. सर्व ग्रास असेल तर ८ दिवस पैकीं अगोदर ४ दिवस नंतर ४ दिवस सोडावेत.  
ग्रहण ह्मणजे चंद्राचा आणि सूर्याचा ग्रास राहून केला ह्मणजे जेवढा काळ ग्रास असतो तेवढा काळ ग्रहण असें समजावें.  
शार्ङ्गय विवाह पटलांत सांगितलें आहे कीं, सर्व ग्रास असेल तर आठ दिवस शुभ कार्याला वर्ज्य करावेत. तीनभाग ग्रास  
असेल तर साहा दिवस सोडावेत. अर्धा भाग ग्रास असेल तर चार दिवस सोडावेत. चवथा भाग ग्रास असेल तर तीन दिवस  
सोडावेत, येथेंच मध्ये अनुपात आहे तो जाणावा. तेंच आष्टिषेण सांगतो कीं, ग्रहणाचे पूर्वी ३ दिवस आणि नंतर ७  
दिवस असें सांगितलें आहे हें सर्व ग्रहणा विषयीं आहे. ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत असें सांगितलें कीं, खग्रास, तीन भाग ग्रास  
अर्धाग्रास, पादग्रास, अल्प मात्र, दिसतें न दिसतें ह्यांस कमार्ने गज ८ अश्व ७ इषु ५ अश्वि ४ राम ३ अब्ज १  
इतके दिवस शुभ कार्यास इष्ट नाहींत. आतां उत्पातांचा वर्ज्य काळ सांगतो—भूमिकंप, निर्घात, महोत्कापात इत्यादिकां-  
मध्ये सात दिवस पर्यंत शुभ कार्य करूं नये. दुसरा दोष सांगतो—धूमकेतु आकाशांत जों पर्यंत उगवत आहे तोंपर्यंत शुभ  
कार्य करूं नये, तेंच आष्टिषेण सांगतो—कीं, उत्पात झाला असतां सात दिवस आणि धूमकेतूचा उदय झाला असतां सात  
दिवस पर्यंत शुभ कार्य करूं नये. आतां भद्राकाल सांगतो—राका ह्मणजे पूर्णिमा, अष्टमी ह्या दोन तिथींचा पूर्व भाग  
विष्टि समजावी. तशीच कृत ह्म० चतुर्थी खट्वेकादशी ह्या दोन तिथींचे उत्तरार्ध ही विष्टि समजावी. अशी ही चार  
प्रकारची भद्रा शुक्ल पक्षांतील समजावी. आतां कृष्ण पक्षांतील भद्रा अशी समजावी कीं, पूर्वीच्या तिथींत एक तिथी  
कमी करावी ह्मणजे विष्टि समजावी. जसें १४-७ ३-१० ह्या चार दिवशीं क्रमानें १४-७ पूर्वीर्धात आणि ३-१०  
ह्यांचे उत्तरार्धात विष्टि समजावी. भद्रेचा अपवाद शार्ङ्गय विवाह पटलांत दोषित केला आहे ह्मणून येथें तो सांगि-  
तला नाही ॥ १८ ॥

गंडांत, चंडायुध, एकामर्गल.

सापेद्रांतिमभांततोऽब्धिघटिकं पूर्णांततोऽब्ध्यर्धकम् ।

कीटांत्यालिविरामतः कुघटिकं गंडांतमूर्ध्वधरम् ॥

सावैशूढ्यहगाख्ययोगविरतौ भं तत्र चंडायुधम् ।

द्वयोंगे दिनभाच्च साभिजिदयुग्मेऽर्कस्तदेकार्गलः ॥ १९ ॥

टीका—नक्षत्राचें गंडांत असें कीं, आश्लेषा, ज्येष्ठा आणि रेवती ह्या तीन नक्षत्रांच्या शेवटच्या २ घटिका आणि मघा, व मूल, अश्विनी ह्या तीन नक्षत्रांच्या आरंभीच्या दोन घटिका मिळून ४ घटिका गंडांत समजावें. आतां तिथीचें गंडांत असें कीं, पूर्णा ह्यणजे पंचमी, दशमी, पूर्णिमा आणि अमावास्या ह्या चार तिथींची शेवटची एक घटिका तर्शाच षष्ठी, एकादशी, प्रतिपदा ह्यांचे आरंभीची १ घटिका मिळून २ घटिका तिथि-गंडांत जाणावें. आतां राशीचें गंडांत असें कीं, कर्क, मीन, वृश्चिक ह्या तीन लग्नांची शेवटची -॥- घटिका, तर्शाच सिंह, मेष, धन ह्या लग्नांची आरंभीची -॥- घटिका मिळून १ घटिका लग्नगंडांत जाणावें. आतां चंडायुध सांगतो—ते असें कीं, साध्य, वैधृति, शूल, व्यतीपात, हर्षण आणि गंड हे सहा योग संपण्याचे वेळेस जें नक्षत्र असतें त्यास चंडायुध असें नांव आहे. आतां एकागल सांगतो—तें असें कीं, विष्कंभ, अतिगंड, शूल, गंड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ, वैधृति हे ९ दुर्योग असतां दिवस नक्षत्रापासून अभिजितासह महा नक्षत्रापर्यंत मोजून त्यांत सूर्य विषम नक्षत्रीं असेल तेव्हां एकागल दोष आहे असें जाणावें ॥ १९ ॥

अथ गंडांतलक्षणमाह—सापेद्रांतिमभेति । सापेद्रांतिमभेति इन्द्रो ज्येष्ठा अंतिमभं रेवती एषामंतः तस्मात्कालात्प्राक्परं पूर्वापरतोऽब्धिघटिकं गंडांतं स्यात् । अब्ध्यश्चतस्रो घटिका यस्मिन्नित्यब्धिघटिकं चतुर्घटिकमित्यर्थः । एतदुक्तं भवति उक्तनक्षत्रांतात्पूर्वतो घटिकाद्वयं परतो घटिकाद्वयमेवं घटिकाचतुष्टयं नक्षत्रगंडांतम् । अथ तिथिगंडांतमाह—पूर्णाततोऽब्ध्यर्धकं पूर्णाः पंचमीदशमीपूर्णिमाऽमास्तासामंततः अब्ध्यर्धकं द्विघटिकं गंडांतं पूर्वापरतः स्यात् । अथ लग्नगंडांतमाह—कीटांत्यालिविरामतः कुघटिकं कीटः कर्काटकोऽस्त्यो मीनः अलिर्वृश्चिकः एषां विरामोऽवसानं तस्मात्कुघटिकं प्रागर्थ-घटिका परतोर्धघटिका एवमेकघटिकं लग्नगंडांतं स्यात् । अथ चंडायुधमाह—सावैशूयेति । सा साध्ययोगः वै वैधृतिः शूलः व्य व्यतीपातः ह हर्षणः ग गंडः एतदाख्ययोगानां विरतिरवसानं तत्र यद् नक्षत्रं तस्माच्चंडायुधं स्यात् चंडं प्रचंडं महत् एवंविधमायुधं यस्य स्यात् तस्मात्तन्नक्षत्रं वर्ज्यमित्यर्थः । अथैकागलमाह—दुर्योगे दिनमादिति । विष्कंभातिगंडशूलगंडव्याघातवज्रव्यतीपातपरिघ-वैधृतयो नव दुर्योगाः । एषामन्यतमे सति दिनमादिननक्षत्रात् साभिजिद्युग्मे अभिजिता सह अयुग्मे विषमनक्षत्रे यदाऽर्कः सूर्यो भवति तदैकागलः स्यादेकागला शुभावरोधिनी यस्मिन्नित्येकागलः शुभफलावरोधक इत्यर्थः ॥ १९ ॥

टीका—आतां गंडांत लक्षण सांगतो—सापे ह्य० आश्लेषा, इंद्र ह्य० ज्येष्ठा, अंतिम ह्य० रेवती ह्या तीन नक्षत्रांच्या शेवटच्या जो काल त्याच्या पूर्वीच्या २ घटिका आणि आरंभीच्या २ घटिका मिळून ४ घटिका हें तिथिगंडांत समजावें, त्याचा अर्थ असा होतो कीं, जें नक्षत्र असेल त्याच्या शेवटच्या २ घटिका व त्याचे पुढच्या नक्षत्राच्या २ घटिका तसेंच रेवतीच्या शेवटच्या २ घटिका येतल्या वर त्याच्या पुढचें नक्षत्र जें अश्विनी त्याच्या आरंभीच्या २ घटिका मिळून ४ घटिका नक्षत्र गंडांत समजावें. असेंच आश्लेषाच्या शेवटच्या २ घटिका आणि मघाच्या आरंभीच्या २ घटिका मिळून ४ घटिका नक्षत्र गंडांत. ह्याचप्रमाणे ज्येष्ठाच्या शेवटच्या २ घटिका आणि मूलाच्या आरंभीच्या २ घटिका मिळून ४ घटिका नक्षत्र गंडांत समजावें. आतां तिथि गंडांत सांगतो—पूर्णा ह्य० पंचमी, दशमी, पूर्णिमा, आणि अमावास्या ह्यांच्या शेवटच्या २ घटिका ह्यणजे पंचमीची शेवटीची १ घटिका षष्ठीची आरंभीची १ घटिका मिळून २ घटिका तिथि गंडांत. तसेंच दशमीची शेवटची १ घटिका आणि एकादशीची आरंभीची १ घटिका मिळून २ घटिका तिथि गंडांत. ह्याचप्रमाणे पूर्णिमा आणि अमावास्या ह्यांची शेवटीची १ घटिका आणि दोनहि प्रतिपदेची १ आरंभीची एक घटिका मिळून दोन दोन घटिका तिथि गंडांत समजावें. आतां लग्न गंडांत सांगतो—कीट ह्य० कर्क, अंत्य ह्य० मीन, अलि ह्य० वृश्चिक ह्या तीन लग्नांचे शेवटची १ घटिका ह्य० पूर्वीची -॥- घटिका आणि पलीकडची -॥- घटिका मिळून १ घटिका पर्यंत लग्न गंडांत समजावें. जसें कीं, कर्काची शेवटची -॥- घटिका आणि त्याचे पुढच्या सिंहाची आरंभीची -॥- घटिका मिळून १ घटिका लग्न गंडांत समजावें. तसेंच मीनाची शेवटची -॥- घटिका आणि मेषाची आरंभीची -॥- घटिका मिळून १ घटिका लग्न गंडांत समजावें. ह्याचप्रमाणे वृश्चिकाची शेवटली -॥- घटिका आणि धनाची आरंभीची -॥- घटिका मिळून १ घटिका लग्न गंडांत समजावें. आतां चंडायुध सांगतो—सा साध्ययोग, वै वैधृति, शूल, व्य व्यतीपात, ह हर्षण, ग गंड, हे साहा संपत्तांना जें नक्षत्र असतें त्याला चंडायुध असें समजावें. त्याच्या चंडायुध नांवाचा अर्थ असा आहे कीं, त्या जवळ प्रचंड आयुध आहे अर्थात् फार तीक्ष्ण शस्त्र त्याचे जवळ आहे ह्याकरितां

तें शुभ कर्माभ्यें वज्र्य करावें. आतां एकागल सांगतो-१ विष्कम्भ, २ अतिगंड, ३ शूल, ४ गंड, ५ व्याघात, ६ वज्र, ७ व्यतिपात, ८ परिघ, ९ वैधृति ह्या नवांना दुयेंग ह्मणतात. ह्यांपैकीं एखाद्या दुबाग असतां दिवस नक्षत्रापासून तों अभिजीतासह वर्तमान विषम नक्षत्रीं जेव्हां सूर्य असतो तेव्हां एकागल नांवाचा दोष होतो हा शुभ कर्माला अवरोध करणारा आहे ॥ १९ ॥

यामार्ध, कुलिक, काल, कंटक, यमघंट.

सूर्याद्यामदलं दिवैव निगमाश्चक्षीषुनागत्रिषट् ।

संख्याकं कुलिकं दिवेंद्ररविदिङ्नागर्तुवेदद्विकम् ॥

व्येकं तन्निशि षोडशांशमपरे तिथ्यंशमुज्झंति तैः ।

कालं कंटकमैनिघंटमरेज्यज्ञास्फुजिह्वः क्रमात् ॥ २० ॥

श्लोकार्थ-रविवारापासून तों शनिवारापर्यंत सात वार आहेत त्याच्या अनुक्रमानेंच ४-७-२-५-८-३-६ हीं यामार्धें ह्मणजे अर्धे प्रहर अशुभ आहेत ह्यांचा दोष दिवसासच आहे अर्थात् रात्रीचे कार्यास दोष नाहीं. तसेंच रविवारापासून शनिवारापर्यंत क्रमानें १४-१२-१०-८-६-४-२ इतके अंश कुलिक दोष जाणावेत, हे दिवसाचे कुलिक. आतां ह्या प्रत्येकांत एकेक कमी केला ह्मणजे रात्रीचे येतात, जसें १३-११-९-७-५-३-१ इतके अंश रात्रीचे कुलिक आहेत असें जाणावें. दिवसाचे जे कुलिक सांगितले आहेत ते गुरुवारापासून मोजिल्यानें काल होतात. तेच बुधवारापासून मोजिल्यानें कंटक होतात. आणि तेच शुक्रवारापासून मोजिल्यानें यमघंट होतात. कोणी दिनमानाचे १६ भाग करितात. कितीएक १५ भाग करितात, प्रत्येक भागास मुहूर्त हें नांव आहे. वर सांगितलेले सर्व दोष शुभ कार्याला सोडावेत ह्याचा खुलासा खालील कोष्टकांत आहे. ॥ २० ॥

कोष्टक.

| वार.   | यामार्ध. | कुलिक.<br>दिवा. | रात्री. | काल. | कंटक. | यमघंट. |
|--------|----------|-----------------|---------|------|-------|--------|
| रवि.   | ४        | १४              | १३      | ८    | ६     | १०     |
| सोम.   | ७        | १२              | ११      | ६    | ४     | ८      |
| मंगळ.  | २        | १०              | ९       | ४    | २     | ६      |
| बुध.   | ५        | ८               | ७       | २    | १४    | ४      |
| गुरु.  | ८        | ६               | ५       | १४   | १२    | २      |
| शुक्र. | ३        | ४               | ३       | १२   | १०    | १४     |
| शनि.   | ६        | २               | १       | १०   | ८     | १२     |

अथ वारदोषमाह-सूर्यात्सकाशाद्वारेषु क्रमेण निगमादिकं यामार्धं मुज्झंति त्यजंति मुनय इति शेषः । निगमाश्चत्वारः लन्मितं रवौ सप्तमितं चंद्रे अश्विनौ द्वौ तन्मितं भौमे इषुमितं बुधे नागा अष्टौ तन्मितं गुरौ त्रिमितं शुके षण्मितं शनावेतद्यामदलं दिवैवोज्झंति न रात्रौ । अथ कुलि-कादीनाह-इनादौ सूर्यादौ वारे दिवा इंद्रादिकं षोडशांशं दिनमानस्य षोडशांशो ग्राह्यः तेन गण्यास्ते षोडशांशा ग्राह्या इत्यर्थः । तं कुलिकमुज्झंति । अपरे तिथ्यंशं पंचदशांशं कुलिकमुज्झंति । तन्निशि तद्रात्रौ च व्येकं एकरहितं इंद्रादिकं षोडशांशं पंचदशांशमुज्झंति । तद्यथा । रवौ दिवा इंद्रमितं चतुर्दशं तद्रात्रौ त्रयोदशं सोमे दिवा द्वादशं तद्रात्रौ एकादशमित्यादि । अथ तैरेव इंद्रादिभिर्मुहूर्तै-रनरेज्यज्ञास्फुजिह्वः सकाशात् क्रमात् कालं कंटकमैनिघंटं इत्यस्यापत्यं पुमानैर्निर्यमस्तस्य घंटो यम-घंट इत्यर्थः तमुज्झंति एतदुक्तं भवति । अमरेज्यो गुरुः तस्मात्सकाशात् तैरेवेंद्रादिभिर्मुहूर्तैः काल-मुज्झंति ज्ञात् बुधात् तैरेवेंद्रादिभिः कंटकं आस्फुजिह्वुकः तस्मात्सकाशात् तैरेवेंद्रादिभिर्मुहूर्तैरेनिघंटं यमघंटमुज्झंति ॥ २० ॥



**टीकाथ**—आतां वार दोष सांगतो—रविवारापासून शनिवारापर्यंत क्रमानें निगम ह्य० ४ रविवारीं, अश्वि ह्य० ७ सोमवारीं, अश्वि ह्य० २ मंगळवारीं, इषु ह्य० ५ बुधवारीं, नाग ह्य० ८ गुरुवारीं, त्रि ह्य० ३ शुक्रवारीं, षट् ह्य० ६ शनिवारीं हे यामार्ध ह्य० यामाचे अर्ध भाग दिवसास त्याज्य आहेत रात्रीस त्याज्य नाहीत. आतां कुलिक सांगतो—सूर्य इत्यादि-कांचे वारामध्ये दिवसास क्रमह्ने १४-१२-१०-८-६-४-२ हे दिनमानाचा सोळावा अंश ह्यणजे मुहूर्त समजावे. ते कुलिक संज्ञक आहेत. दुसरे कित्येक दिनमानाचा पंधरावा अंशच मानतात. त्याला कुलिक समजून त्याचा त्याग करितात. हेच कुलिक रात्रीचे ध्यावयाचे ह्यणजे त्यांतून एकएक कमी करावा. जसे रविवारीं दिवसास १४ वा आहे तर त्याच रात्री १३ वा. सोमवारीं दिवसास १२ वा आहे तर रात्री ११ वा कुलिक दोष समजावा. ह्याचप्रमाणें मंगळवारीं दिवसास १० रात्रीस ९, बुधवारीं दिवसास ८ रात्रीस ७, गुरुवारीं दिवसास ६ रात्रीस ५, शुक्रवारीं दिवसास ४ रात्रीस ३ शनिवारीं दिवसास २ रात्री १, असा क्रम जाणावा. आतां हे ईद्र ह्य० १४ इत्यादिक वर मुहूर्त सांगितले आहेत त्यांनीच काळ होतात ते असे कीं, तेच अमरेज्य ह्य० गुरुवारापासून मोजल्यानें काळ होतात. श ह्य० बुधवारापासून मोजल्यानें कंटक होतात. आस्फुजित ह्य० शुक्रवारापासून मोजल्यानें ऐनिघंट ह्य० यमघंट होतात. इन ह्य० सूर्य त्याचा पुत्र तो ऐनि असा शब्द होतो त्याचा घंट मिळून यमघंट होतात हे सर्व दोष शुभकार्याकरितां सोडतात ॥ २० ॥

**दुर्मुहूर्त, महापात व मृत्युयोग.**

**शुक्रेंद्रीज्ययमेषु गोंकरविभूतुल्या मुहूर्ता दिवा ।**

**दुष्टाः स्युः कुजनिश्यगो य इतरे संत्यर्धयामादिषु ॥**

**प्रेक्ष्यः संप्रति वृद्धितुर्यचरणे ब्रह्मद्वितीयेऽपमः ।**

**सूर्याद्या अनुविश्वपाशियमलेंद्रह्यकैर्भैर्मृत्युदाः ॥ २१ ॥**

**श्लोकार्थ**—दुर्मुहूर्त सांगतो—ते असे कीं, शुक्रवारीं दिवसास ९ मुहूर्त, सोमवारीं ९ वा, गुरुवारीं १२ वा, शनिवारीं १ आणि मंगळवारीं रात्रीस ७ वा इतके दुर्मुहूर्त आहेत, ह्याशिवाय जे दुसरे दुर्मुहूर्त आहेत ते यामार्धांत येतात ह्यणून येथें निराळे सांगितले नाहीत, आतां ग्रंथकार असे सांगत आहे कीं, हा ग्रंथ १४९३ ह्या शकी रचिला आहे त्यावेळेस वृद्धि योगाचे चवथ्या चरणांत आणि ब्रह्मयोगाच्या दुसऱ्या चरणांत महापात येत असतो तो पाहावा ( महापात काढण्याचा प्रकार गणित ग्रंथांत आहे तो पंचांगांत गणितानें सिद्ध करून व्यतीपात पात—प्रवृत्ति आणि वैधृति पात—प्रवृत्ति लिहिली असते तेच महापात होत. ) आतां मृत्यु योग सांगतो—अनुराध नक्षत्र रविवारीं, उत्तराषाढा सोमवारीं, शततारका मंगळवारीं, अश्विनी बुधवारीं, मृगशीर्ष गुरुवारीं, आश्लेषा शुक्रवारीं, हस्त शनिवारीं अशीं नक्षत्रे असतां मृत्युयोग होतो ॥ २१ ॥

अथ दुर्मुहूर्तानाह—शुक्रेति । शुक्रः प्रसिद्धः इंदुश्चन्द्र ईज्यो गुरुर्यमः शनिरेषु क्रमेण गोंकरविभूतुल्या मुहूर्ता दिवा दुष्टाः स्युः दुर्मुहूर्ता इत्यर्थः । कुजनिश्यगः कुजनिशि अगः सप्तमो मुहूर्तो दुर्मुहूर्तः । ग्रंथांतरे अर्यम्णोऽर्के तुहिनाकिरणे राक्षसब्राह्मसंज्ञावित्यादि बहवो दुर्मुहूर्ता उक्ताः । अत्र स्वल्पा उक्तास्तेषां परिहारमाह—य इतरे दुर्मुहूर्ता ग्रंथान्तरे पठितास्ते सर्वे अर्धयामादिषु संति अतोऽत्र मया नोक्ताः यत अर्धयामादीनां त्यागे तेषु त्यक्ताः स्युः किं ग्रंथविस्तरेणेति भावः । एतच्च सुज्ञा ज्ञास्यंति यथा रवौ चतुर्दशो मुहूर्तो दुर्मुहूर्तः कुलिकोऽपि चतुर्दशोऽत्र मुहूर्तः तयोरेकत्र सद्भाव इत्यन्येऽपि विचारगम्याः । नन्वेन चेत्तर्हि पूर्वव्यर्थं पठितं मैवं तैस्त्वनधिकाधिकदोषविवक्षयोक्तमिति न दोषः । अथ पातसंभवकालमाह—प्रेक्ष्य इति । संप्रति सांप्रतं वृद्धितुर्यचरणे वृद्धियोगस्य चतुर्थचरणे तथा ब्रह्मद्वितीये ब्रह्मयोगस्य द्वितीयचरणेऽपमः क्रांतिपातो विलोक्यो ब्रह्मसिद्धांताद्युक्तप्रकारेण विलोक्य इत्यर्थः । अथ मृत्युं सर्वत्र वर्जयेदित्युक्तत्वात् मृत्युयोगमाह—सूर्याद्या इति । सूर्याद्या अर्कादयः क्रमेण अन्वादिभिर्नक्षत्रैः सह मृत्युदाः स्युः । अनु अनुराधा विश्वे उत्तराषाढा पाशी शततारका यमलौ अश्विनी इंदुर्मृगः अहिराश्लेषा अर्कमं हस्तः एतदुक्तं भवति अर्कः अनुराधया सह युक्तो मृत्युदः सोम उत्तराषाढया भौमः शततारकया बुधः अश्विन्या गुरुर्मृगेण शुक्र आश्लेषया शनिर्हस्तेन सहितो मृत्युदः स्यादित्यर्थः ॥ २१ ॥

**टीका—**आतां दुर्मुहूर्त सांगितो—१ शुक्र, २ इंद्र ह्यं सोम, ३ इज्य ह्यं गुरु, ४ यम ह्यं शनि इतक्या ह्या ४ वारीं दिवसास अनुक्रमानें शुक्रवारीं ९ वा सोमवारीं ९ वा गुरुवारीं १२ वा शनिवारीं १ ला इतके आणि कुज ह्यं मंगळवारीं निशि ह्यं रात्रीस अग ह्यं ७ वा मुहूर्त इतके हें पांच मुहूर्त दुर्मुहूर्त आहेत. दुसऱ्या ग्रंथामध्यें रविवारीं अर्यम मुहूर्त आणि सोमवारीं राक्षस आणि ब्राह्म हे मुहूर्त दुर्मुहूर्त आहेत असे सांगितले आहे. ह्या ग्रंथांत तर फारच थोडे सांगितले आहेत त्याचा परिहार असा कीं, दुसरे जे दुर्मुहूर्त सांगितले आहेत ते सर्व अर्थ यामादिकामध्यें येतात ह्मणून ते मी येथें सांगितले नाहींत. कारण अर्थयामांचा त्याग केला ह्मणजे त्या मुहूर्ताचाही त्याग केल्या सारखा होतो. ह्मणून विनाकारण ग्रंथाचा विस्तार केला नाहीं, हें तर सुज्ञ समजतातच कीं, रविवारीं १४ मुहूर्त हा दुर्मुहूर्त आहे आणि कुलिक चवदावा आहे. ह्यास्तव तो त्याज्य आहे. ते दोन्ही एकाच ठिकाणीं आल्यामुळे तो त्याज्य ठरला ह्या प्रमाणे व दुसरेही विचारानें समजण्या जोगे आहेत आतां अशो शंका येते कीं, जर असें आहे तर प्राचीन विद्वानांनीं सांगितलेलें व्यर्थ आहे तर तसें ह्मणूं नका. कारण कीं, त्यांनीं कमी किंवा जास्ती आहेत ह्या सांगण्याच्या इच्छेनें सांगितले आहेत ह्मणून त्यांच्या सांगण्यास दोष नाहीं. आतां पाताच्या उत्पत्तिचा काल.सांगतो—हळां महापात वृद्धि योगाच्या चवथ्या चरणांत आणि ब्रह्म योगाच्या दुसऱ्या चरणांत येत असतो तो क्रांतिपात ब्रह्मसिद्धांतांत सांगितल्याप्रमाणे पाहणें योग्य आहे. आतां मृत्युयोग सर्व कामांत सोडावा असें सांगितले आहे. ह्मणून मृत्युयोग सांगितो—रविवारापासून क्रमानें अनु ह्यं अनुराधा रविवारीं, विश्वे ह्यं उत्तराषाढा सोमवारीं, पार्शी ह्यं शततारका मंगळवारीं, यमल ह्यं अश्विनी बुधवारीं. इंद्र ह्यं मृगशीर्ष गुरुवारीं, अहि ह्यं आश्लेषा शुक्रवारीं, अर्क ह्यं हस्त शनिवारीं आलें असतां मृत्युयोग होतो. ह्याचा अर्थ असा कीं, रविवार अनुराधा नक्षत्रानें युक्त असेल तर तो मृत्यु देणारा आहे, सोमवार उत्तराषाढानें, मंगळवार शततारकेन बुधवार अश्विनीनें, गुरुवार मृगानें, शुक्रवार आश्लेषेनें, शनिवार हस्तानें युक्त असेल तर मृत्यु देणारा असतो ॥ २१ ॥

विषघटी व त्यांचे अपवाद.

पंचाश ५० जिन २४ स्वाग्नय ३० श्र स्वकृता ४० आखंडला १४ मूछेना २१ ।  
त्रिंश ३० द्विंश २० रदाः ३२ खराम ३० नख २० धृत्ये १८ काश्विनौ २१ विंशतिः २० ॥  
शक्रं १४ द्रौ १४ दश १० वासवा १४ रसशराः ५६ सिद्धा २४ नखा-२० शा १० दिशो  
। १० धृत्य १८ श्री १६ जिन २४ स्वाग्नयोऽ-३० श्वित इमाभ्योऽग्रेऽब्धिनाड्यो विषम् ॥ २२ ॥

नक्षत्रस्य गतैष्ययोगगुणितः स्वस्वध्रुवः षष्टिह- ।

त्स्पष्टः स्यादत ऊर्ध्वमब्धिघटिकाः स्पष्टाः स्युरेवं कृताः ॥

चंद्रः सौम्यभगोऽथवा शुभमुहृष्टोऽथवा स्वांशगः ।

कोणास्ताभ्रमुखेषु वा विषभयं हंतीह सांगेंऽगपः ॥ २३ ॥

**श्लोकार्थ—**खालील अश्विनीपासून रेवतीपर्यंत सर्व नक्षत्रांच्या घटिका सांगितल्या आहेत त्या सांगितलेल्या घटिका पुढें ४ घटिका विष घटी समजाव्यात. त्या शुभ कार्याला वर्ज्य आहेत. ( उदाहरणः—अश्विनी ५० घटिका भोगल्यावर पुढें ५१-५२-५३-५४ ह्या ४ घटिका विष घटी समजाव्यात, नक्षत्र पूर्ण ६० घटिका असेल तर हा नियम आहे, परंतु साठांपेक्षां कमी किंवा जास्ती नक्षत्र असेल तेव्हां २३ श्लोकांत सांगितलेल्या रीतीनें गणित करून विष घटिका उत्पन्न कराव्यात. ) ॥ २२ ॥

नक्षत्राच्या गतैष्य योगाच्या सर्व घटिकांनीं आपापल्या ध्रुवाला गुणावें, आणि त्या गुणाकाराला ६० नीं भागावें, भागाकार येईल तो स्पष्ट ध्रुव होतो, तितक्या घटिका. नंतर वरच्या प्रमाणेंच ४ घटिकांला गुणून व भागून भागाकार येईल तितक्या घटिका त्या नक्षत्राच्या स्पष्ट विषघटी जाणाव्या, ( उदाहरणः—सोमवारीं रेवती ३५ घटिका त्या ६० त वजा करून बाकी २५ घटिका गत आणि मंगळवारीं ३९ घटिका अश्विनी एष्य ह्मणून २५+३९=६४ घ० ह्यांनीं अश्विनीचा ध्रुवक ५० ह्याला गुणून गुणाकार ३२०० आला, त्याला ६० नीं भागून ५३ घ० २० पळें आलीं, आतां गतैष्ययोग ६४ ह्यांनीं ४ ला गुणून गुणाकार २५६ त्याला ६० नीं भागून भागाकार ४ घ० १६ प० आला; ह्मणून अश्विनी नक्षत्र ५३ घ० २० प० भोगल्यानंतर ४ घ० १६ प० विषघटी उत्पन्न झाल्या, ) चंद्र शुभ ग्रहांच्या राशीला असतां किंवा त्याचा शुभ असून मित्र अशा

ग्रहानें चंद्र दृष्ट असतां, अथवा चंद्र स्वनवांशीं असतां, अथवा लग्नापासून ९५।७।१०।४ ह्या स्थानीं चंद्र असतां किंवा इष्ट लग्नाचा अधिपति ९।५।७।१०।४।१ ह्या स्थानीं असतां तो विषमयाचा नाश करितो. विष-  
घटांचे हे पांच अपवाद आहेत ॥ २३ ॥

### विषघटी कोष्टक.

|           |    |          |    |             |    |                 |    |
|-----------|----|----------|----|-------------|----|-----------------|----|
| अश्विनी.  | ५० | पुष्य.   | २० | स्वाती.     | १४ | श्रवण.          | १० |
| भरणी.     | २४ | आश्लेषा. | ३२ | विशाखा.     | १४ | धनिष्ठा.        | १० |
| कृत्तिका. | ३० | मघा.     | ३० | अनुराधा.    | १० | शततारका.        | १८ |
| रोहिणी.   | ४० | पूर्वा.  | २० | ज्येष्ठा.   | १४ | पूर्वाभाद्रपदा. | १६ |
| मृग.      | १४ | उत्तरा.  | १८ | मूळ.        | ५६ | उत्तराभाद्रपदा. | २४ |
| आर्द्रा.  | २१ | हस्त.    | २१ | पूर्वाषाढा. | २४ | रेवती.          | ३० |
| पुनर्वसु. | ३० | चित्रा.  | २० | उत्तराषाढा. | २० |                 |    |

अथ विषघटिका आहे—पंचाशदिति । अश्विनः सकाशात् नक्षत्रेषु इमाभ्यः पंचाशजिनैत्यादि-  
भ्यो घटिकाभ्योऽग्रे परतोऽब्धिना ज्यश्चतुर्नाड्यो विषं स्यात् एतदुक्तं भवति अश्विन्यां पंचाशद्वटि-  
काभ्योऽनंतरं चतुर्नाड्यो विषं । एवमन्यत् । अत्रांकन्यास एव व्याख्यानम् ॥ २२ ॥ अथैषां ध्रुवकाणां  
स्पष्टीकरणमाह—नक्षत्रस्येति । नक्षत्रस्य गतैष्ययोगेन गुणितः स्वस्वध्रुवः पंचाशजिनादिः स्पष्टित्  
स्पष्टः स्यादत ऊर्ध्वं स्पष्टध्रुवानंतरं अब्धिघटिकाश्चतुर्नाड्यो विषं स्यात् । एवमुक्तप्रकारेण कृताः  
सत्यः स्पष्टाः स्युः । एतदुक्तं भवति । ध्रुववच्चतुर्नाड्योऽपि नक्षत्रगतैष्ययोगगुणिताः कार्याः स्पष्टि-  
कृताः कार्याः ताः स्पष्टाः स्युः स्पष्टानंतरं चतुर्नाड्यो विषाख्या ज्ञेयाः । अथ विषघटीनामपवादमाह—  
चंद्र इति । चंद्रः सौम्यभगः शुभग्रहराशिगः सन् विषभयं हति । अथवा शुभसुहृदृष्टः शुभश्चासौ  
सुहृच्च तेन दृष्टः सन् विषभयं हति । अथवा स्वांशगः स्वनवांशे वर्तमानः सन् विषभयं हति वा  
इत्यथवा कोणास्ताम्रसुखगोऽपि चंद्रो विषभयं हति कोणे पंचमनवमे अस्तमं सप्तमं अष्टं दशमं  
सुखं चतुर्थं एतत्स्थानगोऽपि चंद्रः विषभयं हतीत्यर्थः । अत्रास्मिन् कोणादिस्थाने सांगे सलग्ने  
वर्तमानः अंगपो लग्नपो विषभयं हतित्यर्थः । एवं पंच भंगाः संति । ननु सप्तमः खेटो विवाहे  
निंदितः कथमत्र चंद्रो गृहीतः सत्यमिदं वाक्यं सर्वकर्मसाधारणं तस्मान्निंदितं स्थानं वर्जयित्वाऽन्यत्र  
ग्राह्यः । तथा च बृहस्पतिः । चंद्रो विषघटीदोषं हति केंद्रत्रिकोणगः । लग्नं विना शुभैर्दृष्टः केंद्रे वा  
लग्नपे तथा । फलप्रदीपे । विषनाड्युत्थितं दोषं हति सौम्यर्क्षगः शशी । मित्रदृष्टोऽथवा स्वीयवर्गस्थो  
लग्नपोऽपि च ॥ २३ ॥

टीका—आतां विषघटिका सांगतो—अश्विनी नक्षत्रापासून पन्नास इत्यादि घटिका सांगितल्या आहेत त्या  
श्लोकांत आहेतच त्या घटिकांपुढे ४ घटिका विष असते ह्मणून अश्विनीच्या पन्नास घटिका भोगून झाल्यावर ४ घटिका  
निष घटिका आहेत ह्याच प्रमाणे बाकीच्या नक्षत्रांचेही समजावे ह्या श्लोकांची टीका ह्मणजे नुसते अंक ठेवणें हेंच आहे ॥ २२ ॥  
आतां ह्याचे ध्रुवकांचें स्पष्टीकरण सांगतो—ते असे कीं, नक्षत्राचा जो ध्रुव ह्मणजे ५० इत्यादि असेल त्याला गत आणि एष्य  
अशा योगानें गुणित करावा. नंतर त्या ६० ध्रुवीं भागाव्यात. नंतर जो भागाकार येईल तो स्पष्ट ध्रुव जाणावा.  
ध्रुवाप्रमाणेंच ४ घटिकांला गुणून व भागून जो भागाकार येईल तितक्या घटिका त्या नक्षत्राच्या स्पष्ट घटी जाणाव्यात  
असे उदाहरण श्लोकाच्या अर्थांत दिलें आहे तें तेथें पहावें. आतां विष घटीचा अपवाद सांगतो—ते अपवाद पांच आहेत  
ते असे कीं, १ चंद्र हा शुभ ग्रहाच्या राशीवर असेल तर विष घटीचा नाश होतो. २ शुभ असून मित्र अशा ग्रहानें  
पाहिलेला चंद्र विषघटीचा नाश करतो. ३ चंद्र आपल्या नवांशामध्ये असेल तर तो विषघटीचा नाश करतो. ४ किंवा कोण  
ह्या ९-५ अस्त ह्या ७ अत्र ह्या १० सुख ह्या ४ अर्थात् ९-५-७-१०-४ ह्या ठिकाणीं असेलेला चंद्र विषघटीचा  
नाश करितो. ५ अथवा लग्नाचा अधिपति ९-५-७-१०-४ आणि लग्नी १ ह्या स्थानीं असेल तर तो विषघटीचा नाश  
करितो अशा रीतीनें विषघटीचे पांच अपवाद आहेत. आतां अशी शंका येते कीं, सप्तम स्थानचा ग्रह विवाहामध्ये निय-  
मित स्थान सोडून दुसरे ठिकाणचा चंद्र घ्यावा. तसेंच बृहस्पति सांगत आहे कीं, केंद्रांत ह्या ९-४-७-१० ह्या स्थानचा  
आणि त्रिकोण ह्या ५-९ ह्या स्थानचा चंद्र विषघटी दोषाचा नाश करतो, परंतु तो चंद्र लग्नी नसावा आणि शुभग्रहांनीं

पाहिलेला असावा. अथवा लग्नाचा अधिपति केंद्री झ० १-४-७-१० ह्या स्थानीं असेल तर तो विषघटीचा नाश करतो. फलप्रदीप ग्रंथांत असे सांगितले आहे. कीं, चंद्र हा शुभग्रहांचे राशीवर असेल आणि तो मित्रांनीं दृष्ट असेल तर तो विषघटीचा नाश करितो अथवा लग्नाचा अधिपति आपल्या स्वीय वर्गामध्ये असेल तर तोही विषघटीचा नाश करितो ॥ २३ ॥

विवाहाचे अशुभ व शुभ ग्रह.

लग्ने चंद्रखला रिपौ शशिसितौ सर्वे द्युने खे बुधोऽ- ।

ज्योऽत्येऽगुः सुखगोऽष्टमाः कुजशुभाः शुक्रस्तृतीयः शुचे ॥

लाभे सर्वखगाः शुभा अखिलगाः ऋष्यारिगाः स्युः खलाः ।

चंद्ररूपबुधने श्रियेशभटकेद् स्यान्मृत्यवेऽष्टारिगः ॥ २४ ॥

श्लोकार्थ—विवाहाच्या इष्टलक्ष्मीं चंद्र व खलग्रह, षष्ठस्थानीं चंद्र व शुक्र, सप्तमस्थानीं शुभ व पाप हे सर्व ग्रह, दशमस्थानीं बुध, द्वादश चंद्र, चतुर्थ राहु, अष्टमस्थानीं मंगळ व शुभग्रह आणि तृतीय शुक्र हे सर्व शोककारक जाणावे. एकादशस्थानीं सर्व ग्रह, पूर्वीच्या निध स्थानावांचून सर्व स्थानीं शुभ ग्रह अष्टम मंगळावांचून ३।८।६ या स्थानीं खलग्रह आणि ३।४।२ ह्या स्थानीं चंद्र हे विवाहाला लक्ष्मीप्रद होत, इष्टनवांश, लग्न, द्रेक्काण ह्यांचे स्वामी अष्टम व षष्ठ असतां मृत्युकारक जाणावे ॥ २४ ॥

अथ विवाहलग्ने इष्टानिष्टग्रहानाह—लग्ने चंद्रेति । चंद्रश्च खलाश्च ते चंद्रखलाः लग्ने वर्तमानाः शुचे शोकाय भवन्ति तथा रिपौ षष्ठे शशिसितौ चंद्रशुक्रौ तथा सर्वे द्युने सर्वे क्रूरसौम्याः द्युने सप्तमे तथा खे दशमे बुधः तथा अज्यश्चंद्रोऽत्ये अगुः राहुः सुखगश्चतुर्थगः न विद्यन्ते गावः किरणा यस्येत्यगुः राहुः । राहुस्तमोऽगुरसुरश्चेति बृहज्जातके राहुनामानि । तथा अष्टमाः कुजशुभाः कुजश्च शुभाश्च ते तथा शुक्रस्तृतीय इति स्पष्टार्थ एते प्रत्येकं उक्तस्थानगाः । शुचे शोकाय भवन्ति । अथेष्टानाह—लाभे एकादशे सर्वखगाः तथा शुभाः सौम्यग्रहा अखिलगाः निध विना सर्वस्थानगा तथा खलाः क्रूरः ऋष्यारिगाः तृतीयाष्टषष्ठगाः तत्राष्टमे भौमो निधितः तं विना पापाष्टमा ग्राह्याः चंद्ररूपबुधने तृतीय-चतुर्थद्वितीये चंद्रः एते प्रत्येकं श्रियै लक्ष्म्यै भवन्ति श्रीकारका इत्यर्थः । एवं शुभाशुभग्रहानुक्त्वा तत्र विशेषमाह—अंशभटकेद् अष्टारिगः सन् मृत्यवे स्यात् । अंशो नवांशः भं लग्नं दको दक्काणः एषामीद् स्वामी नवांशस्वामी लग्नस्वामी दक्काणस्वामी एते प्रत्येकं अष्टषष्ठगा मृत्यवे मृत्युहेतवो भवन्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥

टीकार्थ—विवाहलग्नीं इष्टग्रह कोणते व अनिष्ट ग्रह कोणते हें सांगतों—लग्नीं चंद्र आणि पापग्रह असतील तर ते शोक करणारे होतात. तसेच शत्रु षष्ठस्थानीं झणजे शत्रुस्थानीं चंद्र आणि शुक्र असतील, किंवा सप्तमस्थानीं सर्वच पापग्रह असतील, आणि दशमस्थानीं बुध असेल, बारावे स्थानीं चंद्र असेल. तसेच सुख झणजे चतुर्थस्थानीं राहु असेल त्या राहुला अगु असे नांव आहे, कारण त्याला गो झणजे किरण नाही ह्यास्तव अगु असे राहुचें नांव आहे. बृहज्जातकांत राहुचें नांव राहु, तम, अगु, असुर अशीं आहेत, तसेच अष्टमस्थानीं मंगळ आणि शुभग्रह असतील तृतीयस्थानीं शुक्र असेल इतके हे सर्व ग्रह प्रत्येकजण त्या त्या स्थानीं असलेले शोककारक होतात. आतां इष्टग्रह कोणते ते सांगतों—लाभस्थानीं झणजे अकरावे स्थानीं सर्व ग्रह शुभकारक आहेत. निध सांगितलेल्या स्थाना शिवाय बाकी सर्व ठिकाणीं शुभग्रह असलेले शुभकारक होत. पापग्रह झ० क्रूरग्रह ३-६-११ ह्या स्थानीं असलेले शुभकारक आहेत. पैकीं मंगळ हा अष्टमस्थानीं निधित सांगितला आहे त्याशिवाय दुसरे पापग्रह अष्टमस्थानीं शुभकारक आहेत. चंद्र हा ३-४-२ ह्या स्थानाचा शुभकारक आहे. झणजे हा प्रत्येक लक्ष्मीदायक आहे. अशारीतीने शुभ आणि अशुभ ग्रह सांगून आतां त्यांतील विशेष सांगतों—नवांशाचा, लग्नाचा, आणि दक्काणाचा स्वामी हे प्रत्येकजण अष्टम आणि षष्ठस्थानीं असलेले मृत्युकारक आहेत ॥ २४ ॥

अशुभ ग्रहांचे अपवाद.

कन्यातौलिकशत्रुगेहगभृगुः षष्ठोऽपि नो भुंगक्- ।

द्रौमो मृत्युगतोऽपि शत्रुशशिर्नोर्गेहस्थितो वाऽकंगः ॥

शुक्लेंऽप्यारिविधुः सुवर्गद्विगतः स्वोजोयुज्ये तनौ ।

शुके वा शुभदोऽथ कंटकनिजांशेऽप्येक्षितः सग्रहः ॥ २५ ॥

श्लोकार्थ—कन्या, धन आणि शत्रुराशि ह्मणजे सिंह, कर्क ह्या ४ राशीला शुक्र असून षष्ठस्थानी असतां तो अशुभ नाही. मिथुन, कन्या, कर्क ह्या राशीला शुक्र असून अस्तंगत मंगळ अष्टमस्थानी असला तर तोही अशुभ नाही, बलवान् गुरु किंवा शुक्र इष्टलगां असेल आणि शुक्रपक्ष असून चंद्र शुभग्रहाच्या वर्गी व शुभग्रहाच्या दृष्टीने युक्त असेल तर तसा चंद्र द्वादश किंवा षष्ठ असतांही शुभ फळ देतो, बुध, गुरु शिवाय अन्य ग्रहांने युक्त चंद्र अशुभ खरा, परंतु त्यावर केंद्रस्थानी असून खनवांशी असणाऱ्या गुरुची दृष्टि असतां तोच शुभ जाणावा ॥ २५ ॥

अथ कतिचिदोषाणामपवादमाह—तत्र प्रथमं भृगुषष्ठापवादमाह—कन्यातौक्षिकेति । कन्या प्रसिद्धा शुक्रस्य नीचं तौक्षिको धनुर्धरः शत्रुगृहं पूर्वोक्तं भृगुभुवः शत्रू रवीन्दू इति । तत्र रवेर्गृहं सिंहः इंदो-  
गृहं कर्क एषां कन्यादीनां अन्यतमगेहगतो भृगुः षष्ठोऽपि नो भृंगकृत्स्यात् लग्नभंगकरो न भवतीत्यर्थः  
तथा च कश्यपः । नीचगे तचुरीये वा शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । भृगुषष्ठोद्भवो दोषो नास्तीत्यत्र न संशयः ।  
अथ कुजाष्टमदोषापवादमाह—भौमो मृत्युगतोऽपि अष्टमगतोऽपि शत्रुशशिनागेंहस्थितो यदि भवति वा  
इत्यथवा अर्कगः अस्तंगतोऽपि यदि भवति तदा नो भंगकृत्स्यात् । अस्य शत्रुर्बुधः कुजस्य विदरि-  
ति प्रागुक्तः तस्य गृहं कन्या मिथुनं च शशिगृहं कर्कटः तस्य नीचं एषामन्यतमस्थः अस्तंगतो वा  
अष्टमगतोऽपि भौमो लग्नभंगकरो न भवतीत्यर्थः । अस्तंगं इति पाठे । स एवार्थः तथा च कश्यपः ।  
अस्तंगे नीचगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । कुजाष्टमोद्भवो दोषो न किंचिदवशिष्यत इति । अथ द्वादश-  
षष्ठचंद्रापवादमाह—शुकेति । शुक्रपक्षेऽप्यारिविधुर्द्वादशषष्ठचंद्रः सुवर्गद्विगतः वार्गाश्च दशश्च वर्गदशः  
शोभनानां वर्गदशः सुवर्गदशः ता इतः प्राप्तः सुवर्गद्विगतः शुभवर्गशुभदृष्टियुक्त इत्यर्थः । एवंविधो  
विधुः शुभदः स्यात् कस्मिन् सति इज्ये गुरौ शुके वा तनौ लग्ने सति कथंभूते गुरौ स्वोजोयुजि  
सुतरामोजः स्वोजः उत्कृष्टबलं तेन युनक्तीति स्वोजोयुक् तस्मिन् स्वोजोयुजि अतिबलिष्ठे सतीत्यर्थः  
शुक्रस्याप्येतद्विशेषणं एतदुक्तं भवति बलिष्ठे गुरौ शुके वा लग्नस्थे सति शुक्रपक्षे चंद्रमाः सुवर्गदृष्टि-  
सहितः यदि भवति तदा द्वादशषष्ठगां अपि शुभद इति भंगकरो न स्यादन्यथा न । मुहूर्तदर्पणे । कवौ  
गुरौ वा बलिनि स्थिते तनौ शुभेन दृष्टः शुभवर्गगः शशी । विवर्धमानः शुभकृच्च नाशुभं करोति  
तिष्ठन्नपि रिःफषष्ठयोरिति ॥ अथ सग्रहचंद्रदोषापवादमाह—सग्रहः ग्रहेण ग्रहाभ्यां ग्रहेर्वा सहवर्तमा-  
नः सग्रहः बुधगुरुस्वर्जन्यग्रहयुक्त इत्यर्थः । यतः पूर्वमुक्तं हिमरुचिं ज्ञेयोनखेटान्वितमिति । एवं-  
विधः सग्रहः विधुः केंद्रनिजवर्गेऽप्येक्षितः सन् शुभदः स्यात् केंद्रं प्रसिद्धं निजवर्गो निजांशः तत्र  
वर्तमान इज्यः केंद्रनिजवर्गेऽप्येक्षितः तेन ईक्षितः अवलोकितः सग्रहः चंद्रमाः शुभदः भंगकरो न स्यात् ।  
उक्तं च । गुरुः स्वकीयवर्गस्थो बलवान्कंटकाश्रितः । पश्यन् सग्रहशीतांशुं तद्दोषं विलयं  
नयेदिति ॥ २५ ॥

टीकार्थ—आतां किती एक दोषांचा अपवाद सांगतो—पैकी अगोदर षष्ठस्थानच्या शुक्राचा अपवाद सांगतो—कन्या,  
तौक्षिक ह्म० धनु, शत्रुगृह ह्म० शुक्राचे शत्रु रवि आणि इंदु त्यांचीं गृहे ह्म० रविचें सिंह, चंद्राचें कर्क ह्या ह्मणजे कन्या  
धन, सिंह, आणि कर्क ह्या चारांपैकी कोणत्याही एकराशीस जर शुक्र असेल आणि तो जरी षष्ठस्थानचा असेल तरी तो  
अशुभ नाही. अर्थात् लग्नाचा भंग करणारा होत नाही. तेच कश्यप सांगतो की, नीचेचा ह्म० कन्या राशीचा कारण शु-  
क्राची उच्चराशी मीन आहे त्यापासून सातवी राशी कन्या आहे ह्मणून ती शुक्राची नीच राशी आहे. त्या नीच राशीचा, त्या  
कन्येपासून चवथ्या ह्मणजे धनराशीचा, आणि शुक्राचे शत्रु जे रवि आणि चंद्र ह्या दोषांच्या राशीचा ह्मणजे सिंह आणि  
कर्कराशीचा शुक्र असून तो जरी षष्ठस्थानचा असेल तरी तो दोष करणारा नाही. आतां अष्टमस्थानच्या मंगळाचा अपवाद सांगतो—  
मंगळ मृत्युस्थानी ह्मणजे अष्टमस्थानी जरी असला परंतु तो आपल्या शत्रुच्या ह्मणजे बुधाच्या अथवा चंद्राच्या गृहीं असेल  
तर तो मंगळ दोष करणारा नाही अथवा मंगळ सूर्याबरोबर अर्थात् अस्तंगत असेल तर तो भंगकरणारा होत नाही. मंगळ-  
चा शत्रु बुध आहे असे पूर्वी सांगितलें आहे. त्या बुधाचें गृह कन्या आणि मिथुन, अशीं दोन आहेत. चंद्राचें गृह कर्क आहे  
तेव्हां कन्या, मिथुन, कर्क इतक्या राशीचा व नीचेचा असा मंगळ जरी अष्टमस्थानी असला अथवा अस्तंगत मंगळ दोष-

१ भृगुजस्यारी रवीन्दू हिताविति पूर्वपाठो गतोऽस्त्यत्र तु एवं वर्तते ।

करणारा नाही. तेंच काश्यप सांगतो कीं, अस्तंगत असलेला, नीचीचा असलेला, शत्रूच्या घरी असलेला, असा मंगळ जरी अष्टमस्थानचा असला तरी तो दोष करणारा नाही आतां बाराव्या आणि सहाव्या चंद्राचा अपवाद सांगतो—शुक्रपक्षामध्ये बाराव्या आणि सहावा चंद्र असून तो जर शुभवर्गीतील ग्रहांच्या दृष्टीने युक्त असेल तर असा चंद्रमा शुभकरणारा आहे. परंतु गुरु किंवा शुक्र तनुस्थानीं झणजे लग्नां असावा आणि तो गुरु आणि शुक्र हे दोघे अतिशय बलिष्ठ असावेत. अर्थात् इतका अर्थ निघाला कीं, अतिशय बलिष्ठ गुरु किंवा शुक्र लग्नां असून शुक्रपक्षांतील चंद्र सुवर्गाच्या दृष्टीने युक्त असेल तर तो बारा आणि सहा ह्या स्थानाचा दोष करणारा नाही इतकें नसेल तर तो दोषकारक आहे. मुहूर्तदर्पणांत सांगितलें आहे कीं, जरी चंद्र षष्ठ आणि द्वादशस्थानीं असला परंतु लग्नां अति बलिष्ठ गुरु किंवा शुक्र असेल आणि तो चंद्र शुभग्रहांनीं दृष्ट असेल आणि शुभवर्गीत राहिला असेल व दररोज वृद्धिंगत होणारा अर्थात् शुक्रपक्षांतील असेल तर तो शुभ करणारा होतो कधीही अशुभ करित नाही. आतां दुसऱ्या ग्रहासह असलेल्या चंद्राचा अपवाद सांगतो—तो चंद्र एका ग्रहानें, दोन ग्रहांनीं अथवा तीन ग्रहांनीं युक्त असावा झणजे बुध आणि गुरु ह्या दोहों शिवाय दुसऱ्या कोणत्याही ग्रहांनीं युक्त असावा असें झणण्याचें कारण कीं, पूर्वी चंद्र हा गुरु व बुध ह्यांनीं युक्त चंद्र ग्राह्य असें सांगितलें आहे. झणून बुध व गुरु शिवाय दुसऱ्या ग्रहांनीं युक्त असा चंद्र अशुभ खरा परंतु त्यावर केंद्रांत ह्यं १-४-७-१० ह्या स्थानामध्ये राहणारा असेल आणि आपल्या नवांशांत राहणाऱ्या अशा गुरुची दृष्टि असेल तर तो शुभ जाणावा. असें सांगितलें आहे कीं, आपल्या नवांशांत राहणारा, आणि केंद्रांत ह्यं १-४-७-१० ह्या स्थानीं राहणारा असा गुरु जर अन्य ग्रहांनीं युक्त असलेल्या चंद्राला पाहील तर त्या चंद्राचा दोष नाहीसा करितो ॥ २५ ॥

सामान्य दोषांचे अपवाद व भावफल.

दोषाणां शतमिंदुजः शतयुगं शुक्रो गुरुर्घातये- ।

लक्षं कंटककोणगोंगमिनचंद्रौजस्विपातादिकान् ॥

भंगा ये विबला न तेऽत्र सफलाः संध्यंशतुल्योऽफलः ।

स्याद्वावांशसमो ग्रहोऽखिलफलः संध्यूर्ध्वगः स्यात्परः ॥ २६ ॥

श्लोकार्थ—इष्टलग्नापासून केंद्रस्थानीं व कोणस्थानीं झणजे १४।७।१०।१५ या स्थानीं बुध असतां १०० दोषांशा, त्याच स्थानीं शुक्र असतां २०० दोषांचा आणि त्याच स्थानीं गुरु असतां १००००० दोषांचा नाश करितो, सूर्याच्या व चंद्राच्या बळानें युक्त लग्न, महापात, एकाग्रल, उपग्रह, लत्ता, जामित्र, कर्तरी इत्यादि दोषांचा नाश करितें, दोषांचा नाश करणारे बलिष्ठ असतां ते दोषांच्या नाशविषयीं समर्थ होतात, निर्बल असतां दोष नाश करित नाहीत. पुढच्या श्लोकांत भाव व त्यांचे संधी आहेत. संधीच्या अंशां इतके ग्रहाचे अंश असतील तर तो ग्रह निष्फल होय. भावाच्या अंशां इतके ग्रहाचे अंश असतां तो संपूर्ण फल देतो. संधीच्या पुढें असणारा ग्रह पुढच्या भावाचें फल देतो ॥ २६ ॥

अथ सामान्यदोषापवादमाह-दोषाणामिति । कंटककोणगः केंद्रकोणग इंदुजः बुधः दोषाणां शतं घातयेत् तत्स्थः १४।५।७।१० शुक्रः दोषाणां शतयुगं द्विशतं घातयेत् तत्स्थः १४।५।७।१० बृहस्पतिः दोषाणां लक्षं घातयेत् । अपवादांतरमाह-अंगे लग्नं इनचंद्रौजस्वि एवंविधं लग्नं पातादिकान् घातयेत् । इनचंद्रयोः सूर्यचंद्रयोः ओजो बलमस्यास्तीति इनचंद्रौजस्वि एवंविधं लग्नं पातादिकान् घातयेत् । उक्तं च वसिष्ठेन । एकाग्रलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तरीयुद्धादिदोषाः ॥ नश्यति चंद्राकंबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदयेऽधकार इति । अथ दोषापवादभंगमाह-भंगा इति । ये भंगा दोषभंगा विबला गतबला निर्बलास्तेऽत्र दोषभंगाविषये सफला न भवन्ति दोषभंगसमर्था न भवन्तीत्यर्थः । तस्माद्दोषभंगकृतां बलं विचार्य दोषभंगमादिशेदिति भावः । उक्तं च । सामान्येनोदिता दोषा भंगास्तेषां तु तद्विदैः । यदि ते बलहीनाः स्युः प्रध्वंसाभावतां ययुः ॥ अथ भावशुद्धिमाह-संध्यंशतुल्योऽफल इति । संध्यंशतुल्यः संधिभागसमानो ग्रहः अफलः स्यात् । सदसत्फलदो न भवति भावांशतुल्यो ग्रहः अखिलफलदः स्यात् । संपूर्णफलदो भवति अर्थान्मध्येऽनुपातात्फलं वेद्यं । विशेषफलमाह-संध्यूर्ध्वगः स्यात्पर इति । संध्यूर्ध्वगः संध्यंशादिकः परः स्यात् परभावफलदः स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥

टीका—आतां सामान्य दोषांचा अपवाद सांगतो—कंटक केंद्र व कोण झणजे १-४-७-१०-१५ ह्या



स्थानीं राहणारा आणि इंदूचा पुत्र ह्य० बुध हा १०० दोषांचा नाश करणारा आहे. त्याच ठिकाणीं राहणारा शुक्र २०० दोषांचा नाश करणारा आहे. त्याच ठिकाणाचा गुरु १००००० दोषांचा नाश करणारा आहे. दुसरे अपवाद सांगितों—ज्या लग्नावर चंद्र आणि सूर्य ह्यांचे बल आहे असें जे लग्न ते पात इत्यादिकांचा नाश करतें. वसिष्ठने सांगितलें आहे कीं, जसा सूर्याचा उदय झाला असतां अंधकाराचा नाश होतो. त्याप्रमाणें सूर्य आणि चंद्र ह्या दोघांचे बल असलेलें लग्न हें एकागल, उपग्रह, पात, लप्ता, जामित्र कर्तृभुदय इत्यादि दोषांचा नाश करतें. आतां दोषांचे अपवादांचा भंग सांगितों—जे दोषांचे भंग सांगितले ते भंग जर निर्बल असतील तर ते दोषांचा भंग करण्यास समर्थ होत नाहीत. ह्मणून दोषांचा भंग करणारे जे असतील त्यांच्या बलाचा विचार करून मग दोषांचा भंग कसा आहे वगैरे सांगावें, असें सांगितलें आहे कीं, समान रीतीनें जे भंग सांगितले आहेत ते भंग करणारे ग्रहादिक जर निर्बल असतील तर त्यापासून भंगाचा नाश होणार नाही असें त्यांतील बलाबल जाणणाऱ्यांनीं विचारून सांगावें. आतां भावाची शुद्धि सांगतो—संधीच्या अंशां इतके ज्याचे अंश आहेत असा ग्रह काहीं फल देणारा होत नाही तर तो सत् किंवा असत् त्या दोन प्रकारचेही फळ देत नाही. भावाचे अंश इतके अंश असलेला ग्रह संपूर्ण फळ देतो. अर्थात् मध्य भागी असलेला मध्यम फळ देतो. विशेष फल सांगतो—संधीच्या अंशाचे पुढें राहणारा ग्रह पुढच्या भावाचे फल देणारा होतो ह्याचे पुढील श्लोकांत भाव आणि त्याचे संधी सांगितले आहेत ॥ २६ ॥

केशवर्तील नतसाधन.

( रात्रेः शेषमितं युतं दिनदले नाहोगतं शेषकम् ॥

विश्लेष्यं खलु पूर्वपश्चिमनतं त्रिशच्च्युतं चोन्नतम् ॥ १ ॥)

अर्थ—मध्यरात्रीनंतर उदयपर्यंतच्या शेषघटिका आणि पूर्वी अस्तापासूनच्या गतघटिका दिनमानाच्या अर्धानें युक्त कराव्या, दिवसास मध्यान्हा पूर्वीच्या गतघटिका आणि पुढच्या शेषघटिका दिनमानाच्या अर्धातून वजा कराव्या ह्मणजे क्रमानें पूर्व व पश्चिम नत होतें, ( उदाहरणः— शके १८१७ आश्विन शुद्ध १५ गुरुवार ०२ रोजी सूर्योदयापासून इष्टकाळ ८ घटिका ३० पळें ह्या वेळीं नत करावयाचें, त्या दिवशीं दिनमान २९ घ० ३४ प० त्याचें अर्ध १४ घ० ४७ प० ह्यांतून इष्टकाळ ८ घ० ३० प० वजा करून बाकी ६ घ० १७ प० हें पूर्वनत झालें; कारण इष्टकाळ दिवसाच्या गतघटींत आहे, ह्याच दिवशीं रात्री ६ घ० इष्टकाळ मानिला तर दिनमानाचें अर्ध १४ घ० ४७ प० ह्यांत ६ घ० युक्त केल्यानें २०।४७ हें पश्चिमनत होईल, ) ३० तून नत वजा केलें ह्मणजे उन्नत होतें ॥ १ ॥

स्थूलमानाचें भावसाधन.

भागाः स्युर्नतनाडिका रसहतास्तद्धीनयुक्प्रभाक्परे ।

सूर्यः खं सरसं सुखं कथितवल्लभं सषड्भं मदः ॥

व्यस्ताभ्रत्रिलवोऽथ दृक्च्युत उभौ योज्यौ कुद्वौ पृथक् ।

लग्ने चांबुनि ते सषट्त्तनुमुखाः संधिर्द्वियोगोर्धकः ॥ २७ ॥

( पाठांतरं ॥ व्यस्ताभ्रारिलवोऽथ भूच्युत इमौ भूयोगपातालयोः ।

क्षेप्यौ षड् तनुतः ससंधय इमे षड्भान्विताः स्युः पुरे ॥ २७ ॥ )

श्लोकार्थ—नतघटींना ६ नीं गुणून गुणाकार येईल ते अंश होतात, मग ते अंश इष्टकाळच्या स्पष्टरवीतून पूर्वनत असतां वजा करावे. आणि पश्चिमनत असतां स्पष्टरवीत मिळवावे, ह्मणजे तो दशम भाव होतो दशमभावांत ६ राशि मिळविल्या ह्मणजे तो चतुर्थभाव होतो पुढें ( विवा० प्र० श्लोक ३१ यांत ) सांगितल्या प्रमाणें लग्न करावें. ह्मणजे तो प्रथमभाव होतो. यांत सहा राशि मिळविल्या ह्मणजे तो सप्तमभाव होतो, नंतर दशमभावांतून सप्तमभाव वजा करून बाकीला ६ नीं भागावें, राश्यादि भागाकार येईल तो १ तून वजा करून बाकी काढावी, मग

राश्यादि भागाकार फिरून फिरून लग्नांत मिळवावा, आणखी बरील बाकी पुनः पुनः चतुर्थभावांत मिळवावी, ह्मणजे लग्नापासून संधी सहित ६ भाव तयार होतात, त्या प्रत्येकांत ६ राशि मिळवाव्या ह्मणजे सप्तमादि पुढचे ६ भाव तयार होतात. ( उदाहरणः— ६ घ० १७ प० पूर्वत आह्मे, त्याला ६ नीं गुणून ३७ अं० ४२ क० झाल्या. इष्टकाळचा रवि ५।१६।०।४ त्यांतून नतपूर्व आहे ह्मणून ३७।४२ वजा करून बाकी ४।८।१८।४ हा दशमभाव झाला. त्यांत ६ राशि मिळवून १०।८।१८।४ हा चतुर्थ भाव. लग्न ७।३।२७।४५ हा प्रथमभाव. ह्यांत ६ राशि मिळवून १।३।२७।४५ हा सप्तमभाव. आतां ४।८।१८।४ दशम, त्यांतून १।३।२७।४५ सप्तम वजा करून बाकी ३।४।५०।१९ हिला ६ नीं भागून राश्यादि भागाकार ०।१५।४८।२३ हा १ तून वजा करून बाकी ०।१४।११।३७ निघाली. लग्न ७।३।२७।४५ ह्यांत राश्यादि भागाकार ०।१५।४८।२३ मिळवून ७।१९।१६।८ हा प्रथमद्वितीयांचा संधि झाला. त्यांत पुनः ०।१५।४८।२३ मिळवले ह्मणजे ८।५।४।३१ हा द्वितीयभाव असेंच पुढें करीत गेलें ह्मणजे पुढचे संधी व भाव होतील. पूर्वीची बाकी ०।१४।११।३७ ही चतुर्थभाव १०।८।१८।४ ह्यांत मिळविली ह्मणजे १०।२२।२९।४१ हा चतुर्थपंचमांचा संधि. त्यांत फिरून बाकी मिळविली ह्मणजे ११।६।४१।१८ हा पंचमभाव. असेंच पुढें करीत जावें ह्मणजे सर्व भाव होतील. दोन भावांची बेरीज करून तिचें अर्ध केलें ह्मणजे तें त्या दोहोंचा संधि होतो. ) सर्वभाव आणि त्याचे संधि पुढील कोष्टकांत आहेत ॥ २७ ॥

संध्यंशतुल्य इत्याद्युक्तं तत्र के ते संध्यः के ते भावा इत्यपेक्षायां तत्साधनं किंचित्स्थूलमेकेन वृत्ते-  
नाऽऽह-भागाः स्युरिति। नतनाडिका रसहता भागाः स्युः। नतसाधनं जातकपद्धतावुक्तं। रात्रेः शेषमितं  
युतं दिनदले नाहो गतं शेषकं विश्लेष्यं खलु पूर्वपश्चिमनतमिति। एतदुक्तं भवति। सूर्येष्टलग्नाभ्या-  
मिष्टकालं साधयित्वा नतं च साधयित्वा तदिष्टकालमवर्तं नतं षड्गुणं क्षतभागाः स्युरित्यर्थः। प्राक्  
पश्चिमनतेन क्रमेण तन्यूनयुक् सूर्यः तैर्भागैर्न्यूनयुक् पूर्वनते सति न्यूनः पश्चिमनते सति युक् युक्तः  
तात्कालिकः सूर्यः खं स्यात् दशमभावः स्यादित्यर्थः। तत् खं दशमः भावः सरसं षड्भाशियुक्तं सत्  
सुखं चतुर्थभावः स्यात् कथितवल्लभं प्रोक्तवल्लभं ज्ञेयं तत्सपड्भं षड्भाशियुक्तं सत् मदः सप्तमभावः  
स्यात्। एवं भावचतुष्टयं साधयित्वाऽतर्भावसाधनमाह-व्यस्ताभ्रत्रिलव इति। विगतः अस्तः अ-  
स्तभावो तस्मात्तद्व्यस्तं तच्च तत् अंशं च व्यस्ताभ्रं सप्तमभावरहितदशमभाव इत्यर्थः। तस्य त्रिलवो  
राश्यादिको ग्राह्यः अथ दृक्च्युतः द्विपतितः कार्यः एतौ उभौ केवलत्रिलवदृक्च्युतत्रिलवौ पृथक् पृथक्  
कुद्वग्नौ संतौ पृथक् पृथक् लग्ने अंबुनि च योज्यौ अयमर्थः। कुद्वग्नः त्रिलवो लग्ने योजितः सन् द्विती-  
यभावो भवति। द्वग्नो लग्नयोजितः सन् तृतीयभावो भवति। अथ दृक्च्युतः त्रिलवः कुद्वग्नः अंबुनि  
पूर्वसाधिते चतुर्थभावे योजितः सन् पंचमभावो भवति। तत्रैव द्वग्नौ अंबुनि योजितः षष्ठभावो भव-  
ति। ते षडन्तरसाधिता भावाः सपड् षड्भाशिसहिताः कार्याः। ते तु सप्तमा ज्ञेयाः लग्नं सपड्भं  
मद इति यावत्। ते तु लग्नमुखा लग्नादयो भावाः स्युः। अथ संधिसाधनमाह-संधिद्वियोगोर्ध्वक  
इति। द्वयोर्भावयोर्योगः अर्धितः संधिः स्यादिति स्पष्टम् ॥ २७ ॥ अथ पाठांतरस्य व्याख्या-व्यस्तेति  
। सप्तमभावरहितस्य अरिलवः षड्भागो राश्यादिकः स पृथक् भूच्युत एकस्मात्पतित इमौ  
उभौ भूयः वारंवारमंगपातालयोः प्रथमचतुर्थभावयोः क्षेप्यौ तनुतः लग्नात् ससंधयोः संधिसहिताः  
षड्भावाः स्युः। इमे भावाः षड्भावान्विताः संतः परे ससंधयो भावाः स्युः एवं भावसंधिसाधनं  
कृत्वा संध्यंशतुल्यो फल इति प्रागुक्तं ग्रहफलं विचार्य अंतरे अनुपातः भावसंध्यंतरेणाप्तं संधिखे-  
दांतरात्कलमिति जातकपद्धतेः। एतत्स्थूलभावानवयनं। सूक्ष्मं तु जातकपद्धतावर्गंतव्यम् ॥ २७ ॥

टीका—संधीच्या अंशांशी तुल्य ग्रह असें पूर्वी सांगितलें आहे त्यामध्ये ते संधि कोणते व भाव कोणते अशी  
अपेक्षा आली असतां त्यांचें स्थूलमानाचें साधन एका वृत्तानें सांगितो—नत कसे साधावे हें जातक पद्धतींत सांगितलें आहे.  
जो गुणाकार येतो तो नतपूर्व असेल तर रवि मधून वजा करावा आणि नत पश्चिम असेल तर तो गुणाकार रविमध्ये  
मिळवावा. सूर्य आणि इष्ट लग्न ह्यांपासून इष्ट काल साधावा आणि नतही सिद्ध करावें. जें इष्ट काळाचें नत असेल त्याला  
६ नीं गुणावें आणि तें नत पूर्व असेल तर सूर्यांतून वजा करावें आणि पश्चिम नत असेल तर सूर्यांत मिळवावें. नंतर  
जो सूर्य येतो तो दशम भाव समजावा. त्या दशम भावांत ६ राशि मिळविल्या असतां तो सुख ह्मणजे चतुर्थभाव झाला.

पुढें विवाहप्रकरणाचे ३१ वे श्लोकांत सांगितल्याप्रमाणें लग्न तयार करावें तोच प्रथम भाव समजावा. त्या प्रथम भावांत ६ राशि मिळविल्या असतां मद ह्य० सप्तम भाव तयार होतो. अशा रीतीनें दशम भाव, चतुर्थ भाव, प्रथमभाव आणि सप्तम भाव असे चार भाव तयार केल्यावर मग आंतील भावांचें साधन सांगतो—ख ह्य० दशम भावांतून अस्त ह्य० सप्तमभाव वजा करावा. त्याचे राशि, अंश, कला वगैरे भाग घ्यावेत, तो दोन ठिकाणीं मांडावा हे दोन त्रिलवादि घेतले आहेत त्यांपैकी एकांतून वजा करून जी बाकी येईल ती लग्नांत मिळविली असतां द्वितीय भाव तयार होतो. दुसऱ्यांतून दोन वजा करून जी बाकी ती लग्नांत मिळविली असतां तिसरा भाव होतो. पुनः राश्यादि भाव दोन ठिकाणीं मांडलेला असेल त्या पैकीं एका भागांतून एक वजा केल्यावर जी बाकी राहिल ती चतुर्थ भावांत मिळविली असतां पंचम भाव तयार होतो, तोच चतुर्थ भावांत मिळविला असतां षष्ठ भाव तयार होतो, असे सहा भाव साधून तयार केल्यावर मग त्यांत सहा राशी मिळविल्या असतां; सातवा भाव तयार होतो म्हणजे लग्नांत सहा राशी मिळविल्या असतां मद ह्य० सप्तम भाव तयार होतो. अशा रीतीनें लग्नादि भाव सांगितले. आतां सांधे साधन सांगतो—दोन भावांची बेरीज करून त्याचें अर्ध केले असतां ते त्या दोन भावांचा सांधे होतो. पाठांतरव्याख्यानार्थ श्लोकार्थांतच सोदाहरण सांगितला आहे. ॥ २७ ॥

### तत्त्वादि द्वादश भाव.

| तनु. | धन. | सहज. | सुहृत्. | सुत. | रिपु. | जाया. | मृत्यु. | धर्म. | कर्म. | आय. | व्यय. |
|------|-----|------|---------|------|-------|-------|---------|-------|-------|-----|-------|
| १    | २   | ३    | ४       | ५    | ६     | ७     | ८       | ९     | १०    | ११  | १२    |
| ७    | ८   | ९    | १०      | ११   | ०     | १     | २       | ३     | ४     | ५   | ६     |
| ३    | ५   | ६    | ८       | ६    | ५     | ३     | ५       | ६     | ८     | ६   | ५     |
| २७   | ४   | ४१   | १८      | ४१   | ४     | २७    | ४       | ४१    | १८    | ४१  | ४     |
| ४५   | ३१  | १७   | ४       | १८   | ३२    | ४५    | ३१      | १७    | ४     | १८  | ४५    |
| ७    | ८   | ९    | १०      | ११   | ०     | १     | २       | ३     | ४     | ५   | ६     |
| १९   | २०  | २२   | २२      | २०   | १९    | १९    | २०      | २२    | २२    | २०  | १९    |
| १६   | ५२  | २९   | २९      | ५२   | १६    | १६    | ५२      | २९    | २९    | ५२  | १६    |
| ८    | ५४  | ४०   | ४१      | ५५   | ८     | ८     | ५४      | ४०    | ४१    | ५५  | ९     |

### कर्तरी व तिचे अपवाद.

इंदोर्वा हरिजाद्ययस्वगतयोः स्यात्क्रूरयोः कर्तरी ।

स्वे वक्रयंत्यक्रजुर्महत्यथ गुरौ रिःफे शुभे वा तनौ ॥

स्वेऽज्ञे सौम्यस्वगेऽपि वा गुरुभृमुन्नैः केंद्रकोणेषु वा ।

चेत्स्तः कर्तरिकारकौ दिविचरौ नीचस्थितौ सा न हि ॥ २८ ॥

श्लोकार्थ—चंद्रापासून किंवा लग्नापासून १२।२ ह्या स्थानीं खलग्रह असतां कर्तरी होतो. द्वितीयस्थानचा ग्रह वक्र ह्य० मार्गे येणारा, आणि द्वादशस्थानचा ऋजु ह्य० सरळ पुढें जाणारा असे खलग्रह असतां तिला महती कर्तरी ह्मणतात. गुरु वारावा असतां किंवा शुभग्रह लग्नां असतां; अथवा द्वितीयस्थानीं चंद्र किंवा शुभग्रह असतां; किंवा गुरु, शुक्र, बुध केंद्रां व कोणीं असतां; अथवा कर्तरी करणारे पापग्रह नीचस्थानीं असतां वरील दोन्ही कर्तरींचा दोष नाहीं. कर्तरीचे हे ६ अपवाद आहेत ॥ २८ ॥

अथ कर्तरीदोषलक्षणं सापवादमाह—इंदोर्वेति । इंदोश्चंद्रात्सकाशात् वा इत्यथवा हरिजाल्लगात्सकाशात् व्यय १२ स्व २ गतयोः व्ययं द्वादशं खं द्वितीयं तदुभयत्र गतयोः पापग्रहतोः सतोः कर्तरी स्यात् । अथ महाकर्तरीलक्षणमाह—स्वे इति । स्वे द्वितीये स्थितः क्रूरो यदि वक्त्री स्यात् । अंत्ये द्वादशे स्थितः क्रूः क्रजुः मार्गगामी स्यात् तदा महती कर्तरी स्यात् । उक्तं च । अग्नाभिमुखयोः पापग्रहयोः ऋजुवक्रयोः । सा कर्तरीति विज्ञेया दंपत्योर्गलकर्तरीति ॥ एवं कर्तरीलक्षणमुक्त्वा तद्भंगमाह—गुरौ रिःफे प्रांत्ये द्वादशे सति सा कर्तरी न स्यादेवेत्येको भंगः । वा इत्यथवा शुभे ग्रहे बुधगुरुशुक्राणां मन्यसमे तनौ लग्ने सति सा नेति द्वितीयो भंगः । स्वे द्वितीयेऽज्ञे चंद्रे सति सा नेति तृतीयो भंगः ।

वा इत्यथवा सौम्यस्वगे द्वितीये सति सा नेति चतुर्थो भंगः । वा इत्यथवा केंद्र १४।७।१० त्रिकोणे-  
षु ५।९। गुरुभृगुबैः गुरुशुक्रबुधैः सद्भिः “ कालाचेति” सप्तम्यर्थे तृतीया । सा कर्तरी न स्यादेवेति  
पंचमो भंगः । वा इत्यथवा कर्तरीकारकौ क्रूरौ दिविचरौ नीचस्थितौ यदा स्यातां तदा सा न स्या-  
दिति षष्ठो भंगः । हि अवधारणे ॥ २८ ॥

टीकार्थ—आतां कर्तरी दोषांचें लक्षण अपवादांसह सांगतो—चंद्रापासून अथवा हरेज ह्य० लग्न ह्यापासून व्यय  
ह्य० १२ स्व ह्य० २ ह्या स्थानीं पापग्रह असतील तर तो कर्तरी नांवाचा दोष होतो. आतां महाकर्तरी नांवाचा दोष  
सांगतो—द्वितीय स्थानचा ग्रह वक्र ह्यणजे मागें येणारा आणि द्वादश स्थानचा ग्रह सरळ पुढें जाणारा असेल तर ती  
महाकर्तरी समजावी. असें सांगितलें आहे कीं, लग्ना जवळ पापग्रह असून ते जर वक्र आणि सरळ जाणारे असतील तर  
ती कर्तरी समजावी, ती दंपतीच्या ह्य० स्त्रीपुरुषांच्या गळ्याला कापणारी आहे. अशा रीतीने कर्तरीचें लक्षण सांगून तिचा  
भंग सांगतो— १ गुरु हा जर द्वादशस्थानीं असेल तर कर्तरीचा भंग होतो. २ अथवा लग्नां शुभ ग्रह ह्यणजे बुध, गुरु आणि  
शुक्र ह्यांपैकीं एकादा असेल तर कर्तरीचा भंग होतो. ३ द्वितीय स्थानीं चंद्र असेल तर कर्तरीचा भंग होतो. ४ किंवा  
द्वितीय स्थानीं कोणी ही सौम्य ग्रह असेल तर कर्तरीचा भंग होतो. ५ अथवा केंद्री ह्य० १-४-७-१० आणि त्रिकोण  
ह्य० ९-५ ह्या स्थानीं गुरु, शुक्र आणि बुध हे असतील तर कर्तरीचा भंग होतो. ६ किंवा कर्तरी करणारे क्रूर ग्रह जर  
नीच स्थानाचे असतील तर कर्तरीचा भंग होतो. अशा रीतीनें सहा प्रकारांनीं कर्तरीचा भंग निश्चयानें सांगितला आहे ॥ २८ ॥

पंचकदोष व त्याचा अपवाद.

लग्नं सेततिथि ग्रहैर्हृदिभट्टग्वेदतुभूशेषकैः ।

रोगाग्निहरात्ययास्त्यज रुजं राज्यकर्मौजीषु च ॥

अग्निं भौमगृहद्युषु द्युशनिसेवेंदुष्विनं हारमी- ।

ज्यारेतिष्वपरं विवाहसितवित्संध्यासु हीने तनौ ॥ २९ ॥

श्लोकार्थ—अभीष्टलग्नं शुक्रप्रतिपदादि गततिथीनां युक्त करून त्या संख्येला ९ नीं भागावें, बाकी ८  
राहिली तर रोगपंचक; २ असत्यास अग्निपंचक; ४ असतां राजपंचक; ६ असेल तर चौरपंचक आणि १  
बाकी उरेल तर त्या लग्नाला मृत्युपंचक आहे असें समजावें. ३।५।७।१० बाकी राहिल तर तें लग्न निष्पंचक  
जाणावें. ( उदाहरणः—भाव साधिल्लें लग्न वृश्चिक ८ त्या दिवशां तिथि पूर्णिमा ह्यणून गततिथि १४ त्यांत ८  
मिळवून २२ ह्याला ९ नीं भागून ४ बाकी राहते ह्यणून वृश्चिक लग्नाला राजपंचक आहे. ) राजांस, रविवारां व  
उपनयनीं रोगपंचक सोडावें. मंगळवारीं गृहकर्मांस आणि दिवसास अग्निपंचक वर्ज्य. दिवसास, शनिवारीं सेवा-  
कर्मीं व सोमवारीं राजपंचक त्याज्य. गुरुवारीं, मंगळवारीं व यात्रेला चौरपंचक वर्जीवें. विवाहीं, शुक्रवारीं,  
बुधवारीं आणि संध्यासमयीं मृत्युपंचक सोडावें. लग्न निर्बल असतां पंचक पहावें. लग्न बलवान् असेल तर  
पंचकाचा दोष नाही ॥ २९ ॥

अथ पंचकदोषं सापवादमाह—लग्नमिति। लग्नमिष्टलग्नं सेततिथि इता चासौ तिथिश्च इततिथिर्गत-  
तिथिः तथा सह वर्तमानं सेततिथि ग्रहैर्हृत् नवभक्तं कार्यं इभट्टग्वेदतुभूशेषकैः इमा अष्टौ दृशो द्वे  
वेदाश्चत्वार ऋतवः षट् भूरेक एतन्मितैः शेषकैः कृत्वा क्रमेण रोगाग्निहरात्ययाः स्यू रोगः प्रसिद्धो  
अग्निः प्रसिद्ध इनो राजा । राजाऽधिपः पतिः स्वामी नाथः पारिवृढः प्रभुः । ईश्वरो विभुरीशा-  
नो भर्तृद्र इन ईशितेति धनंजयः । हरश्चरः अत्ययो मृत्युः एते पंचकाः स्युरित्यर्थः । एतदुक्तं भवति ।  
लग्नं शुक्रप्रतिपदादिगततिथियुक्तं कृत्वा नवभिर्हृत्वाऽष्टशेषे रोगः द्विशेषऽग्निः चतुःशेषे राजा षट्-  
शेषे चौरः एकशेषे मृत्युः । अथैते कुत्र वर्ज्या इत्याह—राज्यकर्मौजीषु रुजं त्यज राजाचक्रे आदित्य-  
वारे मौज्यां रुजं त्यज । भौमगृहद्युषु अग्निं त्यज भौमे भौमवारः गृहं प्रसिद्धं द्युः दिवा एषु अग्निं  
अग्निपंचकं । द्युशनिसेवेंदुषु इनं त्यज द्युः दिवा शनिः शनिवारः सेवा स्वामिसेवनं इंदुः सोमवारः  
एषु इनं राजानं राजपंचकं त्यज । इज्यारेतिषु हारं त्यज चौरं त्यज इज्यो गुरुवार आरो भौमवारः  
इतिर्गततिथीति थावत् आसु चौरं त्यजेत्यर्थः । विवाहसितवित्संध्यासु अपरं उच्यते मृत्युमित्यर्थः ।

विवाहः प्रसिद्धः सितः शुक्रवारः वित् बुधवारः संध्या संध्याकालः आसु मृत्युं त्यजेति । अस्याप-  
चादमाह-कस्मिन्सति तनौ लग्ने हीने हीनबले सति बलिष्ठे लग्ने सति एषां किमपि न बाध इत्यर्थः ।  
तथा च ज्योतिःप्रकाशे । रोगं चौरं त्यजेद्रात्रौ दिवा राजाग्निपंचकं । उभयोः संध्ययोर्मृत्युमन्यकाले  
न निंदितमिति ॥ तत्रापि यत्र लग्नं चेद्दालाख्यं तच्च निष्फलमिति । बलं जातकाज्ज्ञेयं । लघुजातकं ।  
अधिपयुतो दृष्टो वा बुधगुह्यानीरीक्षितश्च यो राशिः । स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा  
क्षेत्रित्यादि ॥ २९ ॥

टीका—आतां पंचक दोष आणि त्यांचा अपवाद सांगतो—जे इष्ट लग्न असेल त्यांत गततिथि मिळवाव्यात  
आणि त्या बेरीजेला नवांनी भागावे. भागून बाकी इम ह्य० ८ दृक् ह्य० २ वेद ह्य० ४ ऋतु ह्य० ६ मू० ह्य० १ अशी  
राहील तर अनुक्रमाने ८ बाकीस रोगपंचक, २ असल्यास अग्निपंचक, ४ असल्यास इन पंचक, ह्य० राजपंचक ६ असल्यास  
हर ह्य० हरण करणारा चोर त्याचें पंचक, १ असल्यास अत्यय ह्य० मृत्यु त्याचें पंचक जाणावे. ह्याचा अर्थ असा साला  
की, लग्नाची जी संख्या असेल ह्य० लग्न १-१२ पर्यंतचा जो अंक असेल त्या अंकांत शुद्धप्रतिपदेपासून जेवढ्या तिथि  
येल्या असतील तेवढ्या त्यांत मिळवाव्यात आणि त्या संख्येला नवांनी भागून बाकी आठ उरल्यास रोग, दोन उरल्यास  
अग्नि, चार उरल्यास राजा, सहा उरल्यास चोर, एक उरल्यास मृत्यु असे जाणावे. आतां ही पंचके कोठे व कोठे  
वर्ज्य करावीत हे सांगतो—रविवारी रात्रीस, मौजीबंधनास रोगपंचक वर्ज्य आहे. मंगळवारी, गृहाचे कार्यास, दिवसास अग्नि  
पंचक वर्ज्य आहे. सोमवारी दिवसास, सेवेच्या कामी राजपंचक वर्ज्य आहे. इज्य ह्य० गुरुवारी आणि आर ह्य० मंगळवारी  
यात्रेचे कामी चोरपंचक वर्ज्य आहे. सित ह्य० शुक्रवार वित् ह्य० बुधवार ह्या दोन वारी विवाहाचे कामी संध्या काळी उरलेले  
ह्मणजे मृत्यु पंचक त्याज्य आहे. ह्या पंचकांचा दोष लग्न हीनबल असतां जाणावा. परंतु जर लग्न बलिष्ठ असेल तर ह्या  
पंचकांचा विलकूल दोष नाही. तेंच ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, रात्रि स चौर आणि रोग ही पंचके सोडा-  
वीत. दिवसास राजा आणि अग्नि हीं पंचके सोडावीत. दोन संध्येच्या वेळेस मृत्युपंचक सोडावे, दुसऱ्या वेळी पंचकाचा  
दोष नाही. सांगितलेल्या पांच टिकाणीं पांच पंचके वर्ज्य करावीत हें खरें, परंतु त्यावेळेस जर लग्न बलिष्ठ असेल तर ते  
पंचक निष्फळ आहे ह्य० त्यापासून कांहीं नाश होणार नाही, आतां लग्न बलिष्ठ आहे किंवा कसें आहे हे जातकापासून  
जाणावे. तेंच लघु जातकांत सांगितलें आहे कीं, लग्नाचा राशि जर आपल्या स्वामीनीं युक्त असेल, किंवा स्वामीनीं पूर्ण  
दृष्ट असेल, किंवा बुध आणि शुभ ह्या दोघांनी दृष्ट असेल तर तो राशि बलवान् आहे असें समजावे. परंतु ज्यावेळेस  
स्वामीनीं युक्त नाही, दृष्ट नाही, व दुसऱ्या शुभग्रहांनी दृष्ट नाही, तर तो लग्नाचा राशि बलवान् नाही असें जाणावे ॥ ३० ॥

राशिशुद्धि च अंशशुद्धि.

जन्मक्षौदयतो मृती तदधिपौ तद्वाश्च ये तल्लवा- ।

स्तद्गं चांगमंतकृत्स्वलु न चेत्तत्स्वामिमित्रैकता ॥

शस्तोऽशौ घट्भीरुयुग्मधनुषां विज्ञास्तर्भाशौ तथा ।

चंद्रापुण्ययुतौ मूर्ति वितनुतो दैन्यं च हीनौजसः ॥ ३० ॥

श्लोकार्थ—जन्मराशि व जन्मलग्न ह्यांपासून अष्टम लग्न, त्याचा अधिपति, आणि अष्टमस्थानी असणारे जे  
ग्रह, त्यांचे नवांश व राशि, इष्टलग्नी असून जर जन्मलग्न व जन्मराशि ह्यांचे स्वामी, आणखी अष्टमाने स्वामी  
ह्यांची परस्पर मैत्री नसेल, किंवा त्या दोघांचा स्वामी एकच नसेल, तर ते मृत्युकारक होतात. परंतु मैत्री असतां  
अथवा स्वामी एक असतां शुभ होत. तूळ, मिथुन, कन्या, धन यांचे नवांश शुभ होत. बुधावांचून अस्तंगत  
ग्रहांचे राशि व नवांश तसेच चंद्राने व खलग्रहांनी युक्त राशि व नवांश मृत्यु करितात. बलहीन ग्रहांचे राशि व  
नवांश दीनत्व करितात ॥ ३० ॥

अथ भनवांशयोः शुद्धि सापवादमाह-जन्मक्षेति । जन्मक्षौदयतो जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यां सका-  
शात् मृती येऽष्टमभवने यौ तदधिपौ तयोर्मृत्युभवनयोः स्वामिनौ ये च तद्वाः मृत्युभवनगताः स्युः ते-  
षामंशौ नवांशौ अंगगो लक्षणतः च परं तेषां भं राशिः अंगगं लक्षणतं सत्तदा खलु निश्चयेनांतकृत्  
भरणकृत् स्यात् तदा कदाचिद्यदि तत्स्वामिमित्रैकता न स्यात् तयोर्जन्ममृत्युभवनयोः स्वामिनौ  
तत्स्वामिनौ तयोः । अथवाऽयमर्थः तयोर्जन्मनिचमयोः स्वामिनौ तत्स्वामिनौ तयोर्द्वि मित्रैकता

न स्यात् मित्रं च एकश्च मित्रैको मित्रैकयोर्भावो मित्रैकता सा चेन्न स्यादनेन सर्वस्योक्तस्य सार्थ-  
कता भवति यदि तयोर्मित्रता स्यादथवा एकता स्यात्तदा नायं दोष इत्यर्थे सिद्धं । वसिष्ठः । य-  
स्याष्टलक्षे तदधीश्वरे वा राशौ तदीशेऽथ विलम्बे वा । स मृत्युमाप्नोति तदा मनोजल्पिनेत्रमालां-  
वकवाहनेवेति ॥ अन्यच्च । जन्मर्क्षजन्मलक्षणायां रंशेष्टावष्टमौ च यौ । विलम्बसंस्थितावेतांस्तद्वा इत्य-  
शानपि त्यजेदिति ॥ चूडामणौ । लक्षं व्यलिखुषं त्याज्यमष्टमं सर्वकर्मसु । तत्राप्येकै शतास्येव तत्-  
स्तत्रैव दोषकृत् ॥ न दोषोऽष्टमलक्षस्य यदि जन्मस्तरेऽप्यौ । सुदृढौ चेत्तदा कार्यं मंगलं पुनर्यो  
विदुरिति ॥ चतुर्थद्वादशभवनयोर्दोषो नाधोको यतश्चतुर्थं द्वादशं लक्षं शस्तं यदि गुणान्वितमि-  
ति पूर्वोक्तार्थमतं हृदि धृत्वा सगुणमेवांगीकृतं तत्पुनस्तद्व्यति । न च तनुं पंचेष्टखेदोनितां तनुं लक्षं  
इष्टाश्च ते खेदाश्च इष्टखेदाः पंच च ते इष्टखेदाश्च पंचेष्टखेदाः इष्टग्रहैः पंचभिः शुभदैः इष्टैरुनितां हीनं  
लक्षं चेद्वेदवर्गोनितामिति सगुणस्यैवांगीकारात् । किं व्यर्थविस्तरेणेति भावः । अंशशुद्धिमाह—श-  
स्तोऽंश इति । धृष्टभीरुगुग्मधनुषां अंशः शस्तः स्यात् । धृष्टस्तुला भीरुः कन्या गुग्मं मिथुनं धनुः  
प्रसिद्धं एषामंशो नवांशः शस्तः प्रशस्तः स्यात् । तत्रापि विशेषमाह—विज्ञास्तमांशविति । विगतः  
ज्ञो बुधो येभ्यस्ते विज्ञाः ते च ते अस्ताश्च तेषां भांशौ राशिनवांशौ मूर्तिं वितनुतः अर्थादस्तमि-  
तस्यापि बुधस्य भांशौ दोषकरौ न भवतः । तथा चंद्रापुण्ययुतौ चंद्रेण पापग्रहेण वा युक्तौ  
मूर्तिं वितनुतः कुरुतः बभूवरयोरिति शेषः । हीनौजसो निर्वलस्य भांशौ दैन्यं दीनतां वित-  
नुतः ॥ ३० ॥

टीका—आतां राशि व त्यांचा नवांश ह्यांची शुद्धि अपवाद सहित सांगतां—जन्मराशि पासून अथवा जन्मलक्षा-  
पासून जी अष्टमस्थाने असतील तीं आणि त्या दोहोंचे अधिपति तसेच मृत्यु ह्मणजे अष्टमस्थानीं दुसरे ग्रह असतील. त्या  
सर्वांचा नवांश जर लक्षीं असेल आणि त्यांचा राशि जर लक्षीं असेल तर निश्चयानें मरण होणार ह्यांत संशय नाही, परंतु  
जर जन्मलक्षाचा स्वामी आणि मृत्यु भवनाचा स्वामी ह्या दोघांची मित्रता असेल किंवा दोहोंचा स्वामी एक असेल तर  
मात्र मरण होणार नाही असे अर्थ सिद्ध झाले, वसिष्ठ असें सांगत आहेत की, जसा त्रिलोचन ह्मणजे शिव ह्याच्या नेत्रां-  
तील अग्नीनें काम दग्ध झाला, तसा ज्याच्या लक्षापासून आठव्यास्थानची राशि व तिचा अधिपति हे जर लक्षीं असतील  
तर त्याला मृत्यु प्राप्त होतो आणि जन्मराशीपासून आठव्या स्थानची राशि आणि तिचा अधिपति हे जर लक्षीं असतील  
तरीहि तो मृत्यु पावतो. दुसरें असें आहे की, जन्मराशि आणि जन्मलक्षा पासून रंशेष्टावष्टम पदस्थानांचे अधिपति आणि  
अष्टमस्थानचे अधिपति हे जर लक्षस्थानां असतील तर त्यांना व त्यांचे नवांशांना ही शुभकर्मांत सोडावेत. चूडामणि अं-  
शांत सांगितलें आहे की, सर्व कर्मांमध्ये अष्टम लक्ष वर्ज्य आहे, परंतु वृश्चिक आणि वृषभ खेरीज करून समजावें. त्या वि-  
षयीं ही कित्येकांचे मत आहे, ह्मणून तेंही दोषकारक नाही, जर जन्मलक्षाचा अधिपति आणि पदस्थानचा अधिपति हे  
परस्पर मित्र असतील तर अष्टम लक्षाचा दोष नाही, त्यावेळीं मंगल कार्य करावें असें मुनींचें मत आहे. चतुर्थ, द्वादश  
ह्या दोन भवनांचा दोष येथे सांगितला नाही कारण की, चतुर्थ लक्ष जर गुणांनीं युक्त आहे तर तें मंगलकार्यास प्रशस्त  
आहे, असें पूर्वीच्या आचार्यांचें मत आहे, तें मत मनांत घेऊन सगुण असें चतुर्थभवन घेतलें आहे, असें पुढे सांगावयाचें  
आहे पुढच्याच श्लोकांत “ तनुं पंचखेदोनितां ” ह्या भागानें सगुणांचेंच ग्रहण केलें आहे. उगीच वर्ज्य विस्तार करून  
काय फल आहे ? आतां अंशांची शुद्धि सांगतां—१ धृष्ट ह्म० तुला, २ भीरु ह्म० कन्या, ३ गुग्म ह्म० मिथुन, ४ धनु ह्म०  
धन, ह्या चार राशींचा नवांश प्रशस्त आहे. त्यामध्येही असा विशेष आहे की, बुधाशिवाय दुसऱ्या अस्तंगत ग्रहांचे रा-  
शींचे नवांश हे मरण देतात, अर्थात् बुधे जर अस्तंगत असला तरी त्याचे नवांश दोषकारक नाहीत. तसेच चंद्रानें आणि  
पापग्रहानें युक्त राशि, आणि नवांश हे वधू आणि वर ह्यांचें मरण करतात. निर्वल ग्रहांचे राशि आणि नवांश हे दीन-  
पणा करितात ॥ ३० ॥

लक्षांशशुद्धि, नवांशप्रवृत्ति व लक्षसाधन.

नो वर्गोत्तमतो विनांतिमलवं दद्याचरक्षं चरम् ।

चंद्रे तौलिमृगास्यगे न च तनुं पंचेष्टखेदोनिताम् ॥

मेषादिष्वजनक्रतौलिककुलीराद्या नवांशाः क्रमा-

दिष्टात्पूर्वनवांशका दशहताह्वयामा लवाद्या तनुः ॥ ३१ ॥



श्लोकार्थ—वर्गोत्तमावाचून अंत्य नवांश देऊं नये, लग्न व नवांश एक असतो त्याला, वर्गोत्तम ह्मणतात, जसा मेषलग्नाचा मेष नवांश, वृषभाचा वृषभ नवांश हे वर्गोत्तम होत. चंद्र तूळ व मकर राशीला असतां चर-लग्नाचा चरनवांश देऊं नये. पांचाहून कमी इष्टग्रह असणारें लग्न देऊं नये. मेषादिलग्नान्त मेष, मकर, तूळ, कर्क हे अनुक्रमानें प्रथमनवांश असतात. ( ह्मणजे मेषलग्नाचा प्रथमनवांश मेष, दुसरा वृषभ इ० वृषभाचा प्रथमनवांश मकर, द्वितीय कुंभ इत्यादि. तात्पर्य मेष, सिंह, धन यांची मेषापासून; वृषभ, कन्या, मकर यांची मकरापासून; मिथुन, तूळ, कुंभ ह्यांची तुळापासून आणि कर्क, वृश्चिक, मीन ह्यांची निरंतर कर्कापासून प्रवृत्ति होते.) इष्टनवांशाच्या पूर्वनवांशाला १० नीं गुणून नीं भागावें. ह्मणजे अंशादि लग्न होतें. ( उदाहरण:—इष्टलग्न वृश्चिक त्याचा इष्ट अंश ५ वा त्याचे पूर्वनवांश ४ त्याला १० नीं गुणून ४० ह्याला ३ नीं भागून १३ अं० २० क० यांत गतराशि मिळवून ७।१३।२०।० इतकें लग्न झालें. ) ॥ ३१ ॥

अथ विशेषांतरमाह—नो वर्गोत्तमेति । वर्गोत्तमतः वर्गोत्तमेन विनांशतिमलवं चरमं नवांशं नो दद्यात् यल्लग्नं स एव नवांशो वर्गोत्तमः तथा चरक्षे चरलग्ने चरं नवांशं नो दद्यात् कस्मिन् सति चंद्रे तौलिमृगास्यगे तुलामकरगे सति एतच्चरत्रययोगं नो दद्यादित्यर्थः । अत्र चरचतुष्टयमध्ये चंद्रे तौलिमृगास्यगे इत्येवोक्तं तन्मेषकर्कटयोर्विवाहनक्षत्राभावात् तथा तनुं लग्नं पंचेष्टखेटोनितां नो दद्यात् यत्र लग्ने पंच इष्टग्रहाः न भवन्ति तल्लग्नं न देयमित्यर्थः । अथेष्टनवांशाल्लग्नसाधनमाह—तत्र तावन्मेषादिषु आद्यांशानाह—मेषादिष्विति । मेषादिषु अजनक्रतौलिककुलीराद्या नवांशाः क्रमेणोक्ताः । तद्यथा मेषेऽजाद्या मेषाद्या वृषे नकाद्या मकराद्या मिथुने तौलकाद्याः तुलाद्याः कर्कटे कुलीराद्याः कर्कटाद्या एवं पुनः सिंहे मेषाद्याः कन्यायां मकराद्याः तुलायां तुलाद्याः वृश्चिके कर्काद्याः पुनर्धनुषि मेषाद्याः मकरे मकराद्याः कुंभे तुलाद्या मीने कर्काद्या नवांशा उक्ता इत्यर्थः । इष्टादंशात्पूर्वनवांशका गतांशा दशहता दशगुणिताः ज्याप्ताः त्रिभिर्हता लवाद्या भागाद्या तनुः लग्नं स्यात् । अत्रोदाहरणं । इष्टलग्नं मेषः तत्र मेषादिका अंशाः प्रवर्तते इष्टांशाः कन्यांशाः आद्यात् षष्ठांशः पूर्वनवांशकाः च ५ एते दशहताः ५० ज्याप्ताः लवादिफलं लब्धं १६।४० इष्टलग्नसहितं राश्यादि १६।४० ॥ ३१ ॥

टीका—आतां दुसरे विशेष सांगतो—वर्गोत्तमाशिवाय नुसता अंत्य नवांश देऊं नये. जें लग्न तोच नवांश त्यालाच वर्गोत्तम असें ह्मणतात. जसा मेष लग्नाचा मेष नवांश हा वर्गोत्तम जाणावा. वृषभ लग्नाचा वृषभ नवांश हा वर्गोत्तम जाणावा. तसेंच चंद्र हा तूळ आणि मकर ह्या राशीला असतां चरलग्नाचा चर नवांश देऊं नये. ह्यामध्ये चंद्र हा तुला आणि मकर ह्या राशींचा असून नये असें झटलें, कारण मेष व कर्क ह्यांचीं नक्षत्रे विवाहाचीं नाहींत. तसेंच ज्या लग्नां पांच इष्ट ग्रह नसतील तसें लग्न देऊं नये, आतां इष्ट नवांशापासून लग्नाचें साधन सांगतो—तेथें मेष इत्यादिकांचे प्रथम नवांश सांगतो—जसें १ मेष लग्नान्त प्रथम नवांश मेष, दुसरा नवांश वृषभ इत्यादि. २ वृषभलग्नाचा प्रथम नवांश मकर, दुसरा नवांश कुंभ इत्यादि. ३ मिथुनलग्नाचा प्रथम नवांश तूळ, द्वितीय नवांश वृश्चिक इत्यादि. ४ कर्क लग्नाचा प्रथम नवांश कर्क, द्वितीय नवांश सिंह इत्यादि. ५ सिंह लग्नाचा प्रथम नवांश मेष, द्वितीय नवांश वृषभ इत्यादि. ६ कन्यालग्नाचा प्रथम नवांश मकर, दुसरा नवांश कुंभ इत्यादि. ७ तुला लग्नाचा प्रथम नवांश तुला, दुसरा वृश्चिक इत्यादि. ८ वृश्चिक लग्नाचा प्रथम नवांश कर्क, दुसरा नवांश सिंह इत्यादि. ९ धनु लग्नाचा प्रथम नवांश मेष, दुसरा नवांश वृषभ इत्यादि. १० मकर लग्नाचा प्रथम नवांश मकर, द्वितीय नवांश कुंभ इत्यादि. ११ कुंभ लग्नाचा प्रथम नवांश तूळ, द्वितीय नवांश वृश्चिक इत्यादि. १२ मीन लग्नाचा प्रथम नवांश कर्क, द्वितीय नवांश सिंह वगैरे जाणवित. तात्पर्य असें कीं, १ मेष, २ मकर ३ तूळ ४ कर्क हे चार आहेत आणि राशी बारा आहेत ह्मणून चार ग्रीक बारा असा हिशेब केला असतां चार चार राशीच्या वेळेस एक एक ह्मणजे तीनवेळां आवृत्ति करावी लागते जसें पाहा कीं,

|        |         |         |           |   |      |      |      |       |
|--------|---------|---------|-----------|---|------|------|------|-------|
| १ मेष  | २ वृषभ  | ३ मिथुन | ४ कर्क    | } | मेष, | मकर, | तूळ, | कर्क, |
| ५ सिंह | ६ कन्या | ७ तूळ   | ८ वृश्चिक |   | मेष, | मकर, | तूळ, | कर्क, |
| ९ धन   | १० मकर  | ११ कुंभ | १२ मीन    |   | मेष, | मकर, | तूळ, | कर्क, |

इष्ट नवांशाच्या पूर्व नवांशाला १० नीं गुणून तीहीनीं भागलें असतां अंश इत्यादि लग्न येतें. येथे उदाहरण असें आहे कीं, जसें इष्ट लग्न मेष आहे तर त्याची मेषादि संज्ञा आहेत. इष्टांश कन्यांश आहे, तर पूर्व नवांश ५ ह्मणजे मेषापासून

सिंहापर्यंत ५ झाले झणून, पूर्व नवांश ५ झाले, त्याला १० नीं गुणिलें असतां गुणाकार ५० झाला त्याला तीहीनीं भागिलें असतां १६-४० इष्ट लग्न सहित ही १६-४० च झाले, कारण मेष लग्न धरल्यामुळें गत राशि नाहींत, कारण मेष हीच पहिली राशि आहे झणून तेंच १६-४० हें इष्ट लग्न सहित राश्यादि जाणावें ॥ ३१ ॥

उदयास्तशुद्धि व होरासाधन.

लग्नांशौ स्वपदग्युतौ नृसुखदौ वाऽन्योन्यपाठ्येक्षितौ ।

ताभ्यां सप्तमकौ तथैव युवतेनौ चेत्तयोर्मृत्युदौ ॥

द्विघ्नेऽर्कोनविलग्नके रविसितज्ञेन्द्रार्किजीवासृजो ।

होरेशा द्युपतेः खलेऽह्नि खलजा नेष्टा शुभे मध्यमा ॥ ३२ ॥

श्लोकार्थ—इष्टलग्न व नवांश आपापल्या अधिपतींनीं दृष्ट किंवा युक्त असतां अथवा लग्नपति अंशाला व अंशपति लग्नाला असतां, किंवा लग्नपतीची दृष्टि अंशावर व अंशपतीची दृष्टि लग्नावर असतां वराला सुखकर जाणावें. हिला उदयशुद्धि झणतात. इष्टलग्नापासून सप्तमलग्न व नवांशापासून सप्तमनवांश हे आपापल्या अधिपतींनीं युक्त किंवा दृष्ट असतां अथवा त्यांची परस्परांवर दृष्टि असतां, किंवा ते परस्परांला युक्त असतां कन्येला सुखकर होतात, हिला अस्त-शुद्धि झणतात, वरील प्रमाणें नसतील तर ते वधुवरांला मृत्युदायक होतात. लग्नांतून रवि वजा करून बाकी राहिल तिची दुप्पट करून वराच्या राश्यांकावरून होरापति जाणावा, रवि, शुक्र, बुध, चंद्र, शनि, गुरु, मंगळ असे होरापति आहेत, ज्या वारी होरा पहाणें असेल त्या ग्रहापासून होरेश मोजावे, पापवारी पापाची होरा अनिष्ट, शुभवारी पापहोरा मध्यम, अर्थात् शुभवारी शुभाची होरा उत्तम होय. (उदाहरण—गुरुवारी लग्न ७।३२।७।४५ ह्यांतून रवि ५।१६।०।४ ही वजा करून बाकी १।१७।२।४१ ह्यांची दुप्पट ३।४।५५।२२ हींतील राश्यांक ३ आणि गुरुवारी होरा काढावयाची झणून त्यापासून गुरु, मंगळ, रवि, हे तीन होरेश गत झाले. व पुढें शुक्राची होरा सुरु आहे ) ॥ ३२ ॥

अथोदयास्तशुद्धिमाह-लग्नांशाविति । लग्नांशौ लग्ननवांशौ स्वपदग्युतौ स्वस्वपतिना दृष्टौ युतौ वा संतौ नृसुखदौ वरस्य सुखदौ स्यातां वा इत्यथवा अन्योन्यपतिनाऽऽद्वयौ ईक्षितौ वा संतौ नृसुखदौ स्यातां । इत्युदयशुद्धिमुक्त्वाऽस्तशुद्धिमाह-ताभ्यां सप्तमकौ तथैवेति ताभ्यां लग्नांशाभ्यां सकाशात् सप्तमकौ सप्तमलग्नतदंशौ तथैवेति पूर्ववत्स्वपदग्युतौ युवतेः कन्यायाः सुखदौ स्यातां वा इत्यथवा तौ सप्तमलग्नसप्तमांशकौ अन्योन्यपाठ्येक्षितौ युवतेः सुखदौ स्यातां नो चेत् एवं चेन्न स्यात्तदा तयोः मृत्युदौ स्यातां क्रमेण अथेष्टकाले होरासाधनमाह-द्विघ्न इति । अर्कोनविलग्नके द्विघ्ने कृते सति द्युपतेः सकाशात् होरेशा भवन्ति । तेषां गणनाक्रममाह-ते ते होरेशा रविसितज्ञेन्द्रार्किजीवासृजः रविः प्रसिद्धः सितः शुक्रः ज्ञो बुध इंदुश्चंद्र आर्किः शनिः जीवो गुरुः असृग् मंगलः खलेऽह्नि पापवारे खलजा होरा नेष्टा शुभे मध्यमा स्यात् अर्थाच्छुभहोरा शुभवारे शुभतरा पापवारे मध्यमा स्यात् । अत्रोदाहरणं गुरुवारे इष्टार्कः १।२५।८ इष्टलग्नं ४।१०।० इदं अर्कोनं २।१४।५२ इदं द्विघ्नं ४।२९।४४ ऊर्ध्वार्कसमानागता होराश्चतस्रः वर्तमाना पंचमी होरा सा गणनाक्रमेण द्युपतेर्गुरोः सकाशाद्गणनीया जीवासृजादिगणनया बुधहोरा वर्तमाना ॥ ३२ ॥

टीकाार्थ—आतां उदय आणि अस्त ह्यांची शुद्धि सांगतो—लग्नांश आणि लग्नाचें नवांश हे आपापल्या स्वामींनीं युक्त किंवा दृष्ट असतील तर तसे ते लग्न वराला सुखकारक समजावेत. अथवा एकमेकांच्या पतींनीं युक्त किंवा दृष्ट असतील झणजे लग्नाचा पति अंशावर आणि अंशाचा पति लग्नावर किंवा लग्नाच्या पतीची दृष्टि अंशावर आणि अंशाच्या पतीची दृष्टि लग्नावर असेल तर ते वराला सुखकारक होतात, हीच उदय शुद्धि समजावी ती सांगितली. आतां अस्ताची शुद्धि सांगतो—जसें लग्नपति, नवांश ह्यांचा प्रकार सांगितला तसाच प्रकार सप्तम लग्न व त्याचे नवांश ह्या विषयीं जाणावा. तो असा; सप्तम लग्न आणि सप्तम नवांश हे एकमेकांच्या पतींनीं युक्त आणि एकमेकांच्या पतींनीं दृष्ट असतील तर ते कन्येला सुखदायक होतात. असे दोनही प्रकार नसतील तर वधू आणि वर ह्या दोघांना अनुक्रमानें मरण देणारे होतात. हिलाच

अस्त शुद्धि असें ह्याणतात. वरील प्रमाणें लग्न शुद्धि आणि अस्त शुद्धि नसेल तर ते वधूवरांना मृत्युदायक होतात. आतां इष्ट कालीं होरा साधन सांगतो—जे लग्न असेल त्यांतून रवि वजा करावा आणि त्याची दुप्पट करावी रवीच्या राश्यंकावरून होरापति जाणावेत. रवि, शुक्र, बुध, चंद्र, शनि, गुरु, मंगळ हे होरापति जाणावेत. आतां पाप वारीं पापाची होरा इष्ट नाही, शुभवारीं पापाची होरा मध्यम आहे. अर्थात् शुभवारीं शुभ होरा फारच शुभ आहे, आणि पापवारीं मध्यम आहे. ज्या वारीं होरा पाहणें असेल त्या ग्रहापासून होरेश मोजावे. पापवारीं पापाची होरा अनिष्ट. शुभवारीं पाप होरा मध्यम अर्थात् शुभवारीं शुभाचा होरा उत्तम होय. ह्यास उदाहरण असें कीं, गुरुवारीं लग्न इष्टार्क ११२५१८ इतका आहे, इष्ट लग्न ४११०१० असें आहे, त्या लग्नांतून रवि वजा करितां बाकी २१४१५२ राहिली, तिची दुप्पट केल्यावर ४२८३०४ अशी झाली त्यांच्या वरच्या अंका इतक्या ह्याज ४ होरा झाल्या, अर्थात् पांचवी होरा ह्याज ४ वर सांगितलेल्या क्रमानें ह्याज ४ गुरुपासून गणनाकरतां जीव, मंगळ, रवि, शुक्र, बुध ह्या गणनेंत पांचवा बुध आला आहे, तेव्हां बुधाची होरा आहे असें जाणावें ॥ ३२ ॥

जामित्र आणि त्याचे अपवाद.

लग्नेद्रौः स्मरगे शुभाशुभखगे स्तश्चाधिमृत्यू ततो- ।

ऽज्जांगोनात्कृतमौर्विकात् खखयमैर्लब्धं यदाब्धीपवः ॥

सन्स्विष्टोच्चनिजांशमेस्तमखिलं पश्येदरिऱ्यायगे ।

सूर्ये वा खजलाद्यकोणशुभो वाऽज्जं प्रपश्येन्न तत् ॥ ३३ ॥

श्लोकार्थ—लग्न व चंद्र ह्यांपासून सप्तमस्थानीं शुभ व खलग्रह असतील तर त्यांचीं अनुक्रमानें चिंता व मृत्यु अशीं फळें आहेत; तीं जेव्हां लग्न व चंद्र सप्तम ग्रहांतून वजा करून, त्याच्या कळा करून त्या कलांना २०० नीं भागून लब्ध ५४ येतें. तेव्हां वरील फळें येतात, असें समजावें. (उदाहरणः—सप्तमस्थ ग्रह ११४१२० ह्यांतून लग्न ७३२७१० हें वजा करून बाकी ६०८३५० हिच्या कळा १०८३५ त्याला २०० नीं भागून लब्ध ५४ येतें ह्याणून वरील वृश्चिक लग्नाला परमजामित्र दोष आहे, लग्न किंवा चंद्र आणि त्यांपासून सप्तमस्थ ग्रह या दोहोंत वरोवर सहा राशि अंतर असतें, तेव्हां जामित्र दोष असतो, ) कोणताहि शुभग्रह, शुभ असून मित्र अशा ग्रहाचे नवांशी किंवा राशीस अथवा आपल्या उच्चनवांशीं अगर उच्चराशीस अथवा स्वनवांशीं किंवा स्वराशीस असून सप्तमस्थानीं पूर्ण दृष्टीनें पहात असेल तर जामित्र दोष नाही. लग्नापासून ६३१११ ह्या स्थानीं रवि असेल तर अथवा १०१४११५ ह्या स्थानीं शुभग्रह असून त्याची चंद्रावर पूर्ण दृष्टि असेल तर जामित्र दोष नाही. सर्व मिळून जामित्राला १४ अपवाद आहेत ॥ ३३ ॥

अथ लग्नेद्रौः परजामित्रग्रहज्ञानार्थमुपायमाह—तावत्तस्य फलमाह—लग्नेद्रोरिति । लग्नेद्रौः स्मरगे सप्तमगे शुभाशुभखगे सति तदा आधिमृत्यू स्तः शुभे सति आधिर्मनस्तापोऽस्ति अशुभे सति मृत्यु- रस्ति तदा कदा यदा ततः स्मरगाद् ग्रहात् अज्जांगोनात् चंद्रलग्नोनात् चंद्रात् सप्तमस्थचंद्रेनः लग्नात्सप्तमस्थो लग्नोन इत्यर्थः । तस्मात् कृतमौर्विकात् कृतकलिकात् खखयमैर्द्विशत्या लब्धं अब्धी- पवः चतुष्पंचाशत्स्यात् तदैव आधिमृत्यू स्तः अन्यथा नेत्यर्थः । तत्रोदाहरणं पूर्वकल्पितमिदं लग्नं ४११०१० तत्सप्तमगोऽयं कश्चिद्ग्रहः १०१११७ अयं लग्नोनः ६११७ अयं कृतमौर्विकः १०८१७ अस्मात् खखयमैः २०० लब्धं ५४ अथास्य भंगमाह—सन्निति । सन् सद्ग्रहः स्विष्टोच्चनिजांशमे वर्तमानः अस्तं सप्तमभवनं अखिलं पूर्वं यदि पश्येत्तदा तज्जामित्रं न स्यात् । शोभनश्चासौ इष्टश्च स्विष्टः शुभ- मित्रं स्विष्टश्च उच्चं च निजश्च स्विष्टोच्चनिजाः अंशश्च भं च अंशभं स्विष्टोच्चनिजानां अंशं स्विष्टोच्च- निजांशं तस्मिन् स्विष्टोच्चनिजांशमे स्विष्टस्य शुभमित्रस्य अंशे नवांशे मे राशौ वा वर्तमानः । अथवा उच्चस्यांशे मे वा वर्तमानः । अथवा निजस्य स्वस्य अंशे मे वा वर्तमानः अस्तमखिलं पश्येत्तदा तत्रेति षड्भंगाः । वा इत्यथवा अर्के रवी अरिऱ्यायगे सति षष्ठतृतीयैकादशगे सति तत्रेति त्रयो भंगाः । वा इत्यथवा खजलाद्यकोणः शुभः अज्जं चंद्रमसं पूर्णं यथा स्यात्तथा ईक्षेत तदा तत्र खं दशमं जलं चतुर्थं आद्यं लग्नं कोणे नवपंचमे एषामन्यतमं गतोऽन्यतमः शुभग्रहश्चंद्रमसं निखिलदृष्ट्या यदि पश्येत्तदा जामित्रं न स्यादित्यर्थः । एते पंच भंगाः सर्वे मिलिताश्चतुर्दश भगाः संपद्यन्ते ॥ ३३ ॥

**टीकाथ—**लग्न आणि चंद्र ह्यांपासून जें सप्तमस्थान आहे, तेथे असलेल्या शुभ किंवा पापग्रहांचे ज्ञान होण्याकरितां उपाय सांगतो—अगोदर त्याचें फल सांगतो—लग्न आणि चंद्र ह्यांपासून सप्तमस्थानीं शुभ आणि अशुभ ग्रह असतील तर अनुक्रमानें चिंता आणि मृत्यु होतात ह्मणजे शुभ ग्रह असेल तर मनास चिंता होते आणि अशुभ असेल तर मृत्यु होतो. असें केव्हां होतें तें सांगतो—चंद्र आणि लग्न हीं सप्तम स्थानच्या ग्रहांतून वजा करावीं आणि मग त्या आलेल्या राशाच्या कला कराव्यात. त्या कलांनां दोनशेंनीं भागावें जर भागाकार ५४ येईल तेव्हां वरची चिंता आणि मृत्यु हीं फळे जाणावीं आणि तसा ५४ भागाकार न येईल तर चिंता आणि मृत्यु हीं फळे नाहींत असें समजावें. त्याविषयीं उदाहरण असें की, लग्न ४-१०-० त्यापासून सातवा कोणी एक ग्रह १०-११-७ असा घेतला तो सप्तमस्थ. ग्रहांतून लग्न वजा केलें तेव्हां ६-१-७ असें आलें, त्याच्या कळा केल्या त्या १०८१७ इतक्या कळा झाल्या त्याला २०० नीं भागलें तेव्हां ५४ भागाकार येतो ह्मणून लग्नापासून सप्तमस्थानचा ग्रह चिंताकारक आहे. ह्याचा भंग सांगतो—कोणताही शुभ ग्रह शुभ असून इष्ट ह्मणजे मित्ररूपी अशा ग्रहाचे १ नवांशाला, किंवा त्याच्या २ राशीला, किंवा आपल्या ३ उच्च नवांशाला, अगर आपल्या ४ उच्चराशीला, अथवा ५ स्वनवांशाला किंवा ६ राशीला पूर्ण पहात असेल तर हे सहा प्रकारचे त्याचे भंग आहेत. अथवा लग्नापासून ६-३-११ ह्या ठिकाणीं असेल ह्मणजे हे तीन भंग व पहिले सहा मिळून नऊ भंग झाले किंवा १०-४-१-९-५ ह्या पांच स्थानीं शुभ ग्रह असून त्याची चंद्रावर पूर्ण दृष्टि असेल तर जामित्राचा ह्मणजे सप्तमस्थानचा दोष नाहीं. पहिले ९ आणि हे पांच मिळून एकंदर १४ अपवाद आहेत ॥ ३३ ॥

**ग्रहदृष्टि व षड्वर्ग.**

**व्यभ्रं कोणमबायुरैनिगुरुभूपुत्राः क्रमात्पूर्णया ।**

**दृष्ट्याऽन्ये चरणोत्तरं च सकलाः पश्यन्ति पूर्णं द्युनम् ॥**

**भं होरा त्रिलवो नवांशक इनांशस्त्रिंशदंशः क्रमात् ।**

**वर्गः सन् शुभजः परैस्तु सुहृदो नाढ्यूनवर्गा तनुः ॥ ३४ ॥**

**श्लोकार्थ—**ग्रह ज्या राशीला असतो त्या राशीपासून पुढें सांगितलेल्या स्थानांवर त्याची दृष्टि असते. ३।१० ह्यांवर शनीची; ९।५ ह्यांवर गुरुची; ४।८ ह्यांवर मंगळाची पूर्ण दृष्टि असते. ह्याच दोन दोन स्थानीं इतर ग्रह चरण वृद्धीनें पाहतात. ( ह्मणजे ३।१० स्थानीं एकपाद, ९।५ स्थानीं द्विपाद, ४।८ स्थानीं त्रिपाद दृष्टीनें पाहतात. ) सर्व ग्रह सप्तमस्थानावर पूर्ण दृष्टीनें पाहतात. ग्रह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश अशा क्रमानें हे ६ वर्ग आहेत, शुभग्रहाचा वर्ग उत्तम ह्मणून तो ग्राह्य होय. कित्येकांच्या मतानें मित्राचा वर्ग शुभ असें आहे. चारांहून कमी शुभवर्ग येणारें लग्न मंगलकार्याला वेळ नये ॥ ३४ ॥

**अथ दृष्टिलक्षणमाह—**व्यभ्रं तृतीयदशमं कोणं नवपंचमं अबायुश्चतुर्थाष्टमं एतद्युग्मत्रयं क्रमेण ऐनिगुरुभूपुत्राः शनिगुरुभौमाः पूर्णया दृष्ट्या पश्यन्ति शनिः व्यभ्रं ३।१० गुरुः कोणं ९।५ भूपुत्रः अबायुः ४।८ एते पूर्णया दृष्ट्या पश्यन्ति तथा चैतद्युग्मत्रयं अन्ये ग्रहाश्चरणोत्तरं यथा स्यात्तथा पश्यन्ति तद्यथा व्यभ्रं ३।१० एकपाददृष्ट्या पश्यन्ति कोणं ९।५ द्विपाददृष्ट्या अबायुः ४।८ त्रिपाददृष्ट्या पश्यन्ति सकला ग्रहाः द्युनं सप्तमं पूर्णं पश्यन्ति । अथ षड्वर्गसाधनं विवक्षुस्तावद्व्यामाह—भं होरेति । भं गृहं होरा राश्यर्थं त्रिलवो दृष्काणः नवांशकः प्रसिद्धः इनांशो द्वादशांशः त्रिंशदंशः प्रसिद्धः क्रमादेते वर्गाः प्रोक्ताः । शुभजः शुभग्रहजो वर्गः सन् शुभः प्रोक्तः परैराचार्यैः सुहृदो मित्रस्य वर्गः सन् प्रोक्तः अढ्यूनवर्गा तनुः चतुर्वर्गो न लग्नं न सती प्रोक्तेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

**टीकाथ—**आतां दृष्टि लक्षण सांगतो—तीन आणि दहा, कोण ह्मणजे नऊ आणि पांच, अप् हा ० ४ आयु हा ० ८ ह्या तीन युग्मांवर अनुक्रमानें ऐनि हा ० शनि, गुरु, भूपुत्र हा ० मंगळ हे पूर्ण दृष्टीनें पाहतात. ह्मणजे शनि हा तृतीय आणि दशम ह्या स्थानावर पूर्ण दृष्टीनें पाहतो. गुरु हा नवम आणि पंचम ह्या स्थानावर पूर्ण दृष्टीनें पाहतो. मंगळ हा चतुर्थ आणि अष्टम स्थानावर पूर्ण दृष्टीनें पाहतो आणि शनि, गुरु व मंगळ ह्यांशिवाय बाकीचे उरलेले ग्रह ह्यांवर सांगितल्या तीन युग्मांवर अनुक्रमानें एकपाद, द्विपाद आणि त्रिपाद ह्या दृष्टीनें पाहतात. जसें ३-१० स्थानीं एकपाद दृष्टि, ९-५ ह्या

स्थानीं त्रिपाददृष्टि, ४-८ ह्या स्थानीं त्रिपाद दृष्टिने पाहातात आणि आपल्यापासून सप्तमस्थानीं सर्वच ग्रह पूर्ण दृष्टीने पहातात. आतां षड्वर्गसाधन सांगण्याच्या इच्छेनें अगोदर नामें सांगतो- १. भ ह्य० ग्रह, २ होरा ह्य० राशीचे अर्ध, ३ त्रिलव ह्य० दृक्काण, ४ नवांश, ५ इनांश ह्य० द्वादशांश, ६ त्रिंशदंश, हे सहा वर्ग सांगितले आहेत. शुभ ग्रहाचा वर्ग उत्तम अस्तो ह्मणून तो प्राज्ञ आहे. कित्येक आचार्यांच्या मतानें मित्रांचा वर्गही शुभ आहे. चारां पेक्षां कमी शुभ वर्ग येणारें लग्न शुभकारक नाहीं ह्मणून तें मंगल कार्याला येऊं नये ॥ ३४ ॥

### षड्वर्ग साधन.

प्रोक्तं प्राग्गृहमोजभेऽर्कशशिनोर्होरे समेऽब्जार्कयो- ।

द्विकेद् प्राक्सुतधर्मपो नवलवः प्रोक्तः स्वतोऽर्कांशकः ॥

शुक्रज्ञेज्ययमासृजांशरमुनीभार्थेषवो युग्मभे ।

त्रिंशांशा विषमे त एव गदिता व्यस्ताश्च षड्वर्गकाः ॥ ३५ ॥

श्लोकार्थ—पूर्वीं ग्रहाचे ह्मणजे राशीचे स्वामी ( वि० प्र० श्लोक ४ यांत ) सांगितले. होरा ह्य० लग्नाचे अर्ध. लग्नाचे अंश ३० त्याच्या निम्मे १५ अंश होरेचे होतात. विषम लग्नांत पहिली होरा रवीची व दुसरी चंद्राची; आणि सम लग्नांत पहिली चंद्राची व दुसरी रवीची जाणावी. लग्नाचे दहा दहा अंशांचे तीन भाग करून प्रत्येक भागाला द्रेष्काण ह्मणावें. लग्नाचा जो स्वामी तोच पहिल्या पहिल्या द्रेष्काणाचा स्वामी. लग्नापासून पंचम स्थानाचा जो स्वामी तो द्वितीय द्रेष्काणाचा आणि जो नवमस्थानाचा तो तृतीय द्रेष्काणाचा स्वामी जाणावा. लग्नाच्या ३० अंशांचे नऊ भाग केले म्हणजे तो प्रत्येक भाग ३ अंश २० कळांचा होतो. ह्या नवांशाचे स्वामी ( वि. प्र. श्लो० ३१ यांत ) सांगितले आहेत. लग्नाचा बारावा भाग २ अंश ३० कळांचा होतो. लग्नस्वामीपासून द्वादशांशाचे स्वामी जाणावे. मेषाचा प्रथमद्वादशांश मंगळाचा, दुसरा शुक्राचा इ० वृषभाचा प्रथम शुक्राचा, द्वितीय बुधाचा इ० समलग्नांत ५।७।८।५।५ हे अंश अनुक्रमानें शुक्र, बुध, गुरु, शनि, मंगळ ह्या पांच ग्रहांचे त्रिंशांश असतात. हे सांगितलेले अंश व ग्रह उलट करून क्रमानें त्या त्या ग्रहांचे विषम लग्नांतील त्रिंशांश समजावे. अर्थात् विषम लग्नांत ५।५।८।७।५ अंश मंगळ, शनि, गुरु, बुध, शुक्र ह्यांचे त्रिंशांश होत. शुभग्रहाचा वर्ग घ्यावा. खलाचा घेऊं नये. अशा रीतीनें षड्वर्ग पहावे ॥ ३५ ॥

अथैषां साधनमाह-प्रोक्तमिति । यस्य ग्रहस्य यत् गृहं तत् प्राक् प्रोक्तं भेशामंशुबुचमित्यादि । अथ होरासाधनमाह-ओजभे विषमराशौ अर्कशशिनोर्होरे क्रमेण भवतः प्रथमपंचदशभागेषु अर्कस्य होरा अपरपंचदशभागेषु शशिनश्चंद्रस्य होरा स्यात् । अथ समराशावब्जार्कयोर्होरे क्रमेण भवतः । प्रथमपंचदशभागेषु चंद्रस्य होरा अपरपंचदशभागेषु अर्कस्य होरा स्यात् । अथ दृक्काणसाधनमाह-द्विकेडिति । दृक्को दृक्काणः त्रिविधो दशदशभागात्मकः तस्य ईद् ईशः प्राक्सुतधर्मपो ज्ञेयः प्राग्लग्नं सुतः पंचमं धर्मो नवमं तान्पातीति प्राक्सुतधर्मपः । एतदुक्तं भवति । प्रथमदृक्काणस्वामी लग्नपतिः द्वितीयदृक्काणस्वामी पंचमपतिः तृतीयदृक्काणस्वामी नवमपतिः स्यादिति । नवलवः प्रोक्तः प्रागेव शस्तोऽंश इत्यादि । अथ द्वादशांशसाधनं-स्वतोऽर्कांशकः स्वस्मात् इति स्वतः लग्नत इत्यर्थः । अर्कांशको द्वादशांशो ज्ञेयः तद्यथा राशिभागास्त्रिशत् ३० एते द्वादशभिर्भाजिताः लब्धं सार्धभागद्वयं २।३० इदं द्वादशांशमानं तदेव गणनीयं । सार्धभागद्वयं लग्नस्य द्वादशांशः तावदेव तत्पुरस्थस्येति लग्नस्योत्पन्नभागावसानपर्यंतं गणयेत् यस्मिन् राशौ विश्रामः तत्स्वामी द्वादशांशनाथः स्यात् । अथ त्रिंशांशसाधनं-शुक्रेति । शुक्रः प्रसिद्धः हो बुध इज्यो गुरुर्ममः शनिरसृक् मंगल एषां पंचानां क्रमेण शरमुनीभार्थेषवः स्युः । शराः पंच मुनयः सप्त इभा अष्टावर्थाः पंच इषवः पंच भागाः शुक्रादीनां स्युः । एतद्युग्मभे समराशौ ज्ञेयं । एतदपि लग्नोत्पन्नभागावसानपर्यंतं गणयेत् । यत्र विश्रान्तिः सत्रिंशांशनाथः विषमे राशौ त एव गदिता ग्रहाः भागाश्च व्यस्ता विलोमा ज्ञेया इति षड्वर्गो निरूपितः ॥ ३५ ॥

**टीकाथ—**आतां ह्या सहा वर्गांचे साधन सांगतो—ज्या ग्रहांचे जे स्थान आहे ते पूर्वी विवाह प्रकरणाच्या ४ व्या श्लोकांत सांगितले आहे. आतां होरा करावयाचे सांगतो—होरा ह्मणजे लग्नाचा अर्धा भाग जाणावा. लग्नाचे अंश ३० आहेत पैकीं विषम लग्नांत पहिली होरा सूर्याची ह्मणजे पहिले पंधरा अंश सूर्याचे आहेत आणि दुसरी होरा ह्म० दुसरे पंधरा अंश चंद्राचे आहेत आणि सम लग्नामध्ये पहिली होरा चंद्राची ह्म० पहिले पंधरा अंश चंद्राचे आणि दुसरी होरा सूर्याची ह्म० दुसरे पंधरा अंश सूर्याचे आहेत. आतां दृक्काण साधन सांगतो—लग्नाचे ३० अंश आहेत पैकीं दहा दहा भागाचे असे तीन भाग पडतात त्या प्रत्येक दहा भागाला दृक्काण ह्मणतात ह्मणजे लग्नांत ३ दृक्काण आहेत आतां प्राक् ह्म० १ ला, सुत ह्म० ५ वा, धर्म ह्म० ९ वा, ह्यांचे जे अधिपति ह्मणजे लग्नाचा १ अधिपति, लग्नापासून पंचम स्थानचा २ अधिपति, लग्नापासून नवम स्थानचा ३ अधिपति, असे हे तीन अधिपति अनुक्रमाने ३ दृक्काणाचे समजावेत. जसे लग्नाचा जो अधिपति आहे तोच. १ दृक्काणाचा अधिपति आहे. पंचमस्थानाचा जो अधिपति तो दुसऱ्या दृक्काणाचा अधिपति आहे. नवम स्थानाचा जो अधिपति तो तिसऱ्या दृक्काणाचा अधिपति आहे. लग्नाचे तीस अंश आहेत, त्यांचे ९ भाग केले ह्मणजे प्रत्येक भाग ३ अंश आणि २० कळांचा होतो तो प्रशस्त आहे, असे पूर्वीच सांगितले आहे. आतां द्वादशांश साधन सांगतो—लग्नाचा जो अर्धांश ह्मणजे बारावा अंश त्याला द्वादशांश ह्मणतात. जसे लग्नाचे ३० भाग आहेत ह्याला बारांनी भागिले असतां २ अंश ६ अंश होतात. ह्मणजे लग्नाचे अर्धासहित दोन भाग ह्मणजे २॥ भागाला द्वादशांश ह्मणावे. ह्याचप्रमाणे पुढला २॥ भाग, नंतर पुढला २॥ भाग ह्या प्रमाणे १२ भाग पडतात. जसे लग्नाचे स्वामी आहेत त्या प्रमाणेच ह्या बारांचे स्वामी जाणावे. जसे मेषाचा स्वामी मंगळ आहे तर मेषाचे प्रथम द्वादशांशाचा स्वामीही मंगळ आहे. वृषभ राशीचा स्वामी शुक्र आहे ह्मणून दुसऱ्या द्वादशांशाचा स्वामी शुक्र आहे. मेषाचा प्रथम द्वादशांश मंगळाचा, कारण मेषाचा स्वामी मंगळ. मेषाचा दुसरा द्वादशांश शुक्राचा, कारण वृषाचा स्वामी शुक्र. मेषाचा तिसरा द्वादशांश बुधाचा, कारण मिथुनेचा स्वामी बुध. मेषाचा चवथा द्वादशांश चंद्राचा, कारण कर्केचा स्वामी चंद्र. मेषाचा पांचवा द्वादशांश सूर्याचा, कारण सिंहचा स्वामी सूर्य. मेषाचा साहवा द्वादशांश बुधाचा, कारण कन्येचा स्वामी बुध. ह्याप्रमाणे ज्या राशीपासून आरंभ करावयाचा त्या राशीचा जो स्वामी असेल तोच स्वामी त्या राशीचे द्वादशांशाचा समजावा. जसे वृषाचा स्वामी शुक्र आहे तर वृषाचे प्रथम द्वादशांशाचा स्वामी शुक्र आहे वृषा पुढील राशि मिथुन आहे तेव्हां त्या राशीचा स्वामी बुध आहे ह्मणून वृषाचे दुसऱ्या द्वादशांशाचा स्वामी बुध आहे; ह्याचप्रमाणे पुढे जाणावे. आतां त्रिंशांश साधन सांगतो—शुक्र, बुध, गुरु, शनि, मंगळ ह्या पांच ग्रहांचे अनुक्रमाने शर ह्म० ५ मुनि ह्म० ७ इभ ह्म० ८ अर्थ ह्म० ५ इषु ह्म० ५ असेल तर त्रिंशांश आहेत ह्मणजे शुक्राचा त्रिंशांश ५ बुधाचा ७ गुरुचा ८ शनीचा ५ मंगळाचा ५ असे आहेत. हे त्रिंशांश सम लग्नाचे जाणावेत, आतां विषम लग्नाचे हेच सांगितलेले अंश उलटे व ग्रहही उलटे केले ह्मणजे येतात. जसे शुक्र, बुध, गुरु, शनि मंगळ ५-७-८-५-५ ह्याचे उलट ह्मणजे मंगळ, शनि, गुरु, बुध, शुक्र, आणि ५-५-८-७-५ हे अंशही उलट केले ह्मणजे हे त्रिंशांश होतात. जसे मंगळाचा ५ शनीचा ५ गुरुचे ८ बुधाचे ७ शुक्राचे ५ असे त्रिंशांश समजावे. अशा रीतीने पडवर्गांचे निरूपण केले ॥ ३५ ॥

रविसाधन व लग्नाचा इष्टकाल.

संक्रांत्यंतरहोहतादिनमणादाप्तं भपूर्वो रवि- ।

मेषाद्यातभयुग्युतोऽयनलवै रात्रौ सषड्भः स च ॥

तद्गोपांशनिजोदयाहतिखरामाप्तं तथा लग्नतो ।

भुक्तांशाकलितेन युगिवरगैः कालः स्फुटो भोदयैः ॥ ३६ ॥

**श्लोकार्थ—**ज्या वेळचा रवि करावयाचा असेल, त्याच्या पूर्वी झालेल्या संक्रांतीपासून पुढे होणाऱ्या संक्रांतीपर्यंत मोजून जितके दिवस, घटी, पळे होतील त्यांनी, पूर्वील संक्रांतीपासून इष्टकाला पर्यंत मोजून दिवस, घटी, पळे होतील त्याला भागून भागाकार राशि, अंश, कळा, विकळा काढावा. जे राश्यादिक येईल त्यांत मेषादि गत राशि मिळवल्या, ह्मणजे तो स्पष्ट रवि होतो. नंतर त्या रवीत अयनांश मिळवावे. इष्टकाल रात्रीचा असतां सायन रवीत ६ राशि मिळवल्या, मग वरचा राश्यंक सोडून खालचे अंशादि १ तून वजा क-



रावे, ह्मणजे बाकी राहील ते भोग्यांश होतील. नंतर ज्या राशीला रवि असेल त्या राशीच्या पळानीं भोग्यां-  
शाला गुणावें आणि ३० नीं भागावें. तसेंच लग्नाच्या भुक्तांशाला त्याच्या पळानीं गुणून ३० नीं भागावें. नंतर  
भोग्यांशांच्या पळांत, भुक्तांशांचीं पळें आणि लग्न व रवि यांच्या मधल्या राशींचीं पळें मिळवून त्याला ६० नीं  
भागून घटिका, पळें येतील तो इष्टकाल समजावा. वर्तमान शकांत ४४४ वजा करून ३० नीं भागून येतील  
ते अयनांश होत. ( या श्लोकांतील गणिताचें उदाहरण दिलें नाहीं. कारण ज्यानें ग्रहलाघवाचें गणित केलें असेल  
त्याला हा श्लोक सहज समजेल, व ज्याणें केलें नसेल त्याला समजण्यास बराच कठीण जाईल. ह्यांतील गणित  
स्थूल मानाचें आहे आणि उदाहरणही बरचें लांब होईल ) ॥ ३६ ॥

अष्टकालसाधनं विवक्षुस्तावत्सूर्यसाधनमाह-संक्रांत्यंतरिति । अंतः अंतरालं तत्र अहानि दिनानि  
संक्रांत्योः अंतरहानि संक्रांत्यंतरहानि तैर्हृतो भागितः एवं विधो दिनगणः संक्रांतेः सकाशात्  
इष्टदिनसमूहः । तस्माद्यदात्तं लब्धं स भपूर्वो राशिभागकलादिको रविः स्यात् । किंभूतो रविः मेषा-  
त्सकाशात् यातमयुक् गतराशियुक् सूर्यभुक्तराशियुगित्यर्थः । स तात्कालिको रविः स्यादित्यर्थः ।  
अत्रोदाहरणं तुलावृश्चिकसंक्रांत्यंतरदिनानि २९।५४।० तथा तुलासंक्रांतेरिष्टदिनगणः ५।६।० अस्मा-  
दिनगणात् संक्रांत्यंतरहोर्भिलब्धं राश्यादि ०।५।७।१ इदं सूर्यभुक्तराशियुक्तं ६।५।७।१ अयं तात्कालिकः  
सूर्यः अयनलवयुतः कार्यः । अयनांशा ग्रंथांतरे प्रसिद्धाः । कृताब्ध्यव्युनिते शाके षष्ठ्याप्ता अयनांशाका  
इति। सः अयनलवयुतो रविः रात्रौ रात्रीष्टकालसाधनविषये सषड्भः कार्यः षड्राशियुक्तः कार्यः तद्भो-  
ग्यांशनिजोदयाहतिखरामासं कालः स्यात् तस्य सायनांशस्य रवेः भोग्यांशाश्च निजोदयाश्च तेषामा-  
हतिगुणनं तस्याः सकाशात् खरामासं त्रिशता भक्तं लब्धं सूर्यस्य भोग्यकालः स्यात् निजोदयाः  
स्वदेशीयराश्यादयः ते ब्रह्मतुल्यादिभ्योऽवगंतव्याः । कथंभूतः कालः तथैवागतो भुक्तांशाकलितेन युक्  
तथैव सूर्यस्य भोग्यकालसाधनरीत्याऽगतो लग्नात् भुक्तांशाकलितेन भुक्तांशैर्भुक्तभागैः आकलितेन  
कालेन युक् युक्तः । एतदुक्तं भवति इष्टलग्नमयनलवयुतं कृत्वा तद्भुक्तांशैर्निजोदयागुणनीयाः त्रिशता  
भाज्या लब्धं लग्नं भुक्तकालः तेन कालेन स रविभुक्तः कालो युक्तः कार्य इत्यर्थः । पुनः कथंभूतः  
विचरगैर्भौदयैर्युक् विचरसूर्यलग्नांतरालं तत्र गतैर्भौदयैः राश्यादयैः युक् युक्तः स पलमयः कालः  
स्फुटः स्पष्ट इष्टकालः स्यात् । षष्टिभक्तो घटिकात्मकः स्यादित्यवगंतव्यम् ॥ ३६ ॥

टीकाार्थ—आतां इष्ट काल साधन करण्याकरितां अगोदर सूर्याचें साधन करितां ज्या काळाचा रवि करावयाचा  
असेल त्याच्या पूर्वी झालेल्या संक्रांतीपासून पुढें होणाऱ्या संक्रांतीपर्यंतचे जितके दिवस, घटी, पळें होतील तीं मोजून  
त्यांनीं, पूर्वीच्या संक्रांतीपासून जो इष्टकाल धरला असेल त्या काळापर्यंतचीं जीं दिवस, घटी, पळें होतील त्याला भागावें  
आणि जो भागाकार येईल तो राशि, भाग, कलादिक रवि होतो. त्या राश्यादिकांमध्ये मेषादिगत राशि मिळवाव्या, नंतर  
जे बेरीज करून राशि भागादिक येतील तो तात्कालिक रवि होतो. ह्याचें उदाहरण असे कीं, तूळ आणि वृश्चिक ह्या दोन  
संक्रांतीचे मध्ये असलेले दिवस २९-५४-० तसाच तूळ संक्रांतीपासून इष्ट कालपर्यंतचा इष्टदिनगण ५-६-० असा  
आहे. वरच्या ९-५४-० ह्या रकमेनें ५-६-० ह्याला भागिलें असतां भागाकार राश्यादि ह्या ०-५-७-१ असा रवि  
झाला ह्या मध्ये तूळ राशीच्या पूर्वीच्या ६ राशि ह्मणजे मेषापासून कन्ये पर्यंतच्या मिळविल्या तेव्हां ६-५-७-१ असा  
तात्कालिक सूर्य झाला, ह्यामध्ये अयनांश मिळवावेत, अयनांश दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितले आहेत. ते असे करावयाचे कीं,  
चालत्या शकांतून कृत ह्य ० ४ अब्धि ह्य ० ४ बरोबर ४४४ वजा करावेत आणि जी बाकी राहील तिला  
साठानीं भागून जो भागाकार येईल ते अयनांश समजावेत. तो पूर्वी सांगितलेला रवि ६-५-७-१ असा आहे, ह्यांत अय-  
नांश मिळवावेत आणि रात्रीस इष्ट कालसाधन असेल तर त्यांत सहा राशी मिळवावेत. नंतर वरचा राशीचा अंक ह्य ०  
६ सोडून खालचे अंशादितून वजा करावे. ह्मणजे जी बाकी राहील ते भोग्यांश होतील. नंतर रवि हा ज्या राशीवर  
असेल त्या राशीच्या पळानीं त्या भोग्यांशाला गुणावें आणि ३० नीं भागावें. नंतर वर सांगितलेल्या भोग्यांशांच्या पळांत  
भुक्तांशांचीं पळें आणि रवि व लग्न ह्यांच्या मध्ये असलेल्या राशींचीं पळें मिळवून त्याला ६० नीं भागावें जे घटिका,  
पळें वगैरे येईल तो इष्ट काल समजावा. पुढें दिलेल्या कोष्टकांत लेखितां उदयाचीं व मुंबईतील उदयाचीं सर्व राशीचीं  
पळें दिलीं आहेत ॥ ३६ ॥

कोष्टक.

| राशी.       | मे. मी. | वृ. कुं. | मि. म. | क. ध. | सिं. वृ. | क. तू. |
|-------------|---------|----------|--------|-------|----------|--------|
| लंकेचे उदय  | २७८     | २२९      | ३२३    | ३२३   | २२९      | २७८    |
| मुंबईचे उदय | २३८     | २६७      | ३१०    | ३३६   | ३३१      | ३१८    |

इष्टकाल साधन आणि घटिका स्थापन.

लग्नाकौ यदि चैकभेऽशविवरात्स्वीयोदयघ्नाद्विष- ।

त्रयामिः काल इनात्तनुर्यदि तनुः सूर्योदयात्प्रागसौ ॥

कुंडेऽभः परिपूरिते सुघटिकामधोदयास्ते न्यसेत् ।

स्तुत्वाऽग्नित्रयवायुगा न शुभदा पूर्णाऽग्निपंचस्वथ ॥ ३७ ॥

श्लोकार्थ—जर लग्न व सूर्य एका राशीला असेल तर त्या दोहोंत ज्याचे अंशादि अधिक असेल त्यांतून ज्याचे कमी असेल ते वजा करून बाकी राहील तिला त्याच राशीच्या पळानीं गुणून ३० नीं भागून जें येईल तो इष्टकाल होतो. जर सूर्यांतून लग्न वजा होत असलें तर तें लग्न सूर्योदयापूर्वी आहे असे समजावें. पाण्यानें भरलेल्या ( पातेलें, घंघाळ इत्यादि ) पात्रांत सूर्याच्या अर्धोदयाच्या किंवा अर्धास्ताच्या वेळीं, पूजा करून वरो-  
वर ६० पळानीं भरणारी अशी उत्तम घटिका पाण्यावर तरंगत ठेवावी, ठेवितांच आग्नेयी, दक्षिण, नैर्ऋत्य, वायव्य ह्या चार दिशेकडे जाईल तर शुभ नव्हे, अन्य दिशेला शुभ होय. आग्नेयी, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य ह्या पांच दिशांकडे भरली तरही शुभ नाही, अन्य दिशेस बुडाली तर शुभ होय ॥ ३७ ॥

अथेष्टकालसाधने विशेषमाह—लग्नार्काविति । लग्नाकौ लग्नसूर्यौ यदि एकमे स्तस्तदांशविवरात् लग्नार्कयोर्भागांतरात् स्वीयोदयघ्नात् । निजराश्युदयगुणितात् । या त्रियत्रयातिस्त्रिंशता लब्धिः स कालः स्यात् इष्टकालः स्यात् । तत्रापि विशेषमाह—इनात्तनुरिति । इनात्सूर्यात्तनुरेष्टं यदि तनुरेष्टः स्यात्तदाऽसाविष्टकालः सूर्योदयात्प्राक् पूर्वं स्यात् सोऽपि षष्ठ्या भक्तो घटिकात्मकः स्यादित्यवगंतव्यम् । अथ ज्ञातं कालं यंत्रैर्विना साधितुं न शक्यतेऽतो यंत्राणां मध्ये मुख्यस्य घटीयंत्रस्य स्थापनकालमाह—कुंड इति । अंभः परिपूरिते उदकपूर्णं कुंडे पात्रे घटिकामज्जनक्षमे कुंडग्रहणमुत्तानपात्रव्युदासार्थं तस्मात् कुंडरूपपात्रे उदकपूरिते सुघटिकां षष्टिपलशुद्धां न्यसेत् निक्षिपेत् कस्मिन्सति अर्धोदयास्ते जाते सति सूर्यस्यार्धोदयेऽर्धास्ते च जाते सति किं कृत्वा स्तुत्वा प्रार्थयित्वा । प्रार्थना ग्रंथांतरे उक्ता । यंत्राणां मुख्यरूपाऽसि ब्रह्मणा निर्मिते घटि । दंपत्योः शुभकालासिहेतवे भव शोभने इति ॥ प्रतिष्ठितायां घटिकायां तद्गमनफलमाह—सा प्रतिष्ठिता घटी अग्नित्रयवायुगा न शुभदा स्यात् अग्नित्रय आग्नेय्यादिप्रदक्षिणक्रमेण दिशात्रयं वायुर्वायव्यदिशा इति दिक्चतुष्टयं प्रति गता न शुभदाऽर्धादन्यदिग्गता तत्रैव स्थिता वा शुभदा स्यात् । तथा चोक्तं ग्रंथांतरे । संस्तुतैव घटी तेष्ये यां दिशं प्रति गच्छति । पूर्वाशादिफलं कुर्यात्स्थिता मध्ये धनप्रदा ॥ सौभाग्यं निर्धनं नार्या अपमृत्युरुजान्विता । भर्तृप्रिया च वेद्या च मान्या वित्तसुतान्वितेति ॥ एवं गमनफलमुक्त्वा पूर्णाताफलमाह—पूर्णाऽग्निपंचस्वथेति । अग्निपंचसु आग्नेय्यादिपंचसु दिक्षु पूर्णा घटी न शुभदा । अर्धादन्यदिक्षु पूर्णा शुभा स्यात् । उक्तं च । उत्तरेशानपूर्वासु घटी पूर्णा शुभप्रदा । दिक्षु शेषासु कन्यायामग्नौधव्यदायिनी ॥ ३७ ॥

टीकार्थ—आतां इष्ट काल साधना विषयी विशेष सांगतो—जर सूर्य आणि लग्न ह्या दोघांची राशि एक असेल तर त्या दोघांपैकी ज्याचे राश्यादिके अधिक असतील त्यांतून ज्याचे राश्यादि कमी असतील ते वजा करावे. आणि त्या बाकीला आपल्या राशीच्या उदयाने गुणावे व त्याला तीसाने भागून जो काल येईल तो इष्टकाल जाणावा. त्या मध्येही

विशेष सांगतो की, जर सूर्यापेक्षां इष्ट लग्नाची संख्या कमी असेल तर हा इष्ट काल सूर्यादयाचे पूर्वी आहे असे जाणावे. तो ही इष्ट काळ ६० नी भागला असता घटिका इत्यादि काळ होतो असे जाणावे, आतां झालेला इष्ट काळ यंत्राशिवाय जाणणे अशक्य आहे ह्मणून सर्व यंत्रांमध्ये घटिका यंत्र हें फार मुख्य आहे. ह्मणून तें स्थापन करण्याचा काळ सांगतो—उदकांनीं भरलेलें एक घंघाळ घ्यावे त्यामध्ये ६० पळांनीं बरोबर भरेल अशी एक घटिका, सूर्याचा अर्धा उदय झाल्या बरोबर अथवा सूर्याच्या अर्ध्या अस्ताबरोबर श्रीसूर्याची प्रार्थना करून ती घटिका पाण्यांत टाकावी. घटिकेची प्रार्थना अशी की, “हे घटिके तुला ब्रह्मदेवानें उत्पन्न केलें आहे, तूं सर्व यंत्रांमध्ये श्रेष्ठ आहेस, ह्मणून ह्या दंपतीचा ह्मणजे स्त्रीपुरुषांचा शुभ काळ साधण्याविषयी कारण हो.” अशी प्रार्थना करून घटिका स्थापन केल्यावर तिचें गमन ह्मणजे पाण्यांत सोडल्यावर ज्या दिशेकडे जाईल त्या जाण्याचें फल सांगतो—ती घटिका अग्नित्रय ह्मणजे आग्नेयी पासून आरंभ करून, प्रदक्षिणक्रमानें आग्नेयी, दक्षिण, नैऋत्य ह्या तीन दिशा आणि वायुची दिशा ह्म० वायव्य ह्या चार दिशेकडे जाईल तर ती शुभकारक नाही. अर्थात् ह्या दिशां शिवाय दुसऱ्या दिशेकडे ती घटिका गेली असतां शुभकारक आहे. अथवा तशीच स्वस्थ राहिली तर शुभकारक आहे असें जाणावे. तेंच दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, घटिकेची प्रार्थना केल्यावर ती घटिका ज्या दिशेस जाईल (ह्मणजे पूर्वे इत्यादि दिशेकडे) त्या दिशेचें फळ सांगतो—मध्ये जर तशीच राहिल तर धनाचा लाभ देणारी समजावी, आतां पूर्वादि दिशेच्या क्रमानें फळें सांगण्याकरितां बोलतो—तीं अशीं कीं, १ सौभाग्य, २ निर्धन, ३ स्त्रीचा अपमृत्यु, ४ रोग, ५ भर्तृप्रियत्व, ६ वेस्या होणें, ७ मान्य होणें, ८ वित्त आणि पुत्र ह्यानीं युक्त असणें अशीं हीं पूर्वेपासून क्रमानें आठ दिशेचीं फळें सांगितलीं आहेत. आतां घटिका भरून बुडतांना जें फळ आहे ते सांगतो—भरून बुडतांना अग्नि पंचसु ह्म० आग्नेयीपासून प्रदक्षिणा क्रमानें पांच दिशेकडे ह्म० आग्नेयी, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य ह्या दिशेकडे बुडाली असतां ती घटिका शुभ फल देणारी होत नाही, अर्थात् ह्या पांच दिशां शिवाय दुसऱ्या दिशेकडे बुडाली असतां शुभ फल देणारी आहे. हेंच दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, उत्तर, ईशान्य, पूर्व इतक्या दिशेकडे बुडाली असतां शुभकारक आहे, ह्या शिवाय बाकीच्या ह्म० आग्नेयी, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य ह्या दिशेकडे बुडाली असतां शुभ नाही ॥ ३७ ॥

### गोधूल लग्न.

गोधूलं पदजातिके शुभकरं पंचांगशुद्धौ रवेः ।

अर्धास्तात्परपूर्वतोऽर्धघटिकं तत्रेदुमष्टारिगम् ॥

सोत्रांगं कुजमष्टमं गुरुयमाहः पातमर्कक्रमम् ।

जह्याद्विप्रमुखेऽतिसंकट इदं सद्योवनाढ्ये क्वचित् ॥ ३८ ॥

श्लोकार्थ—सायंकालचें गोधूल लग्न शुद्धादि हीन जातीला विवाहोक्त पंचांगशुद्धि असतां शुभ होय. सूर्याच्या अर्धास्ता पुढें १५ पळें व पूर्वी १५ पळें मिळून अर्ध घटिका गोधूल मुहूर्त असतो. ह्याला अष्टम व षष्ठ चंद्र, खलग्रहानें युक्त लग्न, अष्टम मंगल, गुरुवार व शनिवार, महापात, सूर्य संक्रांती हीं सोडावीत. कन्या फार मोठी वाढली असून अन्य मुहूर्त नाही अशा महासंकटीं ब्राह्मणादिकांला गोधूल लग्न विवाहास शुभ होय ॥ ३८ ॥

अथ गोधूललग्नमाह—गोधूलमिति । गोधूलं लग्नं सायंकाललग्नं पदजातिके हीनजातौ शुभकरं प्रोक्तं न पूर्ववर्णानां क पंचांगशुद्धौ विवाहोक्तपंचांगे । अत्र पंचांगशुद्धिमुख्या तत्र कालप्रमाणं विशेषणद्वारेणाऽऽह—कथंभूतं गोधूलं रवेरर्धास्तात्सकाशात् । प्राक्परतोऽर्धघटिकं अर्धा घटिका यस्मिन्नित्यर्धघटिकं प्राक् पंचदशपलानि परतः पंचदशपलानि एवमर्धघटिकमित्यर्थः । अत्र त्याज्यमाह—इहास्मिन् गोधूललग्ने षष्ठाष्टगमिदुं चंद्रं जह्यात् त्यजेत् । पुनः किं किं जह्यादित्याह—सोत्रांगं उग्रग्रहसहितं लग्नं कुजं भौममष्टमं गुरुयमाहः गुरुशनिदिनं पातं महापातं सिद्धांतगम्यं अर्कक्रमं सूर्यसंक्रांतिं जह्यात् अन्ये दोषा न त्याज्या इत्यर्थः । अत्र गुरुयमाहस्यक्तं तद्दोषोपलंभात् गुरुदिने सूर्यास्तात्प्राक् यामार्धं परतो यमघटः शनिदिनेऽस्तमयात्प्राक्परतश्च कुलिकौ मार्तंडोदयतः स्मृता दिनपतेरामार्धनाथा ग्रहा मार्तंडात्मजभोग उत्तरलवस्तज्ज्ञैः शुभे कर्माणि । त्याज्योऽसौ कुलिकोऽथ सूर्यदिवसो दानैश्च शकार्कदिग्वस्वंगाधियमैः स्मृतः कुरहितै रात्रौ तु तिथ्यव्येकं तन्निशीति न्यायेनास्तात्परतोऽपि कुलिको भवतीति हेतोर्गुरुशनिवारौ निर्दिता । अथ वि-

प्रादीनामपि कचित्कार्यविशेषेण गोरजः प्रवृत्तिमाह-विप्रमुखेति । संकट इदं सद्योवनाख्ये कचिदिति । यौवनाख्ये अतिसंकटे प्राप्ते सति कचिल्लग्नशुद्धयभावे इदं गोधूलं विप्रमुखे विप्रप्रभृतिवर्णत्रये सत् शुभं स्यादन्यथा नेत्यर्थसिद्धं । तदुक्तं ज्योतिर्निबंधे । घटोलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं स्मृतं । शुद्धादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन ॥ लग्नशुद्धिर्यदा न स्याद्यौवने समुपस्थिते । तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं शुभमिति ॥ ३८ ॥

टीका—आतां गोधूल लग्न सांगतां—सायंकालच्या वेळचे जें लग्न असतें त्याला गोधूल, लग्न असें म्हणतात. हें पदज ह्मणजे शुद्ध इत्यादिक हीन जाती करितां सांगितलें आहे, परंतु ब्राह्मणादि श्रेष्ठ वर्णांना सांगितलें नाहीं, हें गोधूल लग्न घेतानांही विवाहाला सांगितलेल्या पांचही अंगांची शुद्धि असली पाहिजे, ह्या गोधूल लग्नाविषयीं पांचांगाची शुद्धिही मुख्य आहे, त्या गोधूल लग्नाचा काळ सांगतां—सूर्याचा अर्ध असत होण्याचे वेळेपासून पूर्वी पाव घटिका आणि नंतर पाव घटिका मिळून अस्ताचे पूर्वी १५ पळें आणि अस्तानंतर १५ पळें मिळून अर्धी घटिका पर्यंतच हें गोधूल लग्न आहे, ह्या गोधूल लग्नास काय सोडावयाचें आहे, तें सांगतां—उग्र ह्मणजे शूर ग्रह असलेलें लग्न सोडावें आणि आठवा मंगळ सोडावा, व गुरुवार आणि शनिवार सोडावेत, महापात सोडावा, तो सिद्धांतानें समजावया जोगा आहे. सूर्याचें संक्रमण सोडावें, ह्यां शिवाय बाकीचे दोष सोडण्याचें कारण नाहीं, येथें गुरु आणि शनि हे वार सोडावयाचें कारण असें कीं, गुरुवारी सूर्या-स्ताचे पूर्वी यामार्ध हा दोष असतो व तो त्याज्य ह्मणून सांगितला आहे आणि त्याच दिवशीं सूर्यास्तानंतर यमघंट दोष सांगितला आहे, ह्मणून गुरुवार वर्ज्य आहे, आणि शनिवारी सूर्यास्ताचे पूर्वी आणि नंतर कुलिक नांवाचे दोष असतात, विवाह प्रकरणाचे २० व्या श्लोकांत सांगितलेल्या कुलिकाचा विचार पहावा. हा कुलिक दोष शनिवारी अस्ताचे पूर्वी असतो, रविवारी कुलिक दिवसासच असतो जेवढे कुलिक दिवसास आहेत त्यांतील एक कमी करून रात्रीस कुलिक समजावेत. ह्या कारणास्तव गुरुवार आणि शनिवार हे दोन वार वर्ज्य केले आहेत. आतां ब्राह्मणादिकांना कांहीं कार्य प्रसंगवशात् गोधूल लग्नावर लग्न करण्याची प्रवृत्ति सांगतां—संकटकाळीं हें गोधूल लग्न घ्यावें, संकट ह्मणजे कन्येचा काळ होऊन गेला असून ती आतां तारुण्यांत आली असेल तर, आणि दुसरे शुद्ध लग्न मिळत नसेल तर, ब्राह्मणादि तीन वर्णांनींही गोधूल लग्न घेतल्यास तें शुभकारक आहे, परंतु संकट नसेल तर घेणें प्रशस्त नाहीं. तेंच ज्योतिर्निबंध-ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ज्यावेळेस घटी यंत्र नसेल त्या वेळेस गोधूल सांगितलें आहे, पण तें शुद्धादिक हीन जातींना सांगितलें आहे, ब्राह्मणादि तीन वर्णांना तें गोधूल लग्न शुभ नाहीं, परंतु कन्येला तारुण्य अवस्था आली असेल आणि दुसरे शुद्ध लग्न मिळत नसेल अशी अडचण असेल तर मग ब्राह्मणादि सर्व वर्णांना ही गोधूल लग्न शुभकारक आहे ॥ ३८ ॥

विवाहवेदी आणि अंगकर्मांचे मुहूर्त.

वेदी प्राक्प्रवणा चतुर्वरकरा हस्तोच्छ्रिताऽग्रस्यदो- ।

जादेर्द्वित्रियुगांगुलैरपचिता सोक्ता बहिर्वामतः ॥

यस्यांगं यददोऽगिनो गदितमे कुर्यादिहेंदोर्वलम् ।

नाऽऽलोक्यं तु विवाहतद्वयरीरनवाह्नि प्राङ्न कुर्यादिदम् ॥ ३९ ॥

श्लोकार्थ—पूर्वेकडे थोडथोडी सखल होत जाणारी आणि वराच्या हातानें ४ हात लांब ४ हात रुंद व २ हात उंच अशी वेदी ब्राह्मणाला असावी. ही पक्षां क्षत्रियाला २ अंगुलें, वैश्याला ३ अंगुलें आणि शूद्राला ४ अंगुलें कमी असावी. घराबाहेर वामभागीं वेदी करावी. ज्या मुख्य कर्माचें जें अंगकर्म करावयाचें, तें त्या मुख्य कर्माला सांगितलेल्या नक्षत्रावर करावें त्याला चंद्रबळ पाहूं नये. विवाहापूर्वी ३ व्या, ६ व्या, ९ व्या दिवशीं त्याचें अंग कर्म करूं नये ॥ ३९ ॥

अथोद्वाहवेदिकालक्षणमाह—वेदीति । प्राक्प्रवणा पूर्वनिम्ना चतुर्वरकरा चतुर्भिर्वरकरैः प्रमिता वरो वैवाह्यः हस्तोच्छ्रिता हस्तप्रमाणेनोन्नता इयमग्रस्य ब्राह्मणस्य प्रोक्ता सा वेदी दोर्जादेः क्षत्रियादेः क्रमेण द्वित्रियुगांगुलैः अपचिता हीना क्षत्रियस्य द्व्यंगुलन्यूना वैश्यस्य त्र्यंगुलोना शूद्रस्य चतुरंगुलोना च । सा च कार्येत्यह-बहिर्वामत इति । गृहाद्वहिर्वामभागे अंगुलप्रमाणं मार्कंडेयपुराणे उक्तं ।

परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः।वालाग्रं चैव लिखा च यूका चाथ यवोदरः॥क्रमादष्टगुणानाहुय-  
वानामष्टतोऽंगुलं। षडंगुलं पदं तच्च वितस्तिर्द्विपदं स्मृता ॥ द्विवितस्ती तथा हस्तो मार्कंडेयमु-  
नीरितः ॥ आगमांतरेऽपि । कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमांगुलिपर्वणः । मध्यमा दैर्घ्यमानेन मात्रांगुल-  
मितीरितमिति ॥ अन्यत्रोक्तं । यत्किंचित्पौरुषायामं विभज्य दशधा पुनः । एकं द्वादशभागं तु कृत्वा  
तेष्वेकमंगुलं ॥ देहलब्धांगुलं नाम जानीयात्तस्य तत्पुनः । महामानांगुलिरिति मात्रांगुलिरिहोदिता  
॥ प्रासादादीनि तेनैव कुर्यान्मानांतरेण वा । वेदिकादीनि शिबिकारथादीनां विधिः पुनरित्यादि ॥  
अत्र वरकरग्रहणं तस्य होमकर्तृत्वात् । ननु कन्याया अपि लाजाहुतौ कर्तृत्वमस्ति तत्करप्रमाणं  
किं नोक्तं । सत्यं अल्पावकाशस्थले कन्याकरप्रमाणमप्यंगीक्रियते । तथा चोक्तं देवयजनदीपिकायां ।  
स्वल्पावकाशानिलये हीनमानं समाश्रयेदिति ॥ अथ नानाविधकर्मणां अंगं कस्मिन्नक्षत्रे कर्तव्यमि-  
त्याह-यस्यांगमिति । यस्य कर्मणः यत् अंगं अद इदं अंगं अंगिनो मुख्यस्य गदितमे उक्तनक्षत्रे कु-  
र्यात् । इहास्मिन्नंगभूते कर्मणि इंदोर्बलं नाऽऽलोक्यं न विचारणीयं । तत्र विशेषमाह-विवाहतः  
विवाहदिनात्प्राक् त्र्यारिनवाहि तृतीयषष्ठनवमेऽहि इदं अंगं विवाहांगं न कुर्यात् । विवाहांगानि  
यथा । दलनं कंडनं चैव व्यंजनं मोदकादि च । यवारमंडपोवेदीकुंकुमं वर्णकं तथेति ॥ ३९ ॥

**टीकाथ-**—आतां लग्नाची जी वेदिका असते तिचे लक्षण सांगतो—पूर्वेच्या बाजूकडे थोडी थोडी सखल होत  
गेलेली असावी. आणि ज्या वराचा विवाह करावयाचा आहे त्याच्या हाताने चार हात लांब व चार हात रुंद असून एक  
हात ऊंच असावी, अशी ही वेदिका अग्रवर्ण ह्मणजे ब्राह्मण ह्यांस सांगितली आहे, तीच वेदिका क्षत्रियांनां दोन अंगुळें कमी  
आणि वैश्यानां तीन अंगुळें कमी असावी. आणि शूद्रांला चार अंगुळें कमी असावी. ती वेदिका कोठें करावी हें सांगतो—  
वराच्या बाहेर डाव्या बाजूस करावी, अंगुळाचें परिमाण मार्कंडेय पुराणांत सांगितलें आहे कीं, परमाणु हा फारच सूक्ष्म  
आहे, त्रसरेणु हा पृथ्वीचें रज आहे, केंशाचे अग्रभाग, लिखा, यत्र, हीं अनुक्रमानें एकापेक्षां एक आठपट आहेत. ह्मणजे  
परमाणु फारच सूक्ष्म ते आठ झाले ह्मणजे एक त्रसरेणु होतो, ८ त्रसरेणु झाले ह्मणजे एक केशाग्र होतो. ८ केशाग्र झाले  
ह्मणजे १ लिखा होतो. ८ लिखा झाल्या ह्मणजे १ ऊ होतो. ८ ऊ झाल्या ह्मणजे १ यव होतो ८ यव झाले ह्मणजे १  
अंगुळ होतो. ६ अंगुळें झालीं ह्मणजे १ पद होतें. २ पदें झालीं ह्मणजे १ वीत होतो. २ वीती झाल्या ह्मणजे १ हात होतो.  
असें मार्कंडेय मुनींनीं सांगितलें आहे. दुसऱ्या आगमांतही असें सांगितलें आहे कीं, कर्त्याच्या उजव्या हाताचे मध्यल्या  
बोटाचें जें कांड असतें त्याच्या मापा इतकें मात्रांगुळ समजावें. दुसरे ठिकाणीं सांगितलें आहे कीं, पुरुषाचा जो आयाम  
ह्मणजे उंचपणा असतो त्याचे दहा भाग करून त्या दहाव्या भागाचे बारा भाग करावेत, त्या एका भागाला अंगुळ असें  
नांव आहे, ह्या अंगुळाला देह लब्ध अंगुळ असें जाणावें. त्याला महामानांगुलि अथवा मात्रांगुलि असेंही नांव सांगितलें आहे.  
ह्याच मानांनीं मोठे मोठे वाडे इत्यादि करतात अथवा दुसऱ्या मानानेंही वेदिका, शिबिका, रथ इत्यादि करतात.  
आतां येथे वराच्या हाताचे मानानें वेदिका करावयाचें कारण, तो वर हा होम करणारा आहे. आतां अशी शंका येईल कीं,  
लाजा होम करतांना कन्याही होम करणारी आहे, तर तिचे हाताच्या मापानें कां वेदिका करूं नये ? हें ह्मणणें खरें  
आहे, परंतु जागेचा संकोच असेल तर कन्येच्या हाताचें माप घेण्याची शीती आहे. तेंच देवयजनदीपिका ग्रंथांत सांगितलें  
आहे कीं, जागेचा संकोच असेल अशा ठिकाणीं लहान माप घ्यावें. आतां अशी शंका येतें कीं नानाप्रकारचीं कर्मे आहेत  
व त्यांचीं अंगेही असतात. तर त्या अंगांचा आरंभ कोणत्या नक्षत्रावर करावा हें सांगतो—ज्या मुख्य कर्मास जें नक्षत्र  
सांगितलें आहे त्याच नक्षत्रावर तें कर्मागही करावें. आतां कर्मांगाविषयीं चंद्राचें बळ पाहावयाचें कारण नाहीं, त्याविषयीं  
विशेष सांगतो कीं, विवाहाचे दिवसाचे पूर्वी ३-६-९ ह्या दिवशीं त्या अंग कर्माचा आरंभ करावा. विवाहाचीं अंग कर्मे  
अशीं कीं, दळणें, कांडणें, लाडू करणें, पापड पापड्या वगैरे करणें, हळद दळणें, मंडप घालणें, वेदिका तयार करणें,  
उडदाला तेल लावणें, कुंकुम तयार करणें इत्यादि समजावीत ॥ ३९ ॥

वधूप्रवेश.

लग्नादष्टि १६ दिनांततः सममुनी ७ प्वं ५ क ९ क्षुषूर्ध्वं त्वयु- ।

ग्धस्त्रे मास्यपि हायने शरमिताद्वर्षात्परं स्वेच्छया ॥

वैफामार्गसिते जगुः श्रुतियुगोद्वाहर्क्षचित्राश्विनी- ।

ज्यैश्वानवमंदिरे निशि वधूसंवेशमंगे स्थिरे ॥ ४० ॥

श्लोकार्थ—विवाहापासून सोळा दिवसांच्या आंत सर्व समदिवशी व ७।५।९ ह्या विषमदिवशी वधूप्रवेश करावा. सोळा दिवसां नंतर महिन्याचे आंत विषम दिवशी करावा. महिन्या नंतर वर्षपर्यंत विषममासांत करावा. वर्षा पुढे पांच वर्षांच्या आंत विषमवर्षी करावा. त्या नंतर इच्छा होईल तेव्हां करावा. वैशाख, फाल्गुन व मार्गशीर्ष ह्यांच्या शुक्लपक्षांत, श्रवण, धनिष्ठा, विवाह नक्षत्रे, चित्रा, अश्विनी, पुष्य ह्या नक्षत्रांवर जुन्या घरांत, रात्री, स्थिरलक्ष्मी वधूप्रवेश करावा ॥ ४० ॥

अथ क्रमप्राप्तं वधूप्रवेशमाह-लक्षादिति । लक्षाद्विवाहतः सकाशात् अष्टिदिनांततः षोडशदिन-मध्ये समसुनीष्वेकेषु द्युषु घस्त्रेषु समाः समसंख्याका मुनिः सप्तम इषुः पंचमः अंको नवमः एषु द्युषु दिवसेषु अत ऊर्ध्वं षोडशदिनादूर्ध्वं अयुग्घस्त्रे विषमदिने मास्यपि विषमे हायने वर्षे वधूसंप्रवेशो जगुरुचुः । एतदुक्तं भवति । षोडशदिनमध्ये समादिषु दिनेषु कर्तव्यः । षोडशदिनातिक्रमे मासपर्यंतं विषमदिने वधूप्रवेशः कार्यः । प्रथममासातिक्रमे वर्षपर्यंतं विषमे मासि कर्तव्यः तदा विषम-दिननियमो नास्ति । एवं प्रथमे वर्षेऽतिक्रांते पंचमवर्षपर्यंतं विषमे वर्षे कर्तव्यः तदा विषममास-नियमो नास्ति । अथ विलंबितं वधूप्रवेशं कस्मिन्मासपक्षे कर्तव्य इत्याह-वैफामार्गसिते वै वै-शाखः फा फाल्गुनः मार्गो मार्गशीर्षः एषां क्षितः शुक्लपक्षः तस्मिन् कैः श्रुतियुगोद्वाहर्क्षचित्राश्वि-नीज्यर्क्षैः श्रुतियुगं श्रवणधनिष्ठे उद्वाहर्क्षाणि विवाहनक्षत्राणि पूर्वोक्तानि चित्राश्विनी प्रसिद्धे इज्य-र्क्षे पुष्यः तैः अनवमंदिरे जीर्णगृहे । नवीनमंदिरे कन्यां नवोढां न प्रवेशयेदिति निषेधादनवमंदिर इत्युक्तं । उक्तं च । वधूप्रवेशनं कार्यं पंचमे सप्तमे दिने । नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बल इति ॥ नारदः । आरभ्योद्वाहदिवसात् षष्ठे वाऽप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिन इति ॥ संप्रह्णे । विवाहमारभ्य वधूप्रवेशोऽयुग्मे तथा षोडशवासरांतात् । तदूर्ध्वमब्देऽयुजि पंचमांतादतः-परस्ताज्जियमो न चास्ति ॥ वृद्धनारदः । समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं विशेत् आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ॥ भास्करव्यवहारे । रात्री विवाहमे शास्तः सन्मुहूर्ते स्थिरोदये । वधूप्रवेशो नैवात्र प्रतिशुक्राद्भयं विदुः ॥ ऋक्षैर्वैवाहिकैः शुद्धैर्दपत्योश्च शुभप्रदं । वधूप्रवेशनं कार्यं पंचमे ह्यकृतं यदि । मार्गफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ मूलपुष्यमृदुस्वातिस्थिराश्विभ्रुति-वासवैः ॥ पितृभे च करे नारी प्रविष्टा पुत्रिणी भवेदिति ॥ ४० ॥

टीका—आतां क्रमाने प्राप्त झालेला वधूचा प्रवेश काल सांगतो-विवाह झाल्यावर आठ दिवसांचे आंत किंवा सोळा दिवसांचे आंत सम दिवशीं ६० २-४-६ वगैरे दिवशीं, अथवा मुनि ६० ७ अंक ९ इषु ५ अशा प्रकारच्या विषम दिवशीं वधूचा प्रवेश करावा. आतां सोळा दिवस होऊन गेल्यावर एक महिन्याचे आंत विषम दिवसावर झणजे १७-१९-२१-२३ वगैरे विषम दिवसावर वधू प्रवेश करावा. महिना होऊन गेल्यावर मग एक वर्षाचे आंत विषम मासीं झणजे ३-५-७-९-११ ह्या महिन्यांत वधू प्रवेश करावा. ह्याचें तात्पर्य असें कीं, सोळा दिवसांमध्ये, सम दिवशीं वगैरे वधू प्रवेश करावा. सोळा दिवस होऊन गेल्यावर एक महिनापर्यंत विषम दिवशीं वधू प्रवेश करावा. पहिला महिना होऊन गेल्यावर एक वर्षपर्यंत विषम मासीं वधू प्रवेश करावा. त्यावेळेस विषम दिवसाची आवश्यकता नाही. अशा शीतीनें पहिले वर्ष संपल्यावर मग विषम वर्षी वधू प्रवेश करावा. त्या वेळेस विषम मासाची आवश्यकता नाही. आतां वधू प्रवेशास विलंब झाला तर कोणत्या महिन्यांत कोणत्या पक्षांत करावा हें सांगतो-वै ६० वैशाख, फा ६० फाल्गुन, मार्ग ६० मार्गशीर्ष ह्या तीन महिन्यांपैकी कोणत्याही महिन्यांतील शुक्लपक्षांत श्रुति युग झणजे श्रवण, धनिष्ठा आणि विवाहाचीं जीं नक्षत्रे पूर्वी सांगितलीं आहेत, त्या नक्षत्रांवर, चित्रा, अश्विनी, इज्यर्क्ष ६० पुष्य इतक्या नक्षत्रांवर वधू प्रवेश करावा, परंतु तो जुन्या घरांत करावा कारण नवीनच बांधलेल्या मंदिरांत वधू प्रवेश करवूं नये. कारण त्यास निषेध आहे, झणूनच घर नवीन नसावे असें सांगितलें आहे. तसेंच वधू प्रवेश, लम झाल्यापासून पांचव्या, सातव्या, नवव्या दिवशीं शुभ वारावर शुभ लक्ष्मी, चंद्राचें बल, असतां करावा. नारदानें सांगितलें आहे कीं, विवाह झाल्यापासून ६ व्या, ८ व्या आणि १० व्या दिवशीं वधू प्रवेश केला असतां संपत्तिकारक आहे अथवा दुसऱ्या कोणत्याहि सम दिवशीं करावा. संप्रह्णांत सांगितलें आहे कीं, विवाह झाल्यापासून सोळा दिवसांचे आंत वधू प्रवेश सम दिवशीं करावा. त्या नंतर एक वर्षपर्यंत विषम महिन्यांत, नंतर नियम नाही. वृद्ध नारद सांगतो कीं, सम वर्षांत ६० २-४-६-८ इत्यादि वर्षांत. तसेंच सम महिन्यांत जर वधूचा प्रवेश होईल तर ती वधू भर्ताराचें आयुष्य हरण करत्ये. आणि ती वधू मरण पावत्ये. भास्कर व्यवहारांत सांगितलें आहे कीं, विवाह नक्षत्रांवर शुभ मुहूर्तावर स्थिरोदय असतां रात्रीस वधू प्रवेश



करावा. यथे प्रतिशुक्रापासून भय नाही असे विद्वान् लोक सांगतात, विवाहाची शुभ नक्षत्रे असतांना प्रवेश केला असता, तो स्त्री पुरुषांना मंगलकारक आहे. वधू प्रवेश जर पांचव्यांत झाला नाही तर मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख ह्या महिन्यांचे शुक्लपक्षी, शुभ दिवशीं मूल, पुष्य, स्वाति, स्थिरनक्षत्रे, अश्विनी, श्रवण, वासव ह्यं ज्येष्ठ, मघा इतक्या नक्षत्रांवर वधू प्रवेश केला असतां ती वधू पुत्रवती होते ॥ ४० ॥

प्रथमवर्षी कन्येनें राहण्याचे नियम.

उद्वाहात्प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका ।

हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ॥

पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये ।

तिष्ठंती पितरं निहंति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥ ४१ ॥

श्लोकार्थ—विवाहापासून पहिल्या आषाढांत जर आपल्या पतीच्या घरीं ह्यं सासरीं कन्या राहिली तर सासूला वाईट, क्षयमासांत स्वतः कन्येच्या शरीराला वाईट, ज्येष्ठांत पतीच्या थोर भावाला ह्यं वडील दीराला वाईट, पौषांत श्वशुराला वाईट व अधिक मासांत पतीला वाईट होय. चैत्रांत आपल्या पित्याच्या घरीं राहणारी कन्या पित्याला अशुभ जाणावी. ज्याला वाईट झणून सांगितलें, तीं मनुष्ये नसतां भय नाही. जिची सासू नाही ती कन्या आषाढांत सासरीं राहिली तरी हरकत नाही वगैरे जाणावें ॥ ४१ ॥

इदानीं प्रथमाषाढादौ भर्त्रादिगृहे वासनिषेधमाह—उद्वाहादिति । उद्वाहाद्विवाहादुपरि प्रथमे शुचावाषाढे कन्या यदि भर्तुर्गृहे वसेत्तदा तज्जननीं तस्य भर्तृजननीं हन्यादित्यादि सुगमम् ॥ ४१ ॥

टीका—आतां पहिला आषाढ इत्यादिकांमध्ये कन्येस राहण्याचा निषेध सांगतां—विवाह झाल्यानंतर पहिल्या आषाढ महिन्यांत कन्या जर पतीच्या घरीं राहिल तर ती पतिच्या मातेचा ह्यं सासूचा नाश करत्ये इत्यादि स्पष्ट आहे ॥ ४१ ॥

पुनर्विवाह मुहूर्त.

शूद्रांत्येषु पुनर्भुवा परिणयः प्रोक्तो विवाहोक्तभै- ।

नाऽऽलोक्यं तिथिमासवेधभृगुजेज्यास्तादि तत्रार्कभात् ॥

त्रिऋक्षेषु मृतिर्धनं मृतिमृती पुत्रा मृतिर्दुर्भगम् ।

श्रीरौनत्यमथो धृती १८११ कृत ४ तत्त्व २५ क्षेऽत्ययः साभिजित् ॥ ४२ ॥

श्लोकार्थ—शूद्र, रजक, अंत्यजादि जातींत पुनर्विवाह करितात. तो विवाहनक्षत्रांवर करावा. त्याला तिथि मास, वेध, शुक्राचें व गुरूचें अस्त इत्यादि पाहूं नये. सूर्यनक्षत्रापासून दिवसनक्षत्र मोजून तीन तीन नक्षत्रांचीं पुढचीं फळे पहावीं. ३ मृति, ६ धन, ९ मृति, १२ मृति, १५ पुत्र, १८ मृति, २१ दुर्भग, २४ श्री, २७ औन्नत्य ह्याला ब्रह्मपट्ट झणतात. सूर्यनक्षत्रापासून अभिजितासह मोजून १८।११।२५ हीं नक्षत्रे मृत्युकर आहेत, ह्याला रुद्रपट्ट झणतात. ह्या दोहोंतून शुद्ध असें नक्षत्र पुनर्विवाहाला व्यावें ॥ ४२ ॥

अथ पुनर्भुविवाहमाह—शूद्रांत्येष्विति । शूद्राः प्रसिद्धाः अंत्या रजकादयः तेषु पुनर्भुवा परिणयः प्रोक्तः कैः विवाहोक्तभैः । स्पष्टं । तत्र पुनर्भुवा परिणये तिथिमासवेधभृगुजेज्यास्तादि न आलोक्यं । स्पष्टं । तथा चोक्तं ज्योतिर्निबंधे । न शुक्रास्तादिकं चित्यं शुद्धिवेधादिकं तथा । पुनर्भुवा संवरणे न मासतिथिशोधनमिति ॥ अथ ब्रह्मपट्टनक्षत्रशुद्धिमाह—अर्कभात् सूर्यनक्षत्रात् त्रिऋक्षेषु त्रिषु नक्षत्रेषु क्रमेण मृतिर्भरणं प्रथमे त्रिके द्वितीये त्रिके धनं तृतीये मृतिः चतुर्थे मृतिः पंचमे पुत्राः षष्ठे त्रिके मृतिः सप्तमे दुर्भगं अष्टमे लक्ष्मीः नवमे त्रिके औन्नत्यं प्रोक्तं । अथ रुद्रपट्टशुद्धिमाह—अर्कभादित्यनुवर्तते । धृतीशकृततत्त्वक्षेऽधृतिरष्टादशं ईश एकादशं कृतश्रुतं तत्त्वं पंचविशं एत-

न्मिते नक्षत्रेऽर्कभादेतन्मित इत्यर्थः । अत्र चतुष्टये साभिजिद्विनिर्णये मृत्युः स्यात् अर्धादन्येषु शुभं प्रोक्तमिति ॥ ४२ ॥

टीकार्थ—आतां पुनर्विवाह सांगतों—शुद्ध हे प्रासिद्धच आहेत. अंत्य ह्मणजे थोडी वगैरे ह्यांना पुनर्विवाह करावा ह्मणून सांगितलें आहे, तो पुनर्विवाह विवाहास सांगितलेल्या नक्षत्रावर करावा. पुनर्विवाह करण्याचे वेळेस तिथि, मास, वेध, गुरु शुक्रांचा अस्त वगैरे काहीं एक पाहावयाचें कारण नाही. तेंच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, शुक्रास्त वगैरे काहीं एक विचारावयाचें कारण नाही. वेध इत्यादि, शुद्धि वगैरे आणि मास, तिथि ह्या कोणत्याच गोष्टीचा विचार करावयाचें कारण नाही. आतां ब्रह्मपट्ट नक्षत्रांची शुद्धि सांगतों—सूर्यनक्षत्रापासून तीन तीन नक्षत्रांचा एक एक गण अस ९ गण झाले. जसे ३-६-९-१२-१५-१८-२१-२४-२७ असे नऊ गण आहेत, ह्यांचे अनुक्रमानें फळ असें आहे कीं, पहिल्या त्रिकास मरण, दुसऱ्या त्रिकास धन, तिसऱ्या त्रिकास मरण, चवथ्या त्रिकास मरण, पांचव्या त्रिकास पुत्र, सहाव्या त्रिकास मरण, सातव्या त्रिकास दुर्भगत्व, आठव्या त्रिकास लक्ष्मी, नवव्या त्रिकास श्रेष्ठपणा प्राप्त होतो. आतां रुद्रपट्ट शुद्धि सांगतों—सूर्यनक्षत्रापासून धृति ह्म० १८ ईश ह्म० ११ कृत ह्म० ४ तत्व ह्म० २५ हीं नक्षत्रे मृत्युकारक आहेत, ह्यास रुद्रगणपट्ट असें ह्मणतात. ह्या दोहोंतून जें शुभकारक असेल तें नक्षत्र विवाहाला घ्यावें. ह्या पुनर्विवाहाला हल्लींचे लोक “ पाट लावणे ” असें ह्मणतात तो शुद्धादिक नीच वर्णांमध्ये आहे ॥ ४२ ॥

अनेक शास्त्रार्थ.

भुक्तायैव सुतामुपोषितनरो दद्याच्च सावित्रिका - ।

मारब्धोत्सवके यदा जनिमृती स्यातां स्वगोत्रे क्वचित् ॥

सांगं तं विदधीत वाजमपरऽस्मादारभेत्पूर्वतो ।

यज्ञोद्वाहनचौलमौजिकमहस्सु स्वर्गदिक्वित्रिषु ॥ ४३ ॥

श्लोकार्थ—विवाह किंवा उपनयन करणाऱ्या यजमानानें आपण उपोषित राहून, भोजन केलेल्या वरास कन्यादान करावें व भोजन केलेल्या वटूस गायत्रीचा उपदेश करावा. विवाहादि उत्सवाला आरंभ केल्यानंतर जेव्हां स्वगोत्रांत जन्म किंवा मरण होऊन तत्संबंधीं सूतक प्राप्त होतें, तेव्हां तें आरंभिलेलें कर्म सांग करावें. अन्नमात्र परगोत्र्यांनीं करावें. यज्ञ, विवाह, चौल, उपनयन हीं ज्या दिवशीं करणें असतील त्या पूर्वी यज्ञाचा २१ दिवस, विवाहाचा १० दिवस, चौलाचा ३ दिवस व उपनयनाचा ३ दिवस आरंभ करावा ॥ ४३ ॥

अथ नानाविधशास्त्रार्थानाह—भुक्तायेत्यादिना । भुक्ताय कृतभोजनायैव सुतां दद्यात् परं उपोषितनरः भुक्तायैव वटवे सावित्रिकां गायत्रीं दद्यात् । तदुक्तं ज्योतिर्निबंधे । भुक्त्वा समुद्र-हेतकन्यां सावित्रीग्रहणं तथा । उपोषितः सुतां दद्यादागताय वराय चेति ॥ आरब्धोत्सवके यदा जनिमृती स्यातां स्वगोत्रे क्वचित् सांगं तं विदधीत वाजमपर इति वाजं अन्नं अपरेऽसगोत्रिणो विदधीरन् । वाजमन्नं गृह्णन् वाजं पीयूषमुच्यत इत्यनेकार्थध्वनिमंजरी । शेषं सुगमं । उक्तं च विवाहोत्सवयज्ञादावारब्धे सूतकं यदि । सांगं तत्कर्म कुर्वीत अन्नदानादिकं परैरिति ॥ अस्मादा-रभेत्पूर्वतो यज्ञोद्वाहनचौलमौजिकमहस्सु स्वर्गदिक्वित्रिषु अस्मान्निश्चितदिनात्पूर्वतः प्रथमतः यज्ञोद्वाहनचौलमौजिके त्वेत्स्मिन् चतुष्टयं क्रमात्स्वर्गं २१ दिक् १० त्रि ३ त्रिषु ३ अहस्सु आरभेत् यज्ञं षकविंशतिदिनेषु सप्ताहं विवाहः द्विषु दशदिनेषु चौलं त्रिषु दिनेषु मौजिकं त्रिषु दिनेष्विति उक्तं च । एकविंशत्यहर्षके विवाहे दश वासराः । ज्यहे चूडोपनयने नांदिश्राद्धं विधीयते ॥ आरंभलक्षणं । आरंभो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नांदिश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरि-क्रिया इति ॥ ४३ ॥

टीकार्थ—आतां नाना प्रकारचे शास्त्रार्थ सांगतों—कन्या दान करणाऱ्या यजमानानें अथवा यज्ञोपवीत देणाऱ्या य. जमानानें आपण स्वतः उपोषण करून भोजन केलेल्या वराला कन्यादान करावें आणि भोजन केलेल्या वटूलाच गायत्रीचा उपदेश करावा. तेंच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, भोजन करून कन्येचें पाणिग्रहण करावें आणि तसेंच सावित्री ग्रहणही वराणां. आलेल्या वराला उपवास करून कन्या दान करावें. उत्सवाला आरंभ केल्यावर जर मध्यंतरी आपल्या स-

भोजांत कोणी मृत झाला अथवा कोणी जन्मला तर ते मृताशौच आणि जननाशौच असले तरी ते कर्म सांग झणजे परिपूर्ण करावे. मात्र अन्न शिजविणें दुसऱ्या कडून शिजवावे. ह्यांत अन्नाचा वाचक वाज हा शब्द घेतला आहे तो अनेकार्थ ध्वनि मंजरी नांवाचे ग्रंथांत वाज हा अन्न, पंख आणि अमृत असें झटले आहे. असें सांगितलें आहे कीं, विवाह, उत्सव, यज्ञ इत्यादि कार्यांचा आरंभ केल्यावर जर सूतक येईल तर ते आरंभलेलें कार्य पुरें करावे. परंतु अन्नदान करणें ते मात्र दुसऱ्याकडून करावे. ज्या दिवशीं यज्ञादिकांचा निश्चय केला असेल त्याचे पूर्वीं झणजे १ यज्ञ, २ विवाह, ३ चौल, ४ मौंजीबंधन ह्या चार कर्मांला क. मानें २१-१०-३-३ असे दिवस सांगितले आहेत. झणजे यज्ञाचे आरंभाला अगोदर २१ दिवस, विवाहाचे कामाला १० दिवस, चौलाला ३ दिवस, मौंजीबंधनाला ३ दिवस असे सांगितले आहेत. ह्या दिवसांत जर सूतक आलें तर ते कर्म पुरें करावे. असें सांगितलें आहे कीं, यज्ञाकरितां २१ दिवस, विवाहाकरितां १० दिवस, चौल कार्यास ३ दिवस. मौंजीबंधनाला ३ दिवस अशा वेळीं नांदी श्राद्ध करितात. ह्या सांगितलेल्या चार कृत्यांला आरंभ केला हें केव्हां समजावे ते सांगतों—यज्ञाचे कृत्याला आणि एखाद्या व्रताला ब्राह्मणांना वरण दिलें झणजे आरंभ केला असें समजावे. विवाहादिकांमध्ये नांदी श्राद्ध केलें झणजे आरंभ केला असें समजावे आणि श्राद्धाचा आरंभ स्वयंपाक केला झणजे समजावे ॥ ४३ ॥

मंगलकार्यांतले नियम व मंडपोत्थापन.

नो श्राद्धं क्षयदर्शनैत्यकमधीति शीतलाप्स्वाप्नुतिम् ।

सीमासिध्वतिपातमेककुलजाः सव्यातिपातं क्वचित् ॥

उत्थापावधि मंडपस्य सशरागाहोर्विषष्टे समे- ।

ऽन्यद्वास्यो न गृहोद्वाहौ सहजयोस्तुल्या क्रियाऽब्दांततः ॥ ४४ ॥

श्लोकार्थ—सांवत्सरिकश्राद्ध, दर्शश्राद्ध, नित्यश्राद्ध, वेदपठन, शीतोदकस्नान, सीमोलंघन, महानदीचें उलंघन व अपसव्य हीं एका कुळांत झालेल्या पुरुषांनीं देवक वसत्यापासून मंडपोत्थापन होईपर्यंत कधीही करूं नयेत. पंचम व सप्तम या विषम दिवशीं आणि षष्ठ्य राहिले सम दिवशीं मंडपोत्थान करावे. नवें घर, आणि विवाह एका वर्षांत करूं नये. सरुख्या भावंडाचे समान संस्कार ( चौल चौल, मुंज मुंज इ० ) एकावर्षांत करूं नयेत ॥ ४४ ॥

क्षयदर्शनैत्यकं श्राद्धं अधीति पठनं शीतलाप्सु शीतलोदकेषु आपुतिं स्नानं सीमासिध्वतिपातं सीमा प्रसिद्धा सिधुर्महानदी । सिधुर्नदिसमुद्रयोरित्यभिधानात् । तयोरतिपातः उलंघनं सव्यातिपातं अपसव्यमित्येतत् एककुलजाः सगोत्रिणः क्वचित् कुर्युः किमवधि मंडपस्य उत्थापावधि यावन्मंडपोत्थापनं स्यात् तावन्न कुर्यादित्यर्थः । उक्तं च । दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं शीताद्भिः स्नानमेव च । प्राचीनावीतिकरणं नदीसीमातिपातनं । अन्यच्च । नित्यश्राद्धमधीति च स्नानं च शिशिरैर्जलैः । सर्पिडा नैव कुर्वीरन्मंडपोत्थापनावधि । अथ स मंडपोत्थापः कदा कार्य इत्याह-सशरागाहोरिति । शराः पंच अगाः सप्त तन्मिताहोर्दिनयोः पंचमे सप्तमे विषष्टे समे षष्ठ्यरहिते समेऽहि समदिने उत्थाप्यः । उक्तं च । मंडपोत्थापनं कार्यं समे तु दिवसे बुधेः । षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पंचमसप्तमौ इति । अब्दांतवर्षमध्ये । गृहोद्वाहौ न कर्तव्यौ सहजयोः एकमातृजयोः पुरुषयोः पुरुषस्त्रियोश्च समानक्रिया समानं कर्म न भवति न कुर्यादित्यर्थः । मिश्रमातृजयोर्न दोष इत्यर्थात्सिद्धा अर्थाद्भिन्नमातृजयोस्तदा सहोद्वाहादिकरणमागतं तद्भिन्नकर्तृत्वे मिश्रगृहे सति वेदितव्यं । कर्तृत्वमत्र श्राद्धादिकारिणः पित्रोरेव न तु विवाहहोमं कर्तुर्वरस्य । तथा चोक्तं । एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयत इति ॥ पुरुषौ पुरुषस्त्रियौ पृथक्द्वित्वविवक्षया बहुत्वासंभवाद्बहुत्वं यद्वा पुरुषश्च स्त्री च तथा तयोर्द्वयोः पुरुषयोः स्त्रियोर्वा पुरुषस्त्रियोर्वा । कन्यापुरुषयोर्विवाहविशेषश्चोक्तः । सोदर्ययोः कन्यकयोः सुतयोरेकवत्सरे । विवाहो न स्मृतस्तज्ज्ञैः कन्यकासुतयोः स्मृत इति ॥ अत्र संवत्सरमानं मनुजमानेन चैत्रादिफाल्गुनांतं वेद्यं । समानक्रियोति । द्वयोश्चोले द्वयोर्वैतबंधौ द्वयोर्विवाहौ वा सहजयोरित्येनैव एकमातृत्वं संभवाति । उक्तं च । नैकस्मिन्वत्सरे का यौ गृहोद्वाहौ तदाचन ॥ ४४ ॥

**टीकाथ—**सांवत्सरिक श्राद्ध, दश श्राद्ध, नित्य श्राद्ध, वेदपठन, थंड पाण्यामध्ये उडी मारून स्नान करणे, सांमेचे उल्लंघन, महानदीचे उल्लंघन, सव्याचा अतिपात ह्य० अपसव्य करणे हीं सर्व कार्ये, देवक बसवित्यापासून मंडपोत्थान होईपर्यंत एक गोत्रांतल्या पुरुषांनी करूं नयेत. असे सांगितले आहे कीं, नित्य श्राद्ध, अध्ययन, थंड पाण्याने स्नान, हीं कार्ये सर्पिडांतल्या पुरुषांनी मंडपोत्थापन होईपर्यंत करूं नयेत. आतां मंडपोत्थापन केव्हां करावें तें सांगतां—पांचव्या, सातव्या दिवशीं मंडपोत्थापन करावें अथवा सहावा दिवस सोडून दुसऱ्या कोणत्याही सम दिवशीं मंडपोत्थापन करावें. असे सांगितले आहे कीं, विद्वानांनीं मंडपोत्थान सम दिवसावर करावें मात्र त्यामध्ये सहावा दिवस वर्ज्य करावा, शिवाय पांचवा आणि सातवा दिवसही मंडपोत्थान करण्यास योग्य आहे अर्थात् पांचव्या, सातव्या दिवशीं मंडपोत्थापन करावें. एका वर्षांत नवीन घर करणे आणि विवाह करणे हीं दोन कार्ये करूं नयेत. एका मातेपासून झालेल्या पुत्राच्या आणि कन्येच्या समानक्रिया ह्यणजे पुत्राचें चौल चौल, मुंज मुंज आणि कन्येचे विवाह विवाह करूं नयेत; अर्थात् पुत्रा पुत्राच्या आणि कन्या कन्यांच्या माता निरनिराळ्या असतील तर समान क्रिया ह्य० विवाह, विवाह आणि चौल चौल, मुंज मुंज करण्यास हरकत नाही. परंतु तसें करणें झाल्यास निराळें घर असून कर्तेही निराळे असावेत, असें जाणावें. ज्याला नांदीश्राद्ध करण्याचा अधिकार आहे तो कर्ता येथें घेतला आहे, परंतु होम करणारा वर हा येथें कर्ता ध्यावयाचा नाही. तेच सांगितले आहे कीं, एका मातेपासून झालेल्या स्त्री आणि पुरुष ह्यांच्या एकाच प्रकारच्या क्रिया एकाच वर्षांत दोन करूं नयेत. माता मित्र असतील तर करण्यास हरकत नाही. येथें पुरुष आणि स्त्री असें सांगितले आहे आणि त्यांत दोन हाटल्यामुळे पुरुष जातीचे दोघां पुत्रांच्या आणि स्त्री जातीच्या दोन कन्यांच्याही समान क्रिया ह्य० लग्न लग्न, चौल चौल करूं नयेत. परंतु स्त्री आणि पुरुष ह्या दोघांच्याही समान क्रिया ह्य० लग्न करण्यास हरकत नाही, असें सांगितले आहे. दोन सरूख्या बहिणींचा आणि दोन सरूख्या भावांचा विवाह एका वर्षांत करूं नये असें आहे, परंतु कन्या व पुत्र ह्यांचा विवाह करण्यास हरकत नाही. आतां वर्षाचें मान कोणतें ध्यावयाचें ह्याचा विचार असा कीं, मनुज मानानें चैत्रापासून तो फाल्गुनपर्यंतचे वर्ष धरावें, समान क्रिया ह्यणजे एक क्रिया जसें दोघां भावांच्या मुंजी लावणें व दोन कन्यांचीं लग्ने करणें, सहज ह्या शब्दानें एका मातेपासून झालेल्या विषयींच हा वरचा निषेध आहे, आणखी असें सांगितले आहे कीं, एका वर्षांत नवीन घर बांधणें आणि लग्न हीं दोन कार्ये करूं नयेत ॥ ४४ ॥

श्राद्धनियम व सप्तपदीचा शास्त्रार्थ.

उद्गाहव्रतचूडकेऽब्ददलतत्खंडं तिलैस्तर्पणं ।

श्राद्धं पिंडयुतं महालयगयापिड्यं विना नाऽऽचरेत् ॥

पूर्वं सप्तपदीविधेरधिगते दोषे वरे वा मृते ।

देयाऽन्यत्र विवाहिताऽपि च बलाद्या विद्वयोनिर्न चेत् ॥ ४५ ॥

**श्लोकार्थ—**विवाहानंतर एकवर्षपर्यंत, व्रतबंधानंतर ६ महिनेपर्यंत व चौलानंतर ३ महिनेपर्यंत तिलांनी तर्पण करणें व पिंडयुक्त श्राद्ध करणें हीं दोन कर्मे करूं नयेत. महालय, गया व मातापितरांचें श्राद्ध हीं मात्र अवश्य करावीं. विवाहांतील सप्तपदी नांवाचा विधि होण्यापूर्वीं वराला दोष आहे असें समजलें असतां, किंवा वर मरण पावला असतां; अथवा जुळुमानें विवाह केला असतां, जर त्या वरानें कन्या भोगिली नसेल तर ती दुसऱ्या वराला द्यावी ॥ ४५ ॥

**वर्ज्योतराण्याह—**उद्गाहेति । उद्गाहव्रतचूडके क्रमेण अब्ददलतत्खंडं उद्गाहे विवाहे कृते सति अब्द वर्षपर्यंत व्रते व्रतबंधे सति दलमर्थाब्दं षण्सासपर्यंतमित्यर्थः । चूडके चौलकर्मणि कृते सति तत्खंडं तस्य दलस्यापि खंडं त्रिमासपर्यंतमित्यर्थः । तिलैस्तर्पणं पिंडयुतं श्राद्धं च नाऽऽचरेत् किंविना महालयगयापिड्यं विना महालयो भाद्रपदापरपक्षः गया प्रसिद्धा पिड्यं मातापितृक्षयदिनं तत्र यच्छ्राद्धं क्रियते तन्महालयगयापिड्यं तद्विना । उक्तं च । विवाहव्रतचूडास्तु वर्षमर्थं तदर्धकं । अतिलं तर्पणं कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यादपिडकं । महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । कृतोद्गाहोऽपि कुर्वीत पिंडदानं यथाविधीति ॥ पूर्वमिति सप्तपदीविधेः पूर्वं प्रथमतः दोषेऽथमूक्त्वादिकेऽधिगते ज्ञाते सति वा इत्यथवा वरे मृते सति कन्याऽन्यत्र देया । अपि च या कन्या बलाद्विवाहिता साऽऽन्यत्र देया चेद्यदि विद्वयोनिर्न स्यात् विद्वः योनिर्यस्याः सा तथा चेत् पुरुषाभुक्तेत्यर्थः । इति ॥

याज्ञवल्क्येन । महादोषे सुविज्ञाते पूर्वं सप्तपदीविधेः । मरणादौ समुत्पन्ने देयाऽन्यस्मै न दोषभाक् ॥ बलादुद्वाहिता कन्या दातव्याऽन्यवराय चेति ॥ अन्यच्च । बलादुद्वाहिता कन्या मंत्रैर्यदि न संस्कृता । अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सेति ॥ महादोषाः कारिकानिवंधे उक्ताः । अंधो मूकः क्रियाहीनश्चापस्मारी नपुंसकः । दूरस्थः पतितः कुष्ठी दीर्घरोगी वरो न सत् ॥ अन्येऽपि दोषा उक्ताः । मूर्खनिधनदूरस्थशूरमोक्षाभिलाषिणां । त्रिगुणाधिकवर्षाणां न देया जातु कन्यकेति ॥ पुरुषनपुंसकलक्षणं । यस्याण्डु प्लवते बीजं न्हादि मूत्रं च फेनिलं । पुमान् स्याल्लक्षणेरेतैर्विपरीतैस्तु षंडकः ॥ अपरीक्ष्य दाने दोषः । अपरीक्ष्य वरं कन्यां निर्गुणाय प्रयच्छति । कुलं तस्यैव तच्छोक-संतप्तो विनिवृत्ततीति ॥ ४५ ॥

टीकार्थ—दुसरी काय काय वर्ज्य आहेत ते सांगतो—उद्वाह, ह्य० विवाह, व्रतबंध ह्य० मौजीबंधन, आणि चूडा ह्य० चौलकर्म हीं कार्ये केल्यावर क्रमानें एक वर्ष, सहा महिने, तीन महिनेपर्यंत तिलांनीं तर्पण आणि श्राद्ध करूं नये. परंतु महालय, गया श्राद्ध आणि मातापितरांचें श्राद्ध हीं मात्र करावीत. महालय ह्यणजे भाद्रपद वद्य पक्षां करावयाचें श्राद्ध, गया ह्यणजे गया तीर्थां करावयाचें श्राद्ध आणि प्रत्येक वर्षीं करावयाचें आईचें श्राद्ध आणि बापाचें श्राद्ध इतकीं आवश्यक कर्मे करण्यास हरकत नाही. ह्यांशिवाय दुसरीं श्राद्धे व तिलांनीं तर्पण हीं लग्न झाल्यावर एक वर्ष, उपनयना नंतर सहा महिने, चौला नंतर तीन महिने पर्यंत करूं नयेत. असें सांगितलें आहे कीं, विवाह, व्रतबंध आणि चौल कर्म ह्या तीन कर्मानंतर क्रमानें एक वर्ष, सहा महिने, तीन महिने पर्यंत तिलांवाचून तर्पण करावें आणि श्राद्ध करावयाचें तें पंडितवाचून करावें. परंतु महालय श्राद्ध गया तीर्थावरचें श्राद्ध, मातापितरांचे मरण दिवशीचें हीं श्राद्धे लग्न केल्यावरही पिंडासहित यथाविधीनें करावीत. आतां असा विचार करावयाचा आहे कीं, सप्तपदी संस्कार होण्याच्या पूर्वी वराचे दोष समजले ह्यणजे तो आंधळा, मुका, पांगळा इत्यादि दोष दिसले किंवा तो वर मरणच पावला तर ती कन्या दुसऱ्या वराल द्यावी. अथवा ज्या कन्येचा विवाह बलात्कारानें केला असेल त्या कन्येचा विवाह दुसऱ्या वराबरोबर करावा. परंतु ती कन्या त्या पतीनें भोगलेली नसावी. असेंच याज्ञवल्क्य ऋषींनीं सांगितलें आहे कीं, सप्तपदी संस्कार होण्याचे पूर्वी वराचा दोष समजला तर ती कन्या अथवा वरावर मरण इत्यादि आपाति आली असतां ती कन्या किंवा जिचें लग्न न्नालात्कारानें केलें असेल तीही कन्या तो वर सोडून दुसऱ्या वराला द्यावी. आणखी असें सांगितलें आहे कीं, ज्या कन्येचा विवाह बळजोरीनें केला आहे परंतु सप्तपदीचा संस्कार झाला नसेल तर ती कन्या दुसऱ्या वराला यथाविधीनें द्यावी. वराचे महादोष कोणते आहेत ते कारिकानिवंधांत सांगितले आहेत. आंधळा, मुका, क्रियाहीन ह्यणजे कोणतेंही काम करण्यास असमर्थ, अपस्मार रोग असलेला, नपुंसक, फार दूर रहाणारा. पतित ह्य० कुकर्म केल्यामुळें जातीनीं बाहेर टाकिलेला, कोड असलेला, फारच दिवसांपासून रोगग्रस्त असलेला, असा जो वर असेल तो योग्य नाही. ह्या शिवाय दुसरेही दोष सांगितले आहेत ते असे कीं, मूर्ख, निधन, दूर देशीं रहाणारा, शूर, मोक्षाची इच्छा करणारा, कन्येपेक्षां तिप्पटीहून अधिक वयाचा, असा जो वर असेल त्याला कधीही कन्या देऊं नये. वर नपुंसक आहे हें ओळखावयाचा असा प्रकार आहे कीं, ज्याचें बीर्य पाण्यांत टाकलें असतां वर तरंगत राहतें आणि कमी कमी होत जातें, त्याला तार येते आणि फेंस उत्पन्न होतो ह्या लक्षणावरून तो वर पुरुष आहे असें जाणावें आणि अशीं लक्षणे नसतील तर तो नपुंसक जाणावा. वराची परीक्षा न करतांना जर कन्या दान केलें तर दोष आहे, तो सांगतो—जो कोणी वराची परीक्षा केल्या शिवाय निर्गुण अशा वराला कन्या देतो. तर त्या देणाऱ्याचें कुल त्याबद्दलचे शोकानें फारच दुःखी होऊन नष्ट होतें ॥ ४५ ॥

स्त्रीरहित असलेल्यांचा विधि व विषययोग.

अस्त्रीकैः कुशहेमरौप्यरचिता ताम्री च विप्रादिभिः । •

भार्या वा निखिलैः सुवर्णरचिता धर्माय धार्या बुधैः ॥

मंदारार्कदिनेंबुपाग्निफणिभं भद्रातिथिश्रेदिहो- ।

द्रुतासाविषकन्यकाऽपि तनुगौ सौम्यौ रिपुक्षेत्रगौ ॥ ४६ ॥

श्लोकार्थ—ब्राह्मणादि चार वर्णांतील स्त्रीरहित पुरुषांनीं क्रमानें दर्भ, सुवर्ण, रौप्य व ताम्र ह्यांची अथवा सर्व वर्णांनीं सुवर्णाची स्त्री गृहधर्मासाठीं करावी. शनि, मंगळ, रवि ह्या वारीं, जर शततमरका, कृत्तिका, आश्लेषा, ह्यांतलें कोणतेंही एक नक्षत्र व द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी ह्यांतून एक तिथि येईल, तर त्या वा, नक्षत्र, तिथी-

च्या योगावर जन्मलेली विषकन्या होय. दोन शुभग्रह आपल्या शत्रुगृहीं असून ते कन्येच्या जन्मलक्ष्मीं असतील तर तोही विषयोग झपाळा ॥ ४६ ॥

अथ स्त्रीरहिताचा विधिमाह-अस्त्रीकैरिति । अस्त्रीकैः स्त्रीरहितैर्विप्रादिभिः विप्रक्षत्रियविद्-  
शूद्रैः क्रमेण कुशहेमरौप्यरचिता ताम्री च भार्या धर्माय धार्या । अयमर्थः । विप्रेण कुशरचिता  
भार्या धर्माय धार्या क्षत्रियेण हेमरचिता वैश्येन रौप्यरचिता शूद्रेण ताम्री ताम्ररचिता भार्या धार्या ।  
कथंभूतैर्विप्रादिभिर्बुधैः स्वस्वधर्मनिरतैः वा इत्यथवा निखिलैः सर्वैर्विप्रादिभिः सुवर्णरचिता भार्या  
धार्या यतस्तया विना गृहस्थधर्मसाधनं न स्यात् । तथा चोक्तं । अपत्नीकैस्तु धर्मार्थं कौशी हैमी  
च राजती । ताम्री विप्रादिभिर्भार्या धार्या हैमी तथाऽखिलैरिति । अथ विषकन्यालक्षणमाह-मंदेति ।  
मंदारार्कदिने शन्यर्कभौमानामन्यतमस्य वारंऽबुपाग्निफणिभं शततारकाकृत्तिकाश्लेषाणामन्यतमं  
नक्षत्रं । भद्रातिथिर्द्वितीया सप्तमी द्वादशी । आसामन्यतमा चेत्स्यात्तदा विषयोगः स्यात् । इहो-  
द्भूताश्च योगे या कन्या जाता सा विषकन्यका । अथ योगांतरमाह-रिपुक्षेत्रगौ सौम्यौ तनुगौ  
लक्ष्मणौ चेत्स्याताम् ॥ ४६ ॥

टीकाार्थ-आतां स्त्री नसणान्या पुरुषांनां विधि सांगतो-स्त्रीशिवाय असणान्या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र  
ह्या चारही वर्गांतल्या पुरुषांनीं अनुक्रमानें दर्भ, सुवर्ण, रुपें आणि तांबें ह्यांची स्त्री तयार करून तिच्या योगानें स्वधर्मा-  
चरण करावें. ह्याचा अर्थ असा कीं, ब्राह्मणानें दर्भाची स्त्री करून ती धारण करावी आणि तिच्या योगानें जीं कामें खरो-  
खरची स्त्री असतांनां करावयाचीं तीं सर्वे धर्म कायें करावीत. तसेंच क्षत्रियानें सोन्याची स्त्री तयार करून सत्कर्म करा-  
वीत. वैश्यानें रुप्याची स्त्री तयार करून सत्कर्म करावीत. शूद्रानें तांब्याची स्त्री तयार करून सत्कर्म करावीत. ह्मणजे  
आपापल्या वर्णीला जें कर्म करावें ह्मणून शास्त्रांत सांगितलें आहे तें कर्म करण्या करितां तशी तशी सांगितलेली स्त्री तयार  
करून गळ्यांत धारण करावी. अथवा सर्वे वर्णीनां एकच प्रकारची ह्मणजे सोन्याची स्त्री करण्यास हरकत नाहीं. तशी स्त्री  
करावी कारण स्त्री नसेल तर गृहस्थ धर्माचें आचरण बरोबर होणार नाहीं. तेंच सांगितलें आहे कीं, पत्नी नसणान्या ब्राह्मणादि  
चार वर्णींनीं धर्माचें आचरण करण्या करितां अनुक्रमानें दर्भाची, सोन्याची, रुप्याची आणि तांब्याची स्त्री तयार करून  
धारण करावी अथवा चारही वर्णींनीं सोन्याची स्त्री तयार करून धारण करावी. आतां विष कन्येचें लक्षण सांगतो-शनि-  
वार, रविवार, मंगळवार ह्यांपैकीं एका वारावर आणि शततारका, कृत्तिका, आश्लेषा ह्यांपैकीं एका नक्षत्रावर, व द्वितीया,  
सप्तमी, द्वादशी ह्यांपैकीं एका तिथीवर जी कन्या उत्पन्न होते तिला विष कन्या असें ह्मणतात. कारण वर सांगितलेला वार,  
नक्षत्र आणि तिथि असेल तर त्याला विषयोग असें ह्मणतात, ह्मणून त्यावर जन्मलेली विष कन्या समजावी. अस्तां दुसरा  
योग सांगतो-दोन शुभ ग्रह आपल्या शत्रूचे घरीं असून ते ग्रह जर कन्येच्या जन्म लक्ष्मीं असतील तर तोही विष योग  
समजावा, त्यावर झालेली कन्याही विष कन्या समजावी ॥ ४६ ॥

विषकन्या योग व मूलादि नक्षत्रांचीं फळें.

एकः क्रूर इहोद्भवाऽप्यथ तनौ सौरी रविः पुत्रगो ।

धर्मस्थो धरणीसुतोऽयमपरो योगोऽपि तज्जा विषम् ॥

मूलाद्यत्रिपदोद्भवा श्वशुरमहंत्यत्रये तत्स्त्रियम् ।

ज्येष्ठांत्ये पतिपूर्वजं द्विपचतुर्थे देवरं हंति च ॥ ४७ ॥

श्लोकार्थ-आपल्या शत्रुगृहीं असणारा एक खलग्रह जन्मलक्ष्मीं असतां विषयोग होतो. जन्मलक्ष्मीं शनि,  
पंचमस्थानीं रवि, व नवमस्थानीं मंगळ, अशा योगावर जन्मणारी विषकन्या होय. मूल नक्षत्राच्या पहिल्या तीन  
चरणांवर जन्मणारी कन्या आपल्या श्वशुराचा नाश करिते. आश्लेषांच्या शेवटच्या तीन चरणांवरील कन्या सासूचा  
नाश करिते. ज्येष्ठांच्या चतुर्थ चरणावरील कन्या वडील दिराचा नाश करिते. विशाखांच्या चतुर्थ चरणावर जन्म-  
णारी दिराचा नाश करिते ॥ ४७ ॥

अथ योगांतरमाह-एकः क्रूर इति । एकः क्रूर रिपुक्षेत्रगः तनुगश्चेत्स्यादिभौ द्वौ योगाविहोद्भवा  
ऽपि विषकन्यका स्यात् । तनौ लग्ने सौरिः शनिः स्यात् रविः सूर्यः पुत्रगः पंचमगः स्यात् धरणी



सुतो भौमो धर्मस्थो नवमस्थो यदा स्यात्तदाऽयमपरो योगः स्यात् तज्जाऽपि कन्या विषं स्यात् । विषमिति । यथा विषस्वीकारान्मृत्युर्भवतीति फलं सूचितं तस्मात्परित्याज्येति भावः । अथ मूल-जादीनां फलमाह-मूलेति । मूलस्याऽऽद्यत्रिपदोद्भवा प्रथमचरणत्रये जाता कन्या श्वशुरं हंति मा-रयति । अष्टांत्यत्रयेऽहिराश्लेषा तस्यांत्यत्रयेऽत्यचरणत्रये जाता तत्स्त्रियं तस्य श्वशुरस्य स्त्रियं श्वश्रूं हंतीत्यर्थः । ज्येष्ठांत्ये ज्येष्ठायाश्चतुर्थचरणे जाता पतिपूर्वजं ज्येष्ठं हंति । द्विपचतुर्थे द्वौ पौ पती यस्य तद्विपं विशाखा तस्य चतुर्थचरणे जाता देवरं हंति । अर्थादन्यचरणजा शुभा ॥ ४७ ॥

टीका—आतां विषयोगाचा दुसरा प्रकार सांगतो—एक कूर ग्रह शत्रूच्या घरी राहणारा असेल आणि एक कूर ग्रह लमीं असेल तर हे दोन विषयोग होतात. त्या तशा योगांवर झालेली कन्या विष कन्या समजावी. तसेंच लमीं शनि असेल आणि रवि हा पंचमस्थानी असेल आणि धरणीपुत्र हा० मंगळ हा नवम स्थानी असेल तर हा दुसरा एक विष योग होतो, त्या योगावर झालेली कन्या विष कन्या होय. जसे विष घेतल्याने मरण येते तसे ती कन्या घेणारास मरण येते. आतां मूल इत्यादि नक्षत्रांवर जन्म झाल्याचे फळ सांगतो—मूल नक्षत्राच्या पहिल्या तीन चरणांवर उत्पन्न झालेली कन्या आपल्या श्वशुराला मारत्ये. अहि हा० आश्लेषा नक्षत्र त्याच्या शेवटल्या तीन चरणांवर ह्मणजे पहिला सोडून दुसरा, तिसरा व चवथा ह्या तीन चरणांवर झालेली कन्या असेल तर ती आपल्या सासूवेला मारत्ये. ज्येष्ठा नक्षत्राचे चवथ्या चरणावर झालेली कन्या आपल्या वडील दिराला मारत्ये, ज्याचे दोन पती आहेत हा० विशाखा नक्षत्र त्याचे चवथ्या चरणावर झालेली कन्या आपल्या दिराला मारत्ये. अर्थात् दुसऱ्या चरणांवर उत्पन्न झालेली कन्या शुभकारक आहे ॥ ४७ ॥

### विषपुत्रयोग व सहामासांत निषिद्ध.

एवं ना युवतेरभाव इह नो दोषो नुरेतत्फलम् ।

मौज्यूर्ध्वं न वदन्ति केचिदपि पैत्र्याद्ये फलं मूलवत् ॥

नोद्वाहौ सहजातयोऽप्युतुषु नोद्वाहाद्भूतं नोपुम् ।

द्वाहात्क्युद्ग्रहं न मंगलविधेर्मुंडं त्रिशुभ्येषु न ॥ ४८ ॥

श्लोकार्थ—मागच्या श्लोकांत सांगितलेल्या मूळादि नक्षत्रांच्या चरणावर जन्मलेला पुत्र, स्त्रियेच्या श्वशुरा-दिकांचा नाश करितो. ज्यांचा नाश सांगितला तीं श्वशुरादि नसतां दोष नाही. हे विषयोगाचे फळ पुरुषाला व्रतबंधा नंतर नाही असें कित्येक ह्मणतात. मगांच्या प्रथम चरणावर मूल नक्षत्रासारखें फळ आहे असें कोणी ह्मणतात. सख्ख्या भावंडांचे विवाह, विवाहानंतर व्रतबंध, पुत्राच्या विवाहानंतर कन्येचा विवाह, मंगल कार्यानंतर चौल व उपनयन आणि तीन शुभकार्ये सहा महिन्यांत करूं नयेत ॥ ४८ ॥

एवमुक्तनक्षत्रचरणजातो ना नरो युवतेः स्त्रियः श्वशुरादिन् हंति । तथा च गर्गः । मूलजाश्व-शुरं हंति सार्पजा च तदंगनां । ज्येष्ठजा तु पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवत इति ॥ तथा च कश्यपपटले । मूलांत्यपादजौ श्रेष्ठौ तथाऽऽश्लेषाद्यपादजौ । द्वीशांत्यपादजौ दुष्टौ तथा ज्येष्ठांत्यपादजाविति ॥ अस्यापवादः । अभाव इह नो दोष इति । अभावे तेषां श्वशुरादीनामभावे सति इह मूलादिजोद्ग्रहने नो दोषः । केचिद्वाचार्या नूनरस्य मौज्यूर्ध्वं मौजीबंधनानंतरं तत्फलं न वदन्ति । उक्तं च नारदेन मूलव्यालभवो दोषो विवाहे य उदाहृतः । स मौजीबंधनादूर्ध्वं पुंसां नैवेति केचनेति ॥ पैत्र्याद्येऽपि मघाया आद्यचरणेऽपि मूलवत्फलं स्यादिति केचिद्वदन्ति । तथा चोक्तं नारदेन । पैत्र्यगंडोद्भवा कन्या श्वशुरादी च केचनेति ॥ अथ ऋतुत्रयमध्ये किं किं न कर्तव्यमित्याह-नोद्वाहाविति । सह-जातयोरेकोदरसमुत्पन्नयोः पुत्रयोः कन्ययोः कन्यापुत्रयोर्वा उद्वाहौ विवाहौ ज्युतुषु त्रयश्च ते ऋतवश्च ज्युतवः तेषु न कार्यो षणमासाभ्यंतरे न कार्यावित्यर्थः । उक्तं च नारदेन । विवाहश्चैकजन्यानां ष-णमासाभ्यंतरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेदिति ॥ नोद्वाहाद्भूतमिति-उद्वाहात्क्यु-तुषु व्रतं मौजी न कार्यो । तथा चोक्तं नारदेन । पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रत-मुद्वाहान्मंगले नान्यमंगलमिति ॥ नो पुमुद्वाहात्क्युद्ग्रहणमिति । पुमुद्वाहात्पुरुषविवाहात् ज्युतुषु क्युद्ग्रहणं कन्याविवाहो नो कार्यः । तथा च कात्यायनः । पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रय इति । न मंगलविधेर्मुंडमिति मंगलविधेर्विवाहात् ज्युतुषु मुंडनं चौलं व्रतं वा न कार्यं । अत्रकात्यायनः ।

कुले ऋतुत्रयादर्वाक् मंडनान्न तु मुंडनमिति ॥ त्रिशुभेषु नेति । एषु त्र्युतुषु त्रिशुभी न कार्या । त्रयाणां शुभानां समाहारस्त्रिशुभी मंगलत्रयमिति यावत् । न कुर्यान्मंगलत्रयमिति वचनात् ॥ ४८ ॥

टीका—पूर्वी जे नक्षत्र चरण कन्येच्या जन्माला अशुभ सांगितले ते चरण पुरुषालाही अशुभ जाणावे. ह्मणजे पुरुष हा जर त्या त्या नक्षत्रावर झालेला पति असेल तर तोही आपल्या सासरा, सासू ह्यांना मारतो. तेंच गर्ग सांगत आहे कीं, मूल नक्षत्रावर जन्मलेली कन्या सासऱ्याला मारते. आश्लेषावर झालेली कन्या सासूला मारते. ज्येष्ठा नक्षत्रावर झालेली कन्या वडील दीराला मारते. विशाखा नक्षत्रावर झालेली कन्या दीराला मारते, तेंच कश्यप पटलांत सांगितलें आहे कीं, मूल नक्षत्राचे शेवटल्या चरणावर झालेले पुरुष व कन्या हे दोनही श्रेष्ठ आहेत. आणि आश्लेषाचे पहिल्या चरणावर झालेले पुरुष आणि कन्या हे दोनही श्रेष्ठ आहेत. विशाखा नक्षत्राचे शेवटल्या चरणावर झालेले आणि ज्येष्ठा नक्षत्राचे शेवटल्या चरणावर झालेले स्त्री व पुरुष हे फारच दुष्ट आहेत. ह्याचा अपवाद सांगतो—जर सासरा, सासू आणि वडील दीर व दीर हे नसतील तर मग वर सांगितलेल्या नक्षत्रांवर जन्म झाल्यास कांहीं हरकत नाही. कित्येक आचार्यांचें असें मत आहे कीं, पुरुषाचा उपनयन संस्कार झाल्यावर दुसरा जन्म होतो, ह्यास्तव नक्षत्रांचा दोष नाही असें आहे. विवाह केल्यानंतर तीन ऋतु ह्म० सहा महिनेपर्यंत उपनयन संस्कार करूं नये. तेंच नारदानें सांगितलें आहे कीं, पुत्राचा विवाह केल्यानंतर तीन ऋतु ह्म० सहा महिनेपर्यंत कन्येचा विवाह करूं नये. विवाहानंतर पुत्राचे उपनयन करूं नये. मंगलामध्ये दुसरे मंगल करूं नये. पुरुषाचा विवाह केल्यावर तीन ऋतु ह्म० सहा महिनेपर्यंत कन्येचा विवाह करूं नये. तेंच कात्यायनानें सांगितलें आहे कीं, पुत्राचा विवाह केल्यावर सहा महिनेपर्यंत कन्येचा विवाह करूं नये. मंगल विधि केल्यावर तीन ऋतु ह्म० सहा महिनेपर्यंत मुंडन ह्म० चालू अथवा मुंज करूं नये. ह्याविषयीं कात्यायन सांगतो कीं, कुलामध्ये मंडन ह्मणजे विवाह केल्यावर सहा महिन्यांचे आंत मुंडन ह्म० चालू, व मुंज करूं नये. तीन ऋतूमध्ये तीन मंगलें करूं नयेत. ह्मणजे, १ विवाह केल्यावर मौंजी बंधन, २ पुत्राच्या विवाहानंतर कन्येचा विवाह, ३ मंगल कार्यानंतर चालू व मुंज हीं तीन शुभ कार्यें सहा महिन्यांत करूं नयेत ॥ ४८ ॥

अनेक शास्त्रार्थ.

नो ज्येष्ठाशुक्रकालरुद्रत ऋते कात्यायनो मुंडनम् ।

चौलं ग्राह न मेखलेत्युभयतः कार्या विवाहादियम् ॥

भेदेऽब्दस्य च संकटे वितनुयात्पूर्वोदितं मंगलम् ।

वेदाहान्तरिते दिनव्यवहिते नद्या नगेनापि वा ॥ ४९ ॥

श्लोकार्थ—विवाहादि ज्येष्ठमंगला नंतर सहा महिन्यांच्या आंत लघु मंगल करूं नये. ( चौल, केशांत, सीमंतोन्नयन, विवाह, व्रतबंध हीं ५ ज्येष्ठमंगलें, व इतर सर्व लघु मंगलें होत. ) गर्भाधानादि लघुमंगलांचा काल नियमित आहे ह्मणून तीं करावीं. कात्यायनऋषि चौलास मात्र मुंडन ह्मणतात, व्रतबंधास मुंडन ह्मणत नाहीत. ह्मणून विवाहापूर्वी व नंतरही व्रतबंध करावा. संकटसमयीं संवत्सर बदलल्यानंतर किंवा चार दिवस मध्ये सोडून अथवा एक दिवस मध्ये सोडून अथवा एक दिवशींच पण नदी अगर पर्वत यांचें अंतर असतां मंगल कार्यें करावीं ॥ ४९ ॥

नो ज्येष्ठाशुक्रविति । ज्येष्ठात् मंगलात् विवाहादेर्युतुषु लघुमंगलं नो कुर्यात् । यद्वहिः शाला-यामुक्तं तज्ज्येष्ठमंगलमन्यलघुमंगलं । ज्येष्ठलघुलक्षणं सारसमुच्ये । चूडाकेशांतसीमंतविवाहोपनयान्बुधाः । गुरुमंगलमित्याहुस्तदन्यलघुमंगलमिति ॥ तन्न कार्यमित्यर्थः । कस्मादते कालरुद्रतऋते कालेन रुद्रं गर्भाधानपुंसवनादि तस्मादते तेन विनेत्यर्थः । तथा च कात्यायनः । मातृयज्ञक्रियापूर्वं ज्येष्ठं कृत्वा तु मंगलं । ऋतुत्रयं पुनर्यावन्न कुर्याल्लघुमंगलं ॥ लघु वा गुरु वा कार्यं कार्यं नैमित्तिकं यदीति ॥ लघुगुरुमंगलयोर्भिन्नकर्तृत्वे न दोषः । कात्यायनो मुनिरिति ग्राह-इतीति किं व्रतं मुंडनं न चौलमेव मुंडनं मौंजीविवाहादुभयतः कार्येति । तथा च तद्वाक्यं । मुंडनं चौलमित्युक्तं व्रताद्वाहौ तु मंगलं । चौलं मुंडनमेवोक्तं व्रजेवद्वरणात्परं ॥ मौंजी बोभयतः कार्या यतो मौंजी न मुंडनमिति । अथ संकटे प्रवृत्तिमाह-भेदेऽब्दस्येति । संकटे देशकालभयादावब्दस्य संवत्सरस्य

भेदे पूर्वोदितं मंगलं वितनुयात् विस्तारयेत्कुर्यादित्यर्थः । तथा चोक्तं संहितासारावल्यां । फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदाद्वदस्य कुर्वीत न ऋतुत्रयलंघनमिति ॥ अथवा वेदाहान्तरिते चतुर्दिनांतरिते काले मंगलं वितनुयात् । तथा च स्मृतिसारावल्यां । पुत्रीपरिण्यादुध्वं यावाहिन-  
चतुष्टयं । पुष्यंतरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरय इति ॥ अथवा दिनव्यवहिते एकदिनांतरिते काले मंगलं कुर्वीत तथा चोक्तं । एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वासरे नरः । विवाहं नैव कुर्वीत मंडनोपरि मुंडनमिति ॥ अथवा एकाहेऽपि नद्या नगेन पर्वतेनांतरिते देशे मंगलं वितनुयात् । ज्योतिर्विवरणे । एकोदरयोर्वरयोरेकदिनोद्वाहतो भवेन्नाशः । नद्यंतर एकदिने केऽप्याहुः संकटे च शुभमिति ॥ शा-  
ङ्गधरोऽपि । नद्यंतरेऽपि शुभं पृथक् शैलस्य रोधत इति ॥ ४९ ॥

**टीकाथ—**विवाह इत्यादि ज्येष्ठ मंगलानंतर सहामहिने पर्यंत लघु ह्यणजे लहान मंगलकार्ये करूं नये. जें शाळेचे बाहेर करावयास सांगितलें तें ज्येष्ठ मंगल आणि बाकीचें लघु मंगल समजावें. ज्येष्ठ आणि लघु ह्यांचें लक्षण सारसमुच्चय ग्रंथांत सांगितलें आहे तें असें कीं, चौल, केशांत संस्कार, सीमंतोन्नयन, विवाह, उपनयन, ह्य० मुंज ह्या पांच कार्याला गुरु मंगल ह्य. ज्येष्ठ मंगल असें ह्यणतात. त्याहून दुसरें जें मंगल त्याला लघु मंगल असें ह्यणतात. तसेंच लघुमंगल ज्येष्ठमंगला-  
नंतर सहामहिने पर्यंत करूं नये. मात्र जें कार्य अमुक काळीं करावें ह्यणून सांगितलें आहे, अर्थात ज्या कार्याला काळाचा प्रतिबंध आहे त्यां शिवाय बाकीचीं लघुमंगलें करूं नयेत. तेव्हां काळाचा प्रतिबंध असलेलीं ह्यणजे गर्भाधान, पुंसवन इत्यादि लघुमंगलें करावीत. तेंच कात्यायन सांगतो कीं, मातृयज्ञ क्रियापूर्वक जें ज्येष्ठ मंगल केलें असेल तसें केल्यावर मग तनि ऋतु ह्य० सहामहिने पर्यंत पुनः लघुमंगल करूं नये, आतां गुरु अथवा लघु कसेंही मंगल असो पण तें जर नैमित्तिक असेल तर करण्यास हरकत नाही. आतां लघु किंवा गुरु असें मंगल कार्ये करणारे निरनिराळे असतील तर सहा महि-  
न्याचे आंत करण्यास दोष नाही. कात्यायनमुनि असें सांगतो कीं, मुंडनशब्दानें मुंज न ध्यावी परंतु चौल मात्र ध्यावें ह्यणून विवाहाचे पूर्वी आणि विवाहाचे नंतर मौंजी करण्यास हरकत नाही असें आहे. तसेंच वाक्य आहे कीं, मुंडनशब्दानें चौलच ध्यावें परंतु व्रत ह्यणजे मुंज आणि विवाह हीं दोन मंगलें आहेत. फक्त चौल कर्म हेंच मुंडन आहे, ह्यणून विवाहानंतर तेंच मात्र वज्र्य करावें आणि मौंजी बंधनाचें कार्य, विवाहाचे पूर्वी आणि विवाहानंतरही करावें. कारण मौंजीबंधन हें मुंडन नाही. आतां संकट प्रसंग आला असतां सांगतो कीं, देशाचे, कालाचे भयरूपी संकटामध्ये वर्षाचा भेद करून ह्यणजे वर्ष बदल्यावर पूर्वी सांगितलेलीं मंगलें सहामहिन्यांमध्येही करावीत. तेंच संहिता सारावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, जर फाल्गुनमासी पुत्राचा विवाह केला तर चैत्रमासी उपनयन ह्य० मुंज करावी, कारण वर्षाचा भेद झाला ह्यणजे वर्ष बदलेलें आहे, परंतु वर्ष न बदललें तर सहामहिन्यांत करूं नये. तसेंच स्मृतिसारावलि ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कन्येचा विवाह झाल्यावर चार दिवस होईपर्यंत दुसरें मंगलकार्य करूं नये. असें विद्वान लोक बोलतात, अर्थात चार दिवसांनीं करावें असें सिद्ध होतें किंवा एका दिवसाच्या अंतरानेही मंगलकार्य करावें. तेंच सांगितलें आहे कीं, एका उदरापासून उत्पन्न झालेल्या बहुतांशा विवाह एकाच दिवशीं करूं नये. मंडन केल्यावर ह्यणजे लग्न केल्यावर मुंडन करूं नये, हें खरें आहे, परंतु एकाच दिवशीं नदी, पर्वत हीं मध्ये असतील तर विवाहादि मंगल करण्यास हरकत नाही. ज्योतिर्विवरण ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, एका उदरापासून उत्पन्न झालेल्या वरांचा जर एकाच दिवशीं विवाह केला तर त्यापासून नाश होतो. नदीचे अंतर असेल तर एका दिवशींही संकटकाळीं दोघां भावंडांचें विवाह करण्यामध्ये शुभ आहे. शाङ्गधरही असें सांगतो कीं, नदीचे अंतर असतां अथवा पर्वताचें अंतर असतां एकाच दिवशीं दोघां भावांचीं मंगलकार्ये करणें प्रशस्त आहे ॥ ४९ ॥

एकाहेऽपि जनाश्रयांतर इहेदं तारतम्याद्भुयैः ।

योज्यं नो यमयोनिषिद्धमनयोरेकत्र कार्यं जगुः ॥

नैकस्मै दुहितृद्वयं सहजयोर्नैकोद्भवे कन्यके ।

दद्यादुद्ग्रहं मिथो न तनुयात्कुर्यादसंपचदः ॥ ५० ॥

**श्लोकार्थ—**एका दिवशींही निरनिराळ्या मंडपांत अनेक कार्ये करावीं. येथपर्यंत जे वेगवेगळे प्रकार सांगितले ते चतुरांनीं प्रसंग व संकट पाहून अनुक्रमानें योजावे. मागील निषेध जुवळ्यांच्या कार्याला नाही. त्यांचा कार्ये एकदमच करावीं, एका वराला सख्या बहिणी अशा दोन कन्या देऊं नयेत. सख्या भावाला सख्या बहिणी देऊं नयेत. बटुलाचे विवाह करूं नयेत. अन्य बटु वर मिळत नाही अशा संकटां; घरील तीनही करावीं ॥ ५० ॥

एकाहेपीति । अथवा एकाहेऽपि जनाश्रयांतरे मंडपांतरे मंगलं वितनुयात् । मंडपोऽस्त्री जना-  
श्रय इत्यमरः । उक्तं च ज्योतिर्विवरणे । न प्रतिषिद्धं लग्नं संप्राप्ते संकटे महाति । एकोदरसंभवयो-  
रेकाहे मित्रमंडपे काल इति ॥ अथैषां पक्षाणां निर्णयमाह-इहेदमिति । इहास्मिन् विवाहादिविषये  
इदं भेदेऽवस्येत्यादुक्तं बुधैस्तारतम्याद्योज्यं संकटानुरूपं योज्यमित्यर्थः । अथ यमलयोर्विशेषमाह-  
नो यमयोरिति । यमयोर्यमलयोरिदं नो निषेद्धं । अनयोर्यमलयोर्मंगलमेकत्रैकवत्सर एकवार  
एकमंडपे कार्यमिति मुनयो जगुः । उक्तं च । एकस्मिन् घत्सरे चैव वासरे मंडपे तथा । कर्तव्यं  
मंगलं स्वस्वोभ्रात्रोर्यमलजातयोरिति ॥ स्त्रियादीनां स्त्रीणां पुरुषाणां वा यमलजातानामप्येवं तुल्य-  
न्यायत्वात् । यमलयोर्मध्ये एकस्याः स्त्रियामेकस्मिन् पुरुषे सति स्त्रीविवाहं समाप्य पुरुषविवाहं  
कुर्यात् । स्त्रीपुरुषयोः सहविवाहकरणस्याघटमानत्वात् । अथ प्रत्युद्वाहनिषेधमाह-नैकस्मै इति ।  
एकस्मै वराय दुहितृद्वयमेकोद्भवकन्यकाद्वयं न दद्यात् । सहजयारेकोदरसंभवयोभ्रात्रोरेकोद्भवे  
कन्यके न दद्यात् । तथा मिथः परस्परमुद्बहनं न तनुयात् । अत्रापि संकटे प्रवृत्तिमाह-कुर्या-  
दिति । अदो नैकस्मै इत्यादुक्तमकर्तव्यमसंपदि अन्यवधूवरालाभे सति कुर्यात् । तथा च  
नारदः । प्रत्युद्वाहो नैव कार्या नैकस्मै दुहितृद्वयं । न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यक  
इत्यादि ॥ ५० ॥

टीकाथ—अथवा एकादिवशीही पण मंडप मात्र निराळ्या असावा ह्याणजे दोन सख्या भावांचाही विवाह करावा. हेच  
ज्योतिर्विवरण ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, मोठे संकट प्राप्त झालें असतां; तशा वेळेस निषिद्ध लग्न पाहूं नये. तर दोघां  
सख्या भावांचाही विवाह एकाच दिवशीं पण निराळ्या मंडपांत करावा. आतां ह्या पक्षांचा निर्णय सांगतो. ह्या विवाहामध्ये  
वर्ष भेद झाल्यावर दोन दोन, तीन तीन मंगलं करावीत इत्यादि जो प्रकार सांगितला आहे तो विद्वानांनीं तारतम्य पाहून  
योजावा. ह्याणजे संकट कसें काय आहे तें पाहून तो वरचा प्रकार योजीत जावा, आतां यमलाविषयीं ह्याणजे जुळ्याविषयीं  
विशेष प्रकार सांगतो-४९ व्या हा श्लोकांतील प्रकार आवळ्या जावळ्या पुत्र कन्येविषयीं नाहीं ह्या दोघां आवळ्या जावळ्या  
चें मंगलकार्य एकाच ठिकाणीं, एकाच वर्षीत, एकाच वारावर, एकाच मंडपांत करावें असें मुनी सांगतात. असें सांगितलें  
आहे कीं, एकावर्षीं एका दिवशीं एका मंडपांत आवळे जावळे झालेल्या दोन कन्यांचे आणि दोन भावांचे मंगल कार्य करावें  
यमलामध्ये झालेल्या कन्या असोत अथवा पुत्र असोत त्यांना हाच न्याय लागू आहे. आतां आवळ्या जावळ्या मध्ये एक स्त्री  
आणि एक पुरुष असें असेल तर एका स्त्रीचा विवाह पुरा केल्या नंतर पुरुषाचा विवाह करावा. कारण स्त्री आणि पुरुष ह्यांचा बरोबर  
विवाह करणें अशक्य आहे. आतां अदलाबदलीनें विवाह करण्याचा निषेध सांगतो-एका वराला एकापासून झालेल्या दोन  
कन्या देऊं नयेत. सख्या दोन भावांना सख्या दोन बहिणी देऊं नयेत. तसेंच परस्पर लग्नें करूं नयेत. ह्याणजे आपली कन्या  
देऊन सून करून घेणें हेंही करूं नये. परंतु अति संकट असेल तर ह्या विषयीं ही प्रवृत्ति सांगतो-वर करूं नये ह्याणून  
जो प्रकार सांगितला तो सर्व प्रकार संकटकाळीं ह्याणजे दुसरी कन्या व वर मिळत नसेल तर करावा. तेंच नारद सांगत  
आहे कीं, कन्या देऊन कन्या करून घेणें हा प्रकार करूं नये, तसेंच एका वराला दोन कन्या देऊं नयेत. दोन सख्या भा-  
वांचा दोन सख्या बहिणी देऊं नयेत ॥ ५० ॥

### प्रतिकूलनिर्णय.

नोद्वाहं सति निश्चयेऽपि जगदुः पित्रोः सपित्रोः स्त्रियाः ।

सूनोभ्रातुरनूढितस्वसुरसूत्रांतौ पितृव्यस्य च ॥

अन्ये स्वान्वयजात्ययेऽपि जनकांवास्त्रीमुतान्यात्ययेऽ- ।

व्दार्धाधार्धदलांतरे विदधते हेरंबशांत्या कचित् ॥ ५१ ॥

श्लोकार्थ—विवाह्याचा निश्चय केल्यानंतरही पिता, माता, पितामह, पितामही, मातामह, मातामही,  
स्वस्त्री, स्वपुत्र, भ्राता, अविवाहितभगिनी व पितृव्य ह्यांपैकी कोणी मरण पावेल तर तो विवाह करूं नये.  
निश्चयानंतर स्वकुळांतील कोणतेंही मनुष्य मरण पावलें असतां तो विवाह करूं नये, असें कित्येक पंडित ह्याण  
तात. वधूचा किंवा वराचा पिता मृत झाल्यास १ वर्षानंतर, माता मृत झाल्यास ६ महिन्यांनंतर, स्वस्त्री मृत

ज्ञात्यास ३ महिन्यान्तर, पुत्र मृत ज्ञात्यास दीड महिन्यान्तर, आणि स्वकुळांतील अन्य कोणी मृत ज्ञात्यास २३ दिवसांनंतर गणेशशांति करून कित्येक पंडित विवाह करितात ॥ ५१ ॥

अथ प्रतिकूलनिर्णयमाह-नोद्वाहमिति । निश्चयेऽपि सति बुधा उद्वाहं न जगदुःकस्यां सत्यां पित्रोरसूक्तांतौ सत्यां माता च पिता च पितरौ तयोरसूनां प्राणानामुक्तांतिरुत्क्रमणं तस्यां सत्या-मित्यर्थः । कथंभूतयोः पित्रोः पितरौ च पितरौ च पितरः मातुः पितरौ पितुः पितरावित्यर्थः तैः सहवर्तमानौ सपितरौ तयोः सपित्रोः । पुनः कस्यां सत्यां स्त्रिया असूक्तांतौ सत्यां इदं द्वितीयविवाहादौ ज्ञेयं । एवं सूनोः पुत्रस्य भ्रातुः सहजस्य अनुदितस्वसुरपरिणीतभगिन्याः पितृव्यस्य पितृभ्रातुः असूक्तांतौ सत्यां । एतदुक्तं भवति पित्रादीनामुक्तानां मध्येऽन्यतमे मृते सति विवाहं न कुर्यादित्यर्थः । तथा वृद्धशौनकः वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रतिकूलं चेन्महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ अन्यच्च । पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही ॥ पितृव्यः स्त्री सुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरेव विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतं । अन्यैरपि विपन्नैश्च केचिदूचुर्न तद्भवेदिति ॥ अथान्वेषां मतमाह-अन्य इति । अन्ये बुधाः स्वान्वयजात्ययेऽपि स्वकुलजातमर्त्यनाशेऽपि उद्ग्रहणं न विदधुः । तथा च भृगुः । वाग्दानानंतरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदोद्वाहो नैव कार्यः स्वपक्षक्षयदोषत इति ॥ अथ संकटे प्रवृत्तिमाह-जनकांबास्त्रीति । जनकश्च अंबा च स्त्री च सुतश्च अन्यश्च । अन्यः कुलजः । प्रतिकूलाधिकारी एषामर्त्ययो नाशः मरणमिति यावत् । तस्मिन्सति अब्दार्धार्धदलांतरे हेरंबशांत्या गणेशशांत्या क्वचित्संकटे विदधते बुधा इत्यध्याहारः । एतदुक्तं भवति । वरस्य वध्वा वा पितृनाशेऽब्दांतरे वर्षांतरे मातृनाशेऽर्धांतरे षणमासांतरे स्त्रीनाशेऽर्धांतरे त्रिमासांतरे । एतद्वितीयादिविवाहे ज्ञेयं । तथा पुत्रनाशेऽर्धांतरे सार्धमासांतरेऽन्यनाशे पितृमातृस्त्रीत्यादिभ्योऽन्यस्य कुलजस्य नाशे दलांतरे सार्धमासस्यार्धांतरे त्रयोविंशतिदिनांतरे विदधत इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

टीका—आतां प्रतिकूलाचा निर्णय सांगतो—विवाहाचा निश्चय केल्यावरही जर कदाचित् माता आणि पिता ह्यांचे प्राणोत्क्रमण झाले ह्मणजे माता व पिता मरण पावले. नुसते आई व बाप नाही तर त्यांचेही आईबाप ह्मणजे दोहों कडूनही आज्ञा, आज्ञा ह्मणजे बापाचा बाप व बापाची आई. आईचा बाप व आईची आई इतके मरण पावतील तर विवाह करू नये. स्त्री मरण पावेल तर; हे ह्मणणे दुष्टाच्या लग्नाचे वेळेस संभवतें ह्मणून तसें समजावें. अशाच शीतीने पुत्राचे मरण झालें असतां, भावाचे मरण झालें असतां, लग्न न झालेल्या बहिणीचे मरण झालें असतां, काकाचे मरण झालें असतां विवाह करू नये. ह्यांचा तात्पर्यार्थ असा कीं, बापापासून जेवढे सांगितले आहेत, त्यांपैकी कोणी एखादा जरी मरण पावेल तर विवाह करू नये. हेच वृद्धशौनक सांगतात कीं, वर आणि वधू ह्यांचा बाप, आई, काका, भाऊ आणि बहिण ह्यांपैकी कोणी जर मरण पावेल तर तें प्रतिकूल झालें असें समजावें. तें प्रतिकूल महाविघ्नकारक समजावें. दुसरे असें कीं, बाप, बापाचा बाप, आई, बापाची आई, काका, स्त्री, पुत्र, भाऊ, लग्न न झालेली बहिण. इतके मरण पावले असतां प्रतिकूल होतें असें विद्वानांनीं सांगितले आहे. ह्या शिवाय दुसरे मरण पावले असतां प्रतिकूल होत नाही, असें कित्येकांचें मत आहे. आतां दुसऱ्यांचें मत सांगतो. दुसरे विद्वान् लोक असें ह्मणतात कीं, आपल्या कुळांत झालेला कोणी जरी मरण पावेल तरी विवाह करू नये. तेंच भृगु सांगतो कीं, वाग्दान केल्यावर जर दोन्ही कुळांत ह्मणजे वर आणि वधू ह्या दोन कुळांत कोणी एकादा मरण पावेल तर विवाह करू नये. कारण कीं जर केला तर आपल्या कुलाचा क्षय होण्याचा दोष त्यामध्ये आहे. आतां संकटकाळीं विवाह करावा अशा विषयीं प्रवृत्ति सांगतो—बाप, आई, स्त्री, पुत्र, दुसरा कोणी कुळांतील ह्यां पैकीं एखादा मरण पावेल तर अनुक्रमानें वर्ष, सहामाहिने, तीन माहिने, दीडमाहिना, २३ दिवस इतके झाल्यावर लग्न करावें ह्मणजे बाप मेल्यास एकवर्ष मेल्यावर, आई मेल्यास सहा महिन्यां, स्त्री मेल्यास तीन महिन्यांनीं पुत्र मेल्यास दीड महिन्यांनीं, दुसरा कोणी कुळांतील मेला तर २३ दिवसांनीं विवाह करावा. परंतु विवाह करण्याचे वेळीं गणेश शांति करून कदाचित् फार संकट असेल तर विवाह करण्याविषयीं विद्वानांची संमति आहे. हा सर्व प्रकार वर आणि वधू ह्या दोहोंपैकी कोणाचाही बाप, आई, स्त्री ह्मणजे दुसरा विवाह करावयाचा असेल तर समजावें, बाकीचे सर्व स्पष्टच आहे ॥ ५१ ॥

भ्रातृश्चाऽऽत्मजवद्भयेऽतिसमये पित्रोर्मृतेः संशये ।

नान्येषां प्रतिकूलमामपिविरक्ताराद्रतानामपि ॥

आ तुर्यान्मृतनृक्रियानभिभवे नादीमुखं नाऽऽचरेत् ।

नो कुर्याज्ज्वरितस्य मंगलमतिव्याध्युद्भवे निश्चयम् ॥ ५२ ॥

श्लोकार्थ—निश्चयानंतर भ्राता मृत झाल्यास पुत्रा प्रमाणेच ह्मणजे दीड महिन्यानंतर विवाह करावा. दुर्भिक्ष, राजक्रांति इत्यादि भय असतां, अथवा विवाहाला अतिकाल झाला असतां, अथवा माता किंवा पिता मरण पावण्याचा संशय असतां, अन्य कोणी मृत होईल तर त्याचें प्रतिकूल होत नाही. तसेंच दीर्घरोगी, गृह पुत्रादिकां-  
विषयीं विरक्त व फार दूर देशीं गेलेला ह्यांचेही प्रतिकूल होत नाही. स्वगोत्रांत चतुर्थपुरुषपर्यंत कोणी मृत झालेल्या मनुष्याची क्रिया झाली नसेल तर नांदीश्राद्ध करूं नये. ज्वरिताचें ह्मणजे रोगी मनुष्याचें मंगल कार्य करूं नये. स्वगोत्रांत कोणालाही अति व्याधि उत्पन्न झाला असतां विवाहाचा निश्चय करूं नये ॥ ५२ ॥

अन्यमध्ये भ्रातुर्विशेषमाह—भ्रातुश्चाऽऽत्मजवदिति । भ्रातुर्नाशे पुत्रवत् पुत्रनाशोक्तवज्ज्ञेयं सार्द्ध-  
मासांतरे कर्तव्यमित्यर्थः । तथा च स्मृतिसारावल्यां । पितरब्दभिहाशौचं तदर्थं मातुरेव च । मास-  
त्रयं तु भार्यायास्तदर्थं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्येषां च सपिंडानामाशौचं माससंमितं ॥ तदा तु शांतिकं  
कृत्वा ततो लग्नं विधीयत इति ॥ स्मृत्यंतरेऽप्युक्तं । संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शां-  
तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥ अकृत्वा शांतिकं यस्तु निषेधे सति दारुणे । प्रकरोति  
शुभं गर्वात् विघ्नस्तस्य पदे पद इति ॥ ज्योतिःप्रकाशे । प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासमंतरात्  
। शांतिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत्पुनः ॥ इत्येतत्प्रौढायां कन्यायां पित्रोर्मरणेऽपि ज्ञेयं ।  
प्रतिकूलेऽपि प्रतिकूलाभावमाह—भय इत्यादि । भये दुर्भिक्षराजभयेऽतिसमयेऽतिकाले पित्रो-  
र्मातापित्रोर्भूतेः संशये सति अन्येषां मातापितृभ्यामन्येषां मृतानां प्रतिकूलं नास्ति । तथा चोक्तं  
ज्योतिःसागरे । दुर्भिक्षे राष्ट्रभंगे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूलं प्रती-  
क्षत इति ॥ विशेषांतरमाह—आमयिविरक्ताराद्रतानामपि प्रतिकूलं नास्ति । आमयी रोगी दी-  
र्घरोगीति यावत् । विरक्तो गृहादिषूदासीनः । आराद्रतो दूरगतो देशांतरगत इति यावत् । आ-  
राद्रसमीपयोरित्यमरः । एषामपि मृतानां प्रतिकूलं नास्ति । तथा चोक्तं स्मृत्यंतरे । दीर्घरो-  
गाभिभूतस्य दूरदेशे स्थितस्य च । उदासवर्तिनश्चैव प्रतिकूलं न विद्यत इति ॥ अथान्यानपि  
शास्त्रार्थानाह—आ तुर्यादिति । तुर्यः चतुर्थः पुरुषः मूलपुरुषाच्चतुर्थ इत्यर्थः । तं मर्यादीकृत्य मृतस्य  
नुः नरस्य क्रियाया अनभिभवेऽभावे सति कवित्कारणांतरात् क्रियायामकृतायां नांदीमुखं नाऽऽ-  
चरेत् । एतत्स्वगोत्रविषयं । तथा च मेधातिथिः । प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियां । आ चतुर्थ्यं  
ततः पुंसि पंचमे तु शुभं भवेदिति ॥ नो कुर्यादिति । ज्वरितस्य मंगलं नो कुर्यात् । तथा च गर्गः ।  
ज्वरस्योत्पादनं यस्य शुभं तस्य न कारयेत् । दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्म समाचरेदिति ।  
अतीति । अतिव्याध्युद्भवे कस्यचित्कुलजस्य । शरीरेऽतिद्वारुणज्वरोत्पत्तौ निश्चयं नो कुर्यात्  
प्रतिकूलमित्या । रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामय इत्यादि ॥ वाग्भटे ज्वरपर्यायनामानि  
तथा च गर्गः । केचिदूचुर्गृहस्थस्य कस्यचिद्द्वारुणो ज्वरः । तावन्मंगलकार्यं च न कार्यं निश्चितं  
बुधैरिति ॥ ५२ ॥

टीकार्थ—दुसऱ्यामध्ये भावा विषयीं विशेष सांगतों—तो असा कीं, भाऊ मरण पावला असतां पुत्रा प्रमाणें  
ह्मणजे पुत्र मेला असतांनां जसा दीड महिना सोडावयाचा तसाच भाऊ मेला असतां दीड महिना झाल्यावर  
विवाह करावा. तसेंच स्मृतिसारावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, बाप मेला असतां एक वर्ष पर्यंत आशौच आहे.  
आईला त्याचें अर्थ ह्मणजे सहा महिने आशौच आहे. स्त्रीचें तीन महिने पर्यंत आशौच आहे. भाऊ व पुत्र ह्यांचें  
दीड महिना पर्यंत आशौच आहे. दुसरे जे सपिंड असतील त्याचें एक महिना पर्यंत आशौच आहे. तथापि संकट  
काळ असेल तर गणेश इत्यादिक शांति करून विवाह करावा. दुसऱ्या स्मृतींतही असे सांगितलें आहे कीं, फार  
संकटकाळ आला असतां ह्मणजे कन्येच्या लग्नाचा अतिकाल वगैरे संकट असेल तर याज्ञवल्क्य मुनीनीं सांगि-  
तलेली गणेश शांति करून शुभ ह्मणजे विवाह करावा. परंतु जो गर्वाभे गणेश शांति वगैरे न करतां मंगल  
कार्य करितो, त्याला पावलो पावली विघ्न येते. ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, प्रतिकूल झालें अ-



सतां ही एक महिना झाल्यावर शांति करून गोदान करून पुनः वाग्दान करावे. हा सर्व प्रकार पिता इत्यादि जरी मरण पावले असतील आणि कन्या प्रौढ झाली असेल तर समजावा. ह्मणजे शांति करून विवाह करावा. आतां प्रतिकूल असूनही प्रतिकूल नाही असे सांगतो— दुष्काळ पडला असतां, राजाचे भय आले असतां, लग्नाचा काळ उल्लंघून गेला असतां, मातापित्यांचे मरणाचा संशय असतां, मातापिता शिवाय दुसरे कोणी मेलें असतां त्यांच्या मरणापासून प्रतिकूल नाही तर खुशाल विवाह करावा. तेंच ज्योतिःसागर ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, दुष्काळ पडला असतां, राज्यक्रांतीचा समय असतां, मातापित्यांचे मरणाचा संशय असतां, कन्या प्रौढ झाली असेल तर अनुकूलाची वाट पाहावयाचें कारण नाही. अर्थात् प्रतिकूल असतांही विवाह करावा. तसेंच फार दिवसां पासून रोगी असलेला मरण पावला असतां, गृहादि-कांविषयी फारच विरक्त असलेला मरण पावला असतां, फारच दूर देशी गेला असून मरण पावला असतां, असे हे मरण पावले असतां प्रतिकूल नाही, तर अनुकूलच समजून विवाह करावा. तेंच दुसऱ्या स्मृतींत सांगितलें आहे कीं, जुनाट रोगानें ग्रस्त झालेला, फार लांब दूर देशी गेलेला, प्रपंचा विषयी उदासीन असलेला जर मरण पावला तर त्याचें प्रतिकूल समजून नये. आतां दुसरेही शास्त्रार्थ सांगतो—आपल्या मूळ पुरुषापासून चवथा पुरुष मेला असेल आणि त्याच्या क्रिया-कर्मांतरे कांहीं कारणामुळे झालीं नसतील तर मग नांदीमुख श्राद्ध करूं नये. अर्थात् विवाह करूं नये. कारण कीं, विवाहाचे पूर्वी नांदीश्राद्ध असतें हें सर्व आपल्या गोत्राविषयी समजावें. तेंच मेधातिथी ग्रंथकार सांगत आहे कीं, प्रेतकर्मिच संस्कार पुरे केल्या शिवाय मंगलकार्य करूं नये. मात्र तो प्रेत संस्काराचा नियम मूळ पुरुषापासून चवथ्या पिढी पर्यंतच आहे पांचवा पुरुष मृत झाला असून त्याचें क्रिया कर्मांतरे झालीं नसतील तरीही मंगल कार्य ह्मणजे विवाह करण्यास हरकत नाही, ज्याला ज्वर आला असेल त्याचें मंगल ह्मणजे विवाह करूं नये. तेंच गर्ग सांगतो कीं, ज्याला ज्वर आला असेल त्याचें मंगल करूं नये. ह्मणजे त्याचा विवाह करूं नये. ज्वराचा दोष गेल्यावर मग शरीर स्वस्थ झाल्यावर नंतर मंगल कार्य करावें. आपल्या कुळांतील कोण्या एकास अतिमोठा भयंकर असाध्य ज्वरादिक व्याधि झाला असेल तर विवाहाचा निश्चय करूं नये. कारण तो मध्येच मेला तर प्रतिकूल होण्याची भीति आहे. रोग हा शब्द, पाप, ज्वर, विकार, दुःख आणि आमय इतक्या अर्थांचा वाचक आहे, हे सर्व शब्द रोगाचे पर्याय आहेत. तेंच गर्ग सांगतो कीं, कोणी असे ह्मणतात कीं, जर गृहस्थाचें अंगांत भयंकर दारुण ज्वर आला असेल तर तो ज्वर शांतपडे पर्यंत मंगल कार्याचा निश्चय विद्वानांनीं करूं नये ॥ ५२ ॥

### सूतकनिर्णय व सिंहस्थनिर्णय.

चेत्स्यात्सूतकमुक्तपूर्वसमयेऽनारब्धकार्ये बुधः ।

कूष्मांडीघृतहोमतोऽपि जननाशौचे कचित्कारयेत् ॥

सिंहेज्ये न शुभं हितं हरिलवोर्ध्वं गौतमीदक्षिणे ।

जाह्नव्युत्तरतः कचिद्विमतमजेऽर्केतोसभीत्यादिषु ॥ ५३ ॥

श्लोकार्थ—जर यज्ञ, विवाह, चौल, उपनयन यांना मार्गे सांगितलेल्या काळीं आरंभ करण्यापूर्वी जननाशौच (सुवेर) येईल, तर महासंकटीं कूष्मांडी मंत्रांनीं घृत होम करून जननाशौचांत मंगलकार्य करावी. सिंह-राशीला गुरु असतां शुभ कार्यें करूं नयेत. संकटसमयीं सिंहनवांशा पुढें गुरु गेल्यावर गोदानदीच्या दक्षिणेकडील देशांत आणि भागिरथीच्या उत्तरेकडील देशांत शुभकार्यें करावी. महासंकट असेल व कन्येला ऋतु प्राप्त होण्याचें भय असेल तर गोदा व भागीरथी ह्यांच्या मधील देशांत सिंहनवांशा पुढें गुरु असून मेघराशीला रवि असतां शुभ कार्यें करावी ॥ ५३ ॥

अथ महत्संकटे सति वृद्धिसूतके कर्माहतामाह—चेत्स्यादिति । उक्तपूर्वसमये यज्ञोद्वाहनचौल-मौजिकमित्यत्रोक्ते पूर्वकालेऽनारब्धकार्ये सति कर्मण्यनारब्धे सति संकटे च प्राप्ते सति कूष्मांडी-घृतहोमतः कूष्मांडीभिर्यदेवादेवहेडनमित्यादितिसृभिर्ऋग्भिर्घृतहोमः कूष्मांडीघृतहोमः तेन जननाशौचे दशाहतः जन्मदशाहमध्ये कर्म आचरेत् । कूष्मांडीघृतहोमं शास्त्रोक्तं सदक्षिणं कृत्वा कर्म कर्तव्यमित्यर्थः । तदुक्तं स्मृत्यंतरे । संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपगते । कूष्मांडीभिर्घृतं कृत्वा गां दत्त्वा च पयस्विनी ॥ चूडोपनयनोद्वाहौ प्रतिष्ठादिकमाचरेदिति ॥ स्मृत्यंतरे । अनार-

ध्वविशुद्धयर्थं कूष्मांडैर्जुहुयाद्भूतं । गां दद्यात्पंचगव्याशी ततः शुद्धयति सूतकीति ॥ अथ सिंहे गुरौ सति मंगलनिषेधमाह-सिंहेज्य इति । सिंहे सिंहराशौ इज्यः सिंहेज्यः तस्मिन्सति शुभं नित्यव्यतिरिक्तं न हितं स्यात् । इदं तु पूर्वमेव प्रपंचितं । तथा च कालनिर्णये । शांतिकं पौष्टिकं यात्रा प्रतिष्ठोद्वाहपूर्वकं । न कुर्यात्सर्वमांगल्यं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ तथा च मांडव्यः । इष्टापूर्ते च चौलादिसंस्कारान् वास्तुकर्म च । अन्यानि शुभकर्माणि न कुर्यात्सिंहस्थे गुराविति ॥ अथ संकटे प्रवृत्तिमाह-हरिलवोर्ध्वमिति । कचित्संकटे देशकालभयादौ सिंहस्थेऽपि हरिलवादूर्ध्वं सिंहांशादूर्ध्वं गौतस्या दक्षिणतो जाह्नव्या उत्तरतः शुभं कर्म हितं स्यात् । तथा च ज्योतिर्निबंधे । सिंहे गुरौ सिंहनवांशकोर्ध्वं गोदावरीदक्षिणकूलजातैः । उद्वाहकालात्ययदोषभातैः कार्यो विवाहश्च वनो ब्रवीतीति ॥ तथा च गर्गः । भागीरथ्युत्तरे तीरे गोदावर्यांश्च दक्षिणे । व्रतोद्वाहादिकं कर्म सिंहसंस्थे न दुष्यतीति । अथोद्वावर्या उत्तरे भागीरथ्या दक्षिणे एवं द्वयोर्गोदाजाह्नव्योर्मध्ये संकटेऽपि शुभं नाचरेदिति सिद्धं । तथा च वसिष्ठः । गोदावर्युत्तरे तीरे भागीरथ्याश्च दक्षिणे । विवाहादि न कुर्वीत सिंहसंस्थे च वाक्पताविति ॥ अत्राप्यतिसंकटे प्रवृत्तिमाह-अजेति । अस्रभीत्यादिषु रजोभयादिषु सत्सु अंतः गोदाजाह्नव्योर्मध्ये हरिलवादूर्ध्वं सिंहेज्ये सति अजे मेषे इने सूर्ये सति शुभमाचरेत् । अजे इने इत्येतद्विवाहविषयं । अस्रभीत्यादिष्वित्यनेन पदेन लक्ष्यते । तथा च शौनकः । मेषस्थे दिवसकरे सिंहस्थे वज्रपाणिसचिवे च । यस्याः परिणयनमसौ साध्वीसुखसंपदोपेतोति ॥ व्रतबंधस्तु मीनगे सूर्ये सति चैत्रे कर्तव्य इति ग्रंथकृता प्रागेवोक्तमनिमिषरविमधौ कार्यमिति । तथा च मौजीपटले । जन्मभादृष्टे सिंहे नीचे वा शत्रुणे गुरौ । मौजीबंधः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ । अथवा इने इज्ये एतत्पदं सर्वशुभसाधारणविषयं । तथा च शौनकः । सिंहस्थे देवगुरौ मेषस्थो यदि भवेत्सहस्रांशुः । मंगलकार्यं कुर्यादिति नारदपराशरौ वदत इति ॥ अस्रभीत्यादिष्वित्यत्रादिशब्देन वृद्धिपितृमरणशंकायां कर्तव्यतराभावाद्यतिसंकटे इति ज्ञेयम् ॥ ५३ ॥

• टीकाथ—मोठ्या संकटकाळीं वृद्धि आणि सूतक असतांही शुभ कर्म करण्याची योग्यता आहे हें सांगतो-पूर्वी सांगितल्या प्रमाणें यज्ञ, विवाह, चौल आणि मुंज ह्या कार्याला सांगितलेल्या नियमांप्रमाणें ह्मणजे त्या त्या कार्याचा आरंभ करण्याचे पूर्वीही जर मोठें संकट प्राप्त झालें तर कूष्मांडादिकांनीं “यद्देवादेवहेलनम्” इत्यादि तीन ऋचांनीं तुपाचा होम करावा. तसा होम करून जननाशौचाच्या दहा दिवसांमध्ये सुद्धां मंगल कार्य करावें. तेंच दुसऱ्या स्मृतींत सांगितलें आहे कीं, मोठें संकट आलें असतां आणि त्यांत सूतक आलें असतां कूष्मांडांनीं होम करून दुभस्ती गाय दान करून चूडा, उपनयन, विवाह इत्यादि कार्यांमध्ये देवप्रतिष्ठा वगैरे करावी. दुसऱ्या स्मृतींत सांगितलें आहे कीं, सूतक येण्याचे पूर्वी कार्याला आरंभ केला नाही ह्या बदलचे दोषाची विशुद्धि होण्याकरितां कूष्मांडांसहित तुपाचा होम करावा. गोदान करावें आणि पंचगव्याई प्राशन करावें, इतकें केल्यावर सूतकी शुद्ध होतो. आतां सिंहस्थ गुरु असतां मंगल कार्याचा निषेध सांगतो-गुरु सिंह राशीवर असतां शुभ कार्य ह्मणजे नित्य करावयाच्या कार्याशिवाय दुसरें कार्य करूं नये. हेंच पूर्वी विस्तार पूर्वक सांगितलें आहे. तेंच काल निर्णयग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, गुरु सिंह राशीवर आला असतां शांतिक कार्य, पौष्टिक कार्य, यात्रा, प्रतिष्ठा, विवाह इत्यादिक मंगलकार्यं करूं नयेत. तेंच मांडव्य स्मृतिकार सांगतो कीं, यज्ञ, पूर्त, चौलादिसंस्कार, वास्तुकर्म, हौ आणि ह्यां शिवाय दुसरीं जीं शुभकर्म असतील तीं सिंहस्थ गुरु असतां करूं नयेत. आतां संकटकाळीं प्रवृत्ति सांगतो-देश आणि काळ ह्यां पासून फार मोठें संकट आलें असेल तर तशा वेळेस गुरु सिंहस्थ असला तरी सिंहस्थ गुरु सिंहाच्या नवांशा नंतर गोदावरीच्या दक्षिणेस आणि जान्हवीच्या उत्तरेस विवाहादिक शुभ करावें. तेंच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सिंहेला गुरु असूनही सिंहाचे नवांश होऊन गेल्यावर गोदावरीच्या दक्षिणेस आणि जान्हवीचे उत्तरेस राहणाऱ्या लोकांनीं कालाच्या अडचणीस्तव ह्मणजे कन्येचा विवाह काल होऊन जात असेल तर विवाह करावा. असें ज्यवन ऋषींचें मत आहे. तसेंच गर्ग सांगतो कीं, भागीरथ्याचे उत्तरेस राहणाऱ्यांनीं गोदावरीच्या दक्षिणेस राहणाऱ्यांनीं सिंहस्थ गुरु असतांही विवाह, व्रत इत्यादि शुभ कार्यं करावीत. तसें केलें असतां दोष नाही. ह्यांत असा अर्थ निघतो कीं, गोदावरीचे दक्षिणेस आणि भागीरथ्याचे उत्तरेस असें झटलें आहे ह्मणून गोदावरी आणि भागीरथी ह्या दोहोंच्यामध्ये राहणाऱ्यांनीं शुभ कर्म करूं नये असें सिद्ध झालें. तेंच वसिष्ठ सांगतो कीं, गोदावरीचे उत्तरेस आणि भागीरथीच्या दक्षिणेस राहणाऱ्यांनीं सिंहस्थ गुरु असतां शुभकार्यं करूं नयेत. ह्मणजे लग्न वगैरे करूं नये. ह्या ठिकाणींही अतिशय संकट असेल तर करण्याविषयी प्रवृत्ति सांगतो-कन्येला ऋतु प्राप्त होण्याचें भय वगैरे असेल तर गोदा आणि जान्हवी ह्यांचें मध्येही राहणाऱ्यांनीं सिंहस्थ गुरु असतांनाही

सिंहाचा नवांश झाल्यावर मेषावर सूर्य असतां विवाह रूपच शुभकर्म करावें. ऋतु प्राप्त होण्याचे भयासुद्धें विवाह करण्याविषयीच मात्र आज्ञा आहे, असें सिद्ध होतें. तसेंच शौनक सांगतो कीं, वज्रपाणि ह्य० इंद्र त्याचा सचिव ह्य० प्रधान जो गुरु तो सिंह राशीवर असतां आणि दिवसकर ह्य० सूर्य हा मेषराशीवर असतां कन्येला पातिव्रत्य राहावें ह्या करितां तिचा विवाह करावा. अर्थात् कन्येच्या विवाहाचा काळ निघून जात असेल आणि तिचे लग्न न केलें तर तिचे सदाचरण बिघडण्याचा संभव आहे, ह्मणून तिचा विवाह करण्यापुरती आज्ञा आहे. आणि उपनयन संस्कार करावयाचा तो सूर्य मीन राशीवर असतां चैत्रमासीं करावा हें पूर्वीच सांगितलें आहे. तसेंच मौजीपटल ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, जन्मराशीपासून अष्टमस्थानीं गुरु असतां, व सिंह राशीस गुरु असतां, नीचेचा गुरु असतां, शत्रूच्या घरी गुरु असतां, मीन राशीवर सूर्य असतां चैत्रमहिण्यांत मौजीबंधन करावें. अथवा सूर्य आणि गुरु हें पद सर्व शुभकरण्यांविषयीं साधारण आहे. तेच शौनक सांगतो कीं, देवगुरु हा सिंह राशीवर असतां, अथवा सहस्रांशु ह्य० सूर्य हा मेषराशीवर असतां मंगल कार्य करावें असें नारदादि सांगतात. कन्येला ऋतु प्राप्त होणें ह्या ठिकाणी आदिशब्दानें वृद्धिचें आशौच आणि पितृमरणाचें आशौच येण्याची शंका असेल अशा अतिशय संकटाचे वेळीं, दुसरा कोणी विवाह करणारा, अशाच अडचणीच्या वेळेस विवाह करावा असें जाणावें ॥ ५३ ॥

### नामराशीचा व जन्मराशीचा निर्णय.

देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिघूतेषु दाने मनौ ।

सेवाकाकिणिवर्गसंगरपुनर्भूमेलके नामभम् ॥

जन्मर्क्ष परतो वधूपुरुषयोर्जन्मर्क्षमेकस्य चेत् ।

ज्ञातं शुद्धिमितो विलोक्य च तयोर्नामर्क्षयोर्मेलकः ॥ ५४ ॥

श्लोकार्थ—देश, ग्राम, गृह यांतील प्रवेशादि कार्यांत ज्वर, व्यवहार, घृत, दान ह्यांविषयीं चंद्रबल पहाण्यास, मंत्राचें घटित व चंद्रबल पहाण्यास, राजादिकांच्या सेवेला घटित पाहण्यास, काकिणी पाहण्यास, वर्गशुद्धीस, युद्धांत, चंद्रबलास आणि पुनर्विवाहांत घटित पाहण्यास नाम राशि घ्यावी. ह्यांशिवाय इतर विवाहादि सर्व मंगलकार्यास जन्मराशि घ्यावी. वधूवरपैकीं एकाचें जन्मनक्षत्र ज्ञात असून एकाचें अज्ञात असेल तर ज्ञात असेल त्यावरून गुरुबळ, चंद्रबळ इत्यादि पहावें. आणि त्या दोघांच्याही नामराशीवरून घटित पहावें. दोघांचेही जन्म नक्षत्र अज्ञात असतां सर्वच नामराशी वरून पहावें ॥ ५४ ॥

अथ नामराशिजन्मराश्योर्निर्णयमाह—देश इति । देशः प्रसिद्धः ग्रामः प्रसिद्धः गृहं प्रसिद्धं ज्वरः प्रसिद्धः इत्यादिषु नामराशिः प्रधानं स्यात् । एतदुक्तं भवति । देशग्रामगृहेषु प्रवेशाद्यर्थं ज्वरे चंद्राद्यवलोकनार्थं व्यवहृतिर्व्यवहारः घृतं प्रसिद्धं दानं तुलापुरुषादिषु चंद्रबलाद्यर्थं मनौ मंत्रे मेलनार्थं चंद्रबलाद्यर्थं च सेवा राजादिसेवा तत्र मेलनाद्यर्थं काकिण्यां काकिण्यवलोकनार्थं वर्गशुद्धयर्थं संगरे संग्रामे चंद्रबलाद्यर्थं पुनर्भूमेलके पुनर्भूमेलनाय नामराशिरवलोकनीयेत्यर्थः । परत एभ्योऽन्यत्र विवाहयात्रादौ जन्मर्क्षे जन्मराशिः प्रधानं स्यात् । तथा च ज्योतिर्निबंधे देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके । नामराशेः प्रधानत्वे जन्मराशिं न चिंतयेदिति ॥ काकिण्यां वर्गशुद्धौ च दाने घृते ज्वरो दये । मंत्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानतेति ॥ विवाहे सर्वमंगल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे । जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशिं न चिंतयेदिति । अथ वधूवरयोर्मध्ये एकस्य जन्मर्क्षं ज्ञातमेकस्य न ज्ञातं तदा शुद्धिमेलनादिकं कथमवलोकनीयमित्याह—वधूपुरुषयोरिति । वधूपुरुषयोर्मध्ये चेद्यादि एकस्य जन्मर्क्षं ज्ञातं एकस्य न ज्ञातं तदा इतः ज्ञातात् जन्मर्क्षादेकस्य शुद्धिं गुर्वादिशुद्धिं विलोक्य तयोर्वधूवरयोर्नामर्क्षयोर्मेलको वर्णवश्यादिकः पूर्वोक्तो विलोक्यः । अर्थाद्भयो राश्यादिज्ञानं नामर्क्षादेव सर्वं विलोक्यं । तथा च शार्ङ्गधरः । विवाहघटनं चैव लग्नजं ग्रहजं बलं । नामभाञ्चितयेत्सर्वं जन्म न ज्ञायते यदा ॥ ५४ ॥

**टीकाथ—**नांवावरून निघालेल्या राशीचा आणि जन्म नक्षत्रावरून निघालेल्या राशीचा निर्णय सांगतो—देश, गांव, घर ह्यामध्ये प्रवेश करितांना नामराशी ही मुख्य आहे, ह्याचा अर्थ असा की, देश, गांव, घर ह्यामध्ये प्रवेश करण्याकरितां, ज्वर आला असतां, कितवा चंद्र आहे हे पहाण्याकरितां, व्यवहार जाणण्याकरितां, द्यूत करण्याकरितां, तुला पुरुष दान इत्यादि कामाकरितां जे चंद्रबल पाहावयाचें असतें तो चंद्र पाहावयाचा असल्यास नाम राशीवरून पाहावें. एकादी मसलत करण्याविषयी, दोघांचें मेलन करण्याविषयी, चंद्राचें बल वगैरे पाहावयाचें असल्यास, राजसेवा वगैरे करावयाचे पाहाण्याकरितां ह्मणजे त्यांचा आपला मेळ जुळेल किंवा नाही हे पाहाण्याकरितां, काकिणी पहाण्याकरितां, वर्गशुद्धी पहावयाची असल्यास, युद्धाचे वेळीं चंद्र बळ पाहाण्याकरितां, पुनर्भूचें मेलन ह्मणजे पाट लावण्याचे वेळेस नामराशीवरूनच चंद्रबल वगैरे पाहावें. ह्या कार्याशिवाय वाकीचे विवाह, यात्रा इत्यादि कार्यामध्ये जन्मराशि वरून चंद्रबल वगैरे पाहात जावें, त्यामध्ये जन्मराशि ही मुख्य आहे, तेच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, देश, गांव, घर, युद्ध, राजसेवा, व्यवहार, ह्या कार्यामध्ये नाम राशिही प्रधान आहे, त्यामध्ये जन्मराशीचा विचार करूं नये. त्याप्रमाणेंच काकिणीमध्ये, वर्गशुद्धीमध्ये, दान करण्यामध्ये द्यूत खेळण्यामध्ये, ज्वरादिकांचा उदय झाला असतां, मसलत करावयाची असतां, पुनर्निवाह करावयाचा असतां, नामराशीचें प्राधान्य आहे, त्यावेळेस जन्म राशीचा विचार करावयास नको. विवाहामध्ये, सर्व प्रकारच्या मंगल कार्यामध्ये, यात्रादिक कार्यामध्ये, ग्रहगोचर पहावयाचें असल्यास, जन्म राशीचें प्राधान्य आहे. तेथे नामराशीचा विचार करावयाचें कारण नाही. आतां वधू आणि वर ह्यांपैकीं एकाचे जन्म नक्षत्राचें ज्ञान आहे, दुसऱ्याचें ज्ञान नसेल, तर शुद्धि मेलन इत्यादिक कसे पाहावें हे सांगतो—वधू आणि वर ह्यांपैकीं एकाचे जन्म नक्षत्राचें ज्ञान आहे, एकाचें ज्ञान नाही, तर ज्याचे जन्म नक्षत्राचें ज्ञान आहे, त्यापासूनच गुरु इत्यादिकांची शुद्धि पाहून त्यावरून त्या वधू आणि वराचें योनि इत्यादिक मेलन पाहून घटित पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें पाहावें. आणि त्या दोघांच्याही नामराशीवरूनच सर्व पाहावें. तेच शास्त्रधर सांगतो कीं, जर जन्म नक्षत्र माहीत नसेल तर नामराशीवरून सर्व विवाहाचें घटित, लग्नाचें बल, ग्रहांचें बल पाहावें ॥ ५४ ॥

नामनक्षत्राचें ज्ञान.

भं नामादिमवर्णतोऽवकहडाद्युज्यादिवर्णाद्भवौ ।

तुल्यावत्र शसौ खषौ यदभिधा बह्व्योऽस्य नामांतिमम् ॥

आर्या शुद्धहने जनुर्भममलं पट्टस्य बंधे जगु- ।

गैहग्रामनृपाभिषेककृषिमौज्यन्नाशने भूषणे ॥ ५५ ॥

॥ इति विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥

**श्लोकार्थ—**नामाचें आद्य अक्षर असेल तें अवकहड चक्रांत पाहून त्यावरून नक्षत्र व चरण जाणावे. नांवांतलें पहिलें जोडाक्षर असतां त्यांतला प्रथमवर्ण व्यावा. ( श्रीघर यांतील शी, क्षेत्रज्ञ यांतील के, प्रद्युम्न यांतील प इत्यादि ) व आणि व, श आणि स, ख आणि ष, ह्या दोन दोन अक्षरांत भेद मानूं नये ह्मणजे अवकहड चक्रांत व अक्षर नाही त्या ठिकाणीं व समजून त्यावरून नक्षत्र पहावें. ज्यांचीं नांवां पुष्कळ असतील त्याचें शेवटचें नांव घ्यावें. पुरुषाचा विवाह, पट्टबंध, गृहकरण व गृहप्रवेश, ग्रामप्रवेश, राज्याभिषेक, कृषिकर्म, मौजीबंधन, नवान्नप्राशन, अलंकारधारण ह्या कर्मांला जन्मनक्षत्र निर्दोष ह्मणून शुभ असें श्रेष्ठलोक ह्मणतात ॥ ५५ ॥

अथ मेलकार्यं नाम्नो नक्षत्रज्ञानमाह—भं नामेति । नामादिमवर्णो नामाद्यक्षरं तस्मात् अवकहडं शतपदं चक्रं यस्माच्चक्रात् । चूचेचोलापदेष्वधे इत्यादयः श्लोका निबद्धाः तस्माच्चक्रात् भं नक्षत्रं ज्ञेयं । तद्यथा चूडामणीति नाम्न आद्याक्षरात् चकारात् चूचेचोला इत्यादिना अश्विनीनक्षत्रं तत्र प्रथमचरण इतिवज्ज्ञेयमित्यर्थः । तथा च दीपिकायां । जन्म न ज्ञायते येषां तेषां नाम गवे-  
ष्यते । चक्रेऽवकहडे भांशौ तन्नाडी कैश्चिदग्निभादिति ॥ तन्नाडीत्यस्यार्थः यदा नाम्नो नक्षत्रं गवेष्यते तदाऽग्निभात् कुत्तिकानक्षत्रात् नाडी विलोक्येति कैश्चिदुक्तं कैश्चिदिति तन्मतमग्राह्यं तस्मादश्विन्यादित्रिकं न्यस्तमिति न्यायेन नाक्षत्रबलोकनं ब्रह्मसंमतामिति भावः । अथ नामादौ

संयोगाक्षरे सति किं कर्तव्यमित्यपेक्षायामाह-युज्यादिवर्णादिति । युजि युक्तेऽक्षरे संयुक्ताक्षरे प्रयुज्जे-  
त्यादिके नामादौ युक्ताक्षरे सति आदिवर्णात् प्रथमवर्णात् भं ज्ञेयं प्र पा प्रयुज्जे नास्ति प्रथमवर्णः प्रः  
तत्राप्याद्यः पकारस्तस्माद्भं ज्ञेयमित्यर्थः । प्रियवचनेत्यादौ विकार एव दुपदेत्यादौ दुकार एव ग्राह्य  
इत्यादि स्वरशास्त्रे संयोगाक्षरजे नास्ति ज्ञेयं तत्रादिमाक्षरमिति । अथावकहडचक्रे नामाद्यक्षाराभावे  
सति किं कर्तव्यमित्यपेक्षायामाह-बवौ तुल्यावत्र शसौ खषाविति । अत्रावकहडचक्रे बवौ इति इमा  
वर्णौ तुल्यौ तथा च शसौ शिव इति नास्ति सति अवकहडचक्रे शकारस्याभावात् शकारस्थाने  
सकारांगीकाराद्भं ज्ञेयमितिभावः । एवमेव खषौ परस्परसवर्णौ ज्ञात्वा भं ज्ञेयं । तथा च स्वरशास्त्रे ।  
खषौ शसौ बवौ चैव ज्ञेयाविति परस्परमिति । अन्यच्च । न प्रोक्ता उज्जणा वर्णा नामादौ संति ते  
न हि । चेद्भवति तथा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रममिति । चक्रं शतपदं वक्ष्ये ऋक्षांशाक्षरसंभवमिति ॥  
स्वरशास्त्रोक्तमवकहडचक्रं प्रसिद्धं । अथ यस्य बहूनि नामानि संति तस्य कस्मान्नाम्नो भं  
ज्ञेयमित्याकांक्षायामाह-यदभिदा बह्व्योस्य नामांतिमिति । यस्य अभिधा नामानि बह्व्यो भवति  
तस्यांतिमं पश्चाद्भवं नाम ग्राह्यं । तथा च स्वरशास्त्रे । बहूनि यस्य नामानि नरस्य स्युः कथं-  
चन । तस्य पश्चाद्भवं नाम ग्राह्यं स्वरविशारदैरिति ॥ अथ जन्मनक्षत्रं येषु शस्तं तान्याह-आ-  
र्या इति । बृहहने पुरुषविवाहे जनुर्भं जन्मनक्षत्रं अमलं निर्दूषणं जगुः । तथा पट्टस्य बंधे पट्टबंधने  
गेहं गृहकरणप्रवेशनं तथा ग्रामो ग्रामप्रवेशनं नृपाभिषेको राजाभिषेकः कृषिः प्रसिद्धा मौंजी  
प्रसिद्धा अन्नाशनं नवान्नप्राशनं भूषणं भूषणधारणं एषां समाहारस्तस्मिन् जन्मभं शुभदं  
जगुः । तथा च ज्योतिःप्रकाशे । जन्मभं कृषिनृपाभिषेचने भूषणे नगरगेहकर्मणि । आधिपत्यभुवि  
मौंजबंधने पुंविवाह उदितं शुभं बुधैरिति ॥ राजमार्तंडे । वसंतसमये दद्यादब्दे गर्भाष्टमेऽष्टमे ।  
मेखलां जन्ममासेऽपि जन्मभे च तिथावपीति ॥ नारदः । पट्टबंधनचौलान्नप्राशने चोपनायने ।  
शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणीति ॥ ५५ ॥ इति स्वकृतमुहूर्तमार्तंडटीकायां मार्तंडवल्लभायां  
विवाहप्रकरणं समाप्तम् ॥

टीका-मेलनाचें कार्य करण्याकरिता नावाचें आद्याक्षर ज्ञान होण्याचें अवकहड चक्र सांगतां-“ चू चे चो-  
ला अग्निनी ” असे श्लोक आहित, त्या शंभर पदांचें एक चक्र आहे, याचें पहिल्या अक्षरा वरून तें जाणावें. जसें कीं, कोणा-  
चें नाव चूडासणी असेल, तर त्याचें पहिलें अक्षर चू असें आहे, ह्मणून त्याचें नक्षत्र अश्विनी असें आहे व त्या नक्षत्राचा  
प्रथम चरण आहे असें जाणावें. तेंच दीपिके ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ज्याचें जन्म नक्षत्र माहीत नसेल त्याचें नाम  
पाहावयाचें असल्यास अवकहड नावाचें चक्र पाहावें. त्यांतील पहिलें अक्षर, ज्याच्या नावाचें पहिलें अक्षर असेल तर त्या  
नक्षत्राचा पहिला चरण, दुसरें अक्षर असेल तर दुसरा चरण, तिसरें अक्षर असेल तर तिसरा चरण, चवथें अक्षर असेल  
तर चवथा चरण असें जाणावें. कित्येकांचें मत असें आहे कीं, नाडी ज्ञान करून व्यावयाचें असल्यास कृतिका नक्षत्रा पासून  
पाहावें. परंतु हें त्यांचें मत ग्रहण करण्यास योग्य नाहीं ह्मणून अश्विनी, भरणी, कृतिका हें प्रत्येक त्रिक उलटें केलें असतां  
नाडी पाहावी असें बहु संमत आहे. आतां नामाचें आरंभीचें पहिलें अक्षर जोडाक्षर असेल तर काय करावें, अशी शंका-  
आली असतां तिचें निवारण सांगतां-जर नावाचे आरंभी जोडाक्षर असेल तर त्यांतील जें पहिलें अक्षर असेल तें ध्यावें. जसें  
कीं, प्रद्युम्न ह्याचें पहिलें अक्षर पकार हें ध्यावें आणि त्यापासून नक्षत्र जाणावें, प्रियवचन नावांत विकार ध्यावा, दुपद  
नावांत दुकारच ध्यावा, अशा रीतीनें स्वरशास्त्रांत आणि जोडाक्षर पहिलें अक्षर असेल तर तेथें पहिलें अक्षरच  
जाणावें. आतां अवकहड चक्रांत जर नावाचें पहिलें अक्षर नसेल तर काय करावें तें सांगतां-व आणि व हे एकच समजा-  
वेत. शं आणि स हे एक समजावेत, ख आणि प हे एकच समजावेत. जसें कीं, शिव असें नाव असेल तर शकार हा  
अवकहड चक्रांत नाहीं ह्मणून शकाराचे बदल सकार ध्यावा आणि त्या पासून नक्षत्र जाणावें. अशाच रीतीनें ख आणि  
ष हे एकच समजावेत आणि हे वर्ण परस्पर सवर्ण जाणावेत. तेंच स्वरशास्त्रांत सांगितलें आहे कीं, ख आणि ष, श आणि  
स, व आणि व हे परस्पर सवर्ण समजावेत. दुसरे असें आहे कीं, ड, ज, ण, हे वर्ण नावाचे आरंभी नाहींत ह्मणून ते  
वर्ण अवकहड चक्रांत सांगितले नाहींत, जर तशीं नांवें असतील तर डचे बदल ग आणि जचे बदल ज आणि णचे  
बदल ङ असे अनुक्रमानें जाणावेत. हें अवकहड चक्र शंभर पदांचें आहे, हें नक्षत्राचे अंशाच्या अक्षरा पासून झालेलें आहे,  
हें स्वर शास्त्रांत सांगितलें असून प्रसिद्ध आहे. आतां ज्या एकाला पुष्कळ नांवें असतात त्याला कोणत्या नावावरून नक्षत्र  
जाणावें अशी आशंका आली असतां सांगतां कीं, ज्याची पुष्कळ नांवें आहेत त्याचें शेवटलें जें नांव असेल तें ध्यावें,  
आणि त्यावरून नक्षत्र जाणून बाकीचें राश्यादिक जाणावें. तेंच स्वर शास्त्रांत सांगितलें आहे कीं, ज्याची नांवें पुष्कळ

अस्तितोल्याचो व्यवस्था कशी करावी, तर त्याचे शेवटले नाव जेऊन त्याप्रमाणे नक्षत्रादिक जाणावे, असें स्वरशास्त्र जाणणारे सांगतात. आतां जन्म नक्षत्र हें कशाविषयीं प्रशस्त आहे ते सांगतो—पुरुषांच्या विवाहाविषयीं जन्म नक्षत्र निर्दिष्ट आहे असें विद्वान् लोक सांगतात. तसेंच पट्टबंधनाविषयीं, गृह करणे आणि गृहप्रवेश, गावांत प्रवेश करणे, राज्याभिषेक, कृषिकर्म, मौजीबंधन, नवान्नप्राशन, अलंकारधारण, इत्याद्या कार्याविषयीं जन्म नक्षत्र हें शुभकारक आहे, तच्च उपायनिः-प्रकाश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कृषि कर्मांमध्ये, राज्याभिषेक करण्यामध्ये, अलंकारधारण करण्यामध्ये, नगर प्रवेशांत, गृह प्रवेशांत, घर करणे, मौजीबंधन करणे, पुरुषांचा विवाह करण इत्याद्या कार्यांमध्ये जन्म नक्षत्र शुभकारक आहे असे सांगितलें आहे. राजमार्तंड ग्रंथांत असे सांगितलें आहे कीं, वसंतऋतूमध्ये गर्भापासून आठव्या वर्षी, अथवा जन्मसासून आठव्या वर्षी, जन्ममासीं, जन्मनक्षत्रीं आणि जन्मतिथीवरही मौजी बंधन करावे. नारद सांगतो कीं, पट्टबंधनाविषयीं, चौल संस्काराविषयीं, अन्नप्राशनाविषयीं, मौजी बंधनाविषयीं जन्मनक्षत्र शुभकारक आहे. या शिवाय दुसऱ्या कार्याविषयीं जन्म नक्षत्र शुभकारक नाही ॥ ५५ ॥ अशा रीतीने आपणच केलेल्या मुहूर्तमार्तंडाच्या मार्तंडवल्लभा टाकेचें विवाह प्रकरण समाप्त झालें.

#### अवकहड चक्र.

|                           |                          |                           |                          |
|---------------------------|--------------------------|---------------------------|--------------------------|
| चु, चे, चो, ला; अश्विनी.  | हु, हे, हो, डा; पुष्य.   | रू, रे, रो, ता; स्वाती.   | जू, जे, जो, खा; अभि०     |
| ली, लू, ले, लो; भरणी.     | डी, डू, डे, डो; आश्लेषा. | ती, तू, ते, तो; विशाखा.   | खो, खू, खे, खा; श्रवण.   |
| आ, ई, ऊ, ए; कृत्तिका.     | मा, मी, मु, मे; मघा.     | ना, नी, नू, ने; अनुराधा.  | गा, गो, गू, गे; धनिष्ठा० |
| ओ, वा, वो, वू; रोहिणी.    | मो, या, टी, टू; पूर्वा.  | नो, या, यी, यू; ज्येष्ठा. | गो, सा, सी, सू; अतता     |
| वे, वो, का, की; मृगशी.    | टे, टो, पा, पी; उत्तरा.  | ये, यो, भा, भी; मूळ.      | से, सो, दा, दी; पूर्वा   |
| क, घ, ङ. ल; आर्द्रा.      | पू, पा, गा, टा; हस्त.    | बु, धा, फा, डा; पूर्वाषा. | दू, जा, झ, थ; उ. भा.     |
| के, को, हा, ही; पुनर्वसू. | पे, पो, रा, री; चित्रा.  | मे, भा, जा, जी; उत्तरा.   | दे, दो, चा, चो; रेवती.   |

॥ विवाह प्रकरण समाप्त ॥

### ॥ अग्न्याधान प्रकरणम् ॥ ५ ॥

अग्न्याधानमवादि दारसमये दायाद्यकाले परै - ।

द्वीशाग्निध्रुवशाक्रपुण्यमृगपौष्णैर्व्यजलग्रांशयोः ॥

जीवैर्द्वर्ककुजैः सुत५६३६।११।१०नव९केंद्रस्थै१।४।७।१०रनस्तंगतैः ।

स्वोच्चेष्टर्गतैः परैरुपचयैर्वित्ताद्यशुद्धौ बुधैः ॥ १ ॥

#### ॥ इत्यग्न्याधानम् ॥

श्लोकार्थ—विवाहकालीं अग्न्याधान करावे. दायादिभागाच्या आरंभां करावे, असें कित्येक आचार्यानीं सांगितलें आहे. विशाखा, कृत्तिका, ध्रुवसंज्ञक, ज्येष्ठा, पुष्य, मृग, रेवती ह्या नक्षत्रांवर, मकराचें उत्तरार्ध, कुंभ, मीन, कर्क हीं जलचर लग्ने व नवार्श सोडून चंद्र रहित अन्य लग्नीं व नवांशां, अस्त न झालेले गुरु, चंद्र, रवि, मंगळ हे स्वर्गही, उच्चस्थानीं, मित्रगृहीं असून ५।३।६।१।१।१०।१।१।४।७।१० ह्या स्थानीं असतां आणि इतर ग्रह ३।६।१।१।१० या स्थानीं असतां व द्वितीय स्थान आणि लग्न पापग्रह रहित असतां अग्न्याधान करावे असें पंडितांनीं सांगितलें आहे ॥ १ ॥

अथाग्न्याधानं वृत्तेनैकेनाऽऽह-अग्न्याधानमिति । अग्न्याधानं बहुभिर्बुधैर्दारकालेऽवादि कथितं । चतुर्थीकर्मनंतरं दारकालः । परैराचार्यैर्दायाद्यकाले धनविभागकालेऽवादि । तथा च वृत्तशते । अग्न्याधानं दारकाले विधेयं कैश्चित्प्रोक्तं तच्च दायाद्यकाले इति । तथा च कात्यायनगृह्ये । आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेवामिति । एतद्भाष्यकारैरेवं व्यवस्थापितमभ्रातृमतो दारकाले भ्रातृमतो दायाद्यकाले प्रोक्तमिति । स्मृतिषु कृतदारस्याग्निना विना बहु-



दोषो दृश्यते । तथा हि । कृतदारो नैव तिष्ठेत्क्षणमत्यग्निना विना । तिष्ठन् स चेद्विजो ब्राह्म्यस्तथा च पतितो भवेत् ॥ पितृपाकोपजीवो स्याद्भ्रातृपाकोपजीवकः । ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥ यो नाग्निमुपसेवत दारान्कामादृतावपि ॥ पारदारी स विज्ञेयः स्वस्तीस्वीकरणादपि ॥ यथा स्नानं यथा संध्या वेदस्याध्ययनं यथा । तथैवोपासनं दृष्टं न स्थितिस्तद्वियोगत इत्यादि ॥ तस्मात्सूत्रकारैः कात्यायनादिभिः दारकाल एव बाहुल्येनोक्तं । अग्न्याधाननक्षत्राण्याह—कैः द्वी-शाग्निध्रुवशाक्रपुष्यमृगपौष्णैः द्वीशं विशाखा अग्निः कृत्तिका ध्रुवाणि द्युत्तरारोहिण्यः शाक्रं ज्येष्ठा पुष्यमृगो प्रसिद्धौ पौष्णं रेवती तैः । कयोः व्यञ्जलग्नंशयोः विगताः अञ्जा याभ्यां तौ व्यञ्जौ तौ च तौ लग्नंशौ च तयोः अञ्जा जलचरराशयः मकरस्य पश्चिमार्धं कुम्भो मीनः कर्कटश्चैते जलचरा राशयः । चंद्रोऽपि जलज एते राहित्योल्लेखनवांशयोरित्यर्थः । तथा च वृत्तशते । कर्किकनक्षत्रमीन-विलम्बे वांशके तनुगतेऽथ तदाये । लग्नमे कुमुदिनिदित्येते वा नाशमेति जनितोऽपि हुताश इति ॥ कैर्जीवेद्वर्ककुजैः सुतर्द्धिनवकेंद्रस्थैः जीवो गुरुः इदुश्चंद्रः अर्कः सूर्यः कुजो भोमः तैः सुतः पंचमं ऋद्धय उपचयभवनानि नव नवमं । केंद्राणि प्रथमचतुर्थसप्तमदशमानि ५११६१११०११११० ॥ ७१० ॥ एतत्स्थानगतैः । कथंभूतैः अनस्तंगतैः सूर्यकिरणैरलुप्तैः । पुनः कथंभूतैः स्वोच्छेष्टक्षणेः स्वश्च उच्चानि च इष्टाश्च एषां ऋक्षाणि राशयस्तद्वतैः स्वराशुश्चराशिभिर्त्राशिगतैरित्यर्थः । परैरुक्तेभ्योऽन्यग्रहैः उपचयैः त्रिषड्केकादशदशमगेः कस्यां सत्यां वित्ताद्यशुद्धौ सत्यां वित्तं द्वितीय-मार्धं लग्नं तयोः शुद्धिः क्रूरराहित्यं तस्यां सत्यां । शेषं पूर्ववत् प्रायश्चंद्रमित्युक्तमवलोक्यं । तथा च वृत्तशते । केंद्रक्षौपचयत्रिकोणभगताः सूर्यारजोवैद्वः शेषाश्चोपचयस्थिता यदि तदाऽग्न्याधानमुक्तं शुभं । चंद्रे नैधनगे म्रियेत युवतिभौमे पुमानष्टमे शेषैर्मृत्युगतै रुजा च सहितोऽग्न्याधानकर्ता भवेत् ॥ नौकुर्याद्धतभुक्परिग्रहमिह क्षमापुत्रजविंदुभिर्नोचस्थैर्विजितै रिपोर्भवनगेरस्तंगतैर्वा द्वि-जैरिति । तथा च संहितासारे । अग्न्याधानं न कुर्वीत कर्किकनक्षत्रे विधौ । लग्नगे धनगे पापे तथा रंघ्रग्रहान्वित इति ॥ १ ॥ इति मु० मा० टी० मातंडवल्लभायामग्न्याधानप्रकरणम् ॥

टीकार्थ—अग्न्याधान एका वृत्ताने सांगतो—पुष्कळ पंडितानां अग्नीचें आधान विवाहाचे वेळेस करावें असें सांगितलें आहे. चतुर्थी कर्मानंतर दारकाळ सांगितला आहे. दुसऱ्या कित्येक आचार्यांचें असें मत आहे कीं, धनाचा विभाग होतो त्या वेळेस अग्नीचें आधान करावें. तेंच वृत्तशत ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, विवाहाचे वेळीं अग्न्याधान करावें अथवा धनाचा विभाग करावयाचे वेळेस अग्न्याधान करावें. तेंच कात्यायन गृह्यांत सांगितलें आहे कीं, विवाहकाळीं अग्न्याधान करावें अथवा कित्येकांच्या मतानें धनविभागाचे काळीं अग्न्याधान करावें असें आहे. ह्या दोहोंची व्यवस्था भाष्यकारांनीं अशी केली आहे कीं, ज्याला बंधु नाहीत, त्यानें विवाहाचे वेळीं अग्न्याधान करावें आणि ज्याला बंधु आहेत, त्यानें धनाची वाटणी करण्याचे वेळेस अग्न्याधान करावें. स्मृति ग्रंथामध्ये लग्न करून जर अग्नीचें आधान केलें नसेल तर त्याला फारच दोष सांगितला आहे. तेंच सांगतो कीं, विवाह केलेल्या द्विजानें एक क्षणभर सुद्धां अग्न्याधानाशिवाय राहूं नये, जर तो द्विज अग्न्याधानाशिवाय राहिल तर तो ब्राह्म्य क्षणजे संस्कार बाह्य होतो आणि तो पतित झाला. ज्ञातींचे बाहेर होतो. अथवा बापाचे घरीं बापाच्याच स्वयंपाकानें भोजन करणारा अर्थात् बाप आणि आपण एकत्र जेवणारा हा एक, आणि भावांच्या घरीं राहून त्यांच्या पाकानेंच जेवणारा अर्थात् दोघे एकत्र राहणारे असे हा दुसरा, आणि ज्ञाना-करितां अध्ययन करण्यांत तत्पर राहणारा असा हा तिसरा, असे हे तिघे जण अग्न्याधान नसेल तर दूषित होत नाहीत. जो अग्नीची उपासना करीत नाही, तशीच ऋतु कालांही स्त्रीसंग करीत नाही, तो स्त्री असून परदारांबरोबर गमन करण्यापासून होणाऱ्या पापचा भागी आहे असें समजावें. जसें स्नान, जशी संध्या, जसें वेदाध्ययन, तसेंच अग्न्याधान झाले अग्नीचें उपासन सांगितलें आहे. तें न केल्यास स्थिति बरोबर होत नाही. झणून सूत्रकार कात्यायनादिकांनीं विवाहाचे वेळेसच अग्न्याधान सांगितलें आहे. आतां अग्न्याधानाचीं नक्षत्रे सांगतो—द्वीश झाला विशाखा, अग्नि झाला कृत्तिका, ध्रुव झाला उत्तरा झाला उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, आणि रोहिणी हीं चार नक्षत्रे, शाक्र, झाला ज्येष्ठा, पुष्य, मृग, पौष्य झाला रेवती ह्या नक्षत्रांवर अग्न्याधान करावें, तसेंच जलचरराशी ज्या लग्नावर व त्यांच्या नवांशावर नक्षत्रांतलें असें लग्न व नवांश प्यावेत. आतां जलचर राशी कोणत्या तें सांगतो—मकराचा पश्चिमार्ध, कुम्भ, मीन, कर्क हे जलचर आहेत, तसाच चंद्र हाही जलचर आहे. जलचरांनीं राहित अशा लग्नावर व लग्न नवांशावर अग्न्याधान करावें. तेंच वृत्तशत-ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कर्क, मकर, कुम्भ, मीन हे लग्नी असतां अथवा लग्नाचे नवांशावर असतां अथवा कुमुदिनीना-यक झाला चंद्र हा लग्नी असतां जर अग्न्याधान केलें तर तो उत्पन्न झालेलाही अग्नि नाश पावतो. त्याप्रमाणें गुरु, चंद्र,

सूर्य, मंगळ इतके ग्रह सुत ह्य० पंचमस्थान ६ ऋद्धि ह्य० उपचयस्थान ह्य० ३-६-११-१० आणि ९ स्थान व केंद्र ह्य० १-४-७-१० इतक्या स्थानीं असून ते अस्तंगत नसावेत ह्यणजे सूर्याच्या किरणांनीं त्यांचा अस्त नसावा. आणि हे ग्रह आपल्या स्वगृही, आपल्या उच्चस्थानीं, आपल्या मित्रगृहीं असतां अग्न्याधान करावें, वर सांगितलेल्या ग्रहांशिवाय जे दुसरे ग्रह आहेत ते उपचय स्थानीं ह्य० ३-६-११-१० इतक्या स्थानीं असतां आणि लग्न व वित्त ह्यणजे द्वितीयस्थान ह्या दोहोंची शुद्धि असतां ह्यणजे या दोन स्थानावर क्रूर ग्रह नसेल तर तशा वेळीं अग्न्याधान करावें, पूर्वी सांगितलेले आठवा चंद्र इत्यादि त्याज्य भाग टाकावा. तेंच वृत्तशत ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सूर्य, मंगळ, गुरु, चंद्र इतके ग्रह १-४-७-१०-३-६-११-१० इतक्या स्थानीं असावेत आणि बाकीचे ग्रह जर ३-६-११-१० ह्या स्थानीं असतील तर अग्न्याधान करणें शुभकारक आहे. चंद्र हा अष्टमस्थानीं असेल तर स्त्री मरण पावेल, मंगळ अष्टमस्थानीं असेल तर पुरुष मरण पावेल. बाकीचे ग्रह जर अष्टमस्थानीं असतील तर अग्न्याधान करणाऱ्यास रोगाची पीडा होईल. मंगळ, गुरु, चंद्र हे नीच स्थानीं असतां, अथवा शत्रूंचे घरीं असतां, किंवा अस्तंगत असतां अग्न्याधान करूं नये. तेंच संहितासार ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कर्क नक्र, कुंभ, मीन, हे लग्नीं असतां, चंद्र लग्नीं असतां. पापग्रह लग्नीं असतां, द्वितीय स्थानीं पापग्रह असतां, अग्न्याधान करूं नये ॥ १ ॥

॥ इति अग्न्याधान प्रकरण समाप्त ॥

## ॥ वास्तुप्रकरणम् ॥ ६ ॥

ग्रामविचार.

नामर्क्षाद्विसुतांकदिग्भवगतोग्रामः शुभोऽन्योऽन्यथा ।

तत्कोणेंऽत्यभुवां शुभं निवसतां दोषाः परेषामलम् ॥

कन्याकर्किधनुस्तुलाक्रियघटाः कौप्याडिजो याम्यतो ।

मध्येऽन्येन वसंत्यथेद्रककुभो वर्गाः स्युरोजस्विनः ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—घर बांधणाराच्या नांवाची व ज्या गांवांत घर बांधावयाचें त्याच्या नांवाची राशि कोणती हें अवकडडा चक्रावरून काढावें, गृहकर्त्याच्या नामराशि पासून २।५।१।१०।११ इतकी गांवाची नामराशि असल्यास तो गांव शुभ होय. अन्यथा अशुभ जाणावा. रजक, चर्मक, बुरुड इत्यादिकांला ग्रामकोणीं रहाणें शुभ, इतरांला अशुभ होय. दक्षिण दिशेपासून आठ दिशांला क्रमानें कन्या, कर्क, धन, तूळ, मेष, कुंभ, वृश्चिक, मीन ह्या ज्यांच्या राशि असतील त्यांनीं राहूं नये. वृषभ, मिथुन, सिंह, मकर ह्या ज्यांच्या राशि असतील त्यांनीं गांवाच्या मध्ये राहूं नये. अ. क. च. ट. त. प. य. श हे आठ वर्ग पूर्वे पासून आठ दिशेला बलवान होत ॥ १ ॥

अथ गृहप्रकरणं विवक्षुस्तावद्ग्रामविचारमाह-नामर्क्षादिति । नामर्क्षानामराशेः सकाशात् द्विसुतां५क९दिग्१०भव११गतो ग्रामः शुभः स्यात् । अन्य उक्तविपरीतो ग्रामोऽन्यथा स्यादशुभः स्यादित्यर्थः । तदुक्तं ज्योतिःसागरे । एकमे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठ्ये । तुर्याष्टद्वादशे रोगः शेषस्थाने सुखं भवेदिति ॥ एवं ग्रामं शुभाशुभमाभिधायेदानीं ग्रामादिज्ञानियममाह-तत्कोण इति । तत्कोणे तस्य ग्रामस्य कोणेंऽत्यभुवां रजकचर्मकारादीनां निवसतां वसतिं कुर्वतां शुभं स्यात् । रजकचर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च । कैवर्तमेदमिल्लश्च सप्तैते अंत्यजाः स्मृताः ॥ इत्यादीनां ग्रामकोणे शुभं स्यादित्यर्थः । तत्कोणे निवसतां परेषां वर्णानामलमत्यर्थं दोषाः स्युरशुभानि स्युरित्यर्थः । तथा च ज्योतिर्निबन्धे । भवनपुरग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः । श्वपचादयोऽत्यजाद्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायांति ॥ एवं जातीनां शुभाशुभदिग्विभागमुक्त्वा राशिपरत्वेन विशु वसतिमाह-कन्येति । यमाशादितः दक्षिणस्याः सकाशात् क्रमेणाष्टासु दिक्षु कन्याकर्किधनुस्तुलादयो राशयो न वसति अन्ये उर्वरिता मध्ये न वसति । एतदुक्तं भवति । अभीष्टं ग्रामं नवभागं परिकल्प्य मध्यभागदक्षिणभागे कन्या न वसति कन्याराशिना दक्षिणभागे गृहं न कार्य-

मित्यर्थः । तथैव नैर्ऋते कर्कटः पश्चिमे धनुर्वायव्ये तुला उत्तरेऽजो मेष ईशान्या घटः कुंभः पूर्वे कौपीं वृश्चिक आश्विनैऽजो मीनः न वसन्ति अन्ये वृषमिथुनसिंहमकरा मध्यभागे न वसन्ति । एवं राशिपरत्वेन दिङ्निमित्तममुक्त्वेदानीं वर्गपरत्वेन दिङ्निमित्तममाह-अथेति । इन्द्रकुंभः सकाशादष्टसु दिक्षु अप्रमुखा अष्टौ वर्गा अकचटतपयशा इत्येते प्रसिद्धा ओजस्विनो बलवन्तः स्युरित्युरत्तश्लो-केनान्वयः ॥ १ ॥

टीका—आतां गृह प्रकरण सांगण्याच्या इच्छेनें अगोदर गांवाचा विचार सांगतो—नामावरून जी राशि आली असेल, त्या राशीपासून गांवाच्या नांवाची जी राशी असेल ती २-५-९-१०-११ ही राशी येईल, तर तो गांव घर बांधण्यास शुभकारक आहे. ह्या सांगितलेल्या राशी वांचून दुसऱ्या प्रकारचा गाव असेल तर तो अशुभ समजावा. तेच ज्योतिःसागर ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, गांवाची आणि घर बांधणाराची जर एक राशी येईल. अथवा बांधणाराच्या राशीपासून गावाची राशी सातवी येईल तर घर बांधण्यापासून वेर होईल, गांवाची राशी तिसरी आणि सहावी येईल तर हानि होईल. गावाची राशी चवथी, आठवी, आणि बारावी येईल तर रोग होईल. अर्थात् बाकीच्या राशी सुखकारक आहेत. ह्मणजे २-५-९-१०-११ ह्या राशी शुभकारक आहेत. अशा रीतीनें गांवाचें शुभ आणि अशुभ सांगून आतां गांवाच्या दिशेचा नियम सांगतो—त्या गावाचे कोणामध्ये अंत्यजाची ह्मणजे धोबी, चांभार इत्यादिकांची वसति केली असतां त्यापासून शुभ होतें. धोबी, चांभार, नट, वरुड, कैवर्त, भेद, आणि भिल इतके हे सात अंत्यज ह्मणजे चांडाळ आहेत. असें समजावें. ह्या सात प्रकारच्या अंत्यजांशिवाय इतर वर्णांनीं जर कोणामध्ये वसति केली तर त्या वर्णांना अशुभकारक आहे. तेच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, नगराचे कोणांत जर श्रेष्ठ वर्ण राहातील तर त्यांना फारच अशुभ होतें. परंतु त्या कोणामध्ये चांभार, चांडाळ इत्यादि राहातील तर त्यांनाच तो कोण शुभकारक होतो. ह्मणजे त्या कोणांत तेच चांडालादिक वृद्धि पावतात. अशा रीतीनें जातीचे शुभ आणि अशुभ असे दिशेचे विभाग सांगून राशीवरून दिशेचे विभाग सांगतो—कन्या, कर्क, धन, तूळ, मेष, कुंभ, वृश्चिक, मीन ह्या ज्यांच्या राशी असतील त्यांनीं दक्षिणादि आठ दिशेपर्यंत क्रमानें राहूं नये. ह्मणजे कन्या राशी असणाऱ्यानें दक्षिणेस राहूं नये. कर्क राशीच्यानें नैर्ऋतेस राहूं नये. धन राशीच्यानें पश्चिमेस राहूं नये. तुला राशीच्यानें वायव्य दिशेस राहूं नये. मेष राशीच्यानें उत्तरेस राहूं नये. कुंभ राशीच्यानें ईशान्य दिशेस राहूं नये. वृश्चिक राशीच्यानें पूर्वेस राहूं नये. मीन राशीच्यानें आग्नेय दिशेस राहूं नये. ह्या शिवाय बाकीचे वृष, मिथुन, सिंह, मकर, इतक्या राशीच्यांनीं मध्यभागी राहूं नये. अशा रीतीनें राशीवरून दिशेचा नियम सांगून आतां वर्गावरून दिशेचा नियम सांगतो—पूर्व, आग्नेयी, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान्य ह्या आठ दिशांना क्रमानें अ, क, च, ट, त, प, य, श, हे आठ वर्ग बलवान आहेत असें समजावें ॥ १ ॥

काकिणी व भूमीचे वर्ण, रस आणि गंध.

अष्टावप्रमुखाः स्वपंचमपराद्विभ्रः स्ववर्गोऽन्ययुक् ।

तष्टः काकिणिका गजैर्ऽग्निं इमा यस्याधिकाः सोऽर्थदः ॥

श्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधाः स्वादुः कटुस्तित्तकाः ।

काषाया घृतशोणिताभमदिरागंधाः शुभा विप्रतः ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—अ. क. च. ट. त. प. य. श ह्या आठ वर्गांत प्रत्येका पासून पांचवा तो त्याचा शत्रु असतो. जसा अवर्गाचा तवर्ग शत्रु; कवर्गाचा पवर्ग शत्रु इ० आपल्या वर्गाच्या दिशेला किंवा तिच्या जवळच्या दिशेला घर बांधावें. शत्रुवर्गाच्या दिशेला अगर तिच्या जवळच्या दिशेला घर बांधूं नये. गृहकर्त्याच्या वर्गाचा ग्रामवर्ग शत्रु नसावा. गृहकर्त्याच्या वर्गाची दुप्पट करून तीत ग्रामवर्ग मिळवून ८ नीं भागावें, बाकी राहिल त्या गृहकर्त्याच्या काकिणी होतात. ग्रामवर्गाची दुप्पट करून तीत गृहकर्त्याचा वर्ग मिळवून ८ नीं भागावें बाकी त्या ग्रामाच्या काकिणी होतात. ज्याच्या अधिक तो कमी असणाराला द्रव्य देतो. अर्थात् गृहकर्त्याच्या काकिणी कमी असल्या. ब्राह्मणाला शुभ्रवर्णाची, मधुर रसाची, व घृतासारख्या सुगंधाची; क्षत्रियाला आरक्तवर्णाची, कटु हळ० तिखट रुचीची व रक्ताप्रमाणें सुवासाची; वैश्याला पीतवर्णाची, तिक्त हळ० कटु रुचीची व अन्नाप्रमाणें सुगंधाची; शूद्राला काळ्यारंगाची, काषाय ह्मणजे काळ्या सारख्या मिश्र रुचीची व मद्या प्रमाणें वासाची जमीन घर बांधण्याला शुभ जाणावी. मिश्र जातीला मिश्र रंगाची, मिश्ररुचीची व मिश्र सुवासाची जमीन शुभ होय ॥ २ ॥

अष्टाश्रिति । एतदुक्तं भवति अआइईउऊइत्यादिकः षोडशाक्षरो वर्गः पूर्वस्यां बली कादिकः पंचाक्षर आग्नेय्यां चादिको दक्षिणस्यां टादिको नैऋत्यां तादिकः पश्चिमायां पादिको वायव्यां यादिक उत्तरस्यां शादिक ईशान्यां बली । अयमर्थः । स्वनामादिमाक्षराद्वर्गं ज्ञात्वा स्वस्थाने गृहं कार्यमिति भावः । यतः स्वस्वस्थाने प्राणिनो बलवन्त इति लोके प्रसिद्धं किलक्षणा वर्गाः स्वपंचमपराः स्वभ्यः पंचमाः परा वैरिणो येषां ते तथा । यथाऽवर्गस्य पंचमस्तवर्गः सोऽस्य वैरी कवर्गस्य पंचमः पवर्गः सोऽस्य वैरी एवं सर्वेषां वर्गाणां वैरिणो ज्ञातव्या वैरित्वं हि स्वामिवशेन । तदुक्तं भूपालवल्लभे । वर्गेशास्तादृश्यमार्जारसिंहश्वसर्पसूचकाः । इमैषौ पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात्पंचमो रिपुरिति ॥ तस्मात्स्ववैरिवर्गस्य दिशि गृहं न कार्यमिति भावः । अर्थादन्यत्र मध्यमं तत्रापि स्वदिग्वर्गसन्नं शुभं वैरिदिगासन्नमशुभमिति बुद्ध्या ज्ञेयमेवं स्ववर्गग्रामं वर्गयोर्मित्रारिवमवलोक्य वासः कर्तव्य इति । सिद्धं तत्र राशिघटितवर्गघटितयोर्मध्ये राशिघटितं बलवत् । तदुक्तं ज्योतिःसागरे । केऽप्याहुरथ वर्गाणां स्वस्थाने शुभं गृहमिति । अर्थवर्गघटिते काकिणिका आह-द्विप्र इति । स्ववर्गो ग्रामवर्गः वसति कर्तुर्वर्गश्च द्विप्रः द्विगुणितः कार्यः मिथोऽन्ययुगन्यवर्ग युक्तार्थः गजैरष्टभिस्तष्टः शेषितः सन् काकिणिकाः स्युः इमाः काकिणिका यस्याधिकाः सोऽर्थदो धनदाता स्यात् । एवं ग्रामदिहनिग्रममुक्त्येदानीं निर्माणे पत्तनग्रामक्षेत्रादीनां समंततः क्षेत्रमादौ परीक्षेत गंधवर्णरसप्लवैरित्युक्तत्वात् । तावद्वर्णपरत्वेन भूमेर्वर्णरसगंधान् वृत्ताधेनऽऽह-श्वेतेति । श्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधा विमतो ब्राह्मणात्सकाशात् वर्णानां शुभाः शोभनाः स्युः श्वेतवसुधा पृथ्वी ब्राह्मणस्याऽऽरक्तवसुधा क्षत्रियस्य पीतवसुधा वैश्यस्य कृष्णवसुधा शूद्रस्य शोभनेति । अर्थात् मिश्रजातीनां मिश्रा शोभना । तथा च वसिष्ठः । श्वेता शस्ता द्विजेंद्राणां रक्ता भूमिर्महीजुजां । विशां पीता च शूद्राणां कृष्णाऽन्येषां च मिश्रितेति । एवं वर्णमुक्त्येदानीं रसमाह-स्वादुरिति । स्वादुर्मधुरा वसुधा ब्राह्मणस्य शोभना कटुर्मरीचरसा क्षत्रियस्य तिक्तका निंबरसा वैश्यस्य काषाया हरीतकी रसा शूद्रस्य शोभनेति । अर्थांन्मिश्राणां मिश्रा शोभना । तथा च नारदः । मधुरं कटुकं तिक्तं कषायश्च रसाः क्रमात् ॥ एवं रसानुक्त्वा गंधानाह-घृतेति । घृतगंधा ब्राह्मणस्य शोणितगंधा रक्तगंधा क्षत्रियस्यान्नगंधा वैश्यस्य मदिरागंधा मद्यगंधा शूद्रस्य मिश्राणां मिश्रगंधा शुभेत्यर्थः । तथा चोक्तं कारिकायां । घृतासृगन्नमदिरागंधा च क्रमशो भवेदिति ॥ नानाग्रंथेषु रसगंधानां नानात्वं तद्विकल्पतो ब्राह्मं । तथा च नारदः । मधुपेरान्नपिशितगंधवर्णानुपूर्वकं । मधुरं कटुकं तिक्तं कषायश्च रसाः क्रमात् ॥ पेरगंधा कषायगंधा । अन्यत्सुगमं । तथा च कारिकायां । घृतासृगन्नमद्यानां गंधा च क्रमशो भवेत् मधुरा स्यात्कषायाऽम्लकटुका चानुपूर्वश इति ॥ २ ॥

टीकार्थ—अ आ इ ई उ ऊ इत्यादि सोळा अक्षरांचा जो वर्ग आहे, तो पूर्व दिशेस बलवान् आहे, कपासून पांच अक्षरांचा जो वर्ग आहे, तो आग्नेयी दिशेस बलवान् आहे, पांच पासून पांच अक्षरांचा जो वर्ग आहे तो दक्षिण दिशेस बलवान् आहे, ट पासून पांच अक्षरांचा जो वर्ग आहे तो नैऋत्य दिशेस बलवान् आहे, त पासून पांच अक्षरांचा जो वर्ग आहे तो पश्चिम दिशेस बलवान् आहे, प पासून पांच अक्षरांचा जो वर्ग आहे तोच वायव्य दिशेस बलवान् आहे, य पासून जो वर्ग आहे तो उत्तर दिशेस बलवान् आहे, श पासून जो वर्ग आहे तो ईशान्येस बलवान् आहे ह्याचा अर्थ असा कीं, आपल्या नावाच्या पहिल्या अक्षरापासून कोणता वर्ग आहे तें जाणून आपल्या स्थानीं घर करावें, कारण आपण आपल्या स्थानीं प्राणी मात्र बलवान् असतात, ते वर्ग असे आहेत कीं, आपल्यापासून पांचवा वर्ग हा वैरी असतो. जसें-अ-क-च-ट-त-प-य-श ह्या आठ वर्गांमध्ये अ वर्गाचा वैरी तवर्ग आहे. तसाच क वर्गाचा वैरी पवर्ग आहे अशा रीतीनें आपल्यापासून पांचवा वर्ग वैरी समजावा. वैरीपणा हा त्या वर्गाच्या स्वामीपणावरून ओळखावा. तेंच भूपाल वल्लभ ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, वर्गाचे स्वामी अनुक्रमानें गरुड, मांजर, सिंह, कुत्रा, सपें, उंदीर, हत्ती, हरिण असे स्वामी आहेत ह्याणून आपल्या वैन्याचा जो वर्ग असेल त्याच्या दिशेस घर कलें नये. अर्थात् दुसरे ठिकाणीं घर करणें मध्यम आहे, त्यामध्येही आपल्या दिशेच्या वर्गाजवळचें फारच शुभ आहे, वैन्याच्या दिशेजवळचें फारच अशुभ आहे, अशा रीतीनें बुद्धीनें जाणून घ्यावें. अशाच रीतीनें आपल्या वर्गाचा व गांवच्या वर्गाचा जो मित्र आणि वैरी कोण आहे, तें पाहून वास करावा; असें सिद्ध झालें. त्यापैकीं राशीचें घटित आणि वर्ग घटित ह्या दोहोंमध्ये राशीचें घटित फारच बलवान् आहे. तेंच ज्योतिःसागर ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कितीएक असें सांगतात कीं, वर्गाचा आपल्या स्थानीं ब्रह्म करणें हें शुभकारक आहे. आतां वर्गांमध्ये सांगितलेल्या काकिणीका सांगतो—घर करणाऱ्याच्या वर्गाची हुपट

करून तीत ग्रामवर्ग मिळवावा आणि त्याला आठानीं भागावें, बाकी राहिल त्या घर करणाऱ्याच्या काकिणी होतात. ग्राम वर्गाची दुप्पट करून तीत गृह करणाऱ्याचा वर्ग मिळवून त्याला आठानीं भागावें, बाकी राहिल त्या ग्रामाच्या काकिणी समजाव्यात. ह्या काकिणी ज्याच्या अधिक होतील तो कमी असणाराला द्रव्य देतो अर्थात् घर करणाऱ्याच्या काकिणी कमी असल्यात. अशा रीतीने गावाच्या दिशेचा नियम सांगितला, आतां निर्माण करण्याविषयीं शहर, गांव, क्षेत्र इत्यादिकांच्या आसपास क्षेत्र कसे आहे त्याची परीक्षा, गंध, वर्ण, रस, आणि छ्व ह्यांनीं करावी, असें सांगितलें आहे. अगोदर ब्राह्मणादिक चार वर्णांच्या क्रमानें पृथ्वीचा वर्ण, रस, गंध हे अर्थात् वृत्तानें सांगतो—ब्राह्मणाला पांढरी पृथ्वी उत्तम समजावी. क्षत्रियाला लाल वर्णाची पृथ्वी उत्तम जाणावी; वैश्याला पीतवर्णाची पृथ्वी उत्तम असें जाणावें. शूद्राला काळ्या रंगाची पृथ्वी असावी अर्थात् चार वर्णांशिवाय बाकीच्या मिश्र जातीच्या लोकांनां सफेत असावी. तेंच वसिष्ठ सांगतो कीं, ब्राह्मणांनां श्वेत वर्णाची प्रशस्त, क्षत्रियांनां लाल वर्णाची प्रशस्त, वैश्यांनां पिवळ्या वर्णाची प्रशस्त, शूद्रांनां काळ्या वर्णाची प्रशस्त, ह्या शिवाय इतरांना मिश्र वर्णाची पृथ्वी प्रशस्त आहे. अशा रीतीने वर्ण सांगून आतां रस सांगतो—ब्राह्मणाला मधुर रसाची पृथ्वी प्रशस्त आहे, क्षत्रियाला तिखट रसाची पृथ्वी प्रशस्त आहे, वैश्याला निंबरसाची पृथ्वी प्रशस्त आहे, शूद्रांनां तुरट रसाची पृथ्वी प्रशस्त आहे. अर्थात् मिश्र जातीच्यांनां मिश्र रसाची पृथ्वी प्रशस्त आहे. तेंच नारद सांगतो कीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र ह्या चार वर्णांनां क्रमानें मधुर, कटुक, तिक्त, कषाय असे रस प्रशस्त आहेत. अशा रीतीने रस सांगितले. आतां गंध सांगतो—ब्राह्मणाला तूपा सारख्या वासाची पृथ्वी श्रेष्ठ आहे. क्षत्रियाला रक्ता सारख्या गंधाची पृथ्वी श्रेष्ठ आहे. वैश्याला अन्नाच्या सारख्या गंध असलेली पृथ्वी श्रेष्ठ आहे. शूद्राला मर्द्या सारख्या गंध असलेली पृथ्वी श्रेष्ठ आहे. इतर संकर जातींनां मिश्र गंधाची पृथ्वी श्रेष्ठ आहे. तेंच कारिकेत सांगितलें आहे कीं, ब्राह्मणादि चार वर्णांनां क्रमानें तूप, रक्त, अन्न आणि मद्य ह्यांच्या सारख्या पृथ्वी श्रेष्ठ आहेत. नाना प्रकारच्या ग्रंथामध्ये रस आणि गंध हे नाना प्रकारचे आहेत ह्यांनून त्याप्रमाणें विकल्प समजावा. तेंच नारद सांगतो कीं, मधु, कषाय, अन्न, पिशित ह्यांच्या गंधा सारखी पृथ्वी क्रमानें चार वर्णांनां श्रेष्ठ आहे. मधुर, कडु, तिखट, कषाय, हे रसही चार वर्णांनां क्रमानें श्रेष्ठ जाणावेत. तेंच कारिकेत सांगितलें आहे कीं, तूप, रक्त, अन्न, मद्य ह्यांचा गंध असलेली पृथ्वी क्रमानें ब्राह्मणादिकांनां श्रेष्ठ असें जाणावें. मधुर, कषाय, आंबट, कडु ह्याप्रमाणे वर्णांच्या क्रमानें जाणावें ॥ २ ॥

भूमिनियम व शल्यज्ञान.

सौम्यादिषुवभूतले विरचयेद्विप्रादिकोऽग्नयोऽखिले ।

नान्येषां नियमोऽत्र यत्र निखिलाः कुर्युर्गृहं हृत्स्थिरम् ॥

सन्नप्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गमः ।

श्रेष्ठदिग्गतमादिशेत्तु हपयैः शल्यं सुधीर्मध्यतः ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ—ब्राह्मणानें उत्तरेकडे उतरत्या, क्षत्रियांनीं पूर्वेकडे उतरत्या, वैश्यांनीं दक्षिणेकडे उतरत्या आणि शूद्रांनीं पश्चिमेकडे उतरत्या जमिनीवर घर बांधावें. ब्राह्मणानें सर्व दिशेस उतरत्या जमिनीवर घर बांधावें असेंही आहे. इतरांला नियम नाही; तर ज्या ठिकाणीं मन रममाण होईल तेथें सर्वांनीं घर करावें. गृहाविषयीं प्रश्न विचारणाराच्या मुखांतून प्रथम जो वर्ण येईल तो अकटच इत्यादिकांत ज्या वर्गांत असेल त्या वर्गाच्या दिशेस घराच्या जमिनीत शल्य ( हाडे, कोंडा, कोळसे इ० ) आहे असें सांगावें. ह. प. य. हे वर्ण प्रथम आले असतां मध्यमार्गी शल्य सांगावें ॥ ३ ॥

एवं पृथ्वीवर्णादिकमभिधायेदानीं वर्णपरत्वेन भूप्रवृत्तमाह—सौम्यादिषुत्तरादिषु दिक्षु प्लवो निम्लत्वं तस्य तच्च तद्भूतलं च तस्मिन्विप्रादिको ब्राह्मणादिको गृहं विरचयेत् एवं वर्णपरत्वेन-भूप्रवृत्तमुक्त्वा ब्राह्मणस्य विशेषमाहाश्रयोऽखिल इति । अग्नयो ब्राह्मणः अखिले सर्वप्लवे गृहं विरचयेत् । तथा च भृगुः । उदगादिषुवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव । विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्ये षामिति । अथ पक्षांतरमाह—यत्रेति । निखिलाः सर्ववर्णास्तत्र गृहं कुर्युः तत्र कुत्र यत्र भुवि हृत् अंतःकरणं स्थिरं स्यात् अयमर्थः । यस्यां भूमौ अंतःकरणप्राशस्त्यं स्यात् तत्रैव गृहं कर्तव्यमित्यर्थः । तथा च वास्तुशास्त्रे । मनसश्चक्षुषो यत्र संतोषो जायते भुवि । तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति वर्गादि-संमतमिति । अथ शल्यज्ञानं वृत्ताधेनाऽऽह—सन्नप्रश्नेति । सन्नप्रश्नकृतः अत्र गृहं कर्तव्यमित्यादि गृह-

प्रश्नकर्तुंमुखाच्चेद्यदि प्रथमतः वर्गादिवर्णोद्गमः स्यात् वर्गाणां प्रथमाक्षरोदयः स्यात् अकचटतपयशा-  
नामन्यतमाक्षरोद्गमः स्यात्तदा शल्यं तद्दिग्गतं तस्य वर्णस्य दिग्गतं सुधीः आदिशेत् शल्यमत्रास्तीति  
कथयेदित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । गृहसंमितां भूमिं दक्षिणोत्तररेखाभिः समतया नवधा कृत्वा  
वर्गाद्यक्षरैः अकचटतपयशैरष्टभिः क्रमेणाष्टसु पूर्वादिदिक्षु शल्यमादिशेत् । अकारे प्रश्नाद्यक्षरे सति  
पूर्वस्यां दिशि शल्यमादिशेत् ककारे आग्नेय्यां चकारे दक्षिणस्यां इत्याद्यष्टसु दिक्षु अष्टभिरक्षरैरादिशे-  
दित्यर्थः । तु पुनः हपयैस्त्रिभिरक्षरैर्मध्यतो मध्यकोष्ठे शल्यमादिशेत् हपयानां त्रयाणामक्षराणा-  
मन्यतमे प्रश्नाद्यक्षरे सति मध्ये शल्यमादिशेदित्यर्थः । तथा चोक्तं ज्योतिर्निबंधे । स्मृत्वेष्टदेवतां  
प्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरं । गृहीत्वा तु ततः शल्या शल्यं सम्यग्विचार्यते ॥ अकचटतपयशा हपया  
वर्णाः पूर्वादिमध्यांताः । शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतां नाश इति ॥ एतदेव स्पष्टं  
तत्रैवोक्तं । पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् । सार्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥  
आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये । राजदंडो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥ याम्यायां  
दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटिसंस्थितं । नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः ॥ नैऋत्यां दिशि टः  
प्रश्ने सार्धहस्तादधःस्थले । शुनोऽस्थि जायते तत्र बालानां जनयेन्मृतिं ॥ तः प्रश्ने पश्चिमायां तु  
शिशोः शल्यं प्रजायते । सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥ वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषां-  
गाराश्चतुःकरे । कुर्वति मित्रनाशं च दुःखप्रदर्शनं तदा ॥ उर्ध्वादिदिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः ।  
तच्छीघ्रं निर्यनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥ ईशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः । तद्गोधनस्य  
नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ हपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोगात्रे भवेद्धः । नृकपालमथो भस्म लोहं  
तत्कुलनाशकृदिति ॥ ३ ॥

टीका—अशा रीतीने पृथ्वीचा वर्ण इत्यादिक सांगितलें. आतां वर्णाच्या क्रमानें पृथ्वीचा प्रव सांगतो—सौम्य ह्मणजे  
उत्तर इत्यादि दिशेकडे उतरत्या असलेल्या पृथ्वीतलावर ब्राह्मणादिकांनीं घर बांधावें जसें कीं, ब्राह्मणानें उत्तरेकडे उतरत्या  
पृथ्वीवर, क्षत्रियाणें पूर्वेकडे उतरत्या पृथ्वीवर, वैश्याणें दक्षिणेकडे उतरत्या पृथ्वीवर आणि शूद्रानें पश्चिमेकडे उतरत्या  
पृथ्वीवर घर बांधावें. अशा रीतीने ब्राह्मणादिकांना पृथ्वीचा उतरता कोणकोणत्या दिशेचा भाग घ्यावा असें सांगितलें.  
आतां ब्राह्मणाला विशेष सांगतो—ब्राह्मणानें कोणीकडेही उतरत्या अशा पृथ्वीतलावर घर बांधावें. तेंच भृगु सांगतो कीं,  
ब्राह्मणादिक वर्णांना उत्तरेपासून दक्षिण क्रमानें उतरती असलेली पृथ्वी घर बांधण्यास योग्य आहे. आणि ब्राह्मणाला  
पाहिजे तिकडे घर बांधण्यास हरकत नाही. आतां दुसरा पक्ष सांगतो—जेथें आपल्या मनाची प्रसन्नता असेल, तेथें सर्व  
वर्णांनीं घर बांधावें. ह्याचा अर्थ असा कीं, ज्या पृथ्वीवर आपलें मन प्रसन्न होईल तेथेंच घर बांधावें, तेंच वास्तु शास्त्रांत  
सांगितलें आहे कीं, ज्या भूमीवर मनाचा आणि नेत्राचा संतोष होतो त्याच भूमीवर सर्व वर्णांनीं घर बांधावें, असें गर्गा-  
दिकांचें मत आहे. आतां शल्यज्ञान अर्था वृत्तानें सांगतो—येथें घर करावयाचें आहे, असा घराचा प्रश्न करणाऱ्याच्या  
तोडांतून अगोदर निघालेलें अक्षर अ-क-च-ट-त इत्यादि आठ वर्गांपैकीं ज्या वर्गाचें असेल त्या वर्गाची जी दिशा असेल  
त्या दिशेस शल्य आहे असें बुद्धिवानानें सांगावें. ह्याचा अर्थ असा कीं, घराला जेवढी जमीन पाहिजे असेल तेवढी जमीन  
दक्षिण आणि उत्तर बाजूस रेखा काढून सारखेपणानें नव भाग करावेत. अ-क-च अशा ह्या आठ वर्गांच्या पहिल्या अक्ष-  
रानें क्रमानें पूर्वादि आठ दिशेस शल्य आहे असें जाणावें. जसें कीं, प्रश्नाचें पहिलें अक्षर अ असेल तर पूर्वेस शल्य  
सांगावें. ककार पहिलें अक्षर असेल तर आग्नेयी दिशेस शल्य आहे असें सांगावें. चकार पहिलें अक्षर असेल तर दक्षिण  
दिशेस शल्य आहे असें सांगावें. अशा रीतीने आठ अक्षरांवरून आठ दिशेस शल्य आहे असें जाणावें, पुनः ह-प आणि य  
अशीं अक्षरें पहिलीं असतील तर मध्य कोष्ठामध्ये शल्य आहे असें जाणावें. तेंच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं,  
आपल्या इष्ट देवतेचें स्मरण करून प्रश्न विचारणाऱ्याचे प्रश्नाचें आय अक्षर घेऊन त्यावरून शल्य आणि अशल्य ह्यांचा  
उत्तम विचार करावा. अ-क-च-ट-त-प-य-श हे आठ वर्ग पूर्वादि आठ दिशांच्या क्रमानें समजावेत. ह-प-य हे तीन मध्य-  
भागीं शल्य आहे असें सांगणारे आहेत. इतक्यां शिवाय दुसऱ्या दिशेस घर करणाऱ्याचा नाश होतो. हेंच स्पष्ट रीतीनें  
तेथें सांगितलें आहे कीं, प्रश्न करतांना जर प्रश्नाचें आय अक्षर अ हें असेल तर पूर्वेस नर शल्य आहे व तें दीड हात  
प्रमाणावर आहे तें मनुष्याचा नाश करणारें आहे, असें जाणावें. प्रश्नाचें आय अक्षर क असें असेल तर आग्नेयी दिशेस  
खर शल्य आहे आणि तें दोन हातांवर आहे तेथें राजदंड होईल व त्यापासून भय नाहींसें होणार नाहीं. अर्थात् निरंतर  
भय असतें. च असें आय अक्षर असेल तर दक्षिणेस नर शल्य आहे आणि तें कबरेपर्यंत खोल आहे असें जाणावें, तेथें  
घराच्या मालकाचें मरण आहे असें जाणावें व तें मरण पुष्कळ दिवस रोग भोगून येईल. ट असें पहिलें अक्षर असेल



तर नैर्ऋत्य दिशेस कुत्र्याचें शल्य आहे व तें दीड हातावर आहे असें जाणावें त्यापासून बालकांना मरण प्राप्त होईल. त असें पहिलें अक्षर असेल तर पश्चिम दिशेस बालकाचें शल्य आहे आणि तें दीड हातावर आहे असें जाणावें. तेथें गृहाचा स्वामी नेहेमी राहाणार नाही. प असें आय अक्षर असेल तर चार हातांवर कोडा आणि कोळसे आहेत असें जाणावें त्यापासून मित्रांचा नाश आणि दुष्ट स्वप्न पडणें हें होतें. य असें आय अक्षर असेल तर उत्तर दिशेस विप्र शल्य आहे आणि तें कैवरी पेक्षा खाली खोल आहे, त्यापासून लवकर निर्धनत्व प्राप्त होतें. जरी मालक कुबेरासारखा श्रीमान् असेल तरी तो दरिद्री होतो. श असें आय अक्षर असेल तर ईशान्य दिशेस गो शल्य आहे असें जाणावें. तें दीड हातावर आहे असें जाणावें त्यापासून गोधनाचा नाश होतो. ह-प-य अशीं आय अक्षरे असतील तर मध्यभागी छाती इतकें खोल नृकपाल आहे असें जाणावें व भस्म आहे असें जाणावें. त्यापासून त्याच्या कुलाचा नाश होतो ॥ ३ ॥

### भूमिपरीक्षा.

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत् ।

प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम् ॥

ज्ञात्वैवं निखनेद्रुहाधिकभुवं नत्वा जलांतं स्तरो ।

यावद्वा पुरुषस्ततः कपिशिरस्तुल्याश्मभिः पूरयेत् ॥ ४ ॥

श्लोकार्थ—एक हात लांब, एक हात रुंद व एक हात खोल असा खळगा खणावा. त्यांत रात्रीच्या आरंभी ह्मणजे सूर्यास्ताच्या वेळीं भरेपर्यंत पाणी घालावें, रात्र गेल्यावर प्रातःकाळीं त्या खळग्यांत कांहीं पाणी शिल्लक राहिलें तर तें स्थळ घराला शुभ समजावें. सर्व पाणी जिरलें असतां तें स्थळ मध्यम होय. खळग्यांतील जमीन कुटून भेगा पडल्यास तें स्थळ घराला अशुभ जाणावें. याप्रमाणें परीक्षा केल्यावर पूजा व नमस्कार करून, घर बांधावयाचें असेल त्यापेक्षां कांहीं अधिक जमीन पाणी लागेपर्यंत किंवा एक थर संपून दुसरा लागेपर्यंत अथवा एक पुरुष खोल खणावी. नंतर तो खळगा वानराच्या मस्तकाएवढ्या दगडांनीं भरावा ॥ ४ ॥

एवं शल्यमभिधायेदानीं स्थलस्य शुभाशुभज्ञानस्योपायमाह-श्वभ्रमिति । श्वभ्रं गतं हस्तमितं खनेदिहास्मिन् श्वभ्रे निशास्ये रात्रिमुखेऽथ सूर्यास्ते जलं पूर्णं न्यसेत् तच्चेद्यदि प्रातः सजलं स्यात् तदा तत्स्थलं सच्छुभं स्यात् वृद्धिकरं स्यात् । यदि अजलं गतजलं स्यात्तदा मध्यमं यदा स्फाटितं स्फुटितं स्यात्तदाऽसत् नानाविधहानिकरं स्यादित्यर्थः । तथा च नारदः । तथा निशादौ तत्कृत्वा पानीयेन प्रपूरयेत् । प्रातर्दृष्टजले वृद्धिः समं पंके व्रणे क्षय इति ॥ एवं शुभाशुभस्थललक्षणमभिधायेदानीं भूमिशोधनमाह-ज्ञात्वेति । एवमुक्तप्रकारैः स्थानं ज्ञात्वा गृहाधिकभुवं जलांतं यथा भवति तथा खनेत् गृहादधिका गृहाधिका सा चासौ भूश्च तथा तां कल्पितगृहात् किंचिदधिकां भूमिं जलपर्यंतं खनेदित्यर्थः । अधिकखननं शुद्धभूभागे भित्तिरचनार्थं वा इत्यथवा स्तरो यावत्तावत् खनेत् पृथ्वीगर्भे मृत्तेदानां स्तराः संति तत्रान्यस्तरपर्यंतं खनेदित्यर्थः । अथवा यावत्पुरुषस्तमितं वा पुरुषमात्रं खनेत् इदं शक्त्यपेक्षया ज्ञातव्यं पुरुषप्रमाणं पंचारत्नयः । तथा च शुल्वं । पंचारत्निर्दशवितस्तिर्विंशतिशतांगुलः पुरुष इति पंचारत्न्यादयः पुरुषपर्यायाः । किं कृत्वा नत्वा नमस्कृत्य खनेदित्यर्थः । ततस्तदनंतरं तत्खातं कपिशिरस्तुल्याश्मभिः वानरशिरःप्रमाणैः प्रावाणैः पूरयेत् पूर्णं कुर्यात् । तथा च मांडव्यः । जलांतं प्रस्तरांतं वा पुरुषांतमूथापि वा । क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेदिति ॥ तथा च मत्स्यपुराणे । कपिशिर्षप्रमाणैश्च प्रावाणैः पूरयेद्दृढं । खातं तत्र समं कृत्वा ततः प्राचीं प्रसाधयेदिति ॥ खन्यमाने क्षेत्रे यदाप्यते तस्य फलं कारिकायामुक्तं । खन्यमाने यदा क्षेत्रे पाषाणः प्राप्यते यदा । धनायुश्चिरताऽस्य स्यादिष्टकासु धनागमः । कपालांगारकेशादौ व्याधिना पीडितो भवेदिति ॥ ४ ॥

टीकार्थ—अशा रीतीनें शल्य सांगून आतां स्थल शुभ आहे किंवा अशुभ आहे, हें समजण्याचा उपाय सांगतो—एक हात खोल असा खावा खणावा त्यामध्ये रात्रीचे आरंभी ह्मणजे सूर्यास्ताचे सुमारास पाणी भरवें. तें पाणी प्रातःकाळ पर्यंत राहिलें तर तें स्थळ उत्तम शुभकारक समजावें. त्यांतील पाणी जर जिरून गेलें तर तें स्थळ मध्यम आहे असें

समजावें. जर त्या स्थळीं फुटून भेगा पडल्या तर तें नाना प्रकारच्या हानि करणारें आहे असें समजावें. तेंच नारद सांगतो कीं, त्याप्रमाणें ह्मणजे एक हात खोल असा एक खाडा खांदावा. तो रात्रीच्या आरंभीं ह्मणजे सूर्यास्ताचे समर्थी पाण्यानें भरावा. आणि प्रातःकाळीं जर त्यांत पाणी दृष्टीस पडलें. तर वृद्धिकारक समजावें. पाणी जिरून चिखल दृष्टीस पडला तर मध्यम फळ समजावें. भेगा भेगा पडलेल्या दिसल्या तर नाशकारक समजावें. अशा रीतीनें शुभ आणि अशुभ ह्यांचें लक्षण सांगून आतां भूमीचें शोधन सांगतों—अशा रीतीनें स्थान जाणल्यावर घरापेक्षां अधिक खोल अशी जमीन पाणी लागेपर्यंत खणावी. कारण अधिक खणल्यापासून शुद्ध भूमि भाग मिळतो आणि त्यावर रचलेली भित फार मजबूत होते, ह्मणून पुष्कळ खोल खणावें. कारण खालीं पृथ्वीचे स्तर असतात तेथपर्यंत खणावें. कारण कीं, पृथ्वीच्या गर्भीत मृत्तिकेचे नाना प्रकारचे थर असतात ह्मणून थर लागेपर्यंत खणावें. किंवा एक पुरुषपर्यंत खोल खणावें. अथवा आपल्या शक्त्यनुसार खणावें. पांच अरति हें पुरुषाचें प्रमाण आहे. तेंच शुल्ब ह्मणजे पांच अरति ह्मणजे दहा वीती अथवा एकशें वीस अंगुळें इतक्या मानाचा पुरुष समजावा. पंचारति ह्मणजे पुरुष हें परस्पर पर्याय आहेत. आपल्या इष्टदेवतेला नमस्कार करून जमीन खणण्यास आरंभ केला. नंतर तो खणलेला खाडा वानराच्या डोक्या एवढ्या दगडांनीं पुरून टाकावा, तेंच मांडव्य ऋषि सांगतो कीं, पाणी लागेपर्यंत, स्तर लागेपर्यंत अथवा एक पुरुषपर्यंत जमीन खणावी, त्याची शुद्धि करून शल्य पाहून घर बांधण्यास आरंभ करावा. तेंच मत्स्यपुराणांत सांगितलें आहे कीं, तो केलेला खाडा वानराच्या डोक्या एवढ्या दगडांनीं भरावा. तो खाडा बरोबर रीतीनें सारखा करून नंतर प्राची दिशा साधण्याचा यत्न करावा. जमीन खणल्यावर जें सांपडतें त्याचें फळ कारिकेंत असें सांगितलें आहे कीं, जमीन खणतांना जर दगड लागले तर धन आणि आमुष्य ही परिपूर्ण समजावीं. विद्या लागल्या तर धनाची प्राप्ति होते. कोळसे, हाडकें, कवड्या, केंस इत्यादि सांपडतील तर रोगाची पीडा होते ॥ ४ ॥

गृहाचें दिशासाधन व मासादि.

प्राक् साध्योज्जयिनीस्थलाद्यमदिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यंतरात् ।

सौम्ये साग्न्युदयादुदग्ध्रुवमुखादिङ्मूढके स्यान्मृतिः ॥

गेहं माधवपौषफाल्गुननभोमार्गेषु मृद्धानिलैः ।

पाश्यकैज्यवसुध्रुवैः स्थिरतनौ कुर्यात्सुकेंद्राष्टमे ॥ ५ ॥

श्लोकार्थ—उज्जनी नगराच्या दक्षिणेकडील देशांत चित्रा व स्वाती ह्या दोन नक्षत्रांच्या मध्ये पूर्व दिशा समजावी; आणि उत्तरेकडील देशांत जेथें कृत्तिकानक्षत्र उगवतें ती पूर्व समजावी. सर्व देशांत ध्रुव उगवतो ती उत्तर दिशा होय. दिशासाधनाधांचून बांधिलेलें घर मृत्युकारक जाणावें. वैशाख, पौष, फाल्गुन, श्रावण, मार्गशीर्ष ह्या ५ महिन्यांत; मृदुसंज्ञक, स्वाती, शततारका, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा व ध्रुवसंज्ञक ह्या नक्षत्रांवर; स्थिर लग्नांवर आणि १४।७।१०।८ ह्या स्थानीं पापग्रह नसतां घर बांधण्यास आरंभ करावा ॥ ५ ॥

एवं स्थलशुद्धिमभिधायाधुना दिक्साधनमाह—उज्जयिनीस्थलात् यमदिशि दक्षिणस्यां दिशि त्वाष्ट्रानिलाभ्यंतरात्प्राक् साध्या नैररित्वध्याहारः । त्वाष्ट्रं चित्राऽनिलं स्वाती अनयोरंतरं मध्यं तस्मात्प्राची साध्येत्यर्थः । एतदुक्तं भवति संभवे सति रात्रौ प्राङ्मुख उपविश्य युगमात्रोदितां चित्रां नलिकया विलोकयन् नलिकाग्रालंबं भूमिपर्यंतं मुक्त्वा भूमौ चिह्नं कृत्वा तथैवाचलस्तेनैव नेत्रेण स्वातिमवलोकयन् तथैव नलिकाग्रात्सकाशात् लंबं भूमिपर्यंतं मुक्त्वा लंबपाते चिह्नं कृत्वा नेत्रालंबं मुक्त्वा तथैव चिह्नं कुर्यात् एवं चिह्नद्वयं चित्रास्वातीचिह्नयोरञ्जुं तन्मितां धृत्वा रञ्जुप्रांतावेकीकृत्य मध्ये चिह्नं कुर्यात् पुनस्तत्र तथैव प्रसार्य मध्यचिह्ने शंकुं निखाय तस्मात्पश्चिमचिह्नपर्यंतं रञ्जुं प्रसारयेत् तत्प्राचीसूत्रं । एवमुज्जयिन्या दक्षिणतः प्राचीसाधनमुक्त्वाऽथानंतरमुत्तरतः प्राचीसाधनमाह—सौम्य इति । अत उज्जयिन्याः सौम्ये उत्तरभागेऽग्न्युदयात्कृत्तिकोदयात् प्राची साध्या । एतदुक्तं भवति पूर्ववन्नलिकया युगमात्रोदितां कृत्तिकामालोक्य नलिकामूलाग्राभ्यां लंबौ मुक्त्वा भूमौ चिह्नद्वयं कृत्वा तयोरुपरि प्राचीसूत्रं । अथोत्तरसाधनमाह—उदगिति । ध्रुवमुखादुदगुत्तरा दिक् साध्या । इदं सर्वेषां साधारणं । अथ दिङ्मूढत्वे दोषमाह—दिङ्मूढके स्यान्मृतिरिति । स्पष्टम् । तथा चोक्तं देवयजनदीपिकायां । चित्रास्वात्यंतरे श्रोणादक्षिणापथवासिनां

प्राची तु कृत्तिका ज्ञेया उत्तरापधवासिनामिति ॥ श्रोणात् उज्जयिन्याः । तथा च शुल्बं । कृत्तिका श्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदंतरं । एतत्प्राच्या दिशो रूपं युगमात्रोदितं पुर इति ॥ युगप्रमाणं षड्-शीत्यंगुलानि तथा च शुल्बसूत्रं । अंगुलेरथ संमितायाः प्रमाणं तत्राष्टाशीतिशतमीषा चतुःशतमक्षः पक्षः षडशीतियुगं चत्वारोऽष्टकाः शम्येति । तथा च स्फुटप्रकरणे । ध्रुवलंबकरेखाया रेखांतः सौम्ययाम्यहरितौ स्तः । तन्मत्स्यपुच्छमुखतः पश्चिमपूर्वाभिधे विद्यादिति ॥ वृद्धनारदः । प्रासादे सदनं लिंगे द्वारे कुंडे विशेषतः । दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संसाधयद्दिशमिति ॥ अथ केषु मासेषु गृहं कर्तव्यमित्याह-गेहमिति । माधवादिषु मासेषु मृदादिभिर्नक्षत्रैर्गृहं कुर्यात् माधवो वैशाखः पौषफाल्गुनौ प्रसिद्धा नभाः श्रावणः मार्गो मार्गशीर्षः तेष्वित्यर्थः । मृदूनि चित्रानुराधारेवतीमृगा अनिलं स्वाती पाशी वरुणः तद्गं शततारकाऽर्को हस्त इज्यः पुष्यो वसुधनिष्ठा ध्रुवाणि रोहिणी उत्तरात्रयं च तेः स्थिरतनो स्थिरलम्बे किलक्षणे सुकेंद्राष्टमे शोभनानि पापग्रहरहितानि केंद्राष्टमानि यस्य यत्तथा तस्मिन् । अचरभे इति वा पाठः । शर्षं पूर्ववत् ॥ ५ ॥

**टीकाथे**—अशा रीतांने स्थल शुद्ध सांगितली आतां दिशांचें साधन सांगतों—उज्जयनी नगराच्या दक्षिणेस त्वाष्ट्र ह्य० चित्रा आणि अनिल ह्य० स्वाती ह्या दोन नक्षत्रांमध्ये पूर्वदिशा आहे असें जाणावें. ह्याचा अर्थ असा कीं, रात्रीस पूर्वेस तोंड करून बसावें आणि एक युगपर्यंत उदय पावलेलें चित्रा नक्षत्र पहाण्याकारितां नालिकेच्या अग्रापासून जमिनी पर्यंत अंश घेऊन त्या जमिनीवर चिन्ह करावें आणि तसेंच स्थिरपणानें त्याच डोळ्यानें स्वाती नक्षत्र पाहावें आणि त्याप्रमाणेंच नालिकेच्या अग्रापासून लंब घेऊन तो जमिनीपर्यंत सोडावा त्या लंबाचे पातावर चिन्ह करावें आणि तेथे नेत्राचा आलंब करावा. आणि तसेंच चिन्ह करावें अशा रीतांनें दोन केलेलीं चिन्हे आणि चित्रा व स्वाती ह्यांच्या चिन्हांची एक रज्जु तेवढी धरून त्या रज्जुचे पुढलीं अग्रे एकत्र करून त्याच्यामध्ये चिन्ह करावें. पुनः तेथे तसेंच पसरून चिन्हांचे मध्यभागी एक शंकु रोपून त्यापासून पश्चिमकडेच्या चिन्हापर्यंत रज्जु पसरवी, तें प्राची सूत्र जाणावें. अशा रीतीनें उज्जनीच्या दक्षिणेस प्राची साधन सांगितलें. आतां उत्तरेकडेस प्राची साधन सांगतों—उज्जनीच्या उत्तर भागास कृत्तिकेच्या उदयापासून प्राची दिशा साधावी. ह्याचा अर्थ असा कीं, पूर्वी प्रमाणें नालिका यंत्रानें युगपर्यंत उदय पावलेलें कृत्तिका नक्षत्र पाहून नालिकेच्या मूल आणि अग्र ह्या दोहोंपासून लंब जमिनीपर्यंत सोडावेत आणि दोहोंचीं दोन चिन्हे करावीत, त्यावरून प्राची सूत्र जाणावें. आतां उत्तर दिशा साधन सांगतों—ध्रुवाच्या उदयावरून उत्तर दिशा जाणावी. हें सर्व साधारण सांगितलें आहे, आतां दिशा साधल्या शिवाय घर केल्यास दोष सांगतों—दिशांचें साधन केल्या शिवाय घर केल्यास मरण होते हें स्पष्ट आहे. तेंच देवयजन दीपिकेत सांगितलें आहे कीं, उज्जनीचे दक्षिणेस राहणाऱ्यांनीं चित्रा आणि स्वाती ह्यांच्या मध्य भागावरून प्राची दिशा जाणावी. उत्तरेकडेस राहणाऱ्यांनीं कृत्तिका नक्षत्रावरून प्राची दिशा जाणावी. तेंच शुल्बांत सांगितलें आहे कीं, कृत्तिका, श्रवण, पुष्य, चित्रा, स्वातींचें अंतर, हें प्राची दिशेचें स्वरूप आहे, मात्र चित्रा आणि स्वाती युगपर्यंत उदय पावलेलीं असावीं. युगाचें प्रमाण असें आहे कीं, ८६ अंगुल परिमाण समजावें. तेंच शुल्ब सूत्रांत सांगितलें आहे कीं, अंगुलांनीं मोजलें असतां १८८ अंगुलें परिमाणाची ईषा असें नांव आहे, चारशें अंगुलें परिमाणाचें अक्ष नांवाचें आहे. ८६ अंगुलें परिमाणाचें युग हें नांव आहे. चार अष्टकास शम्या असें नांव आहे. तेंच स्फुट प्रकरणांत सांगितलें आहे कीं, ध्रुवाच्या लंब रेखेच्या दोन शेवटांस उत्तर आणि दक्षिण अशा दोन दिशा असतात. त्याच्या मत्स्याच्या पुच्छाच्या बाजूस पश्चिम आणि मुखाचे बाजूस पूर्व अशा दिशा असतात, असें जाणावें. वृद्ध नारद सांगतों कीं, मंदिर, घर, लिंग, द्वार आणि विशेषें करून कुंड ह्यांच्या दिशा जर साधल्या नाहींत आणि तसेंच बांधलें तर कुलाचा नाश होतो, झणून दिशा साधन करावें. आतां कोणत्या महिन्यांत घर करावें तें सांगतों—माधव ह्य० वैशाख, पौष, फाल्गुन, नभा ह्य० श्रावण, मार्ग ह्य० मार्गशीर्ष, इतक्या महिन्यांत मृदु नक्षत्रांवर झणजे चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृग, अनिल ह्य० स्वाती, पाशी ह्य० वरुण त्याचें नक्षत्र शततारका, अर्क ह्य० हस्त, इज्य ह्य० पुष्य, वसु ह्य० धनिष्ठा आणि ध्रुव नक्षत्रें ह्य० तीन उत्तरा, इतक्या नक्षत्रांवर स्थिर लग्न असावें आणि त्या लग्नांत केंद्र स्थानीं आणि अष्टम स्थानीं पाप ग्रह नसावा. अर्थात् १-४-७-१० ह्यास्थानीं व अष्टम स्थानीं पाप ग्रह ह्य० रवि, मंगळ, शनि, राहु आणि केतु हे नसावेत. बाकीचें पूर्वाप्रमाणें जाणावें ॥ ५ ॥

नक्षत्रशुद्धि आणि वृषचक्र.

नो पृष्ठाग्रविधौ न रिक्तकतिथौ नाकारवारांशयो- ।

रुक्तेष्वपि कुंभमीनगविधौ स्तंभोच्छ्रितिं नाऽऽचरेत् ॥

तुर्यात्पंचदशात्रिद्वक्परिमिताद्वेदाब्धिपंच क्रमात् ।

निद्यान्यर्कयुतादि गेहकरणे भानि प्रवेशेऽपि च ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—गृहाच्या मुख्यद्वाराच्या मागे व पुढे चंद्र असतां गृहारंभ करूं नये. सप्तशलाकाचक्रांत कृत्तिकादि ७ नक्षत्रे पूर्वेस, मघादि ७ दक्षिणेस, अनुराधादि ७ पश्चिमेस आणि धनिष्ठादि ७ उत्तरेस अशीं आहेत. गृहारंभाचें दिवसनक्षत्र ज्या दिशेला असेल तिकडेच गृहाचें मुख्य द्वार करावयाचें असतां, त्या घराला मागे व पुढे चंद्र होतो ह्मणून त्या दोन दिशा सोडून अन्य दिशेला गृहाचें मुख्य द्वार करावें. रिक्ता तिथीवर आणि रवि, मंगळ यांच्या वारी व नवांशावर गृहारंभ करूं नये. गृहांचीं उक्त नक्षत्रे असतांही कुंभ व मीन ह्या राशीला चंद्र असतां स्तंभोच्छ्राय (धारण उभा करणें) करूं नये. सूर्यनक्षत्रापासून पुढलीं चवथ्या पासून ४ पंधराव्यापासून ४ तेविसाव्यापासून ५ हीं दिवस नक्षत्रे गृहारंभाला अशुभ आणि गृहप्रवेशालाही अशुभ होत. तात्पर्य सूर्यनक्षत्रापासून ४।५।६।७।१५।१६।१७।१८।२३।२४।२५।२६।२७ हीं नक्षत्रे वृषचक्रांत अशुभ आहेत ॥ ६ ॥

अथोक्तेष्वपि नक्षत्रेषु विशेषमाह—नो पृष्ठाग्रेति । पृष्ठाग्रविधौ सति नो विरचयेत् । एतदुक्तं भवति कृत्तिकादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वस्यां मघादि सप्त दक्षिणस्यामित्यादि सप्तशलाकाचक्रस्थितनक्षत्राणां मध्ये मृद्धानिलादीष्टचंद्रनक्षत्रं यस्मिन् दिग्भागे भवति तद्दिग्मुखे गृहे संमुखश्चंद्रो ज्ञेयः तत्पृष्ठस्थे पृष्ठतो ज्ञेय एवमग्रणे पृष्ठणे वा चंद्रे सति गृहं न कर्तव्यमित्यर्थः । तथा च भृगुः । चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत् । ऋक्षं चंद्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभमिति ॥ तथा च ब्रह्मशंभुः । धनलाभः प्रवासः स्यादायुश्चौरभयं क्रमात् । दक्षाग्रवामपृष्ठस्थे गृहकर्तुर्निशाकर इति ॥ न रिक्तकथितौ स्पष्टं । नाकारवारांशयोरर्कभौमयोर्वारनवांशयोर्न कुर्यात् उक्तक्षेत्रेष्वपि कुंभमीनगविधौ सति स्तंभोच्छ्रितिं नाऽऽचरेत् । अर्थादन्यतस्तर्वमाचरेत् । तथा च मांडव्यः । पंचकेषु च धिष्येषु न कुर्यात्स्तंभमुच्छ्रयं । क्षेत्रसूत्रशिलान्यासं प्राकारादि समाचरेदिति ॥ अथ वृषवास्तुमाह—तुर्यादिति । अर्कयुतादि सूर्यनक्षत्रादि तुर्यात् चतुर्थात् पंचदशात् त्रिद्वक्परिमितात् त्रयोविंशात्सकाशात् क्रमेण वेदाब्धिपंच भानि नक्षत्राणि गृहस्य करणे रचनायां प्रवेशेऽपि निद्यानि स्युः । तथा च व्यवहारसारे । त्रिवेदाब्धित्रिवेदाब्धिद्वित्रिवेदेष्वर्कतः शशी । कुर्याल्लक्ष्मीं समुद्रासं स्थैर्यं लक्ष्मीं दरिद्रतां ॥ धनं व्याधिं क्रमान्मृत्युं प्रवेशारंभयोर्वृष इति ॥ ६ ॥

टीकार्थ—आतां पूर्वी सांगितलेल्या नक्षत्राविषयीं विशेष सांगतो—घराचे पुढे व मागे चंद्र असतां गृहाचा आरंभ करूं नये. ह्याचा अर्थ असा कीं, सप्तशलाका चक्रामध्ये कृत्तिकापासून ७ नक्षत्रे पूर्वेस आहेत. मघादि सात नक्षत्रे दक्षिणेस आहेत. अनुराधादि सात नक्षत्रे पश्चिमेस आहेत. धनिष्ठादि सात नक्षत्रे उत्तरेस आहेत. या सप्तशलाका चक्रांत असलेल्या नक्षत्रांमध्ये मृदु आणि स्वाती ह्या नक्षत्रांपासून इष्ट चंद्राचें नक्षत्र ज्या दिशेच्या भागां असेल, त्या दिशेच्या मुखाचे भागां घराला संमुख चंद्र आहे असें जाणावें. त्या दिशेच्या पाठीमागे असलेला चंद्र पृष्ठभागी आहे असें जाणावें. अशा रीतीने चंद्र अग्रभागी व पृष्ठभागी असतां घर करूं नये. तेंच भृगु सांगतो कीं, सप्तशलाकाख्य नांवाच्या चक्रांत कृत्तिकादि नक्षत्रे ठेवावीत. तें नक्षत्र चंद्राचे पुढे व पाठीमागे असेल तर तें शुभकारक नाही असें समजावें. तेंच ब्रह्मशंभु सांगतो कीं, गृह करणाऱ्या मनुष्याचे घराचे दक्षिणेस अग्रभागी, वामभागी, आणि पृष्ठभागी चंद्र असेल तर क्रमानें धनलाभ, प्रवास, आयुष्य, चोरभय अशीं होतात, ह्मणजे दक्षिणेस चंद्र असेल तर धनलाभ होतो, अग्रभागी चंद्र असेल तर प्रवास होतो, वाम भागी चंद्र असेल तर आयुष्य वृद्धि होते. पृष्ठ भागी चंद्र असेल तर चोराचें भय होतें. घर बांधावयाचें तें रिक्तातिथीवर करूं नये. अर्क ह्म० रविवार, आर ह्म० मंगळवार व त्यांच्या नवांशावर घर करूं नये. सांगितलेल्या नक्षत्रांवरही, चंद्र कुंभ, मीन ह्या राशीवर असतां स्तंभ उभारूं नये. अर्थात् बाकी सर्वत्रकारच्या ठिकाणीं घर बांधावें. तेंच मांडव्य सांगतो कीं, पंचक नक्षत्र असतां स्तंभाचें उभारणें करूं नये परंतु त्यांवर क्षेत्र, सूत्र, शिला ह्यांचा न्यास आणि प्राकार इत्यादि करावें. आतां वृष वास्तु सांगतो—सूर्य नक्षत्रापासून पुढलीं चवथ्यापासून ४ पंधराव्यापासून ४ तेविसाव्यापासून ५ हीं दिवस नक्षत्रे घर करण्यास निंध आहेत. सूर्य नक्षत्रापासून ४-५-६-७-१५-१६-१७-१८-२३-२४-२५-२६-२७ हीं नक्षत्रे वृष चक्रांत अशुभ आहेत. तेंच व्यवहार सारांत सांगितलें आहे कीं, सूर्यापासून चंद्र ३-४-४-३-४-४-२-३ ह्या नक्षत्रांवर क्रमानें लक्ष्मी, समुद्रास, स्थैर्य, लक्ष्मी, दरिद्रता, धन, व्याधि, मृत्यु इतकीं होतात ॥ ६ ॥

गृहद्वारनियम व आयसाधन.

शेते भाद्रपदात्रिषु त्रिषु सुरः प्रागादिशीर्षोऽत्र हि ।  
 प्रोक्तं सन्नमुखं तु गोल्यजघटेष्वर्के यमोदङ्मुखम् ॥  
 हृद्रोगैणकुलीरलेयगरवौ पूर्वापरास्यं गृहं ।  
 नान्यस्थे भुजकोटिघात इभहृच्छेषं स्युरायाः क्रमात् ॥ ७ ॥  
 पूर्वादिध्वजधूमसिंहशुनकोक्षाणः खरेभोष्ट्रकाः ।  
 धार्याः स्वस्वपदे ध्वजोऽखिलमुखः प्राग्याम्यवक्रो गजः ॥  
 प्रागास्यो वृषभो विवारुणमुखः सिंहः प्रशस्ता इमे ।  
 धूमोऽग्नेः शुनकोऽस्त्यजस्य खगपस्योष्ट्रोदृपत्न्याः खरः ॥ ८ ॥

श्लोकार्थ—भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक ह्या ३ मासांत पूर्वेस; मार्गशीर्ष, पौष, माघ ह्या ३ त दक्षिणेस; फाल्गुन, चैत्र, वैशाख ह्या ३ त पश्चिमेस; ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण ह्या ३ मासांत उत्तरेस मस्तक करून वास्तु-पुरुष निजतो. ज्या मासांत ज्या दिशेस वास्तुपुरुषाचें मस्तक असेल, त्या दिशेकडे गृहाचें द्वार करावें. वृषभ, वृश्चिक, मेष तूळ, ह्या राशींला सूर्य असतां दक्षिणेस किंवा उत्तरेस घराचें दार करावें. कुंभ, मकर, कर्क, सिंह, ह्याला सूर्य असेल तेव्हां पूर्वेस किंवा पश्चिमेस गृहद्वार करावें. अन्यराशींस ह्यणजे मिथुन, कन्या, धन, मीन ह्या राशींला सूर्य असतां घर बांधूं नये. घराची लांबी व रुंदी ह्यांचा गुणाकार करून त्याला ८ नीं भागावें. बाकी उरल ते आय होतात. ( उदाहरण—घराची लांबी २७ हात, रुंदी १५ हात ह्या दोहोंचा गुणाकार ४०५ त्याला ८ नीं भागून बाकी ५ हा घराचा आय होय. ) बाकी १ असतां ध्वज, २ धूम, ३ सिंह, ४ श्वान, ५ वृषभ, ६ गर्दभ, ७ गज, ८ उष्ट्र आय. हे पूर्वादि आठ दिशेला क्रमानें बलवान् असतात. हे आय त्यांच्या नांवाच्या अर्थाप्रमाणें योजावे. ध्वज आय असतां सर्व दिशेकडे घराचें दार करावें. गज आय असतां पूर्वेस व दक्षिणेस गृहद्वार करावें. वृषभ आय असतां पूर्वेस द्वार करावें. सिंह आय असतां पश्चिमेवांचून सर्व दिशेस द्वार करावें. ध्वज, सिंह, वृषभ, गज हे ४ विषम आय सर्वांला शुभ होत. अग्नि गृहाला धूम आय शुभ, अंत्यजाच्य घराला श्वान आय शुभ, पक्ष्यांचें पालन करणाराच्या गृहाला उष्ट्र आय शुभ आणि वेश्येच्या गृहाला गर्दभ आय शुभ होय ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ चतुर्धाद्वारनिर्णयमाह—शेत इति । भाद्रपदात् त्रिषु त्रिषु मासेषु सुरो वास्तुपुरुषः प्रागादिशीर्षः शेत इति । एतदुक्तं भवति भाद्रपदादिमासत्रये पूर्वशीर्षः मार्गशीर्षादिमासत्रये दक्षिणशीर्षः फाल्गुनादिमासत्रये पश्चिमशीर्षः ज्येष्ठादिमासत्रये उत्तरशीर्षो वास्तुपुरुषः शेत इति । अत्र यस्यां शीर्षं तस्यां दिशायां सन्नमुखं गृहमुखं प्रोक्तं । अथ संक्रांतिपरत्वेन मुखनिर्णयमाह—गोल्यजेति । गोल्यजघटेष्वर्के सति यमोदङ्मुखं गृहं कार्यं गौः वृषः अलिर्वाश्चिकः अजो मेषः घटस्तुला एषु राशिषु अर्के सूर्ये सति यमोदङ्मुखं दक्षिणामुखं उत्तरामुखं वा गृहं कार्यमित्यर्थः । हृद्रोगैणकुलीरलेयगरवौ सति पूर्वापरास्यं हृद्रोगः कुंभः एणो मकरः कुलीरः कर्कटः लेयः सिंह एतान् गच्छति स तथा स चासौ रविश्च तस्मिन्सति पूर्वापरास्यं पूर्वमुखं पश्चिममुखं वा गृहं कार्यं अन्यस्थेऽन्यराशिस्थे रवौ सति गृहं न कार्यं । अथाऽऽयपरत्वेन गृहमुखनिर्णयं विवक्षुस्तावदायसाधनमाह—भुजेति । भुजकोटिघात इभहृच्छेषं आयाः स्युः भुजो गृहदैर्घ्यविस्तारयोरन्यतमस्य नाम तदन्या कोटिः । तथा च लीलावत्यां । इष्टो बाहुर्यस्यां तत्स्पार्धिन्यां दिशीतरो बाहुः । इत्यस्ते चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्जैरिति ॥ तयोर्घातो गुणनं इभहृच्छेषं पूर्वादि यथास्यात्तथा ध्वजादय आयाः क्रमात्स्युः ॥ ७ ॥ पूर्वादिषु ध्वजादयो बलिष्ठा इति भावः एते ध्वजादयः स्वस्वपदे स्वस्वस्थाने । ध्वजः पूर्वं धूम आग्नेय्यामित्यादि धार्याः अयमर्थः । मुख्यगृहापेक्षया दिक्षु वक्ष्यमाणगृहेषु धार्या इत्यर्थः । अथवा स्वसदृशवस्तुषु धार्योऽथवा स्वसदृशवस्तुगृहेषु धार्योऽ-

थवा क्रूरकर्मसाधनवस्तुषु पराक्रमिणो धार्योऽथवा स्वसदृशवस्तुसत्त्वोपजीविनां गृहेषु धार्योऽथवा स्वानुरूपवस्तुसाध्यहितवस्तुगृहेषु यथायोग्यं धार्या इत्यर्थः । एतत्स्पष्टमुक्तं वास्तुप्रदीपे । खेटकर्पटकोटेषु वृषः सिंहो गजः शुभः । वापीकूपतडागादौ गजो देवो विचक्षणैः ॥ आसने योजयेत्सिंहं शयने चैव कुंजरं । वृषं भोजनपात्रे च दद्याच्छालादिषु ध्वजं ॥ महानसेऽग्निशालायां गृहे चान्युपजीविनां । धूमं दद्यात्तथा श्वानं यवनांत्यजयोर्गृहे ॥ खरो वेद्यागृहे योज्यो ध्वांश्चः पक्षिपतेर्गृहे । वृषं सिंहं गजं दद्यात् प्रासादे पुरमंदिरे ॥ तथा च शिल्पशास्त्रे । वस्त्रजे धर्मशालायां कुंभे स्तंभे ध्वजे ध्वजः ॥ गोगर्जौ भूगृहे चैव साधारणगृहे शुभौ । यंत्रे शस्त्रे रथे सिंहो भांडागारे शुभो गजः ॥ धान्यांबुस्थानगोश्वेभः शालायां वृषभः शुभः । नाट्यभागोद्वाहवेद्यां गजसिंहवृषाः शुभा इत्यादि ॥ एवमायसाधनमुक्त्वेदानीं तेषां मुखान्याह-ध्वजोऽखिलमुखः सर्वदिग्द्वारः प्राग्याम्यवक्रो गजः सुगमं । प्रागास्यो वृषभः आस्यं मुखं प्राङ्मुखो वृषभः स्पष्टं । विवारुणमुखः सिंहः वरुणस्यायं वारुणो दिग्विभागः पश्चिमदिक् विगतः वारुणो येभ्यस्तत्र मुखं यस्य स तथा पश्चिमदिशं विना सर्वदिग्द्वार इत्यर्थः । यो यो यद्दिग्मुख आयस्तत्संभूतगृहस्य तत्तद्दिशि मुखं कर्तव्यमित्यर्थः । एवं आयपरत्वेन गृहमुखमुक्त्वा प्रसंगेनाऽऽयानां शुभत्वमाह-प्रशस्ता इमे इति । इमे चत्वार आयाः प्रशस्ताः सर्वेषां शुभा अर्थादन्ये चत्वारः समा आया अप्रशस्ताः । तथा च गर्गः । कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखं । रोगश्चेति गृहारंभे ध्वजादीनां फलं क्रमादिति ॥ अथ दुष्टेषु समये विशेषमाह-धूमोऽग्नेरिति । अग्नेर्गृहे धूमो धूमायः प्रशस्तः । अंत्यजस्य शुनकः प्रशस्तः । खगपस्य पक्षिपालकस्य उष्ट्रः प्रशस्तः । अट्टपत्न्या वेद्याया गृहे खरः खरायः प्रशस्तः ॥ ८ ॥

टीकाार्थ—आतां चार प्रकारांनं द्वाराचा निर्णय सांगतो—भाद्रपद, आश्विन आणि कार्तिक ह्या तीन महिन्यांमध्ये वास्तु पुरुष पूर्वेस डोकें करून निजतो, मार्गशीर्ष, पौष आणि माघ ह्या तीन महिन्यांमध्ये दक्षिणेस डोकें करून निजतो. फाल्गुन, चैत्र आणि वैशाख ह्या तीन महिन्यांत पश्चिमेस डोकें करून निजतो. ज्येष्ठ, आषाढ आणि श्रावण ह्या तीन महिन्यांत उत्तरेस डोकें करून निजतो. आतां ज्या दिशेस वास्तु पुरुषाचें डोकें असतें त्या दिशेस घराचें तोंड करावें असें सांगितलें आहे. आतां संकातीवरून मुखाचा निर्णय सांगतो—वृषभ, वृश्चिक, मेष, तूळ ह्या राशीला सूर्य असतां घराचें तोंड दक्षिणेस अथवा उत्तरेस करावें ह्मण ह्म० कुंभ, एण ह्म० मकर, कुलीर ह्म० कर्क, लेय ह्म० सिंह अर्थात् कुंभ, मकर, कर्क, सिंह ह्या राशीला सूर्य असेल तर घराचें तोंड पूर्वेस अथवा पश्चिमेस करावें. ह्या शिवाय अन्य राशीवर सूर्य असेल तर घर करू नये. आतां आय घेऊन घराचें तोंड करण्याचा निर्णय करण्याच्या इच्छेनें अगोदर आयाचें साधन सांगतो—घराची लांबी व रुंदी ह्यांचा गुणाकार करून त्याला ८ नीं भागून जी बाकी राहील ते आय होतात. भुज हा घराची लांबी व रुंदी ह्या दोहोंपैकीं एकास लागणारा आहे. ह्याहून दुसरी ती कोटि समजावी. तेंच लांबावती ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, जीमध्ये इष्ट हा भुज आहे त्याचे दुसरीकडचा बाहु आहे, त्रिकोणी व चतुष्कोणी घरामध्ये ती कोटि समजावी. असें विद्वानांचें मत आहे. त्या कोटीचा आणि भुजाचा गुणाकार केल्यावर त्याला आठोनीं भागून ध्वज इत्यादि आय क्रमानें होतात ॥ ७ ॥ पूर्व इत्यादि दिशामध्ये ध्वज इत्यादि बलिष्ठ आहेत. ते ध्वजादिक आपापल्या स्थानीं बलवान् आहेत. जसे पूर्वेस ध्वज प्रबळ आहे. धूम आग्नेयी दिशेस प्रबळ आहे. असें समजावें. ह्याचा अर्थ असा कीं, मुख्य घरापेक्षां बाकीच्या सर्व दिशामध्ये पुढें सांगायच्या घरांमध्ये धार्य आहेत, जसें पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें आठोनीं भागून बाकी १—असतां ध्वज २ असतां धूम ३ असतां सिंह ४ असतां श्वान ५ असतां वृषभ ६ असतां गर्दभ ७ असतां गज ८ असतां उष्ट्र असे हे आय होत. हे पूर्वादि आठ दिशेस क्रमानें बलवान् आहेत. ते आपल्या सारख्या वस्तूविषयीं योजावेत. अथवा आपल्या सारख्या प्राण्यांच्या घरामध्ये योजावेत किंवा क्रूरकर्माचे साधनभूत वस्तूविषयीं योजावेत. अथवा पराक्रमी पुरुषांनं योजावेत; किंवा आपल्या सारख्या वस्तु असलेल्या सत्त्वावर उपजीवन करणाऱ्याच्या गृहामध्ये योजावेत. किंवा आपल्याला अनुसरून असलेल्या वस्तूनीं साध्य अशा हितकारक वस्तूच्या घरांमध्ये योजावेत. त्या आयांच्या नांवाप्रमाणें यथायोग्य रीतीनें त्या त्या घरांच्या ठिकाणीं त्याची योजना करावी. हेंच सर्व वास्तु प्रदीप ग्रंथांत स्पष्ट रीतीनें सांगितलें आहे कीं, खेट, कर्पट आणि कोट ह्या ठिकाणीं वृष, सिंह आणि गज हे शुभकारक आहेत. वापी, कूप, तलाव इत्यादि-कांविषयीं गज हा शुभकारक आहे असें विद्वानांचें मत आहे. आसनावर सिंहाची योजना करावी. बिछान्यावर हत्तीची योजना करावी, भोजन पात्रावर वृषाची योजना करावी. शालादिकांवर ध्वजाची योजना करावी. स्वर्यपाक घर, अग्नि-शाळा, घरामध्ये अग्नीवर उपजीवन करणाऱ्यांनीं धूम आयाची योजना करावी. यवन आणि अंत्यज ह्यांच्या घरावर



श्वान नामक आयाची योजना करावी. वेद्यांच्या घरावर खराची योजना करावी. पक्षिपतीच्या घरावर घ्वांक्षाची योजना करावी, प्रासाद, पुरमंदिर ह्या दोहोंविषयी वृष, सिंह, गज ह्यांची योजना करावी, तेंच शिल्पशास्त्रांत सांगितलें आहे कीं, वखांची शाळा, धर्मशाळा, कुंभ, स्तंभ, ध्वज ह्या विषयी ध्वज हा श्रेष्ठ आहे, भूगृह, आणि साधारण ग्रह ह्या विषयी गो ह्या वृष आणि गज हे शुभकारक आहेत, मंत्र, शस्त्र, रथ ह्या विषयी सिंह हा श्रेष्ठ आहे. भांडागाराविषयी हत्ती हा शुभ आहे. धान्य स्थान, उदक स्थान या दोहोंविषयी वृष, हत्ती हे शुभकारक आहेत. शाळेविषयी वृषभ हा शुभकारक आहे. नाट्यगृह आणि विवाहाची वेदी ह्या दोहोंविषयी गज, सिंह, वृष हे शुभकारक आहेत. अशा रीतीने आयाचें साधन सांगितलें, आतां त्यांचीं मुखें सांगतो—ध्वज आय असतां सर्व दिशेकडे घराचें तोंड करणें शुभ आहे. गज आय असतां पूर्वेस व दक्षिणेस तोंड करणें शुभ आहे. वृषभ आय असेल तर पूर्वेस तोंड करणें शुभ आहे. सिंह आय असतां वारुण ह्या पश्चिम दिशा त्या शिवाय पाहिजे त्या दिशेस तोंड करणें शुभ आहे. ज्या ज्या आयाचें तोंड ज्या ज्या दिशेस असेल त्यावर उत्पन्न झालेल्या घराचें तोंड त्या दिशेस करावें. अशा रीतीने आय घेऊन घराचें तोंड सांगितलें, आतां प्रसंगोपात आयाचें शुभत्व सांगतो—हे चार फारच प्रशस्त आहेत, अर्थात् बाकीचे चार आय अप्रशस्त असे जाणावे. ध्वज, सिंह, वृषभ, गज हे सर्व कर्मांला शुभ आहेत. तेंच गर्ग सांगतो कीं, कीर्ति, शोक, जय, वैर, धन, निर्धनत्व, सुख, रोग हीं ध्वज इत्यादि आठ आयांचीं फळे आहेत. आतां दुष्ट समय असतांही विशेष सांगतो—अग्नि घराला धूम आय श्रेष्ठ आहे. अंत्यजाचे घराला श्वान आय प्रशस्त आहे. पक्ष्यांच्या पतीला उष्ट्र आय प्रशस्त आहे. वेद्येच्या घराला खर हा आय प्रशस्त आहे ॥ ८ ॥

राशिपरत्वे द्वारदिशा, गृहनक्षत्र व व्यय.

प्राहुः प्राङ्मुखं तं यवृश्चिककुलीराणां प्रचेतोमुखम् ।

जूकोपांत्यगवां यमास्यमबलायुगमैणकानां हितम् ॥

सौम्यास्यं गृहमाद्यसिंहधनुषामत्रेष्टकाष्ठाननम् ।

कृत्वाऽऽप्तान्यककुब्जगवाक्षवदनं तत्कार्यमास्यं न सत् ॥ ९ ॥

कोणाध्वभ्रमकूपकर्मतरुद्धाः स्तंभदेवेक्षितम् ।

सन्नौच्यद्विगुणाधिकांतरभवे वेधे न दोषः किल ।

अष्टमे गृहभूफले भविहृते शेषं गृहक्षं भवे- ।

दक्षे सर्पहृते व्ययो गृहमसत्स्वल्पायभूरिव्ययम् ॥ १० ॥

श्लोकार्थ—ज्यांच्या मीन, वृश्चिक, कर्क ह्या जन्मराशि असतील त्यांच्या घराचें दार पूर्वेस; तूळ, कुंभ, वृषभ ह्या असतील त्यांचें पश्चिमेस; कन्या, मिथुन, मकर ह्या असतील त्यांचें दक्षिणेस आणि भेष, सिंह, धन ह्या जन्मराशि असतील, त्यांच्या घराचें दार उत्तरेस करावें. याप्रमाणें राशिपरत्वे ज्या दिशेला दार करावयाचें तिकडे करण्याची कोणत्याही अडचणीमुळें सोय नसेल तर, पाहिजे त्या दिशेला मुख्यद्वार करून राशिपरत्वे आलेल्या दिशेकडे एक खिडकी लावावी. भिंतीचा कोन; मार्ग, फिरणारें यंत्र (घिरट, कुंभाराचें चाक वगैरे) विहीर, चिखल, कोणताही वृक्ष, दुसऱ्याचें दार, खांब, देव हीं दारासमोर असतां अशुभ होत. घराच्या उंचीच्या दुपटीपेक्षां अधिक अंतरावर असतां दोष नाही. लांबी रुंदीच्या गुणाकाराला क्षेत्रफल हणतात. घराच्या क्षेत्रफळाला ८ नीं गुणून २७ नीं भागावें बाकी राहिल तें घराचें नक्षत्र जाणावें. नक्षत्राला ६ नीं भागून बाकी राहिल तो व्यय समजावा. अल्प आय आणि अधिक व्यय असें घर अशुभ होय. ( उदाहरण—लांबी २७ रुंदी १५ ह्यांचा गुणाकार ४०५ हें क्षेत्रफल त्याला ८ नीं गुणून गुणाकार ३२४० त्याला २७ नीं भागून बाकी शून्य हणून घराचें रेवती नक्षत्र आहे. त्याला ( नक्षत्राला ) ८ नीं भागून बाकी ३ व्यय आला ) ॥ ९ ॥ १० ॥

एवमायपरत्वेन गृहमुखमुक्त्वाऽधुना राशिपरत्वेनाऽऽह—अंत्यवृश्चिककुलीराणां प्राङ्मुखं गृहं हितं प्राहुः अंत्यो मीनः वृश्चिकः प्रसिद्धः कुलीरः कर्क एषामित्यर्थः । जूकोपांत्यगवां प्रचेतोमुखं पश्चिमाभिमुखं जूकस्तुला उपांत्यः कुम्भः गौर्वृष एषामित्यर्थः । बलायुगमैणकानां यमास्यं दक्षिणामुखं

अबला कन्या युग्म मिथुने एणो मकरः एषामित्यर्थः । आद्यसिंहधनुषां सौम्यास्यं आद्यो मेषः सिंहधनुषी प्रसिद्धे एषां सौम्यास्यं उत्तरामुखं गृहं हितं प्राहुराचार्याः । एवं चतुर्थी गृह-मुख मभिधायेदानीं तन्निर्णयमाह-अत्रेष्टकाष्ठाननमिति । गृहमुखपक्षेषु शोभावकाशानुरूपं इष्टकाष्ठाननं इष्टदिग्मुखं कृत्वा तद्गृहं आत्मान्यककुब्जगवाक्षवदनं कार्यं । आत्माश्च ता अन्यककुब्जश्च तासु गवाक्षा एव वदनानि यस्य तत्तथा उर्वरितपक्षत्रयप्राप्तदिक्षु गवाक्षाः कार्या इत्यर्थः । तथा च वास्तुशास्त्रे । द्वारं चतुर्विधं प्रोक्तं वास्तुसंक्रांतिभावजं । कृत्वा चान्यतमं मुख्यं गवाक्षाद्यैः पराणि चेति ॥ आस्यमिति । आस्यं गृहस्य मुखं कोणस्तंभादिभिर्विद्धं न सत्स्यात् ॥ ९ ॥ एवं गृहमुखनिर्णयमुक्त्वाऽधुना कोणादिविद्धमुखस्य दोषं तदपवादं चाऽऽह-कोणाध्वेति । कोणो भित्तिकोणः । अध्वा मार्गः । भ्रमो भ्रमयंत्रं घरट्कुलालचक्रादि । कूपः प्रसिद्धः । कर्दमः स्नाना-दिजनितो निरंतरस्थायी । तरुर्वृक्षः द्वाः द्वारांतरं स्तंभः प्रसिद्धः देवः स्थावर एभिर्विद्धं मुखं सत्स्यादित्यर्थः । अथास्यापवादमाह-सन्नोच्येति । सन्नोच्यद्विगुणाधिकांतरभवे वेधे न दोषः सन्नो गृहस्य औच्यं तस्यापेक्षया द्विगुणाधिकांतरभवे द्विगुणाधिकांतरे जाते वेधे कोणादिवेधे-न दोषोऽर्थाच्युने दोषः किलेत्यागमे निश्चये वा । तथा चाऽऽगमांतर उक्तं । मार्गतत्कोणकूपभ्रम-विद्धमशुभं द्वारं । सन्नोच्छ्रयात् द्विगुणां त्यक्त्वा भूमिं न दोषायेति ॥ कात्यायनगृह्यकारिकायाम-प्युक्तं । विद्धं कूपतरुस्तंभं पथपंकैः सदैवतैः । तद्वारमशुभं प्रोक्तमप्युच्चं नीचमेव चेति ॥ अथ गृहनक्षत्रानयनं व्ययानयनं चाऽऽह-अष्टम इति । गृहभूकले गृहक्षेत्रफलेऽष्टमेऽष्टगुणिते भवि-हते सप्तविंशतिहते सति शेषं गृहक्षेत्रं गृहनक्षत्रं भवेत् । ऋक्षे सर्पहतेऽष्टहते सति शेषं व्ययो भवेत् । एवमायव्ययावभिधायधुना तत्फलं विशेषणद्वाराऽऽह-गृहमसदिति । स्वल्पायभूरिव्ययं गृहम सदशुभं स्यात्स्वल्पायश्च भूरिव्ययश्च तौ यस्मिस्तत्तथाऽर्थाद्ब्रह्मायल्पव्ययं शुभम् ॥ १० ॥

टीकाथ—अशा रीतीने आय घेऊन गृहाचें मुख सांगितलें, आतां राशिवरूनही गृहाचें मुख कसें कसें आहे तें सांगतों—मीन, वृश्चिक, कर्क ह्या ज्यांच्या जन्म राशि असतील त्यांच्या घराचें तोंड पूर्वेस करणें हितकारक आहे. जूका ह्यो तूळ, उपांत्य ह्यो कुंभ, गो ह्यो वृष, तूळ, कुंभ आणि वृष ह्या ज्यांच्या जन्म राशि असतील त्यांच्या घराचें तोंड पश्चिमेस करणें हितकारक आहे. अबला ह्यो कन्या, युग्म ह्यो मिथुन, एण ह्यो मकर ह्या ज्यांच्या जन्म राशि आहेत त्यांच्या घराचें तोंड दक्षिणेस करणें हितकारक आहे. आय ह्यो मेष, सिंह आणि धनु ह्या ज्यांच्या जन्मराशि आहेत, त्यांच्या घराचें तोंड उत्तरेस करणें हितकारक आहे. अशा रीतीने चार प्रकारांनीं गृहाचें मुख सांगितलें. आतां त्याचा निर्णय सांगतों—ह्याप्रमाणें आपल्याला शोभा वगैरे मिळण्याच्या सोई प्रमाणें इष्ट दिशेस मुख करावयाचें कांहीं अडचणीमुळे न झाल्यास त्या घराची एखादी खिडकी सांगितलेल्या प्रमाणें दिशेस करून, बाकीच्या सर्व आपल्या सोईप्रमाणें खिडक्या कराव्यात. तेंच वास्तु शास्त्रांत सांगितलें आहे कीं, द्वार चार प्रकारचें आहे. वास्तू वरून, संक्रांतीवरून, राशीवरून आणि खिडकीवरून असें समजावें. घराचें तोंड, कोण, स्तंभ इत्यादिकांशीं विरुद्ध असेल तर तें हितकारक होत नाहीं ॥ ९ ॥ अशा रीतीने घराचे तोंडाचा निर्णय सांगितला आतां कोणादिकांशीं विरुद्ध असें जर घराचें तोंड असेल तर त्याचा दोष आणि त्याचा अपवाद सांगतों—भित्तीचा कोण, रस्ता, फिरणारें थंय ह्यो घरट, कुंभाराचें चाक वगैरे, विहीर, चिखल ह्याणजे स्नान इत्यादि करून नेहेमीं होणारा चिखल, कोणताही वृक्ष, दुसऱ्याचें द्वार, खांब, देव हे इतके दारासमोर असतां तें दार शुभकारक नाहीं, ह्याचा अपवाद सांगतों—घराच्या उंचीच्या दुप्पट अंतरावर वर सांगितलेले कोणादिक असतील तर त्यापासून दोष नाहीं, अर्थात् उंचीच्या दुप्पट अंतरावर कोणादिक नसतील तर दोष आहे असें समजावें. तेंच दुसऱ्या आगमांत सांगितलें आहे कीं, रस्ता, वृक्ष, कोण, कूप, चाक ह्यांनीं विद्ध झालेलें द्वार हें दोषकारक आहे, परंतु घराच्या उंचीच्या दुप्पट अंतरावर कोणादि असतील तर दोष कारक नाहीं असें समजावें. कात्यायनगृह्य कारिकेंत सांगितलें आहे कीं, कूप, वृक्ष, खांब, रस्ता, चिखल, देव ह्यांनीं विद्ध झालेलें द्वार अशुभ समजावें. अतिशय उंच असलेलें व अतिशय सखल हेंही अशुभच समजावें. आतां गृहाचे नक्षत्राचें आणणें, आणि व्ययाचें आणणें सांगतों—घराची लांबी व रुंदी ह्याचा जो गुणाकार येईल त्याला क्षेत्रफळ ह्याणतात त्या क्षेत्रफळाला ८ नीं गुणून २७ नीं भागवें, बाकी राहिल तें घराचे नक्षत्र जाणावें. त्या नक्षत्राला आठानीं भागून जें शेष राहिल त्याला व्यय अशी संज्ञा आहे. अशा रीतीने आय आणि व्यय सांगितले. आतां त्याचें फल सांगतों—ज्या घराचा आय अल्प आहे आणि व्यय पुष्कळ आहे तें घर अशुभ समजावें अर्थात् पुष्कळ आय आणि थोडा व्यय असेल तर घर शुभकारक आहे ॥ १० ॥

गृहनक्षत्रांच्या राशि व ध्रुवादि गृहनाम.

मेघेऽश्वित्रितयं हरौ त्रिपितृभं मूलत्रयं धन्विनि ।

द्वे द्वे मे परतो गृहेशघटितं प्राग्वत् नाल्यन्यथा ॥

एकादिद्विगुणोत्तरा गृहमुखादिक्ष्वंककाः स्युः क्रमा- ।

च्छालाशांकयुतिः कुयुग्धुवमुखान्योकांसि संति स्फुटम् ॥ ११ ॥

श्लोकार्थ—मेघराशीत अश्विनी, भरणी, कृत्तिका हीं ३ नक्षत्रे. सिंहराशीत मघा, पूर्वा, उत्तरा हीं ३ नक्षत्रे. धनराशीत मूळ, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा हीं ३ नक्षत्रे, आणि बाकी सर्व राशीत दोन दोन नक्षत्रे जाणावीं. पूर्वी विवाहप्रकरणांत सांगितलेल्या घटिताप्रमाणेच गृह व त्याचा स्वामी यांचे घटित पहावे. नाडी मात्र अन्यथा ह्मणजे गृह व स्वामी यांची एकनाडी असावी. एकापासून पुढे दुपटीने वाढणारे असे ह्य० १२।४।८ हे अंक अनुक्रमाने घराच्या मुख्य द्वारापासून चार दिशांला असतात. घराला जितक्या दिशेला द्वारे असतील, तितक्या द्वार दिशांच्या अंकाची बेरीज करून तीत १ मिळवून जो अंक होईल, त्यावरून गृहाच्या ध्रुवादि नांवांतलें नांव घ्यावें. अंक १ असतां ध्रुव, २ असतां धन्य, ३ असतां जय याप्रमाणे घ्यावे ॥ ११ ॥

नक्षत्रे ज्ञाते राशिनिर्णयमाह—अश्वित्रितयं मेघे ज्ञेयं त्रिपितृभं मघात्रयं हरौ सिंहे ज्ञेयं मूलत्रयं धनुषि ज्ञेयमन्येषु राशिषु द्वे द्वे मे ज्ञेये । तथा च गर्गः । अश्विन्यादित्रयं मेघे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयं । मूलादित्रितयं चापे शेषमेषु द्वयं द्वयमिति ॥ अथ गृहतत्त्वामिनोर्घटितमाह—गृहेशेति । गृहं प्रसिद्धं ईशः स्वामी तयोर्घटितं प्राग्वत् विवाहवद्योज्यं तत्र विशेषमाह—नाल्यन्यथेति । नाडी एकनाडी अन्यथा योज्या विवाहवन्न योज्येत्यर्थः । अत्रैकनाड्येव प्रशस्तेति भावः । तथा च वृद्धगर्गः । प्रभुः पण्यांगना मित्रं देशं ग्रामं पुरं गृहं । एकनाडीस्थितं भाग्यं विरुद्धं वेधवर्जितमिति । तथा च ज्योतिःसागे । सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्त्वामिनोरपि । परस्परं मित्रयोश्च एकनाडी प्रशस्यत इति ॥ अथांशसाधनार्थगृहाणि तन्नामाक्षरसंख्या चाऽऽह—एकादीति । गृहमुखात्सकाशात् क्रमात् प्रदक्षिणक्रमात् दिक्षु चतसृषु दिक्षु एकादिद्विगुणोत्तरा अंकाः स्युः । एतदुक्तं भवति द्वारदिशि एकः तस्माद्वितीयदिशि द्वौ तृतीयदिशि चत्वारः चतुर्थदिशि अष्टौ एवं भवन्तीत्यर्थः । शालाशांकयुतिः शालादिगंकयोर्योगः कार्यः कुयुक् एका युक्तासति ध्रुवमुखानि ध्रुवादिकानि शास्त्रोदितानि गृहाणि स्फुटं संभवन्तीति । तानि तथा । ध्रुवं धन्यं जयं नंदं खरं कातं मनोरमं । सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं सुपक्षं धनदं क्षयं ॥ आक्रंदं विपुलं चैव विजयं चेति षोडशमिति ॥ ११ ॥

टीका—नक्षत्र समजल्यानंतर राशीचा निर्णय सांगतो—मेघ राशीला अश्विनी, भरणी आणि कृत्तिका हीं तीन नक्षत्रे आहेत. सिंह राशीत मघा, पूर्वा, उत्तरा हीं तीन नक्षत्रे आहेत. धन राशीत मूळ, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा हीं तीन नक्षत्रे, बाकी उरलेल्या नऊ राशीमध्ये प्रत्येक राशीस दोन दोन नक्षत्रे आहेत. तेंच गर्ग सांगतो कीं, अश्विनी इत्यादि तीन नक्षत्रे मेघ राशीस, मघा इत्यादि तीन नक्षत्रे सिंह राशीस, मूळ इत्यादि तीन नक्षत्रे धन राशीस, बाकीच्या प्रत्येक राशीस दोन दोन नक्षत्रे आहेत. आतां घर आणि घराचा स्वामी ह्यांचे घटित सांगतो—विवाहाचे जें घटित सांगितलें तसेंच घटित घर आणि घराचा स्वामी ह्यांचे जाणावे. त्यांपैकी विवाहाप्रमाणे एक नाडीचा दोष नाही, कारण अथ एक नाडीच अतिप्रशस्त आहे. तेंच वृद्ध गर्ग सांगतो कीं, प्रभु, वेश्या, मित्र, देश, ग्राम, नगर व घर ह्यांची व ह्यांच्या मालकांची एक नाडी असणे प्रशस्त आहे. विरुद्ध व वेध मात्र वर्ज्य करावा. तेंच ज्योतिःसागर ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, चाकर व मालक ह्यांची, घर व त्यांचा स्वामी ह्यांची, मित्रांची परस्पर एक नाडी असणे अतिशय प्रशस्त आहे. आतां अंश साधनाचे अर्थ आणि गृह व त्यांचीं नामांचीं अक्षरे सांगतो—घराचे तोंडापासून दक्षिण बाजूच्या क्रमाने चार दिशेस १-२-४-८ असे दुप्पट अंक असतात. ह्याचा अर्थ असा कीं, द्वार दिशेस १ तीपासून दुसऱ्या दिशेस २ तिसऱ्या दिशेस ४ चवथ्या दिशेस ८ असे असतात. घराच्या जितक्या दिशेस द्वारे असतील तितक्या द्वार दिशांच्या अंकांची बेरीज करून तीत एक मिळवावा, जो अंक येईल त्यावरून ध्रुवादि नामे शास्त्रांत सांगितलेली घ्यावीत.

तीं नांवें अशीं कीं, १ ध्रुव, २ धन्य, ३ जय, ४ नंद, ५ खर, ६ कांत, ७ मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ सुपक्ष, १२ धनद, १३ क्षय, १४ आक्रंद, १५ विपुल, १६ विजय असे हे १६ ध्रुवादि आहेत, १ अंक असेल तर ध्रुव समजावा, २ अंक असेल तर धन्य समजावा. ह्याप्रमाणे पुढे समजावें ॥ ११ ॥

ध्रुवादिकांचीं अक्षरें व अंशक शुद्धि.

आषष्ठादशमं त्रयोदशमिमे द्व्यर्णाः परे त्र्यक्षराः ।

षष्ठान्त्यं चतुरक्षरं खलु गृहं स्युः षोडशैवं गृहाः ॥

गेहक्षमाफलभुग्व्ययो गृहभवैर्नामाक्षरैः संयुतः ।

स्तष्टोवह्निभिर्गणका न शुभदं पस्त्यं द्वितीयांशकम् ॥ १२ ॥

श्लोकार्थ—ध्रुवादि नांवांत १ पासून ६ व्या पर्यंत, १० वें, १३ वें हीं ८ नांवें दोन अक्षरांचीं आहेत. इतर सर्व तीन अक्षरांचीं आहेत. ७ वें मात्र चार अक्षरांचें आहे. अशीं ध्रुवादि गृहनामें १६ आहेत. ( १ ध्रुव, २ धन्य, ३ जय, ४ नंद, ५ खर, ६ कांत, ७ मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० उग्र, ११ सुपक्ष, १२ धनद, १३ क्षय, १४ आक्रंद, १५ विपुल, १६ विजय. ) घराच्या क्षेत्रफळांत व्यय मिळवावा आणि त्यांत मागच्या श्लोकांत सांगितल्याप्रमाणे गृहाचे ध्रुवादिकांतलें जें नांव येईल त्याचीं अक्षरें मिळवून त्या संख्येला ३ नीं भागावें. बाकी राहील तो अंशक जाणावा. ज्याचे अंशक २ येतील तें घर शुभ नव्हे ॥ १२ ॥

नामाक्षरसंख्यामाह—आषष्ठादिति । षष्ठं मर्यादकृत्येत्याषष्ठं तस्मात् प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपंचमषष्ठानि दशमं त्रयोदशमिमेष्टगृहाद्व्यर्णा द्व्यक्षराः षष्ठान्त्यं सप्तमं बृहं चतुरक्षरं च त्वारि अक्षराणि यस्मिंस्तत्तथा । अन्ये गृहा त्र्यक्षरा एव षोडश गृहाः स्युः । गृहाः पुंसि च भूम्नैव निकाय्यनिलयालया इत्यमरः ॥ यथांशकसाधनमाह—गेहक्षमेति । गेहक्षमाफलभुग्व्ययः गृहक्षेत्रफलयुक्तः पूर्वानीतो व्ययो गृहभवैर्नामाक्षरैः संयुतः वह्निभिस्त्रिभिस्तष्टः शेषितः सप्तशकाः स्युः । इन्द्रो यमो राजेति तन्नामानि ग्रंथांतर उक्तानि । तत्र द्वितीयांशकं पस्त्यं गृहं न शुभदमर्थात्प्रथमतृतीयांशकं शुभदमित्यर्थः । निशांतपस्त्यसदनं भवनागारमंदिरमित्यमरः ॥ १२ ॥

टीकाार्थ—नामाच्या अक्षरांची संख्या सांगतो—ध्रुवादि जे सोळा सांगितले त्यांमध्यें पहिल्यापासून तो सहापर्यंत हीं सहा, १० वें आणि १३ वें हीं एकंदर आठ नांवें दोन दोन अक्षरांचीं आहेत, सातवें गृह चार अक्षरांचें आहे, बाकीचीं सात नांवें तीन तीन अक्षरांचीं आहेत, अशा रीतीनें सोळा ध्रुवादि आहेत. आतां अंशांचें साधन सांगतो—पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे घराचें क्षेत्रफळ करून त्यांत व्यय मिळवावा आणि त्यांत मागल्या श्लोकांत सांगितल्याप्रमाणे गृहांचे ध्रुवादिकांतलें जें नांव येईल त्याचीं अक्षरें मिळवून त्या संख्येला ३ नीं भागावें, बाकी राहील तो अंशक जाणावा. ज्याचे अंशक दोन येतील तें घर शुभ नाहीं असें समजावें ॥ १२ ॥

शुभगृहाविषयीं नियम.

यावद्भूरिगुणं हृदि स्फुरति तत्तावद्विचार्य करैः ।

श्रेत्तैर्नो तनुयादिहांगुलमुखं क्षिप्त्वा विहायाथवा ॥

श्रीगोपीपतिर्मेगह्वालुगिमुखैरायासविच्छिन्न ये ।

स्वेष्टायर्क्षफलं निबद्धमिह तज्ज्ञात्वा स्थलं साधयेत् ॥ १३ ॥

श्लोकार्थ—घराची लांबी रुंदी हातांनीं घेऊन जांपर्यंत त्याचें नक्षत्र, आय वगैरे शुभ येऊन मनाला बरें वाटेल तोंपर्यंत हातांनींच विचार करावा. केवळ हातांच्या लांबी रुंदीनें शुभ होत नसल्यास तसें घर बांधूं नये. तर लांबी रुंदीच्या हातांत काहीं अंगुळें वाढवून किंवा कमी करून घराचें नक्षत्र आय वगैरे शुभ आणून तसें घर बांधावें. गोपीपति, मेग, ह्वालुगि इत्यादि ज्योतिष्यांनीं खटपट कमी करण्याकरितां, आपणास इष्ट असेल तो आय व नक्षत्र ह्यांवरून घराची लांबी, रुंदी काढण्याचें गणित सांगितलें आहे, त्यावरून पाहिजे तसें स्थळ साधावें.

इष्टनक्षत्र व आय ह्यावरून क्षेत्रफल आणण्याविषयी, ह्यालुगि दैवशाचा श्लोक ' व्येके० ' हा ठीकेंत सांगितला आहे त्यावरून भूमीचें साधन करावें ॥ १३ ॥

अथ गुणविचारणावधिमाह-यावदिति । यावत्पर्यंतं करैहस्तैः कृत्वा भूरिगुणं बहुगुणं गृहं हृदि अंतःकरणे स्फुरति तत्तावद्विचार्य चेद्यदि तैः केवलैः करैहस्तैः कृत्वा बहुगुणं न स्फुरति तदांगुलमुखमंगुलादिकं करेषु क्षिप्त्वाऽथवा विहाय तनुयात् कुर्यात् । अथोपायांतरसूचनामाह-श्री-गोपीपतीति । गोपीपतिर्गोपीराजो मंगो मंगनाथदैवज्ञो ह्यालुगिह्यालुगिदैवज्ञ एतन्मुखैर्ज्योतिर्विद्विरायासविच्छिन्नये यत्स्वेष्टायर्क्षं फलं निबद्धं तदिहास्मिन् गृहकरणाविषये ज्ञात्वा स्थलं स्वाभीष्टस्थलं साधयेत् । तथा च गोपीराजः-विष्णुं व्येकायगोभू १९ हतिभयुजि फलं गोपिराजो भ २७ शेषात् सायं वेष्टाष्टिद्वया २१६ युतमहि ८ निहता दृक् २ प्रकृत्याख्य २१ विश्वे १३ । बाणाः ५ सिद्धा २४ छि १६ नागो ८ डू २७ तिष्ठति १९ गिरिश ११ इया ३ कृती २२ द्र १४ तु ६ तत्त्वा-२५ त्यष्टयं १७ क ९ इमा १ नखे २० ना १२ णव ४ विकृति २३ दिना १५ शु ७ कृति २६ धृत्य १८ थाऽऽशाः १० इति ॥ अस्यार्थः गोपीराजः विष्णुं विष्णुनामानं शिष्यं प्रत्याहेत्यन्वयः । किमाह-हे विष्णो व्येकायगोभू १९ हतिभयुजि भ २७ शेषात् अहि ८ हता दृक्प्रकृत्यादयः फलं स्यात् । विगतः एको यस्मात्स व्येकः स चासौ आयश्च व्येकायः व्येकायश्च गोभूश्च अनयोर्हतिगुणनं व्येकायगोभूहतिश्च भं च व्येकायगोभूहतिमे तयोर्युक् योगः तस्या भशेषात् सप्तविंशतिहच्छेषात् एकादिषु सप्तविंशतिपर्यंतेषु अह्निनिहता अष्टहता दृक्प्रकृत्यादयः फलं क्षेत्रफलं स्यादित्यर्थः । यथं भूतं फलं सायं आयेन सहवर्तमानं सायं इष्टायसहितमित्यर्थः । एतत्स्वेष्टायनक्षत्रजं फलं भवति न्यासः वा इत्यथवा तत्सायं फलं इष्टाष्टिद्व २१६ इयायुतं सत् फलं स्यात् इष्टाष्टिद्व-दृक् च इष्टाष्टिदृक् तयोर्ग्रीं हतिः तथा युतमित्यर्थः । इदमपि स्वेष्टायनक्षत्रजं फलं भवतीति । अत्रांकन्यास एव व्याख्यानं । तथा च मंगनाथदैवज्ञस्य सूत्रं । इष्टभात्यष्टिघाते य आयस्तेनोनितेष्टकः । त्रिहल्लब्धहता गाश्वि १७ युते चेष्टाय भं भवेदिति । अस्यार्थः । इष्टभात्यष्टिघाते इष्टभं च अत्यष्टिश्च तयोर्घातो गुणनं तस्मिन् पृथक् स्थापितो य आयस्तेन ऊनितेष्टको यदि ऊनो न भवति तदाऽष्टौ प्रक्षिप्य स्फोटनीयः ऊनितेष्टायः त्रिहल्लब्धहतागाश्वियुते लब्धेन आहताश्च ते अगाश्विनश्च तैः पृथक् स्थापिते इष्टभात्यष्टिघाते युते सति इष्टायभं क्षेत्रफलं भवेत् आयश्च भं च आयमेष्टे आयमे यस्मिस्तत्तथा अत्र यदि त्रिभिर्निःशेषो भागो न गच्छति तदा तावदष्टौ क्षेत्र्या यावत्त्रिभिर्भागो गच्छति । तथा च ह्यालुगिदैवज्ञस्य सूत्रम् । व्येकेष्टर्क्षहता द्विबाणशशिनी १५२ त्यष्ट्या युता १७ स्तेऽपि च व्येकेष्टायहतैकनाग ८१ सहिताः षण्मूर्च्छनाभि २१६ हताः । शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतस्वेष्टाय नक्षत्रजं स्यादैर्घ्यं तदभीष्टविस्तृतिहृतं दैर्घ्योद्धृति विस्तृतिरिति ॥ स्पष्टार्थाऽयं श्लोकः इत्यादिविचारणया इष्टं क्षेत्रफलं अवकाशानुरूपं हृदि धृत्वा स्थलं साधयेदित्यर्थः ॥ १३ ॥

टीकार्थ—आतां गुणाचा विचार करण्याचा परमावधि सांगतो—जेंपर्यंत हातांनीं मोजून तें गृह जसें आपणास इष्ट पाहिजे तसे गुण त्यापासून घेतील, तोंपर्यंत गुणांचा विचार करावा. जर हातांनीं मोजलें असतां त्यापासून जितके पाहिजेत तितके गुण मिळत नसतील तर मग त्या हातांत कांहीं अंगुलें मिळवून किंवा कांहीं कमी करून आपल्याला पाहिजेत ते गुण आणावेत आणि त्याप्रमाणें घर बांधून तयार करावें. आतां दुसऱ्या उपायाची सूचना सांगतो—गोपीराज, मंगनाथ दैवज्ञ ह्यालुगि नांवांच्या ज्योतिर्विदांनीं उत्तम रीतीनें आयांचा निर्णय करतां यावा ह्मणून जें सांगितलें आहे. त्यापासून, आपल्याला इच्छित आय आणि नक्षत्र ह्यांचें फल सांगतो—तें सर्व जाणून घर करण्याविषयीं आपलें इच्छित स्थल साधावें. तेंच गोपीराज आपल्या विष्णु नामक शिष्याला सांगतो कीं, हे विष्णो आयांतून एक वजा करून जो बाकीचा आय उरेल त्याचा आणि गोभू ह्मणजे १९ ह्याचा गुणाकार करावा तो गुणाकार आणि नक्षत्र ह्यांची बेरीज करावी. त्याबेरजेला भ २७ नीं भागावें. जो शेष राहील मग तो एकपासून सत्तावीस पर्यंत असेल त्या बाकीला अहि ह्म० आठांनीं गुणावें ह्मणजे तें दृक् प्रकृति इत्यादि क्षेत्रफल होतें. मात्र त्यामध्ये आय मिळवावा. हें आलेलें आपल्या आयापासून उत्पन्न झालेलें नक्षत्र समजावें. अथवा तें आलेलें आया सहित जें क्षेत्रफल असेल, त्यांत इष्ट आय आणि २१६ ह्यांचा गुणाकार करून तो मिळविला असतां हेंही इष्ट आय आणि नक्षत्र ह्यापासून झालेलें फल होतें. येथें अंक मांडणें हेंच व्याख्यान आहे. तेंच मंगनाथ दैवज्ञाचें सूत्र असें आहे कीं, इष्ट नक्षत्र आणि अत्याष्टि ह्मणजे १६ ह्याचा

गुणाकार करून जो आय घेतो तो दोन ठिकाणी मांडावा. पैकीं एकांतून इष्टक कमी करावा. कमी होत नसेल तर त्यांत आठ मिळवावेत, तो कमी करून आलेला अथवा आठ मिळवून आलेला आय त्याला ३ नीं भागून जो भागावर येईल त्यांत दोन मिळवावेत आणि पूर्वी निराळा मांडलेला जो आय आहे, त्यांत दोन मिळवून आलेली रक्कम मिळवावी हागजे तेथें इष्टायमं ह्य० क्षेत्रफळ होतें. आतां ३ नीं भाग जात नसेल तर त्यांत आठ मिळवावेत हागजे ३ नीं भाग घेतां येईल. तसेंच झालुगीं दैवज्ञाचे सूत्रांत सांगितलें आहे कीं, इष्टनक्षत्रांत १ कमी करून त्यानें १५२ ला गुणावें, आणि त्या गुणा-कारांत १७ मिळवावे. नंतर त्यांत, इष्ट आयांत १ उणा करून त्यानें ८१ ला गुणून जो गुणाकार येईल तो मिळवून सर्व संख्येला २१६ नीं भागावें. बाकी राहील ते इष्टनक्षत्र आया वरून आलेलें घराचें क्षेत्रफळ होतें. रंदिनें क्षेत्रफळाला भागिलें हागजे लांबी येते; आणि लांबीनें भागिलें तर रंदि येते. ( उदाहरण—घराचें रेवती नक्षत्र, व आय ५ यांवरून क्षेत्र-फळ आणणें आहे, नक्षत्र २७ त्यांत १ उणा करून २६ ह्यांनीं १५२ ला गुणून गुणाकार ३९५२ त्यांत १७ मिळवून ३९६९ झाले. इष्ट आय ५ त्यांत १ उणा करून बाकी ४ ह्यांनीं ८१ ला गुणून गुणाकार ३२४ हा पूर्वीच्या ३९६९ संख्येंत मिळवून सर्व ४२९३ ह्याला २१६ नीं भागून बाकी १८९ हें क्षेत्रफळ आलें. ह्याला ९ हात रंदिनें भागिलें तर २१ हात लांबी होईल, ) क्षेत्रफळावरून लांबी किंवा रंदि काढतांना बाकी राहू लागेल तेव्हां अंगुळें काढावीं ॥ १३ ॥

चतुरस्र साधन.

द्विघायाममितं द्विपाशमजरत्सूत्रं विधायान्वये- ।

त्रययामांघ्रिमिते च विस्तृतिदलेऽन्तात्कर्षकोणामिधौ ॥

पाशौ क्षेत्रविरामशंकुनिहितौ कृत्वाऽद्यमाकर्षये- ।

त्कोणे शंकुरितीतरो विनिमयाद्रज्ज्वंतयोश्चापरौ ॥ १४ ॥

श्लोकार्थ—जितके हात लांब घर बांधावयाचें असेल, त्या लांबीच्या दुप्पट न तुटणारें नवें सूत्र घेऊन त्याच्या दोन टोंकांस पाश ( फांस ) करावे. नंतर एका शेवटापासून लांबीच्या चार भागांपैकीं एक सोडून तीन भागां-वर एक चिन्ह करावें. हें कर्षचिन्ह होय. तसेंच रंदिच्या अर्धा इतक्या अंतरावर दुसरें चिन्ह करावें. हें कोण-चिन्ह होय. मग ज्याठिकाणीं घर बांधावयाचें तेथें मध्यभागीं लांबीच्या टोंकास दोन खुंट्या पुरून त्यांत सूत्राचे फांस घालावे, आणि कर्षचिन्ह धरून ओढावें, हागजे ज्याठिकाणीं सूत्रांतलें कोणचिन्ह येईल त्याजागीं एक खुंटी पुरावी. मग दुसऱ्या दिशेस जाऊन पूर्वीप्रमाणेंच कर्षचिन्ह ओढून जेथें कोणचिन्ह येईल, त्याजागीं एक खुंटी पुरावी. नंतर खुंट्यांत घातलेले फांस बदलून घालून पूर्वीप्रमाणेंच कर्षचिन्ह ओढून कोणचिन्ह येतील त्याठिकाणीं दोन खुंट्या पुराव्या. मग चारही कोणचिन्हांच्या खुंट्यांस दोरी बांधावी हागजे तें क्षेत्र चतुरस्र होतें ॥ १४ ॥

अथ स्थलसाधनाय सूत्रमोटनलक्षणमाह—द्विघायाममिति । अजरत्सूत्रं नूतनसूत्रं द्विघायाममितं द्विपाशं च विधाय अन्तात् एकस्मात्सूत्रात् अन्तयेदित्यन्वयः । द्विघाशसौ आयामश्च द्विघायामः आयामे दैर्घ्यं तेन मितं द्विगुणितदैर्घ्यं समानमित्यर्थः । द्विपाशं द्वौ पाशौ यस्मिन्तद्विपाशं एवं-विधं सूत्रं विधाय कृत्वा अन्तात्सकाशात् अन्तयेत् चिह्नयेत् एतदुक्तं भवति । पूर्वकल्पितक्षेत्रस्य दै-र्घ्यमितं सूत्रं द्विगुणं विधाय तदंतयोः पाशं कृत्वाऽन्तयेत् । कुत्र कुत्रां कयेदित्याह—त्रययामां-घ्रिमिते च परं विस्तृतिदलेऽन्तयेत् । त्रयश्च ते आयामांघ्रयश्च ते तथा तैर्मितं तस्मिन् एतदुक्तं भवति क्षेत्रदैर्घ्यं चतुर्भिर्मक्त्वा लब्धमंघ्रिप्रमाणं एकस्मादन्तात् अंघ्रित्रयं हित्वा चिह्नयेत् विस्तृतिदले क्षेत्र-स्य विस्तारार्धमिते अन्तयेत् तौ अंकौ कर्षकोणामिधौ स्तः । अंघ्रित्रये कृतः कर्षाख्यः विस्तृतिदले कृतोऽंकः कोणाख्यः । एवं सूत्रमोटनमुक्त्वा स्थलसाधनमाह—पाशाविति । पाशौ क्षेत्रविरामशं-कुनिहितौ कृत्वाऽऽद्यमंकमाकर्षयेदित्यन्वयः । क्षेत्रस्य विरामावन्तौ तयोः शंकू निहितौ निक्षिप्तौ कृत्वाऽऽद्यमंकं कर्षाख्यमाकर्षयेत् । एतदुक्तं भवति क्षेत्रस्य मध्यभागे साधितदिक्सूत्रोपरि इष्ट-दैर्घ्यमितसूत्रं प्रसार्य तदंतयोः शंकुनिखातयोः शंकोः मोटेतसूत्रांतपाशौ निधाय कर्षाख्यं चिह्नं धृत्वा एकस्यां दिशि आकर्षयेत् यथोभयशंकुगता रज्जुः समाना आकृष्टा स्यात् तथा आकर्षये-दित्यर्थः । कोणे शंकुरिति । कोणे कोणचिह्ने यत्र कोणचिह्नमागतं तत्र भुवि शंकुं निखायेत्यध्याहारः । इत्यमुना प्रकारेण इतरः शंकुर्निखेयः । एतदुक्तं भवति तदेव कर्षचिह्नमन्यस्यां दिशि आकृष्य



कोणे शंकुर्निखेयः । एवं कोणद्वयसाधनमभिधायान्यकोणद्वयसाधनमाह- विनिमयादिति । रज्ज्वंतयोर्विनिमयात् विपरीतधारणादपरौ कोणशंकु निखेयौ एतदुक्तं भवति रज्ज्वंतौ विपरीतौ धृत्वा पूर्ववत्कर्षाकर्षणं कृत्वा कोणयोः शंकु निखेयौ ॥ १४ ॥

टीकार्थ—आतां स्थल साधन करण्याकरितां सूत्र कसें टाकावें तें सांगतों—घर जितके हात लांब बांधावयाचें असेल, त्या लांबीच्या दुप्पट एक नवें सूत ध्यावें त्याच्या प्रत्येक टोकास एक एक पाश ह्मणजे दोन टोकास दोन पाश करावेत. आणि त्याच्या योगानें चिन्हें करावीत. तीं चिन्हें कोठें कोठें करावीत तें सांगतों—लांबीचे बरोबर चार भाग करावेत आणि त्यांपैकीं एक भाग सोडून बाकीच्या तीन भागांवर तें चिन्ह करावें आणि तसेंच दुसरें एक चिन्ह संदीच्या अर्धावर करावें. त्या दोन चिन्हांनां क्रमानें पहिल्यास कर्ष, आणि दुसऱ्यास कोण असें नांव आहे. ह्मणजे लांबीचा चवथा भाग सोडून तीन भागांवर केलेल्या चिन्हास कर्ष, असें नांव आहे आणि संदीच्या अर्धावर केलेल्या चिन्हास कोण असें नांव आहे. अशा रीतीनें सूत कसें ठेवावें, तें सांगितलें. आतां स्थलाचें साधन सांगतों—आतां ज्या ठिकाणीं घर बांधावयाचें असेल आणि घराचा शेवट यावयाचा असेल तेथें दोन खुंट्या टोकाव्यात. ह्मणजे घराच्या मध्यभागीं लांबीच्या टोकांस दोन खुंट्या पुरून त्यांत त्या सूत्राचे फांस घालावे आणि कर्ष चिन्ह धरून ओढावें ह्मणजे ज्या ठिकाणीं सूत्रांतलें कोण चिन्ह येईल त्यास्थानीं एक खुंटी पुरावी. ह्याप्रमाणें एका दिशेचा प्रकार सांगितला. मग दुसऱ्या दिशेस जाऊन पूर्वी-सांगितल्याप्रमाणेंच कर्ष चिन्ह ओढून जेथें कोण चिन्ह येईल. त्यास्थानीं एक खुंटी पुरावी. नंतर पूर्वीच खुंट्यांत घातलेले फांस बदलून घालून पूर्वी प्रमाणेंच कर्ष नांवाचें चिन्ह ओढावें ह्मणजे कोण चिन्हें येतील. मग त्या चिन्हांवर दोन खुंट्या पुराव्यात, मग चारही कोण चिन्हांच्या झालेल्या खुंट्यांस दोरी बांधावी, ह्मणजे तें बरोबर चतुरस्र होतें. असें हें चतुरस्र क्षेत्र तयार झाल्यावर मग त्यावर घर बांधण्याचें काम सुरू करावें ॥ १४ ॥

सूत्रन्यास व नाभिपूरण.

आग्नेयादि दृढं प्रदक्षिणगतं सूत्रं समासादये- ।

मध्ये वामकपार्श्वसुप्तपुरुषं ध्यात्वा तमुत्तानकम् ॥

अष्टाश्व्यं २८ शमगेंदु १७ संमितलवान्पुच्छाद्विहायाग्रगो ।

भागो नाभिरितः खनेच्छवमितं वामेऽश्मभिः पूरयेत् ॥ १५ ॥

श्लोकार्थ—गृहक्षेत्रासर्भावें आग्नेयीदिशेपासून प्रदक्षिणेप्रमाणें सूत्र बांधावें. क्षेत्राच्या मध्यभागीं डाव्या कुशीवर निजलेल्या वास्तुपुरुषाचें उताणा आहे असें ध्यान करून, त्यांतलें पुच्छा कडून १७ भाग सोडून पुढच्या अठराव्या भागांत वास्तुपुरुषाची नाभि असते, त्या नाभीच्या डाव्या बाजूला एका भागा इतकें खोल खणून तो खळगा दगडांनीं भरून काढावा ॥ १५ ॥

एवं क्षेत्रसाधनमुक्त्वा सूत्रन्यासमाह-आग्नेयादीति । आग्नेयादि दृढं प्रदक्षिणगतं सूत्रं आसादयेत् मध्ये क्षेत्रमध्ये वामकपार्श्वसुप्तं पुरुषं प्रागुक्तशिरस्कं ध्यात्वा तं ध्यातं पुरुषमुत्तानकं ध्यायेत् । कथंभूतं पार्श्वस्थं लघुमध्ये गुरोः परं स्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत् पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वमेव लघुरित्ययं विधिरिति कथंभूतमष्टाश्व्यंशं अष्टाश्विनांशा भागा यस्मिन् स तथा तं । अयमर्थः । क्षेत्रप्रमाणं कृकलासरूपं वास्तुपुरुषं प्रकल्प्य ततोऽष्टाविंशतिधा कुर्यात् । एवमष्टाश्व्यंशं प्रकल्प्य पुच्छात् सकाशादगेंदुसंमितलवान् सप्तदशभागान् विहाय त्यक्त्वाऽग्रगस्तदग्रगो भागो नाभिः इतो नाभेः सकाशाद्दामे वामभागे लवसंमितं खनेदनंतरमश्मभिः पूरयेत् । तथा च ब्रह्मशंभुः । सूत्रमिच्छिशिलान्यासं स्तंभस्याऽऽरोपणं तथा । पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह काश्यप इति ॥ नारदः । नभस्वादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाकमं । पूर्वादिकक्षिरा वामपार्श्वशायी प्रदक्षिणमिति ॥ तथा च शिल्पशास्त्रे । वास्तोः शिरसि पुच्छे च याम्यकुक्षौ च पृष्ठतः । आयुष्कामः खनेश्चैव वामकुक्षौ खनिः शुभा ॥ वास्तुक्षेत्रप्रमाणं च कल्पयित्वाऽस्य वामके । कुक्षौ खातं विहायाऽऽदौ प्रावाणेः पूरयेत्तत इति ॥ तथा च ललुः । त्यजेद्दश शिरोभागे ह्यग्रे सप्तदशांशकान् । मध्ये नाभिं विजानीयात्तत्र शंकुं प्रतिष्ठयेत् ॥ अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद्वन-अत्करैः । दैर्घ्यं वा विस्तृतिं चैव कृत्वाऽष्टाश्विभिर्मांशकानि ति ॥ १५ ॥

**टीकाथ—**अशा रीतीने क्षेत्राचे साधन सांगितले, आता सूत्राचा न्यास सांगतो—आग्नेयी दिशेपासून दक्षिणेकडून एक सूत्र घराचे क्षेत्रासमोवती बांधावे. क्षेत्राच्या मध्यभागी डाव्या कुशीवर निजलेला वास्तु पुरुष आहे, त्याचे मस्तक कसे आहे ते पूर्वी सांगितले आहे. त्या वास्तु पुरुषाचे ध्यान करावे, तो पुरुष उताणा आहे असे ध्यान करावे. क्षेत्राचे प्रमाण एवढा तो वास्तु पुरुष कृकलास रूपाचा ह्मणजे सरटाचे स्वरूपाच्या आकृती सारखा आहे, असे कल्पून त्याचे अष्टावीस भाग करावेत आणि त्या भागांपैकी पुच्छाकडून १७ भाग सोडून त्याच्या पुढच्या ह्मणजे आठराव्या भागांत त्या सरटाकृतिसारख्या वास्तुपुरुषाची नाभि आहे असे जाणावे. त्या नाभीच्या डाव्या बाजूस एका भागा इतके खणावे आणि तो खळगा दगडांनी भरावा. तेंच ब्रह्म शंभु ग्रंथांत सांगितले आहे कीं, सूत्र, भित्ति, शिला ह्यांचा न्यास, तसेच स्तंभाचे उभारणे, हे पूर्वे आणि दक्षिणे ह्या दोन दिशांचे मध्ये करावे. असे कायपाचे मत आहे. नारद असे सांगतो कीं, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक. मार्गशीर्ष, पौष, माघ. फाल्गुन, चैत्र, वैशाख. ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण. ह्या प्रत्येक तीन तीन महिन्यांत अनुक्रमाने पूर्वादि चार दिशेस डोके करून वास्तु पुरुष डाव्या कुशीवर निजलेला आहे असे जाणावे, तेंच शिल्प शास्त्रांत सांगितले आहे कीं, वास्तु पुरुषाचे मस्तकावर आणि पुच्छावर डाव्या कुशीवर आणि पृष्ठभागावर असे खणण्याचे प्रकार आहेत, पैकीं आयुष्याची वृद्धि इच्छा करणाऱ्याने वाम कुक्षी शिवाय दुसऱ्या ठिकाणीं खणूं नये, मात्र वाम कुक्षीवर खणणे शुभकारक आहे. वास्तु क्षेत्राचे प्रमाण कल्पना करून त्याच्या डाव्या बाजूस खणणे फारच शुभकारक आहे. त्या कुक्षीमध्ये खणून मग तो खणलेला खळगा दगडांनी भरावा. तेंच लल सांगतो कीं, वास्तूचे अष्टावीस भाग कल्पना करावेत, पैकीं मस्तकाचे बाजुचे दहा भाग सोडावेत, पुच्छा कडचे सतरा भाग सोडावेत आणि मध्ये असलेला भाग नाभी समजावा, तेथे शंकु स्थापन करावा. कारण वास्तु हा फारच स्थिर असावा. वास्तूचे बरोबर अष्टावीस भाग हातांनी मोजून करावेत ॥ १५ ॥

शंकुन्यास, रेषाकरण व भित्तिरचना.

ना कालेऽत्र निधेय उक्ततरुजोऽग्रात्सिद्धविंशाष्टयहः ।

कृत्संख्यांगुलकस्त्रिभागचतुरस्राष्टासकानसकः ॥

कं वक्षस्थलमूरुपादयुगलं संस्पृश्य विप्रादिको ।

रेखां सूत्रवदग्निजेन रचयेत्तद्वच्च भित्तेः शिलाः ॥ १६ ॥

**श्लोकार्थ—**मागच्या श्लोकांत सांगितल्याप्रमाणे नाभी जवळचा खळगा दगडांनी भरून त्यावर शुभकाळी शंकु उभा ठेवावा. खदिरादि वृक्षांचा शंकु असावा. तो ब्राह्मणाला २४ अंगुलें, क्षत्रियाला २० अंगुलें, वैश्याला १६ अंगुलें, शूद्राला १२ अंगुलें, उंच असा शंकु असावा, शंकूच्या उंचीचे ३ भाग करून त्यांतला खालचा भाग चतुरस्र ह्म० चौकोनी असावा, त्यावरचा दुसरा भाग अष्टकोणी असावा; आणि वरचा तिसरा भाग कोन रहित ह्मणजे वर्तुळ असावा. ब्राह्मणाने वास्तुपुरुषाच्या मस्तकाला, क्षत्रियाने हृदयाला, वैश्याने ऊरुला ह्मणजे मांड्याला आणि शूद्राने पादाला स्पर्श करून सूत्राप्रमाणे आग्नेयी दिशेपासून भूमीवर सुवर्णाने रेषा काढावी, आणि तसेच आग्नेयीपासून प्रदक्षिण क्रमाने भित्तीचे दगड रचावे ॥ १६ ॥

अथ शंकुन्यासमाह—ना काल इति । अत्र कुक्षिस्थले ना नरः शंकुः काले मुहूर्तसमये निधेयः स कियत्प्रमाण इत्यपेक्षायां नृमानमाह—अध्यात् विप्रात्सकाशाद्वर्णपरत्वेन सिद्धा २४ विंशा २० छय-१६ हः कृत् १२ संख्यांगुलकः निधेयः प्रतिष्ठापनीयः एतदुक्तं भवति विप्रेण सिद्धसंख्यांगुलकः चतुर्विंशांगुलो निधेयः । क्षत्रियेण विंशांगुलः । वैश्येनाष्टयंगुलः षोडशांगुलः । शूद्रेणाहःकृत्संख्यांगुलो द्वादशांगुलो निधेय इत्यर्थः । किलक्षणो ना उक्ततरुजः शास्त्रोक्तवृक्षोद्भवः । पुनः किलक्षणः त्रिभागचतुरस्राष्टासकानसकः त्रिभागेषु चतुरस्राष्टासकानसकानि यस्मिन् स तथा । एतदुक्तं भवति यथाप्रमाणं शंकुं त्रिधा विभज्य आद्यांशं चतुरस्रं द्वितीयांशमष्टास्रं तृतीयांशं अनस्रं चतुर्लं कुर्यादितिभावः । तथा चोक्तं ग्रंथांतरे । स्याच्चतुर्विंशविंशाष्टिद्वादशांगुलकैः कमात् विप्रादीनां शंकुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतं ॥ खदिरार्जुनशालोत्थं युगपत्रतरुद्भवं । रक्तचंदनपालाशरक्तशालकिलालजं ॥ निंबकारंजकुटजं त्रैणवं बिंदववृक्षजं । शंकुं त्रिधा विभज्याऽऽद्यं चतुरस्रं ततः परं ॥ अष्टास्रं च

तृतीयांशमनसमृजुमवर्ण । एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्य शुभे दिन इति ॥ अथ रेखाकरणमाह-कमि-  
ति । अग्निजेन सुवर्णेन ब्राह्मणादिकः कादि संस्पृश्य सूत्रवद्रेखां रचयेत् । सूत्रवदिति । आग्नेय्या-  
दि गृहप्रदक्षिणं कुर्यादित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । ब्राह्मणः कं शिरः स्पृष्ट्वा तर्जन्या वा कृत्वा  
आग्नेय्यादि प्रदक्षिणं सूत्रानुगतां रेखां कुर्यात् । तथैव क्षत्रियो वक्षस्थलं स्पृष्ट्वा रेखां कुर्यात् ।  
वैश्यः ऊरुयुगलं स्पृष्ट्वा रेखां कुर्यात् । शूद्रः पादयुगलं स्पृष्ट्वा रेखां कुर्यात् । तथा च लल्लः ।  
कृत्वा सूत्रनिपातं मध्यांगुल्याऽथवा प्रदेशिन्या । अंगुष्ठेन वामपाणिना कनकाक्षतरजतमुक्ताभिः ॥  
रेखां कुर्यादित्यादि । तथा च भृगुः । विप्रः शीर्षं नृपो वक्षो वैश्यश्चौरः परः पदे । स्पृष्ट्वा रेखां  
गृहारभे कुर्यादग्नेः प्रदक्षिणमिति ॥ अग्नेरित्याग्नेय्याः तथा च कारिकायाम् । अंगुष्ठकेन देशिन्या रेखां  
कुर्वीत सूत्रतः । स्वर्णेन मणिना रूप्यमुक्तादधिफलाक्षतैः ॥ कुसुमैर्वा न शस्त्रेण न लोहेन न भस्मना ।  
काष्ठादिभिर्नापसव्यां न वक्रां दोषदर्शनात् ॥ शस्त्रेण शस्त्रमृत्युः स्यादित्यादि स्पष्टमीरितमिति ॥  
तथा च बृहद्वास्तुपद्धतौ । शस्त्रेण शस्त्रमृत्युर्वधो लोहेन भस्मनाऽग्निभयं । तस्करभयं तृणेन च  
लिखिता काष्ठेन राजभयं ॥ वक्रा च पादलिखिता शत्रुभयक्लेशदा विरूपा च । चर्मगारास्थिकृता  
दंतेन च कर्तुंशुभाय ॥ वैरमपसव्यालिखिता प्रदक्षिणा संपदो विनिर्देश्या इति ॥ शथ शिलान्या-  
समाह-भित्तेः शिला अपि सूत्रवदाचरेयुराग्नेय्यादि प्रदक्षिणं स्थापयेयुरित्यर्थः । तथा च वराहः ।  
दक्षिणपूर्वकोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमां । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तंभाश्चैवं प्रतिष्ठाप्या इति ॥ १६ ॥

टीकार्थ—शंकु करण्याचें सांगतों—ह्या वास्तु पुरुषाच्या कुक्षीचें स्थानीं उत्तम मुहूर्तावर शंकुस्थापन करावा. तो  
किती प्रमाणाचा असावा अशी आशंका आली असतां सांगतों—ब्राह्मणादि चार वर्णांना अनुक्रमानें २४-२०-१६-१२  
इतक्या अंगुलीच्या प्रमाणाचा असावा. ह्याचा अर्थ असा कीं, ब्राह्मणानें चौवीस अंगुली इतक्या प्रमाणाचा शंकु स्थापावा.  
क्षत्रियानें वीस अंगुली इतक्या प्रमाणाचा आणि वैश्यानें सोळा अंगुली इतक्या प्रमाणाचा आणि शूद्रानें बारा अंगुली इत-  
क्या प्रमाणाचा शंकु स्थापावा. शास्त्रांत सांगितलेल्या वृक्षांचा शंकु स्थापावा. तो शंकु असा असावा कीं, त्याच्या तीन  
भागावर क्रमानें पहिला भाग चार कोणी, दुसऱ्या भागाला आठ कोण, आणि तिसऱ्या भागाला कोण नसलेला ठेवावा.  
वाटोळा असावा. तेंच दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ब्राह्मणादि चार वर्णांना अनुक्रमें २४ अंगुलींचा २० अंगुलींचा,  
१६ अंगुलींचा आणि १२ अंगुलींच्या प्रमाणाचा शंकु असावा. तो शंकु सुवर्ण आणि वज्र ह्यांनीं अलंकृत करावा. तो खैर,  
अर्जुन, शाल, युगपत्र, रक्तचंदन, पलाश, रक्तशालक्री, लालज, निंब, करंज, कुटज, वेणु, बिल्व, इतक्या प्रकारच्या  
झाडाचा केलेला असावा. शंकूचे तीन भाग असे असावेत कीं, पहिला भाग चौकोनी, दुसरा भाग आठ कोणी, तिसरा  
भाग बिन कोणी ह्मणजे वर्तुलाकार असावा. अशा प्रकारचा उत्तम शंकु सुदिन पाहून रोवावा. आतां रेखाकरण सांगतो—  
ब्राह्मणादिकांनीं सुवर्णानें कं ह्म० मस्तक इत्यादि अंगाला स्पर्श करून सूत्राप्रमाणें आग्नेयी दिशेपासून भूमीवर रेखा काढावी.  
ह्याचा अर्थ असा कीं, ब्राह्मणानें वास्तू पुरुषाचे मस्तकाला स्पर्श करून आग्नेयी दिशेच्या क्रमानें सूत्राप्रमाणें रेखा काढावी.  
त्याच प्रमाणें क्षत्रियानें वास्तु पुरुषाचे छातीला स्पर्श करून पूर्वाच्या क्रमानें रेखा काढावी. वैश्यानें वास्तु पुरुषाचे मांड्यांला  
स्पर्श करून रेखा काढावी. शूद्रानें वास्तु पुरुषाचे पायांला स्पर्श करून रेखा काढावी. तेंच लल्ल सांगतो कीं, सूत्राचा निपात  
करून मध्यमांगुलीनें, प्रदेशिनी अंगुलीनें किंवा आंगठ्यानें, डाव्या हातानें, सोन्याच्या एक सारख्या रेषेनें, अक्षतानें, रुप्यानें,  
मोत्यांनीं रेखा करावी. तेंच भृगु सांगतो कीं, ब्राह्मणानें वास्तूच्या मस्तकाला, राजानें छातीला, वैश्यानें मांड्यांला, शूद्रानें  
पांयांला स्पर्श करून घराचे आरंभी व आग्नेयी दिशेच्या अनुक्रमानें रेखा काढावी. तेंच कारिकेंत सांगितलें आहे कीं,  
आंगठ्यानें अथवा प्रदेशिनीनें, सूत्रानें रेखा करावी. सोन्यानें, मण्यांनीं, मोत्यांनीं, दह्यानें, फळांनीं, अक्षतांनीं, अथवा  
फुलांनीं रेखा करावी. परंतु शस्त्रानें, लोखंडानें, भस्मानें, काष्ठादिकांनीं रेखा करूं नये व ती रेखा अपसव्य रीतीनें आणि  
वांकडी करूं नये. कारण तशी रेखा केल्यानें दोष आहे. कारण शस्त्रानें रेखा केल्यास मृत्यु होतो. असें स्पष्ट सांगितलें  
आहे. तेंच बृहद्वास्तु पद्धतींत सांगितलें आहे कीं, शस्त्रानें रेखा केल्यास शस्त्रानें मृत्यु होतो. लोखंडानें केल्यास बंधन होतें.  
भस्मानें केल्यास अग्नीचें भय होतें. तृणानें केल्यास चोराचें भय होतें. काष्ठानें केल्यास राजाचें भय होतें. वांकडी रेखा  
पायानें काढली असतां शत्रूपासून भय व क्लेश होतात. आणि वैरुध्य होतें, चर्मानें, कोळशानें आणि हाडकानें केल्यास  
करणाच्यास अशुभ प्राप्त होतें. अपसव्य रीतीनें रेखा केल्यास वैर प्राप्त होतें. प्रदक्षणा रीतीनें केल्यास सर्व संपत्ति प्राप्त  
होतात. आतां शिला कशी ठेवावी तें सांगतों—जसें आग्नेयी दिशेच्या क्रमानें सूत्र सांगितलें, तसेंच भित्तीकारितां आग्नेयी  
दिशेच्याच क्रमानें दगडही रचावेत. तेंच वराह सांगतो कीं, दक्षिणेच्या बाजूच्या कोणाची पूजा करून पहिला दगड ठेवावा  
आणि बाकीचे दगड प्रदक्षिण रीतीनें ठेवावेत आणि तसेच खांबही ठेवावेत ॥ १६ ॥

द्वारस्थान, स्तंभस्थापन व उंची.

पूर्वादौ त्रिषडर्थपंचमलवे द्वाः सव्यतोऽस्कोदृते ।

दैर्घ्ये द्वांशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षुदिता ॥

स्तंभोऽग्नेर्दिशि पूजितः सुसमये स्थाप्यः शिरश्छत्रभा- ।

ग्विस्ताराष्टिलवान्वितैः कृतकरैस्तुल्यं गृहोच्चं विदुः ॥ १७ ॥

श्लोकार्थ—घराच्या लांबीचे ९ भाग करून पूर्व दिशेस द्वार करावयाचें असतां डाव्या बाजूकडून तिसऱ्या भागांत, दक्षिणेस ६ व्या भागांत, आणि पश्चिमेस व उत्तरेस ५ व्या भागांत दार लावावें. सर्व दिशेस ४ व्या भागांत दार लावावें. लांबीच्या ९ भागांपैकीं दोन भागां इतकीं दाराची उंची असावी. शुभ मुहूर्तावर पूजा करून व मस्तकावर छत्र बांधून प्रथम आग्नेयी दिशेस स्तंभ उभा करावा. घराच्या रुंदीच्या हातांचे १६ भाग करून त्यांतला एक भाग ४ हातांत मिळवून जितके हात होतील तितकें उंच घर बांधावें ॥ १७ ॥

अथ भित्तिप्रसंगेन द्वारमाह-दैर्घ्ये गृहदैर्घ्येऽकांते नवभिर्भाजिते सति पूर्वादौ दिशि क्रमेण सव्यतो वामभागात्त्रिषडर्थपंचमलवे द्वाः द्वारमुक्तं मुनिभिरिति शेषः । त्रयश्च षट् चार्थाश्च पंच च त्रिषडर्थपंचमाः ते च ते लवाश्च तेषां समाहारस्तस्मिन् । एतदुक्तं भवति । गृहदैर्घ्ये नवभागां कृत्वा पूर्वाभिमुखे गृहे क्रियमाणे वामभागादंशद्वयं त्यक्त्वा तृतीयांशे द्वारं कर्तव्यं दक्षिणाभिमुखे गृहे तथैवांशपंचकं त्यक्त्वा षष्ठेऽंशे कार्यं पश्चिमाभिमुखे तथैवांशचतुष्कं त्यक्त्वा पंचमांशे कार्यमुदङ्मुखे पंचमांशे एव द्वारं कर्तव्यं सर्वासु दिक्षु अब्धिलवके चतुर्थभागे दातृदिता । किलक्षणा द्वाः व्यंशसमुच्छ्रिता द्विभागोच्चा । तथा च वराहः । दैर्घ्ये नवांशाः पदमत्रव्यामाद्वारं शुभं प्राक्त्रिचतुर्थभागे । चतुर्थपष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुः पंचमके तथोदगिति ॥ तथा च च्यवनः । मानाधिकोनदिग्भागे द्वारे नीचे सुखक्षय इति ॥ अथ निष्पन्नासु भित्तिषु स्तंभप्रतिष्ठा माह-स्तंभोऽग्नेर्दिशीति । अग्नेर्दिशि आग्नेय्यां सुसमये पूर्वोदिते स्तंभः स्थाप्यः । अत्राप्युक्ततरुज इत्यनुवर्तते । किलक्षणः स्तंभः पूजितः स्तुतचंदनार्चितः । पुनः किलक्षणः शिरश्छत्रभाक् शिरसि छत्रं भजते इति तथा । छत्रं तु काकादिपशुपवेशनभयात् स्तंभोपरि क्रियते । तथा च वराहः । छत्रसम्बन्धयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः । स्तंभस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेनेति ॥ तथा चोत्पलः । स्तंभोपरि यदोलूककाकगृध्रादिपक्षिणः । व्यालादयश्च तिष्ठति तदा कर्तुर्न शोभनं ॥ तस्मात्स्तंभोपरि छत्रं शाखां फलवतीं तु वा । धारयेदथवा वस्त्रं बुधो रत्नादि निक्षिपेत् । गुर्जरदेशे क्वचित् कालसर्पमवलोक्य तच्छून्यदिशि प्रथमं स्तंभप्रतिष्ठां कुर्वति तदसत् । यतस्तदवलोकनं विवाहवेद्यां कोणेषु शृंगारार्थं स्तंभान् रोपयति तद्विषयं तदप्येकदेशीयं न बहुसंमतं । कालसर्पस्तु यथा । ईशानतः सर्पति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद्विदिक्षु । पश्चाद्भित्तिस्तन्मुखमध्यपुच्छं त्रिकं त्रिकं वै वृषसंक्रमादेः ॥ अहेः फणायां मरणं वरस्य मध्ये कुमार्याः स्वजनस्य पुच्छे । विधेयमेकं किल शून्यदेशे विवाहवेद्यां निखनेच्च कीलमिति ॥ वृषादित्रिषु राशिषु रवावाग्नेय्यां स्तंभारोपणं कार्यं सिंहादिषु ईशान्यां वृश्चिकादित्रिषु वायव्यां घटादित्रिषु नैर्ऋत्या कर्तव्यमिति एतद्विवाह एव । गृहे सिंहादवलोकनीयं वृषाद्वेद्यां । तथा च वृषाद्वेद्यां गृहे सिंहांभीनात्रीणि सुरालये । मुखं मध्यं तथा पुच्छं हित्वा स्तंभं नियोजयेदिति ॥ अन्यच्च गृहस्तंभप्रतिष्ठापनं बहुभिर्ग्रथकारैराग्नेय्यामेवाभिहितं । तथा च ब्रह्मशंभुः । सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तंभस्याऽऽरोपणं तथा । पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥ तथा च शार्ङ्गधरः । प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा । आग्नेय्यां प्रथमं स्तंभं स्थापयेत्तद्विधानतः । तथा च वराहमिहिराचार्यः । दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिला न्यसेत्प्रथमा । शेषा प्रदक्षिणेन स्तंभाश्चैवं प्रतिष्ठाप्या इति ॥ कात्यायनगृह्यकारिकायामप्युक्तं । एकैकमुच्छ्रयेत्स्तंभं मंत्रैरेतैः शिलातले । श्रियोवसान इत्यंतैरि-मामित्यादिभिर्गृही ॥ आग्नेय्यादिषु कोणेषु मंत्रैरेतैः शिला न्यसेत् इति ॥ गृहे हरिहरभाष्ये शा-लापद्धतिष्वप्येवमेवोक्तं । इत्यलमितिप्रसंगेन । उक्तं तरुज इत्युक्त्वाच्छाखांतदात्काष्ठान्यवगंत-

व्यानि । तथा च वास्तुशास्त्रे । श्रीपर्णी रोहिणी शाकसर्जाश्च सरलाः शुभाः । पतंगलोभशाला-  
ख्यास्तालार्जुनकशिशपाः ॥ चंदनाशोकबदरीमधूकाश्च कदंबकाः । प्रशस्ताश्च शमीनिंबविल्ववर्ज  
गृहांतिके ॥ गृहे काष्ठं समं श्रेष्ठमलिदे विषमं शुभमिति ॥ नारदः । पृथ्कोदुंबरचूताख्या निंबस्तु  
हि विभीतकः । दग्धाः कंटकिनो वृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः ॥ अगस्तिशिष्टतालाख्यास्तित्तिडी-  
काश्च निदिताः । अन्ये च गृहनिर्माणे योजनीयाः सदा दुमा इति ॥ तथा च वराहः । पितृवन-  
मार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसा श्रमजाः । चैत्यसरित्संगमसंभवाश्च घटतोयसिकाश्च ॥ कुंजानु-  
जातवल्लीनिपीडिता वज्रमारुतोपहताः । स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निपुष्टदुष्टमधुनिलयाः ॥  
तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । सुरदारुचंदनसमा मधुकरतरवः शुभा  
द्विजातीनां ॥ क्षत्रस्यारिष्टाश्वत्थखदिरावेल्व वृद्धिकराः ॥ वैश्यानां जीवखादिरकसिदूरकस्यंदना-  
श्च शुभफलदाः ॥ तिदुककेसरसरलार्जुनोत्थसालाश्च शूद्राणां । सर्वेषां वा शस्ताः  
सर्वे वृक्षाश्च निदिता नो चेदिति ॥ व्यासोऽपि । अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन्प्रयो-  
जयेत् । न तत्र वसते कर्ता वसेत्तत्र न जीवतीति ॥ समरंगणे । इष्टकालोष्टपाषाणमृत्तिकाजीर्णमा-  
यसं । तृणं पर्णं बुधैः प्रोक्तं दारु नूनं गृहाय वै इति ॥ शार्ङ्गधरेऽपि । नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णं जीर्णं  
प्रशस्यते । जीर्णं च नूतनं श्रेष्ठं नो जीर्णं नूतने शुभमिति ॥ वृक्षच्छेदप्रार्थना ग्रंथांतरे उक्ता ।  
यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तं । अन्यत्र वासं परिकल्पयंतु क्षमंतु  
तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्य इति ॥ अथ स्तंभप्रसंगेन गृहोच्चतामाह-विस्तारोति । विस्तारस्य गृहविस्तार-  
स्याधिलवः षोडशांशस्तेनान्वितैर्युक्तैः कृतकैरश्चतुर्हस्तैस्तुल्यं समानं गृहोच्चं विदुर्मुनय इत्याध्याहारः ।  
तथा च रत्नकोशे । विस्तारषोडशांशश्चतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्चं इति । तथा च लल्लः । नात्युच्छ्रितं  
जातिनीचं कुडयोत्सेधं यथारुचीति ॥ १७ ॥

टीकार्थ—आतां भिन्तीच्या प्रसंगानें द्वार सांगतो—घराची लांबी किती असेल ती मोजावी आणि तिचे बरोबर  
मऊ भाग करावेत आणि पूर्वादि दिशेकडून अनुक्रमानें डावे बाजूने तिसरा, सहावा, पांचवा या भागांत दार लावावे ह्मणजे  
घराच्या लांबीचे नऊ भाग करून पूर्व दिशेस घराचें दार करावयाचें असल्यास डाव्या बाजूकडून दोन भाग सोडून  
तिसऱ्या भागांत करावें, दक्षिण दिशेस घराचें दार करावयाचें असल्यास तसेच पांच भाग सोडून सहाव्या भागांत द्वार  
करावें, पश्चिम दिशेस घराचें दार करावयाचें असल्यास चार भाग टाकून पांचव्या भागांत करावें, उत्तर दिशेस घराचें  
दार करावयाचें असल्यास पांचव्याच भागांत करावें. सर्व दिशेस घराचें दार करावयाचें असल्यास चवथ्या भागांत घराचें  
दार लावावे घराचे जे नव भाग केले असतील त्याच्या दोन भागा इतकी दाराची उंची असावी. तेंच वराह सांगतो—घरा-  
च्या लांबीचे नऊ भाग करावेत आणि क्रमानें पूर्व, दक्षिण, पश्चिम आणि उत्तर ह्या दिशेस तीन भाग, चार भाग, चार,  
साहा, पांच ह्या दिशेस तीन भाग टाकून पुढल्या भागां करावे जसे की पूर्वेस दार करावयाचें असल्यास तिसऱ्या आणि  
चवथ्या भागां करावे. दक्षिणेस दार करावयाचें असल्यास चवथ्या आणि सहाव्या भागां करावे उत्तरेस दार करावयाचें  
असल्यास चवथ्या आणि पांचव्या भागां करावे. तेंच च्यवन सांगतो की, मानापेक्षां अधिक किंवा कमी अशा दिशेच्या भागां  
दार केलें असतां अथवा फारच खालपट केलें असतां सुखाचा क्षय होतो. आतां भिन्ती तयार झाल्यावर स्तंभाची प्रतिष्ठा  
सांगतो—आग्नेयी दिशेस उत्तम समयावर स्तंभ स्थापन करावा. ह्या विषयीही पूर्वी सांगितलेला झाडाचा स्तंभ असावा  
तो स्तंभ असा असावा की, त्या स्तंभावर छत्र असून त्याची चंदन पुष्प इत्यादिकांनीं पूजा करावी. तें छत्र स्तंभाचे वर करावें,  
कारण त्यावर कावळे इत्यादि पक्ष्यांची पडण्याची वेगरे भीति असते. तेंच वराह सांगतो की, छत्री आणि माळा, चंदन  
इत्यादिक सामान बांधलेला असा स्तंभ उभा करावा. तो दाराचे उंचीपेक्षां अधिक मोठ्या प्रयत्नानें करावा. तेंच उत्पल  
सांगतो की, त्या स्तंभावर जर घूबड, कावळा, गिधाड इत्यादि पक्षी बसतील अथवा सर्प वेगरे रहातील तर त्यापासून  
कर्त्याचें शुभ होणार नाहीं. ह्मणून स्तंभावर छत्र, फळवती शाखा इत्यादि धारण होईल अशी व्यवस्था विद्वानानें करावी.  
किंवा विद्वानानें त्यावर रत्न इत्यादि घालावें. गुर्जर देशामध्ये कोठें कोठें काल सर्प पाहून तो ज्या दिशेस नसेल तशा  
दिशेवर अगोदर स्तंभ प्रतिष्ठा करितात, ते त्याचें कारणे अयोग्य आहे. कारण, कालसर्प आहे किंवा कसें हें पाहणें  
विवादाविषयी सांगितलें आहे, कारण विवादाचे वेदीच्या कोंपल्यास हंगाराकरितां ह्मणजे शोभेकरितां स्तंभाचें रोपण  
करितात. त्यावेळेस काल सर्प पहावा असें आहे, पण तेंही एकदेशी मत आहे बहुसंमत नाहीं. काळसर्प असा असतो की  
कालसर्प हा ईशान्य दिशेपासून फिरत असतो तो सर्व सृष्टी सोडून आकाशांत विदिशामध्ये ह्मणजे आग्नेयी, नैऋत्य, ईशान्य  
आणि वायव्य दिशेमध्ये फिरत असतो अशी त्याची गणना करावी, त्या कालसर्पाची गति उत्तल आहे. तोंड, मध्यभाग आणि



पुच्छ असे तीन भाग वृष संक्रांती पासून प्रत्येक त्रिकाला समजावे. जसे वृष, मिथुन, कर्क इत्यादि त्रिकावर आग्नेयी, ईशान्य, वायव्य, नैऋत्य या दिशेस स्तंभारोपण करावे. पुढें सिंह, कन्या, तूळ ह्यावर ईशान्य दिशेस. वृश्चिक, धन, मकर ह्यावर वायव्य दिशेस. कुंभ, मीन, मेष ह्यावर नैऋत्य दिशेस असे समजावे. सर्पाचे फणावर स्तंभ केला असतां वराचे मरण होतें. मध्यभागीं केला असतां कुमारीचें मरण होतें. पुच्छवर केला असतां स्वजनानें मरण होतें अशा रीतीनें तोंड, मध्य, पुच्छ ह्या शिवायचे भागावर विवाहाची वेदी करावी आणि तसाच खिळा ही ठोकावा. वृष, मिथुन आणि कर्क ह्या तीन राशीवर रवि असतां आग्नेयी दिशेस स्तंभाचें आरोपण करावे. असेच सिंहादि तीन राशीवर ईशान्य दिशेस स्तंभारोपण करावे. वृश्चिकादी तीन राशीवर वायव्य दिशेस स्तंभारोपण करावे. कुंभादि तीन राशीवर नैऋत्य दिशेस स्तंभारोपण करावे. हें सर्व विवाहाविषयींच सिंहापासून तीन राशीपर्यंत जाणावें. वेदीविषयीं वृषापासून तीन राशीपर्यंत जाणावें, आणि मंदिराविषयीं मीनापासून तीन राशीपर्यंत जाणावें, पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे शुभ, मध्य आणि पुच्छ ह्या तीन स्थानाला सोडून स्तंभाची योजना करावी, दुसरें असें कीं, पुच्छक ग्रंथकारांनीं आग्नेयी दिशेसच घराच्या स्तंभाचें प्रतिष्ठापन करावें असें सांगितलें आहे. तेंच ब्रह्मशंभु ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सूत्राचा, भीतीचे दगडाचा, तसेंच स्तंभाचें आरोपण पूर्व आणि दक्षिण ह्या दोन दिशांचे मध्यभागीं ह्मणजे आग्नेयी दिशेस करावे. असें कश्यप ऋषीचें मत आहे. तेंच शार्ङ्गधर सांगतो कीं, प्रासाद ह्मणजे मंदिर आणि राजवाडा, मोठा वाडा. दुसरें साधारण घर, इतकें करावयाचें असतां प्रथम स्तंभाचें आरोपण आग्नेयी दिशेस यथाविधीनें करावें. तेंच वराहमिहिराचार्य सांगतो कीं, दक्षिण आणि पूर्व ह्या दोन दिशेचा जो कोण ह्मणजे आग्नेयी दिशेस पूजा करून पहिला दगड ठेवावा. बाकीचे दगडही प्रदक्षनक्रमानेंच स्थापन करावे. कात्यायन गृह्य कारिकेंतही सांगितलें आहे कीं, ह्या मंत्रांनीं एक एक स्तंभ उभारावा आणि ह्या मंत्रांनीं दगडावर दगड ठेवावा. आणि 'श्रियोवसान०' ह्या मंत्रांनीं गृहस्थानें दक्षिण कोणी ह्मणजे आग्नेयी दिशेस ह्या मंत्रांनीं दगड ठेवावेत. गृह्यकारिकेंत हरिहर भाष्यांत शाला पद्धतींतही असेच सांगितलें आहे. आतां त्याचा फार विचार करणें पुरे आहे. अमूक लांकडाचा स्तंभ असावा असें सांगितलें आहे तो कोणत्या लांकडाचा स्तंभ असावा हें दुसऱ्या शास्त्रावरून घ्यावें. तेंच वास्तु शास्त्रांत असें सांगितलें आहे कीं, श्रीपर्णी नांवाचा, रोहिणी नांवाचा, शाक, सर्ज, सरल इतके वृक्ष शुभ कारक आहेत. दुसरे पतंग, लोध्र, शालाक्य, ताल, अर्जुन, शिशप, चंदन, अशाक, बदरी, मधूक, कदंबक इतके वृक्ष प्रशस्त आहेत. मात्र शमी, निंब, बिल्व इतके वृक्ष घराजवळ नसावेत व त्यांचीं लांकडेही नसावीत. घराविषयीं सम काष्ठ प्रशस्त आहे, उंचच्या करितां विषम काष्ठ शुभ आहे. नारद सांगतो कीं, लक्ष, उडुंबर, आंबा, निंबु, बिभीतक, जळका वृक्ष, बामळीचा वृक्ष, वड, अश्वत्थ, कपित्थ, अगस्ति, शिशु, ताल, तित्तिडीक इतके वृक्ष घर करण्यास निंद्य आहेत. ह्या शिवाय बाकीचे वृक्ष घर बांधण्यास योग्य आणि प्रशस्त आहेत. तेंच वराह सांगतो कीं, स्मशानाचे रस्त्यावरचे वृक्ष, मंदिरांतील वृक्ष, वारुळा जवळचे वृक्ष, बागेतील वृक्ष, तापस वृक्ष, श्रमानें वाढविलेले वृक्ष, चैत्यांतील वृक्ष, नदीचे संगमावरचे वृक्ष, मातांच्या घड्यानें वाढविलेले वृक्ष, नाना प्रकारच्या लतांनीं वेढलेले वृक्ष, बाज आणि बारा ह्यांच्या योगानें पीडित झालेले वृक्ष, आपोआप पडलेले वृक्ष, हत्तींनीं पाडलेले वृक्ष, सुकून गेलेले वृक्ष, अग्नीनें जळलेले वृक्ष, जाल्या दुष्ट असलेले वृक्ष, दारूचे वृक्ष, इतके वृक्ष वर्ज्य सांगितले आहेत. ह्यां शिवाय दवटवीत पानें, फुलें असलेले वृक्ष, देवदार वृक्ष, चंदन वृक्ष, ज्यांवर भ्रमर बसतात असे वृक्ष, द्विजातीना शुभकारक आहेत. आणि क्षत्रियांना अरिष्ट, अश्वत्थ, खदिर, बिल्व इतके वृक्ष शुभ कारक आहेत. वाणी जातीनां जीव वृक्ष, खदिर वृक्ष, सिंदूर वृक्ष, स्यंदन वृक्ष हे शुभकारक आहेत. आणि शूद्र जातीनां तिंदुक, केसर, सरल, अर्जुन, साल इतके वृक्ष शुभकारक आहेत. अथवा निंदित वृक्षाशिवाय बाकीचे सर्व वृक्ष सर्वांना प्रशस्त आहेत. व्यासही अर्धें सांगतो कीं, दुसऱ्याच्या घराच्या उपयोगास लावलेलें लांकूड दुसऱ्या कामाकरितां लावूं नये. तसें केलें असतां घर करणारा तेथें राहूं शकत नाहीं, कदाचित् राहिल्याच तर फार दिवस जिवंत राहत नाहीं, समरंगण ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, बीटा, लोखंड, दगड, माती, जुनें लोखंडां सामान, तृण, पर्ण इतकें साधन घर करण्याकरितां आवश्यक आहे. शार्ङ्गधर ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, नव्या घराला नवें लांकूड श्रेष्ठ आहे. जुन्याला जुनें लांकूड प्रशस्त आहे. जुन्या घराला नवें लांकूड फारच श्रेष्ठ आहे परंतु नव्या घराला जुनें लांकूड शुभकारक नाहीं. दुसऱ्या ग्रंथामध्यें वृक्ष तोडतानां त्याची प्रार्थना करावयाची सांगितली आहे ती अशी कीं, ह्या वृक्षावर जितके प्राणी मात्र राहिले असतील ते सर्व मी दिलेला बळी घेऊन दुसऱ्या ठिकाणीं वास करोत. आणि आमचा अपराध क्षमा करोत त्यांनां आमचा नमस्कार आहे, आतां स्तंभाच्या प्रसंगानें घराचा उंचपणा सांगतो—घराचे रुंदीचे सोळा भाग करावेत त्यांतला एक भाग चार हातांत मिळवून जितके हात होतील तितकें उंच घर बांधावे. असें मुनि लोकांचें मत आहे. तेंच रत्नकोश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, रुंदीचा सोळावा भाग आणि चार हात इतकें हात घराची उंची असावी. तेंच लल्ल ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, घर फारच उंच नसावें फारच खालपट नसावें तर भिंती इतकें उंच आणि आपल्या रुची प्रमाणें असावें ॥ ३७ ॥



पदार्थ ठेवण्याची स्थाने.

स्नानाग्निस्वपिवस्त्रभोजनपशुद्रव्यामरौकः स्थिति ।

पूर्वादौ जलमीशितुर्दिशि परं वायोरपाङ्मूत्रकम् ॥

आल्पे शक्तिभुवोर्यथारुचि परे गेहस्य दक्षे घर- ।

ट्रांबूलखलचुष्टिकापितृपदप्रक्षालनान्यूचिरे ॥ १८ ॥

श्लोकार्थ—पूर्वेपासून आठ दिशेला अनुक्रमानें स्नान, अग्नि, शयन, वस्त्र, भोजन, पशु, द्रव्य, देव ह्यांचीं गृहामध्ये स्थाने करावीं. उदकाचें स्थान ईशान्यदिशेस करावें. इतर सर्व पदार्थांचीं स्थाने वायव्य दिशेस करावीं. मूत्रस्थान दक्षिणेस करावें. शक्ति अल्प असल्यामुळें किंवा जागा थोडी असल्यामुळें, वर सांगितल्या प्रमाणें पदार्थ निरनिराळे ठेवितां येण्यासारखें मोठें घर नसतां आपणाला आवडेल व सोय होईल, तसतशीं पदार्थांचीं स्थाने करावीं. घराच्या दक्षिणदिशेला विरट, पाणी, उखळ, चूल व पितरांचे पाय धुणें ह्यांचीं स्थाने करावीं असें कित्येक झणतात ॥ १८ ॥

अथ मुख्यगृहात्कस्य गृहं कस्यां दिशि कर्तव्यमित्याह—स्नानेति । स्नानं प्रसिद्धं । अग्निः प्रसिद्धः स्वपिः शयनं वस्त्राणि प्रसिद्धानि भोजनं प्रसिद्धं पशवो गवादयः द्रव्याणि सुवर्णादीनि अमरा देवा एषां ओकांसि गृहाणि तेषां स्थितिः स्थापनं पूर्वादौ दिशि क्रमेण कार्यमित्यध्याहारः । तथा च नारदः । स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेयामग्निमंदिरं । याम्यायां शयनागारं नैर्ऋत्यां वस्त्रमंदिरं ॥ प्रतीच्यां भोजनागारं वायव्यां पशुमंदिरं । भांडकोशं तूत्तरस्यामीशान्यां देवमंदिरमिति ॥ अथ जलस्थानमाह— ईशितुरीशानस्य दिशि जलं कार्यं नान्यत्र । तथा च लल्लुः । प्राच्यादिदिक्स्थे स्तलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च स्त्रीकलहं स्त्रीदौष्ट्यं नैष्ठ्यं चिंतात्मजविवृद्धिरेति । अथा- न्यदप्याह—परमिति । परमनुक्तं पदार्थजातं वायोर्दिशि कार्यं । अन्यानि मास्त्यामिति । लल्लोक्तत्वात् । अपाङ्क दक्षिणस्यां दिशि मूत्रकं कार्यम् । स्थलसंकोचे सति एतद्यत्प्रोक्तं तद्गृहमध्ये ग्राह्यतश्च स्वस्वस्थाने तारतम्येन योज्यं । अथ शक्तिभुवोः संकोचे सति कर्तव्यमाह—आल्प इति । शक्तिभुवोरुपपत्वे सति यथारुचि कार्यं गेहस्य दक्षे परे आचार्या घरट्टादिकमूचिरे घरट्टः पिष्टयंत्रं अंबु उदकं उलूखलादिकं प्रसिद्धं । तथा चोक्तं ग्रंथांतरे । उलूखलं पिष्टयंत्रमग्निस्थानजलाश्रयं । वेदमनो दक्षिणे पार्श्वे पितृणां पादशौचनमिति ॥ १८ ॥

टीकार्थ—आतां मुख्य घरापासून कोणचें घर कोणच्या दिशेस करावें तें सांगतों—पूर्व दिशेस आरंभ करून एकसारख्या अनुक्रमानें स्नान, अग्नि, शयन, वस्त्र, भोजन, पशु, द्रव्य, देव ह्यांचीं घरे बांधावीत, जसें कीं, पूर्वेस स्नानाचें घर, आग्नेयीस अग्निघर, दक्षिणेस शयन घर, नैर्ऋत्य दिशेस वस्त्र घर, पश्चिम दिशेस भोजनाघर, वायव्य दिशेस पशु घर, उत्तरदिशेस द्रव्याचें घर, ईशान्य दिशेस देवघर अशीं क्रमानें घरे करावीत. तेंच नारद सांगतो कीं, पूर्वादिशेस स्नानाचें घर, आग्नेयीदिशेस अग्नि घर, दक्षिणदिशेस शयन घर, नैर्ऋत्यदिशेस वस्त्राचें घर, पश्चिमदिशेस भोजनाचें घर, वायव्य दिशेस पशुचें घर, उत्तरदिशेस भांडाराचें घर, ईशान्यदिशेस देवघर करावें. आतां जलाचें घर सांगतों. ईशानाच्या दिशेस झणजे ईशान्यादिशेस जलाचें घर करावें. दुसरीकडे जलाचें घर करूं नये. तेंच लल्लु सांगतो कीं, पूर्व इत्यादि पासून उत्तर दिशेपर्यंतच्या सात दिशा आहेत तेथें जलाचें घर केलें असतां अनुक्रमानें पुत्रहानि, अग्निभय, शत्रुभय, स्त्रीकलह, स्त्रीचा दुष्टपणा, अनिष्टप्राप्ति, चिंतादिकांची वृद्धि अशीं होतात. जसें कीं, पूर्वेस पुत्रहानि, आग्नेयीस अग्निभय, दक्षिणेस शत्रुभय, नैर्ऋत्येस स्त्रीकलह, पश्चिमेस स्त्रीचा दुष्टपणा, वायव्येस अनिष्टांची प्राप्ति, उत्तरेस चिंतादिकांची प्राप्ति, अशा रीतीनें सात दिशेस सात प्रकारचीं अनिष्ट फळें आहेत. आतां दुसरेही सांगतों—ह्या सांगितलेल्या पदार्थांशिवाय बाकीचे सर्व पदार्थ वायव्यदिशेस करावेत. कारण लल्लुनें सांगितलें आहे कीं, दुसरीं पदार्थ ठेवण्याचीं घरे वायव्यदिशेस करावीत दक्षिण दिशेस मूत्राचें घर झणजे संडास भोरी करावी. स्थानाचा संकोच असेल तर हें पूर्वी सांगितलेलें आपल्या घराच्या सोईप्रमाणें घरामध्ये पाहिजे तसें करावें. आतां शक्तिची अनुकूलता कमी आहे आणि स्थलाचा संकोच असल्यास काय करावें तें सांगतों—आपल्याला द्रव्याची अनुकूलता नसेल आणि स्थलाचाही संकोच असेल तर आपल्या मर्जाप्रमाणें सर्व पदार्थ ठेवण्याचीं घरे करावीत कित्येक आचार्यांचें असें मत आहे कीं, घराचे दक्षिणदिशेस विरट, पाणी, उखळ, चूल

इत्यादि करावेत. असें प्रसिद्ध आहे, तेच दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, उखळ, जांते, अग्निबर, जलस्थान हीं घराचे दक्षिणबाजूस करावीत आणि पितरांचे पायधुण्याचें स्थानही त्यादिशेसच करावें ॥ १८ ॥

आयादि विचार आणि गृहप्रवेश मास.

द्वात्रिंशाधिकहस्तमग्निवदनं तार्णं त्वलिंदादिकम् ।

नैषवायादिकमीरितं तृणगृहं सर्वेषु मास्सूदितम् ॥

छन्नं वश्यकपाटमर्चिततमं वेश्मोक्तरीत्या विशेषे ।

दारंभोदितमास्सु नारदमतान्माघोर्जशुक्रेषु तु ॥ १९ ॥

श्लोकार्थ—बत्तीस हातांहून अधिक घर, चार दिशेला द्वारें आहेत असें घर, गवताचें घर आणि ओटा, राहुटी ह्यांविषयीं आय इत्यादि पाहूं सांगितलें नाहीं, गवताचें घर सर्व महिन्यांत बांधावें. भिंती घालून सर्व बाजूनीं आच्छादिलेलें, उघडतां झाकतां येणारीं दारें लाविलेलें व तोरणें, पुष्पमाला, वेली, चित्रें इत्यादिकांनीं सुशोभित केलेलें अशा घरांत, शास्त्रांत सांगितलेल्या रीतीनें गृहारंभोक्तमासांत प्रवेश करावा. नारदाच्या मतानें माघ, कार्तिक, ज्येष्ठ ह्या मासांतही गृह प्रवेश करावा ॥ १९ ॥

अथ केषु केषु गृहेषु आयादिकं भाव्यं केषु न भाव्यमित्याह—द्वात्रिंशोऽधिकः अघिकाः हस्ताः यस्मिन् गृहे प्रमाणं तद्वात्रिंशाधिकहस्तं अग्निवदनं चतुर्मुखं तार्णं तृणगृहं अलिंदादिकं अलिंदं पट्टिशालेति लोके प्रसिद्धं । आदिशब्देन निर्व्यूहादिगृहभूषणं गृह्यते । एषु आयादिकं न ईरितं नोक्तं । तथा च दैवज्ञवल्लभे अलिंदनिर्व्यूहविनिर्गमाद्याश्चतुर्दिशं ये गृहभूषणाय । आयादिकं तेषु न चिंतनीयं यतो न ते वास्तुपरिग्रहे स्थिरिति ॥ तथा च चिंतामणौ । यत्र दैव्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्वस्तुतोगधिकं । न तत्र चिंतयेद्धीमान् गणनाऽऽयव्ययादिकमिति ॥ तथा च राजमार्तंडे । आयव्ययौ मासशुद्धिं चिंतयेन्न तृणालय इति ॥ तथा च वसिष्ठः । एकादशयवादूर्ध्वं यावद्वात्रिंशहस्तकं तावदायादिकं चिंत्यं तदूर्ध्वं नैव चिंतयेदिति ॥ अथ तृणगृहे विशेषमाह—तृणगृहं सर्वेषु मास्सूदितं सर्वमासेषु कर्तव्यमित्यर्थः । अथ निष्पन्ने गृहे प्रवेशमाह—छन्नमिति । आरंभोदितमासेषु शास्त्ररित्या वेश्मगृहं विशोत् आरंभायोदिताः प्रोक्तास्ते च ते मासाश्च तेषु शास्त्ररीत्या सूत्राद्युक्तविधिना गृहं प्रविशेत्स्वामीत्यर्थः कथंभूतं वेश्म छन्नं कुड्यैराच्छादितं पुनः किलक्षणं वश्यकपाटं वश्यधीनं कपाटं यस्य तत्तथा तद्वश्यमिति लापित उच्चाटिते वा तथैव स्थिरं भवति पुनः किलक्षणं अर्चिततमं तोरणमालाद्यलंकृतं । तथा च नारदः । अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनं । गृहं न प्रविशेदेव विपदामाकरं हि तदिति ॥ तथा च च्यवनः । स्वयमुच्चाटिते रोगः पिहिते च कुलक्षयः । मानाधिकोनदिग्भागे द्वारे नीचे सुखक्षय इति ॥ अथ प्रवेशे मासविशेषमाह—नारदमतात् माघोर्जशुक्रेषु गृहं प्रविशेत् माघः प्रसिद्ध ऊर्जः कार्तिकः शुक्रो ज्येष्ठ एषु गृहं प्रविशेदित्यर्थः । आरंभोदितमास्वित्यनेन तृणगृहस्य सर्वमासेषु विहितत्वात् प्रवेशोऽपि सर्वमासेषु विहितः । तथा च नारदः । प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः । माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभन इति ॥ तथा च ज्योतिःप्रकाशे । गृहारंभोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशोद्दहमिति ॥ तथा च ग्रंथांतरे । विशेषेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदेति ॥ तथा च व्यवहारसारतत्त्वे । सौम्यायने श्रावणमार्गपौषे जन्मक्षैलश्रोपचयोद्यांशे । वामं गतेऽर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेषेद्देश्म भकूटशुद्धमिति ॥ १९ ॥

टीकार्थ—आतां कोणत्या घराविषयीं आय इत्यादिक पाहावेत आणि कोणत्या घराविषयीं आय इत्यादिक पाहूं नयेत ह्याविषयीं सांगतां—बत्तीस हातांहून अधिक जें घर असेल तें, ज्याला चार दिशेनें चार द्वारें आहेत तें, गवताचें घर, ओटा, राहुटी इत्यादिकांविषयीं पूर्वीं सांगितलेले आय इत्यादि पाहावयाचें कारण नाहीं. तेच दैवज्ञवल्लभानें सांगितलें आहे कीं, राहुटी, ओटा, ज्या घराला चोहों दिशेस चार द्वारें आहेत तें. गवताचें घर इत्यादिकांविषयीं आय इत्यादि पाहावयाचें कारण नाहीं. कारण कीं, त्यांची गणना वास्तु करण्यांत नाहीं ह्मणजे त्यांचा वास्तु करावा असें शास्त्रांत सांगितलें नाहीं. तेच चिंतामणि ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ज्याचे घराचा दीर्घपणा बत्तीस हातां पेशां अधिक आहे त्याचा आय इत्यादिक विचार करावयाचें कारण नाहीं. तेच राजमार्तंड ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, गवताच्या घराविषयीं, आय, व्यय,

महिण्याची शुद्धि इत्यादिकांचा विचार करण्याचें कारण नाही. तेंच वसिष्ठ सांगतो कीं, अकरा यवां पासून तों बत्तीस हात पर्यंत जें घर दीर्घ असतें. त्याचे आय व्यय इत्यादिक पाहावेत त्या पेक्षां ह्मणजे बत्तीस हातां पेक्षां अधिक लांब असलेल्या घराविषयीं आय वगैरे पाहावयाचें कारण नाही. आतां गवताच्या घराविषयीं विशेष सांगतो—गवताचें घर पाहिजे त्या महिन्यांत करावें. आतां घर तयार झाल्यावर प्रवेश करण्यास कसा काळ असावा तें सांगतो—आरंभी सांगितलेल्या महिन्यांत शास्त्र रीतीप्रमाणें प्रवेश करावा. आरंभी सांगितलेले महिने ह्य० माघ, कार्तिक, ज्येष्ठ ह्या महिन्यांत शास्त्रांत सांगितलेल्या विधीनें प्रवेश करावा. तें घर कसें असावें तर चोहोंकडून भितींनी आच्छादलेलें आणि ज्याचीं दारें उघडतां आणि झांकतां येणारीं अशीं असावीत. आणि ज्या घरांनां तोरण, माळा इत्यादिकांनीं उत्तम शोभा आणिली असेल अशीं घरें असावीत. तेंच नारद सांगतो कीं, ज्या घरांनां दारें नाहीत, जीं घरें भितींनी चोहोंकडून आच्छादलेलीं नाहीत. ज्या घरांमध्ये बलिदान आणि अन्न शांति झालेली नाहीं अशा घरांमध्ये प्रवेश करूं नये. कारण तसें घर विपत्तीचें स्थान आहे. तेंच च्यवन सांगतो कीं, ज्याचें दार आपोआप उघडतें अशा घरापासून रोग होतो. आपोआप झांकणारीं दारें असतील तर त्यापासून कुलाचा क्षय होतो. घर सांगितलेल्या पेक्षां अधिक उंच व अधिक ठेंगणें असें घराचें दार असेल तर सुखाचा नाश होतो. आतां प्रवेश करण्याकरितां महिना सांगतो—नारदाच्या मतानें माघ, कार्तिक आणि ज्येष्ठ ह्या महिन्यांत घरामध्ये जाण्याचा प्रवेश करावा. घराच्या आरंभी सांगितलेल्या महिन्यामध्ये ह्याचा अर्थ असा कीं, गवताचे तयार केलेल्या घरामध्ये पाहिजे त्या महिन्यांत प्रवेश करावा असें सांगितलें आहे. तेंच नारदानें सांगितलें आहे कीं, सौम्य, कार्तिक ह्या महिन्यांतील प्रवेश मध्यम आहे आणि माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ ह्या महिन्यांतील प्रवेश उत्तम आहे. तेंच ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, घराचा आरंभ करण्याकरितां जे महिने सांगितले आहेत त्या महिन्यांवर त्या नक्षत्रांवर त्या वारांवर घरामध्ये प्रवेश करावा. तेंच दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, उत्तरायणांत घरांमध्ये प्रवेश करावा. गवताच्या घरांत तर पाहिजे त्यावेळीं प्रवेश करावा. तेंच व्यवहारसार तत्त्व ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सोम्यायनांत, श्रावण, मार्गशीर्ष, पौष, ह्या महिन्यांत, जन्म राशीवर, लग्नाचा उपचय आणि उदय ह्या अंशांवर सूर्य वामभागीं असतां घराच्या वास्तूची पूजा करून घरांत प्रवेश करावा. त्या वेळीं नक्षत्राची शुद्धि वगैरे पाहावी ॥ १९ ॥

गृहप्रवेश आणि कलशचक्र.

प्रारंभोदितमैः प्रवेश उदितोऽपूर्वः सपूर्वः स्थिरैः ।

मैत्रैश्चाच्युतमूलदससहितैरारंभमैद्वयात्मकः ॥

कृत्यं वेदमभवं दिवैव विहितं रात्रौ प्रवेशः क्वचित् ।

सूर्यक्षोदिभपंचकं मनुमितादष्ट प्रवेशे न सत् ॥ २० ॥

श्लोकार्थ—गृहारंभाच्या नक्षत्र, तिथी वार इत्यादिकांवर नवीन गृहांत प्रवेश करावा. यात्रा करून आल्या नंतर स्थिर व मैत्र संज्ञक नक्षत्रांवर गृह प्रवेश करावा. श्रावण, मूळ, अश्विनी व गृहारंभाचीं नक्षत्रे ह्यांवर अग्नि वीज इत्यादिकांनीं नाश पावल्यामुळें, किंवा जीर्ण झाल्यामुळें नवीन बांधलेल्या गृहांत प्रवेश करावा. गृहासंबंधी, कोणतेही कर्म दिवसासच करावें. प्रवेश मात्र रात्रोसही करावा असें कोठें कोठें आहे. सूर्य नक्षत्रापासून पहिली पांच व चवदाव्यापासून आठ नक्षत्रे ह्य० १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११ इतकीं दिवसनक्षत्रे प्रवेशाला शुभ नाहीत. ह्याला कलशचक्र ह्मणतात ॥ २० ॥

इदानीमपूर्वादिप्रवेशानाह—प्रारंभोदितमैरिति । प्रारंभोदितमैः गृहारंभोदितनक्षत्रैरपूर्वः प्रवेश उदितो मुनींद्रैरित्यध्याहारः । अत्र प्रारंभोदितमैरित्युपलक्षणं तेन प्रारंभोदिततिथिभादिकं सर्वं ग्राह्यं अपूर्वो नाम नूतनगृहे प्रथमः प्रवेश उच्यते स्थिरैर्मैत्रैश्च नक्षत्रैः सपूर्वः प्रवेश उदितः सपूर्वो नाम यात्रावसाने यः क्रियते । अथाच्युतमूलदससहितैरारंभमैद्वयात्मकः प्रवेश उदितः द्वयात्मको नामान्यादिना नष्टगृहे पुनर्यः क्रियते । तथा च ज्योतिःप्रकाशे । अपूर्वः प्रवेशो गृहारंभमधिक्यैर्विधेयः करो मध्यमोऽत्रेति केचित् । सपूर्वः स्थिरैर्मैत्रैरेव शुद्धैरतोऽन्योऽश्विमूलाच्युतारंभमधिक्यैः ॥ वसिष्ठः अपूर्वसंज्ञं प्रथमं प्रवेशं यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञं । द्वैद्वाहयं चाग्निमयादि जातं गृहप्रवेशं त्रिविधं वदति ॥ अथ गृहकृत्यविषये दिनरात्रिविशेषनिर्णयमाह—कृत्यं वेदमभवमिति । वेदमभवं गृहमभवं यत्किंचित्कृत्यं तदिवैव विहितं न रात्रौ क्वचिद्विचामुद्गताभावे सति रात्रौ प्रवेशो विहितो नान्यत् ।

तथा च वसिष्ठः । दिवा प्रवेशः शुभदः सपुत्रपौत्रादिवृद्धयै निशि भास्करेन्द्रोः । बलेन मत्स्यध्वजवास-  
रस्य रात्रिं विना सूर्यातिथेश्च रात्रिमिति ॥ अथ कलशवास्तुनक्षत्रशुद्धिमाह-सूर्यक्षादीति । सूर्यनक्षत्रादि  
भपंचकं नक्षत्रपंचकं तथा सूर्यक्षादि मनुमिताच्चतुर्दशमितान्नक्षत्रादष्ट नक्षत्राष्टकं प्रवेशे न सत् न  
शुभं स्यादन्यानि शुभानीत्यर्थात्सिद्धं । अत्र पूर्वोक्तानां नक्षत्राणां शुभाशुभत्वं ज्ञातव्यम् ॥ २० ॥

टीकाथ—आतां नवीन प्रवेश सांगतो—घराचा आरंभ करण्याला जीं नक्षत्रे सांगितलीं आहेत. त्या नक्षत्रांवर  
घरामध्ये प्रवेश करावा असें श्रेष्ठ मुनीनीं सांगितले आहे. आरंभाला सांगितलेल्या नक्षत्रांवर असें सांगितले आहे पण  
नुसते नक्षत्रच वेळ नये तर घराचे आरंभाला सांगितलेल्या तिथि, नक्षत्र इत्यादिक सर्व पहावे. अपूर्व ह्मणजे नवीन  
घरांत प्रवेश करणे हें होय. तो प्रवेश स्थिर आणि मित्र संज्ञेक नक्षत्रवर करावा. आतां सपूर्व प्रवेश ह्मणजे यात्रा वगैरे  
करून आल्यावर जो घरांत करावयाचा प्रवेश तो समजावा. आतां अच्युतनक्षत्र ह्म० श्रवणनक्षत्र, मूलनक्षत्र आणि  
अश्विनी नक्षत्र ह्या तीनोसहित बाकीच्या आरंभाच्या सर्व नक्षत्रांवर व्यात्मक ह्म० दुसऱ्या वेळचा प्रवेश करावा ह्म० अग्नि  
इत्यादिकांनीं घर नाहीसे झाल्यावर जो पुनः प्रवेश करावयाचा तो प्रवेश करावा. तेंच ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत सांगितले  
आहे कीं, घरामध्ये अपूर्व प्रवेश करावयाचा असेल तर घराचे आरंभाला सांगितलेल्या नक्षत्रावर करावा. तो प्रवेश मध्यम  
आहे असें कित्येकांचे मत आहे. सपूर्व प्रवेश स्थिर आणि मित्र ह्या नक्षत्रावर करावा. ह्या शिवाय दुसरा प्रवेश अश्विनी,  
मूल आणि श्रवण ह्या नक्षत्रांवर करावा. वसिष्ठ असें सांगतो कीं, ज्यांत प्रथमच प्रवेश करावयाचा त्याला अपूर्व प्रवेश  
असें ह्मणतात. यात्रादि करून आल्यावर जो प्रवेश करावयाचा त्याला सपूर्व प्रवेश असें ह्मणतात. अग्नि इत्यादिकांपासून  
घराचा नाश झाल्यावर जो प्रवेश करावयाचा त्याला इंद्राह्वय नांवाचा प्रवेश ह्मणतात. एकंदर तीन प्रकारचे प्रवेश सांगि-  
तले आहेत. आतां घराचे कार्यामध्ये दिवस रात्र ह्याचा विशेष निर्णय सांगतो—घरासंबंधाने जें कांहीं कोणतें कार्य असेल  
तें दिवसासच करावें रात्रीस करूं नये. दिवसास मुहूर्त नसेल तर फक्त रात्रीस गृहप्रवेशमात्र सांगितला आहे. तेंच  
वसिष्ठ सांगतो कीं, दिवसास प्रवेश केल्यापासून पुत्र, पौत्र, संपत्ति इत्यादिकांची वृद्धि होते. रात्रीस प्रवेश करावयाचा  
झाल्यास चंद्र आणि सूर्य ह्या दोघांचें बल पाहून मत्स्यध्वजाच्या ह्म० १३ च्या रात्रीशिवाय सूर्याच्या तिथिच्या रात्रीस प्रवेश करावा.  
आतां मूलश आणि वास्तु ह्यांना नक्षत्रशुद्धि सांगतो—सूर्यनक्षत्रापासून पांच नक्षत्रे चवदापासून पुढें आठ नक्षत्रे अशुभकारक  
आहेत १-२-३-४-५ आणि १४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१ इतकीं दिवस नक्षत्रे अशुभकारक आहेत.  
अर्थात् ह्या शिवाय बाकीचीं नक्षत्रे शुभ समजावीत. ह्याकरितां पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे अर्क ह्मणजे सूर्य नक्षत्र कोणतें  
आहे तें पाहून त्यापासून ५ नक्षत्रे आणि चवदा पासून पुढें ८ नक्षत्रे अशुभ समजावीत ॥ २० ॥

गृहप्रवेशाची लग्नशुद्धि.

लग्ने चोपयचयास्थिरे रविमुखैः प्रारंभवत्संस्थितैः ।

सूर्ये वामगते स्वदिग्वदनभैर्वैश्वप्रवेशः शुभः ॥

रंध्रेषुद्विभवेभ्य आमुतगतः सूर्यो यदा स्यात्तदा ।

पूर्वाद्याननमालयं प्रविशतां स्याद्द्वामगोऽसौ क्रमात् ॥ २१ ॥

॥ इति वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ॥

श्लोकार्थ—प्रवेश कर्त्याच्या जन्मराशी पासून व जन्मलग्नापासून उपचय ह्म० ३।६।१०।११ ह्यांतील  
स्थिर लग्नावर, सूर्यादि ग्रह आरंभाला सांगितल्या प्रमाणें असतां, सूर्य वामभागी असतां आणि ज्या दिशेस  
गृहाचें मुख्य द्वार असेल त्या दिशेच्या प्रवेशोक्त नक्षत्रांवर गृह प्रवेश शुभ जाणावा, ( सतशलाकाचक्रांत पूर्वादि  
दिशांचीं नक्षत्रे पहावीं. ) जेव्हां प्रवेश लग्नाच्या अष्टम, पंचम, द्वितीय व एकादश ह्या स्थानांपासून पांच राशीला  
सूर्य असतो, तेव्हां पूर्वादि चार दिशेला द्वार असणाऱ्या गृहांत प्रवेश करणाराला तो सूर्य अनुक्रमानें वामभागी  
होतो. ( तात्पर्य—अष्टमापासून पांच राशींचा सूर्य पूर्वद्वार गृहाला वामगत, पंचमापासून पांच राशींचा दक्षिणद्वार  
गृहाला वामगत, द्वितीयापासून पांच राशींचा पश्चिमद्वार गृहाला वामगत, आणि एकादशापासून पांच राशींचा  
सूर्य उत्तरद्वार गृहांत प्रवेश करणाराला वामभागी होतो ) ॥ २१ ॥

अथ प्रवेशे लग्नगुद्धिमाह-लग्न इति । उपचयस्थिरे लग्ने जन्मर्क्षजन्मलग्नाभ्यामुपचयावहस्थिरे लग्ने वेदमप्रवेशः शुभः स्यात् कैः रविमुखैः सूर्याद्यैः प्रारंभवत्संस्थितैः गृहारंभार्थमुक्तं तद्वत्संस्थितैरित्यर्थः । कस्मिन् सति सूर्ये वामगते सति पुनः कैः स्वदिग्बदनमैः यदिङ्मुखं गृहं तदिङ्मुखैः प्रवेशोदितैर्नक्षत्रैरित्यर्थः । अथ वामसूर्यलक्षणमाह-रंभे इति । रंभे ८ पु ५ द्वि २ भवे ११ भ्यो लग्नाद्यष्टपंचमद्वितीयैकादशेभ्यः सकाशात् आसुतगतः आपंचमगतः सूर्यो यदा स्यात्तदा पूर्वाद्याननमालयं पूर्वादिसुखं गृहं प्रविशतां मनुष्याणामसौ सूर्यः क्रमाद्वामगः स्यात् । एतदुक्तं भवति । अष्टमात् पंचसु वर्तमानोऽर्कः पूर्वामुखगृहे प्रविशतां वामो भवति पंचमात्पंचसु गतो दक्षिणामुखे गृहे प्रविशतां वामो भवति द्वितीयात्पंचसु गतः प्रत्यङ्मुखे गृहे प्रविशतां वामो भवति एकादशात्पंचसु गत उत्तरामुखे गृहे प्रविशतां वामो भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥ ॥ इति स्वोक्तमुहूर्तमार्तंडटीकायां मार्तंडवल्लभायां वास्तुप्रकरणं समाप्तम् ॥

टीकार्थ—आतां प्रवेशाच्या वेळीं लग्नगुद्धि सांगतो—जन्मराशि व जन्मलग्न ह्या दोहों पासून उपचय ह्मणजे ३-६ १०-११ ह्या राशीवर व स्थिरलग्नावर पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे ह्मणजे गृहाचे आरंभाला सांगितल्या प्रमाणे सूर्यादिक ग्रह असतां गृह प्रवेश करावा. तो सूर्य वामबाजूस असेल तर आणि ज्या दिशेस वराचें, मुख्य द्वार असेल त्या दिशेच्या प्रवेशाला सांगितलेल्या नक्षत्रावर गृहाचा प्रवेश करणे शुभकारक आहे असे समजावें. वामसूर्याचें लक्षण सांगतो—प्रवेश कालाच्या लग्नापासून ८-५-२-११ ह्या स्थानापासून पंचम स्थानाचा सूर्य क्रमानें पूर्वादि चार दिशेस दार असणाऱ्याला क्रमानें वामबाजूचा होतो जसें कीं, आठव्यापासून पंचमस्थानीं असणारा सूर्य पूर्वेस तोंड असलेल्या घराला वामगत समजावा. पांचव्यापासून पंचमस्थानीं असलेला सूर्य दक्षिणमुख घराला वामगत समजावा. द्वितीयस्थानापासून पंचमस्थानाचा सूर्य पश्चिमेस तोंड असलेल्याला वामगत समजावा. अकराव्यापासून पांचव्या स्थानीं असलेला सूर्य उत्तरामुख द्वार असलेल्याला वामगत होतो असें जाणावें ॥२१॥ ॥ अशारीतीनें आपणच केलेल्या मुहूर्तमार्तंडाची मार्तंडवल्लभानामक टीकेचें वास्तुप्रकरण समाप्त झालें.

॥ वास्तुप्रकरण समाप्त ॥

## ॥ अथ यात्राप्रकरणम् ॥ ७ ॥

यात्राकाल, नक्षत्रं वगैरे.

वारं चोपचयावहस्य सुदशास्विष्टं प्रयाणं जगुः ।

कर्णात्यादितिभद्विकेषु मृगमैत्राकेंषु नो जन्मभे ॥

सार्पाद्राग्नियमाजपादपितृषु त्वाष्ट्रये चाशुभम् ।

रिक्तापर्वगुहाष्टमीहरीसितास्येषु ज्ञशक्रोन्मुखम् ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—महादशा अंतर्दशादि शुभ असतां व गोचरांत शुभ असणाऱ्या गृहाच्या वारीं प्रयाण करावें. श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशीर्ष, अनुराधा, हस्त हीं ९ नक्षत्रे यात्रेला शुभ होत. जन्मनक्षत्र यात्रेला अशुभ जाणावें. आश्लेषा, आर्द्रा, कृत्तिका, भरणी, पूर्वाभा०, मघा, चित्रा, स्वाती, विशाखा ह्या ९ नक्षत्रांवर प्रयाण अशुभ होय. अर्थात् रोहिणी, पूर्वाफ०, उत्तराफ०, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, शततारका, उत्तराभाद्रपदा हीं ९ नक्षत्रे यात्रेला मध्यम जाणावीं. रिक्ता व पूर्णिमा, अमावास्या, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी शुक्लप्रतिपदा ह्या तिथींवर आणि बुध, शुक्र संमुख असतां प्रयाण अशुभ जाणावें ॥ १ ॥

अथ यात्राप्रकरणं व्याख्यायते । तत्राऽऽदौ कस्मिन्काले यात्रा कर्तव्येत्याह-वार इति । सुदशासु शोभनदशांतर्दशाविदशोपदशासु उपचयावहस्य ग्रहस्य वारे गोचराष्टकवर्गादौ शुभफल-ग्रहस्य वारे प्रयाणमिष्टं शुभं जगुराचार्याः । केषु कर्णात्यादितिभद्विकेषु कर्णः श्रवणः अंत्यं रेवती अदितिभं पुनर्वसुः एषां द्विकाः श्रवणधनिष्ठे रेवत्याऽश्विन्यौ पुनर्वसुपुष्यौ एष्वित्यर्थः । पुनः केषु मृगमैत्राकेंषु मृगः प्रसिद्धः मैत्रमनुराधा अर्को हस्तः एषु नवनक्षत्रेषु प्रयाणं शुभमित्यर्थः ।

तत्र विशेषमाह—नो जन्मभ इति । जन्मभे जन्मनक्षत्रे श्रवणाद्यन्यतमेऽपि यानं शुभं नो जगुः । अथ येषु अशुभं तान्याह—सार्पेति । सार्पमाश्लेषा । आर्द्रा प्रसिद्धा अग्निः कृत्तिका यमो भरणी अजैकपात् पूर्वाभाद्रपदा पितरो मघा तेषु त्वाष्ट्रत्रये चित्रात्रये च एषु नवनक्षत्रेषु यानमशुभं जगुः अन्यानि नवनक्षत्राणि मध्यमानीत्यर्थतः सिद्धं । अथ यासु तिथिषु अशुभं तदाह—रिक्तेति । चतुर्थीनवमीचतुर्दश्यः पर्वणी पूर्णिमाऽमावास्ये गुहः षष्ठी अष्टमी प्रसिद्धा हरिर्द्वादशी सितास्थं शुक्र-प्रतिपत् । तेषु प्रयाणं यानमशुभं जगुर्थादन्यासु तिथिषु शुभं । अन्यदष्टमाह—ब्रैति । ब्रौ बुधः शुक्रः प्रसिद्धः तयोरनुमुखं संमुखं यानं उक्तेष्वपि तिथिनक्षत्रादिषु अशुभं जगुः बुधशुक्रसंमुखं गमनं न कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १ ॥

टीकार्थ—आतां यात्रा प्रकरण सांगतो—अगोदर कोणत्या काळीं यात्रा करावी तें सांगतो—महादशा, अंतर्दशा, उप-दशा इत्यादि शुभ असतां आणि गोचरांतही शुभग्रह असलेल्या ग्रहांच्या वारीं यात्रेकरितां प्रयाण करावें असें आर्यांचें मत आहे. कोणत्या नक्षत्रावर करावें हें सांगतो—श्रवणद्वय, ह्य० श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, आणि मृग, अनुराधा, अर्क ह्य० हस्त या नक्षत्रांवर प्रयाण शुभकारक आहे. आतां यांतहि विशेष आहे तो सांगतो—श्रवणादि प्रयाणास उक्त आहे परंतु या श्रवणादि नक्षत्रांतील नक्षत्र जर जन्मनक्षत्र असेल तर शुभ नाही. आतां प्रयाणास अशुभ नक्षत्रें सांगतो—सार्प ह्य० आश्लेषा, आर्द्रा, अग्नि ह्य० कृत्तिका, यम ह्य० भरणी, अजैकपात् ह्य० पूर्वाभाद्रपदा, पितर ह्य० मघा व चित्रात्रय ह्य० चित्रा ८ स्वाती ९ विशाखा ह्या नक्षत्रांवर प्रयाण करूं नये. पढिलीं सांगितलेलीं नक्षत्रें उत्तम हीं नक्षत्रे वर्ज्य अर्थात् बाकीचीं नक्षत्रे मध्यम आहेत. आतां ज्या तिथीवर गमन अशुभ आहे ते सांगतो—चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, शुक्रप्रतिपदा इतक्या तिथींवर प्रयाण करणें अशुभ आहे, अर्थात् इतक्यां शिवाय बाकीच्या तिथि प्रयाणास शुभ आहेत. दुसरे दुष्ट काय आहेत ते सांगतो—जर सांगितलेल्या तिथींवर व नक्षत्रांवरही जर बुध आणि शुक्र सन्मुख असतील तर यात्रेकरितां प्रयाण करणें अशुभ आहे अर्थात् गमन करूं नये ॥ १ ॥

शूल व योगिनी.

प्राक् चंद्रासितशक्रं वसुपरार्थात्पंचभेज्यानपाक् ।

पश्चात्कार्कसितानुदक्कुजबुधार्थम्पस्त्यजेच्छूलकान् ॥

त्रिंशाष्टौ नवभूमयोऽग्निगिरिशा विश्वेष्वोऽर्काब्धयः ।

षट्शक्रास्तिथिपर्वता दशदशोऽप्येतांस्तिथीनीशतः ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—पूर्वदिशेला गमन करावयाचें असतां सोमवार, शनिवार, ज्येष्ठानक्षत्र हीं सोडावीं. दक्षिणस गमन कर्तव्य असतां धनिष्ठेच्या उत्तरार्धापासून पांच नक्षत्रें, व गुरुवार सोडावा. पश्चिमेला गमन कर्तव्य असतां रोहिणीनक्षत्र व रविवार, शुक्रवार हे सोडावे. उत्तरेस प्रयाण कर्तव्य असतां मंगलवार, बुधवार व उत्तराफाल्गुनी हीं सोडावीं. कारण ह्या वारांवर व नक्षत्रांवर शूल असतो. ईशान्येला अमावास्या, अष्टमी; पूर्वेला नवमी, प्रतिपदा; आग्नेयेला तृतीया, एकादशी; दक्षिणेला त्रयोदशी, पंचमी; नैऋत्येला द्वादशी, चतुर्थी; पश्चिमेला षष्ठी, चतुर्दशी; वायव्येला पूर्णिमा, सप्तमी; उत्तरेला दशमी, द्वितीया ह्या तिथि त्या त्या दिशेस गमनाला सोडान्या, ह्या योगिनी होत ॥ २ ॥

अथ शूलानाह—प्रागिति । प्राक् पूर्वस्यां दिशि चंद्रासितशक्रं त्यजेत् चंद्रः सोमवारोऽसितः शनिवारः शक्रं ज्येष्ठा एतत्रयं पूर्वदिशि त्यजेदित्यर्थः । अपाक् दक्षिणस्यां वसुपरार्थात् धनिष्ठोत्तरार्थात् पंच नक्षत्राणि इज्यो बृहस्पतिवारः एतान् दक्षिणस्यां त्यजेत् । पश्चात् पश्चिमायां दिशि कार्कसितान् त्यजेत् को रोहिणी अर्को रविः सितः शुक्र एतान्पश्चिमायां त्यजेत् । उदक् उत्तरस्यां दिशि कुजबुधार्थम्पस्त्यजेत् कुजो मंगलवारः बुधः प्रसिद्धः अर्थमा नामोत्तराफाल्गुनी एतान् शूलकानुत्तरस्यां त्यजेत् शूलपदस्य प्रत्येकं संबंधः । अथ योगिनीमाह—त्रिंशाष्टाविति । एतान् प्रत्येकपदगतान् तिथीन् ईशतः ईशान्याः सकाशात् प्रदक्षिणक्रमेण त्यजेत् एके के त्रिंशा ३० षो ८ ई-



शान्त्या नव ९ भूमयः १ प्राच्यां अग्नि ३ गिरिशाः ११ आग्नेय्यां विश्वे १३ षवः ५ दक्षिणस्यां अकां  
१२ वध्यः ४ नैर्ऋत्यां षड् ६ शक्राः १४ पश्चिमायां तिथि १५ पर्वताः ७ वायव्यां दश १० दशः २  
उत्तरस्या । अत्रांकन्यास एव व्याख्यानम् ॥ २ ॥

**टीकार्थः**—आतां शूल सांगतों—पूर्वदिशेस गमन करावयाचें असल्यास चंद्र ह्य० सोमवार असित ह्य० शनिवार  
शक्र ह्य० ज्येष्ठानक्षत्र हीं सोडावीत. दक्षिणदिशेस गमन करावयाचें असल्यास धनिष्ठा नक्षत्राचें उत्तरार्ध आणि पुढील  
पांच नक्षत्रें आणि इज्य ह्य० गुरुवार इतकीं सोडावीत. पश्चिमदिशेस गमन करावयाचें असल्यास क ह्य० रोहिणीनक्षत्र  
अर्क ह्य० रविवार, सित ह्य० शुक्रवार इतकीं सोडावीत. उत्तर दिशेस गमन करावयाचें असल्यास कुज ह्य० मंगळवार,  
बुधवार, अयेंमा ह्य० उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र इतके हे शूल आहेत ह्याणून सोडावेत. हे वर सांगितलेले शूल प्रत्येक दि-  
शेस समजावेत ह्याणून ते सोडावेत. आतां योगिनी सांगतों—ईशान्य दिशेपासून प्रदक्षण क्रमानें ईशान्येस ३०-८ ।  
९-११३-१११३-५११२-४१६-१४१५-७१०-२ ह्या तिथि त्या त्या दिशेस गमनाला वर्ज्य आहेत. जसें ईशान्येस  
अमावास्या आणि अष्टमी, पूर्वेंस नवमी आणि प्रतिपदा, आग्नेयीला तृतीया आणि एकादशी, दक्षिणेला त्रयोदशी आणि  
पंचमी, नैर्ऋत्येला द्वादशी आणि चतुर्थी, पश्चिमेला षष्ठी आणि चतुर्दशी वायव्येला पूर्णिमा आणि सप्तमी उत्तरेला दशमी  
आणि द्वितीया ह्या तिथि त्या त्या दिशेस गमन करावयाचें असल्यास त्या तिथि योगिनी समजाव्यात ॥ २ ॥

### परिघ दोष.

ऐंद्याद्यग्निभसप्तसप्तभगणे वाय्वग्निकाष्ठास्थितो ।

नोल्लंघ्यः परिघस्त्वपाग्वरुणभैः प्राच्यैरुदङ् न व्रजेत् ॥

सर्वाशासु रवीज्यमित्रतुरगैर्यायादथावश्यके ।

हित्वा शूलमनिष्टमैर्यदि निजाशेषांगलब्धिव्रजेत् ॥ ३ ॥

**श्लोकार्थः**—सप्तशलाका चक्रांत पूर्वादि चार दिशेला कृत्तिकेपासून सात सात नक्षत्रें आहेत, त्या चक्रांत  
वायव्येपासून आग्नेयीपर्यंत एक रेषा काढिली ह्याणजे तो परिघ होतो. गमनकर्त्यानें ह्या परिघाचें उल्लंघन करून  
जाऊं नये. दक्षिणेच्या ५ पाश्चिमेच्या मिळून १४ नक्षत्रांवर पूर्वेंस व उत्तरेस जाऊं नये. तसेंच पूर्वेंच्या व उत्त-  
रेच्या मिळून १४ नक्षत्रांवर पश्चिमेस व दक्षिणेस जाऊं नये. पश्चिमेच्या नक्षत्रांवर दक्षिणेस, आणि पूर्वेंच्या  
नक्षत्रांवर उत्तरेस जाऊं नये. हस्त, पुष्य, अनुराधा, आश्विनी ह्या ४ नक्षत्रांवर सर्व दिशेला जावें. जाणें अवश्य  
असतां शूलनक्षत्र सोडून ज्या दिशेला जीं नक्षत्रें गमनाला वर्ज्य केलीं, त्यांवरही जर आपल्या गमनदिशेला शुभ  
लग्न सांपडत असेल तर त्या दिशेला प्रयाण करावें ॥ ३ ॥

**अथान्यन्निघमाह—ऐंध्येति । ऐंद्यादिषु दिक्षु अग्निमातृ कृत्तिकायाः सकाशात् सप्त सप्त भ-  
गणो भवेत् । एतदुक्तं भवति सप्तशलाकाचक्रं निष्पाद्य पूर्वगतासु सप्तसु रेखासु ईशानतः कृत्ति-  
कादीनी । सप्त नक्षत्राणि न्यसेत् तत्पुरस्थानि सप्त दक्षिणगतराखासु न्यसेत् । एवं पश्चिमोत्तररे-  
खासु क्रमेण न्यसेत्ततो वायव्याग्नेयदिग्गतां रेखां कुर्यात् । अस्या रेखायाः परिघ इति संज्ञा । एवं  
निष्पादिते चक्रे प्रयोजनमाह—वाय्वाशकाष्ठास्थित इति । वायुः प्रसिद्धः अग्निः प्रसिद्धः । अनयोः काष्ठे  
दिशौ वायव्याग्नेयौ तत्र स्थितः परिघः नोल्लंघ्यः । अथान्यत्प्रयोजनमाह—अपागिति । आपागदक्षि-  
णस्यां वरुणभैः प्रतीच्यैर्नक्षत्रैर्न व्रजेत् प्राच्यैर्नक्षत्रैः उदक् उत्तरस्यां दिशि न व्रजेत् न गच्छेत् ।  
तत्तद्विक्स्थापितनक्षत्रैस्तत्तद्दिग्गमनं सिद्धमेव सर्वासु सर्वदिक्षु रवीज्यमित्रतुरगैर्यायात् रविर्हस्तः  
इज्यः पुष्यः मित्रमनुराधा तुरगोश्विनी एभिर्नक्षत्रैः सर्वासु दिक्षु गमनं शुभमित्यर्थः । अथाऽऽवश्यके  
कृत्येऽस्यापवादमाह—अथाऽऽवश्यक इति । अथाऽऽवश्यकं कृत्ये सति निघैः अनिष्टमैः यदिक्षु यानि  
निघानि तैः पूर्वोत्तैर्नक्षत्रैस्तस्या तस्यां दिशि तदा व्रजेत् तदा कदा यदा निजाशेषांगलब्धिव्रजेत्  
निजाशायां निजगमनदिशायां इष्टांगलब्धिः इष्टलग्नलाभः स्यात् इष्टलग्नं वक्ष्यमाणलक्षणं तद्यथोक्तं  
शुणसंपन्नं यदा स्यात्तदा गच्छेदित्यर्थः । नो चेन्नैत्यर्थात्सिद्धं । किं कृत्वा शूलमं हित्वा पूर्वोक्तं शू-  
लनक्षत्रं त्यक्त्वा शूलनक्षत्रे सति निजाशेषांगलब्धावपि न गच्छेदित्यर्थः ॥ ३ ॥**

**टीकाथ—**आतां दुसरें निंघ सांगतां—पूर्वादि चार दिशेला अग्नि नक्षत्रापासून ह्य० कृत्तिकेपासून सात सात नक्षत्रें आहेत ह्याचा अर्थ असा कीं, सप्तशलाका चक्र तयार करून पूर्वैकडच्या सात रेखांवर ईशान्य दिशेपासून कृत्तिका इत्यादि सात नक्षत्रें ठेवावीत त्यांचे पुढें दक्षिणवाजूकडे सात रेखांवर सात नक्षत्रें ठेवावीत. अशा रितीनें पश्चिमादिशा आणि उत्तरदिशा ह्यांमध्येही सात सात रेखांवर सात सात नक्षत्रें ठेवावीत त्यानंतर वायव्य आणि आग्नेयादिशामध्ये जाणारी अशी एक रेखा करावी. ह्या रेखेला परिघ असं ह्मणतात अशा प्रकारचें चक्र तयार केल्यावर त्याचें प्रयोजन सांगतां—अशा रितीनें वायु आणि अग्नि ह्यांचे दिशेमध्ये ह्मणजे वायव्य आणि आग्नेयी ह्या दोन दिशेमध्ये परिघ असता त्याचें उल्लेखन करूं नये. आतां आणखी दुसरें प्रयोजन सांगतां. दक्षिण दिशेस जावयाचें असल्यास दक्षिणेच्या आणि पश्चिमेच्या मिळून १४ नक्षत्रांवर पूर्वें व उत्तरेस गमन करूं नये. तसेंच पूर्वेच्या व उत्तरेच्या मिळून १४ नक्षत्रांवर पश्चिमेस व दक्षिणेस जाऊं नये. पश्चिमेच्या नक्षत्रांवर दक्षिणेस जाऊं नये आणि पूर्वेच्या नक्षत्रांवर उत्तरेस जाऊं नये. त्या त्या दिशेस स्थापन केलेल्या नक्षत्रांवर त्या त्या दिशेस गमन करणें सिद्धच आहे. सर्वही दिशांमध्ये रवि ह्य० हस्त, इज्य ह्य० पुष्य, मित्र ह्य० अनुराधा, तुरग ह्य० अश्विनी, ह्या नक्षत्रांनी गमन करूं नये. आतां अवश्यक कार्य असल्यास ह्याचा अपवाद सांगतां—फारच जरूरीचें काम असल्यास ज्या दिशेचीं जीं निंघ ह्मणून सांगितलेलीं नक्षत्रें आहेत त्या नक्षत्रांवरही ह्य० पूर्वी सांगितलेल्या नक्षत्रांवर गमन करावें. परंतु जाणें अवश्यक असल्यास शूलनक्षत्र सोडून इष्टलक्ष मिळेल त्यावर गमन करावें. शूलनक्षत्र असून जरीं इष्ट लक्ष मिळाले तारही गमन करूं नये ॥ ३ ॥

**गमननिषेध व अभिजित्.**

**मिश्राख्यध्रुवभैर्दिनादिमलवे तीक्ष्णैर्द्वितीयैऽतिमे ।**

**क्षिप्रैर्न क्रमशो मृदूश्चरभै रात्रिभिर्भागेष्वियात् ॥**

**श्रुत्यर्केज्यमृगेष्वयं न नियमो वैश्वान्त्यपादश्रव- ।**

**स्तित्यंशस्त्वभिजिद्गमे स फलदो यामीं विनाऽपि क्षणः ॥ ४ ॥**

**श्लोकार्थ—**दिनमानाचे तीन भाग करून त्यांतल्या पहिल्या भागांत मिश्र व ध्रुव संज्ञक नक्षत्रांवर, दुसऱ्या भागांत तीक्ष्ण नक्षत्रांवर, आणि तिसऱ्या भागांत क्षिप्र नक्षत्रांवर प्रयाण करूं नये. रात्रिमानाच्या तीन भागांपैकी पहिल्या भागांत मृदुनक्षत्रांवर, दुसऱ्या भागांत उग्र नक्षत्रांवर, व तिसऱ्या भागांत चर नक्षत्रांवर गमन करूं नये. श्रवण, हस्त, पुष्य, मृग ह्या ४ नक्षत्रांवर गमन करण्याला हा नियम नाही. उत्तराषाढा नक्षत्राचा अंत्यचरण व श्रवणाचा पहिला १५ वा भाग मिळून अभिजित् नक्षत्र हातें. दक्षिणे वांचून अन्य दिशेच्या गमनाला अभिजित् नक्षत्र व मुहूर्त शुभ जाणावा ॥ ४ ॥

**अथान्यदाह—मिश्राख्येति ।** दिनादिमलवे त्रिधा विभक्तस्य दिनस्याद्यांशे । मिश्राख्यैः साधारणैर्नक्षत्रैर्ध्रुवभैश्च न इयात् न गच्छेत् द्वितीयभागे तीक्ष्णैरतिमे तृतीयभागे क्षिप्रैर्नक्षत्रैर्नैयात् । अथ रात्रिभिर्भागेषु क्रमशो मृदूश्चरभैर्नैयात् रात्रेः प्रथमभागे मृदुभिः द्वितीयभागे उग्रैः तृतीयभागे चरभैर्नैयात् । अथ विशेषमाह—श्रुतीति । श्रुत्यर्केज्यमृगेषु अयं नियमो न । श्रुतिः श्रवणः अर्को हस्तः इज्यः पुष्यः मृगः प्रसिद्धः एभिर्नक्षत्रैः सर्वभागेषु गंतव्यमिति भावः । अथाभिजिदक्ष्णं तत्फलं चाऽऽह—वैश्वेति । वैश्वमुत्तराषाढा तस्यांत्यपादश्चतुर्थचरणः श्रवणस्याद्यस्तित्यंशः प्रथमः पंचदशांश एतत्प्रमाणोऽभिजित् स्यात् । सोऽभिजिद्यामीं दक्षिणां दिशं विना सर्वदिक्षु फलदः क्षणो मुहूर्तोऽपि अभिजिद्यामीं विना फलदः यातुणामभीष्टफलदो भवतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

**टीकाथ—**आतां दुसरे सांगतां—दिवसा जें मान असेल त्याचे तीन भाग करावे पैकीं पहिल्याभागावर मिश्र आणि ध्रुव संज्ञक नक्षत्रांवर गमन करूं नये. दुसऱ्या भागावर तीक्ष्ण नक्षत्रांवर गमन करूं नये. तिसऱ्या भागावर क्षिप्र नक्षत्रांवर गमन करूं नये. अशाच रितीनें रात्रीचे तीन भाग करावेत. पैकीं पहिल्याभागीं मृदु नक्षत्रांनीं, दुसऱ्या भागीं उग्र नक्षत्रांनीं, तिसऱ्याभागीं चरनक्षत्रांनीं गमन करूं नये. आतां विशेष सांगतां—श्रुति ह्य० श्रवण, अर्क ह्य० हस्त, इज्य ह्य० पुष्य, मृग इतक्या नक्षत्रांविषयीं वर सांगितलेला नियम नाही, अर्थात् सर्व भागांवर गमन करावें. आतां अभिजिताचें लक्षण आणि त्याचें फल सांगतां—उत्तराषाढा नक्षत्राचा शेवटला चरण आणि श्रवणाचा पहिला चरण

ह्मणजे १५ अंश ह्याला अभिजित् असें नांव आहे. अशा अभिजित् नक्षत्रावर गमन करणाऱ्यानें फक्त दक्षिण दिशाखेरीज करून सर्व दिशेकडे जाणें उत्तम फल दायक आहे. अभिजित् मुहूर्तावरही गमन करणें शुभ कारक आहे मात्र दक्षिण दिशेस जाणें शुभ कारक नाही ॥ ४ ॥

गमननियम व अडलविडल.

एकार्कैद्वयनानुकूलमनिशं भेदे दिवारात्रयो- ।

भौमे प्राक् शनिचंद्रयोर्गतमपाक्पश्चाज्जगुर्वोर्हितम् ॥

भृग्वर्काह्मचुदगर्कभादचुभमगैस्तष्टं द्विसप्ताडल- ।

व्यंगाभ्यां विडलोऽनयोर्न गमनं श्रीदेवलोक्त्या हितम् ॥ ५ ॥

श्लोकार्थ—सूर्य व चंद्र ह्या दोहोंचें अयन एक असतां त्यांच्या अयन दिशेला दिवसास व रात्रीस गमन करावें. ह्मणजे दोघांचें उत्तरायण असतां दिवारात्रौ उत्तरेस व पूर्वेस आणि दोघांचें दक्षिणायन असतां दक्षिणेस व पश्चिमेस गमन करावें. दोघांचीं अयनें वेगळीं असतील तेव्हां सूर्याच्या अयन दिशेला दिवा व चंद्राच्या अयन दिशेला रात्रौ गमन करावें. मंगळवारीं पूर्वेस, शनिवारीं व सोमवारीं दक्षिणेस, बुधवारीं व गुरुवारीं पश्चिमेस आणि शुक्रवारीं व रविवारीं उत्तरेस गमन करणें शुभ होय. सूर्यनक्षत्रापासून दिवस नक्षत्र मोजून ७ नीं भागावें बाकी २।७ राहिली तर अडल व ३।६ असतां विडल असतो. ह्या दोहोंवर गमन करूं नये. देवलक्षणांच्या वचनानें अडल विडलांवर गमन शुभ आहे ॥ ५ ॥

अथान्यदाह—एकार्कैद्वयनानुकूलमिति । अर्कश्च इंदुश्च तयोरयनं अर्कैद्वयनं एवं च तत् अर्कैद्वयनं च तत्तथा तस्यानुकूलं गतं गमनं अनिशं अहर्निशं हितं स्यात् । भेदे सति दिवारात्रयोः क्रमेण शस्तं स्यात् । अयमर्थः । सूर्यो दिनस्वामी चंद्रो रात्रिस्वामी । द्वौ चेदुत्तरायणे स्यातां तदाऽहर्निशमुदगमनं शस्तं द्वौ चेदक्षिणायने भवतस्तदाऽहर्निशं दक्षिणगमनं शस्तं रात्रौ चंद्रायनदिशं प्रति गमनं शस्तं स्यादर्थान्यथा न शस्तं स्यात् । अत्र प्राची उत्तरसंबंधिनी ज्ञेया तस्माद्यदा उदगमनं शस्तं तदा प्रागगमनमपि शस्तं भवति । प्रतीची दक्षिणसंबंधिनी ज्ञेया तेन यदा दक्षिणादिगमनं शस्तं तदा प्रतीचीगमनमपि शस्तं स्यात् । तथा च रत्नकोशे । दिनकरकरप्रतप्तामकरादावुत्तरां च पूर्वां च । यायाच्च कर्कटादौ यास्याशास्यं प्रतीचीं च ॥ अथान्यदाह—भौम इति । भौमे प्राक् पूर्वदिशि गतं गमनं हितं स्यात् शनिचंद्रयोरपाक् दक्षिणस्यां जगुर्वोः बुधगुर्वोः पश्चात् । पश्चिमायां भृग्वर्काह्म शुक्राविदिने उदगुत्तरस्यां गतं गमनं हितं स्यात् । अथाडलं विडलं चाऽऽह—अर्कभादिति । अर्कभात् सूर्यनक्षत्रात् शुभं दिननक्षत्रमगैः सप्तमिस्तष्टं शेषितं सत् द्विसप्त द्वौ वा सप्त वा यदा भवति तदाडलः स्यात् व्यंगाभ्यां त्रिषट् संख्याकाभ्यां विडलः स्यादनयोरडलविडलयोर्गमनं श्रीदेवलोक्त्या देवर्षिवचनेन हितं न स्यात् ॥ ५ ॥

टीकार्थ—आतां दुसरें ही सांगतां—सूर्य आणि चंद्र ह्या दोहोंचें अयन एक असेल तर त्यांच्या अयन दिशेला दिवसास व रात्रीस गमन करणें हितकारक आहे. दोघांचा भेद असतां अनुक्रमानें दिवसास व रात्रीस गमन प्रशस्त आहे, कारण कीं सूर्य हा दिवसाचा स्वामी आहे आणि चंद्र हा रात्रीचा स्वामी आहे. दोघेजण उत्तरायणांत असतील त्यावेळेस उत्तर दिशेकडे रात्रंदिवस गमन करणें शुभ आहे. ते दोघेजण दक्षिणायनांत असतील त्यावेळेस दक्षिणेकडे रात्रंदिवस गमन करणें शुभ आहे. आतां पूर्व दिशा ही उत्तर दिशेजवळ संबंध करणारी आहे ह्मणून ज्या वेळेस उत्तर दिशेस गमन प्रशस्त आहे त्यावेळेस पूर्वेस ही गमन करणें प्रशस्त आहे. पश्चिम दिशा ही दक्षिणादिशेजवळ संबंध करणारी आहे ह्मणून ज्यावेळेस दक्षिण दिशेस गमन करणें प्रशस्त आहे. त्यावेळेस पश्चिम दिशेस ही गमन करणें प्रशस्त आहे. तेंच रत्नकोशग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, मकरादि संहाराशींवर सूर्य किरणाचा ताप झाला असतां ह्मणजे उत्तरायणांत सूर्य असतां उत्तर आणि पूर्व ह्या दिशेस गमन करावें आणि कर्कादि सहा राशींवर सूर्य असतां ह्मणजे दक्षिणायनांत सूर्य असतां दक्षिण आणि पश्चिम दिशेस गमन करणें प्रशस्त आहे, दुसरेंही सांगतां—मंगळवारीं पूर्वेस गमन करणें, शनिवारीं व सोमवारीं दक्षिणेस

गमन करणें, बुधवारी व गुरुवारी पश्चिमेस गमन करणें, शुक्रवारी व रविवारी उत्तर दिशेस गमन करणें प्रशस्त आहे. आतां अडल व विडल सांगतो—सूर्य नक्षत्रापासून दिवस नक्षत्र मोजून जी संख्या येईल तिला सातानीं भागून दोन किंवा सात बाकी राहील तर त्याला अडल असें म्हणतात आणि बाकी तीन किंवा सहा राहिले तर विडल असें म्हणतात ह्यावर गमन करूं नये. देवलाच्या मतानें गमन करणें शुभ आहे ॥ ५ ॥

वारशूलदोहद व दिशादोहद.

आज्यं दुग्धगुडौ तिलान्दधियवान्माषानिनात्प्राश्यनो ।

शूले यानमनिष्टमिंद्रककुभोऽथाऽऽज्यं तिलान्नं तिमीन् ॥

दुग्धं प्राश्य च हस्त्यनोहयनरैर्यानं सुयानं तयोः ।

ध्यानाद्वा भवति ब्रुवेऽथ हरिजं तिथ्यादिलक्षाधिकम् ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—वारशूल असतां रविवारीं आज्य, सोमवारीं दुग्ध, मंगळवारीं गूळ, बुधवारीं तीळ, गुरुवारीं दधि, शुक्रवारीं यव, शनिवारीं उडीद हे पदार्थ भक्षण करून गेलें तर वारशूलाचा दोष नाही. आज्य भक्षण करून हत्तीवर बसून पूर्वेस गमन केलें असतां सफल होतें. तीळ व अन्न भक्षण करून गाडीतून दक्षिणेस गमन केलें तर कार्यसिद्धि होते. मत्स्य भक्षण करून घोड्यावर बसून पश्चिमेस गेलें तर कार्य होतें. दुग्ध प्राशन करून पालखी मेणा वगैरे नरवाहनांतून उत्तरेस गमन केल्यानें कार्य सिद्ध होतें. हे पदार्थ प्रसंगीं मिळाले नाहीत किंवा अभक्ष्य असले तर भक्ष्य पदार्थांचें व वाहनाचें ध्यान करून गेल्यानेंही कार्यसिद्धि होते. आतां तिथीवर नक्षत्रादिकांपेक्षां लक्षपटीहून अधिक बलवान् लघ्न सांगतो, असें ग्रंथकार ह्मणतो ॥ ६ ॥

अथ वारशूलदोहदमाह—आज्यमिति । सुगमं । इनादिति । इनात्सूर्यवारात्सकाशात् । आज्यादीति प्राश्य प्राशयित्वा शूले वारशूले यानं प्रयाणमनर्थकञ्चो भवति । अथ दिग्दोहदमाह—आज्यमिति । घृतादिकं प्राश्य पेंद्रादिषु पूर्वादिषु हस्त्यादिभिर्यानं सुयानं भवति । हस्ती प्रसिद्धः अनशकटः हयैऽश्वः नरः शिबिकावाहकः । एतदुक्तं भवति । घृतं प्राश्य हास्तिना प्रागमनात्सिद्धिः । तिलान्नं तिलौदनं प्राश्य रथेन दक्षिणगमनात्सिद्धिः । मत्स्यान्प्राश्याश्वेन पश्चिमगमनात्सिद्धिः । दुग्धं प्राश्य नरैरुदगमनात्सिद्धिः स्यादित्यर्थः । असति संभवेऽभक्ष्ये च निर्णयमाह—तयोर्भक्ष्यवाहनयोर्ध्यानाद्वा यानं सुयानं भवति । अथ लग्नशुद्धिं सहेतुकामाह—ब्रुवेऽथ हरिजमिति । अथ हरिजं लग्नं ब्रुवे वचिम कथंभूतं तिथ्यादिलक्षाधिकं तिथ्यादिभ्यो लक्षाधिकं बलिष्ठमित्यर्थः ॥ ६ ॥

टीकार्थ—आतां वारशूलाचे दोहद सांगतो—रविवारपासून क्रमानें आज्य ह्म० तूप, दूध, गूळ, तिळ, दही, यव, माष इतके पदार्थ खाऊन वारशूलावरही गमन करणें प्रशस्त आहे. त्यापासून वारशूलाचा अनर्थ होत नाही. ह्मणजे रविवारीं तूप खाऊन, सोमवारीं दूध पिऊन, मंगळवारीं गूळ खाऊन, बुधवारीं तिळ खावून, गुरुवारीं दही खाऊन, शुक्रवारीं यव खाऊन, शनिवारीं माष ह्मणजे उडीद खाऊन वारशूल असतांही गमन केलें असतां शुभकारक आहे. आतां दिशेचे दोहद सांगतो—पूर्वादिदिशेस हत्ती इत्यादिकांवर बसून घृतादिक खाऊन गमन करणें प्रशस्त आहे ह्मणजे पूर्वदिशेस तूप पिऊन हत्तीवर बसून गमन केलें ह्मणजे कार्य सिद्धि होते. दक्षिणदिशेस तिळमात खाऊन रथावर बसून गमन केलें म्हणजे कार्य सिद्धि होते. पश्चिमादिशेस मासे खाऊन घोड्यावर बसून गमन केलें असतां कार्यसिद्धि होते. उत्तरदिशेस दूध पिऊन पालखीत अथवा मेण्यांत बसून गेलें असतां कार्य सिद्धि होते. आतां ते तूप इत्यादि भक्ष्य पदार्थ न मिळाले अथवा हत्ती वगैरे वाहून पदार्थ न मिळाले तर त्या भक्ष्याचें व वाहनाचें ध्यान केल्यानें गमन शुभकारक होतें. आतां लग्नाची शुद्धि हेतुसहित सांगतो—तिथी, वार, नक्षत्र इत्यादिकांपेक्षां लग्न हें लाक्षपट बलवान् आहे म्हणजे लग्न चांगलें असल्यास तिथ्यादिकांची आवश्यकता लागत नाही ॥ ६ ॥

प्रयाणाची लग्नशुद्धि व दिशांचे स्वामी.

स्वर्क्षानधिघटास्तभानृजुगृहान्वष्टं रिपोर्भादन् ।

स्वर्क्षान्गेशरिपुं खलं जनिबलत्यक्तं तथा सांप्रतम् ॥

यात्रालग्नगतं त्यजेदथ दिशामीशोऽर्कशुक्रौ कुजौ ।

राहुर्मंदशशांकसौम्यगुरवः केंद्रे दिगीशे व्रजेत् ॥ ७ ॥

श्लोकार्थ—प्रयाणकर्त्याची जन्मराशि व तीपासून उपचर्याहृत ह्यणजे १२।४।५।७।८।९।१२ ह्या राशि, कुंभराशि, अस्तंगत ग्रहाची राशि, वक्र झालेल्या ग्रहाची राशि, जन्मराशीच्या स्वामीच्या शत्रु राशीपासून षष्ठ-राशि, मेष, वृषभ, कर्क, धन, मकर ह्या ५ पृष्ठोदय राशि, जन्मराशीच्या व जन्मलग्नाच्या स्वामीचा शत्रु ग्रह, खलग्रह, जन्मकाळी बलहीन असणारा ग्रह; आणि गमन काळी निर्बळ ग्रह हे सर्व प्रयाणलक्षी सोडावे. पूर्वेपासून १ रवि, २ शुक्र, ३ मंगळ, ४ राहु, ५ शनि, ६ चंद्र, ७ बुध, ८ गुरु हे क्रमाने आठ दिशांचे स्वामी आहेत. दिशेचा स्वामी केंद्रस्थानी असतां प्रयाण करावे ॥ ७ ॥

स्वर्क्षे स्वर्क्षानर्धिघटादिकं यात्रालग्नगतं त्यजेत् । स्वर्क्षे स्वराशिः अनर्धिः स्वराशेः अनुपच-यभवनं घटः कुंभः अस्तभं अस्तगतग्रहस्य राशिः अनुजुगृहं वक्रग्रहस्य राशिः एतान् रिपोर्भात् वैरिराशेः षष्ठं अनुपृष्ठोदयं । तथा च बृहज्जातके । गोजाऽश्विकर्किमिथुनाः समृगानिशाख्या पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एवेति ॥ वृषभेषधनकर्कमकराः पृष्ठोदयाः स्वर्क्षीगेशरिपुं क्रक्षं च अंगं च ऋक्षांगे तयोरीशः स्वामी तस्य रिपुः तं खलः प्रसिद्धः जानिबलत्यक्तं जन्मनि बलहीनं ग्रहं तथा सांप्रतं प्रस्तुतं बलत्यक्तं इत्युक्तं सर्वं यात्रालग्नगतं त्यजेत् । अथ दिक्पतीनाह-दिशामिति । दिशां पूर्वादीनामीशाः स्वामिनः अर्कशुक्रादयः पाठक्रमात्स्युः केंद्रे १।४।७।१० दिगीशे सति व्रजेत् गच्छेत् यस्मिन्केंद्रे लालाटगतत्वं भवति तत्केंद्रं वर्जयित्वा अन्यकेंद्रे दिगीशे सति व्रजेत् इदमग्रिमश्लोके वक्ष्यति ॥ ७ ॥

टीकाार्थ—स्वतःची जन्मराशि आणि त्या राशीपासून उपचर्या शिवाय म्हणजे १-२-४-५-७-८-९-१२ ह्या आठ राशि, कुंभराशी, अस्तंगत असलेल्या ग्रहाची राशि, वक्रग्रहाची राशी, इतक्या राशींना, आणि जन्मराशीच्या स्वामीच्या शत्रुराशीपासून षष्ठराशी, मेष, वृषभ, कर्क, धन, मकर, ह्या ५ पृष्ठोदय राशी, इतक्या राशी सोडाव्यात. तेच बृहज्जातक ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, गो म्ह० वृषभ, अज म्ह० मेष, कर्क, धन, मकर, मृगासाहित निशा नांवाचे हे पृष्ठोदय मिथुनरहित वर्ज्य करावेत. वृष, मेष, धन, कर्क, मकर, पृष्ठोदय असलेले, आणि आपल्या राशीचा अधिपती व लग्नाचा अधिपती, ह्यांचा शत्रु त्याला, खल ह्य० दुष्टग्रह, जन्मकालाचा बलहीनग्रह, तसाच गोचरींचा बलहीनग्रह, हे सर्व यात्रेच्या वेळीं लक्ष्मी असतील तर सोडावेत. आतां दिशांचे पती सांगतो—आतां पूर्वेपासून दिशेचे अनुक्रमानें रवि इत्यादि अधिपती आहेत, जसे पूर्वेचा अधिपती रवि, आग्नेयीचा शुक्र, दक्षिणेचा मंगळ, नैर्ऋत्येचा राहु, पश्चिमेचा शनि, वायव्येचा चंद्र, उत्तरेचा बुध, ईशान्येचा गुरु हे आठ दिशांचे आठ अधिपति आहेत. केंद्रांत ह्य० १-४-७-१० ह्या स्थानी दिशेचे अधिपति असतील तर गमन करावे. जे केंद्रललाटगत असेल तेवढें केंद्र वर्ज्य करून दुसऱ्या केंद्रावर गमन करावे ह्याचे दिशांचे अधिपति केंद्रीं असतां गमन करावे असे पुढल्या श्लोकीं सांगायच्याच आहे ॥ ७ ॥

ललाटगतग्रह.

दिक्पे न प्रवसेल्ललाटग इनः प्राच्यां तनौ भालगः ।

स्यात्पश्चान्मदनेऽर्कजोऽबुगबुधः सौम्यां खगोऽपाक्कुजः ॥

ऐश्यां द्वित्रिगतो गुरुर्ज्वलनदिश्याय ११ व्यय १२ स्थो भृगु-।

वायौ षट् ६ सुत ५ गो विधुर्निर्ऋतिदिश्यष्टांकसंस्थं तमः ॥ ८ ॥

श्लोकार्थ—गमन दिशेचा स्वामी ललाटगत असतां प्रवास करूं नये, सूर्य लक्ष्मी असतां पूर्वेस ललाटगत जाणावा. शनि सप्तम स्थानी पश्चिमेस; बुध चतुर्थ स्थानी उत्तरेस, मंगळ दशमस्थानी दक्षिणेस, गुरु द्वितीय व तृतीय स्थानी ईशान्येस, शुक्र, एकादश व द्वादश स्थानी आग्नेयीस; चंद्र, षष्ठ व पंचमस्थानी वायव्येस आणि राहु, अष्टम व नवमस्थानी नैर्ऋत्येस ललाटगत जाणावा ॥ ८ ॥

अथ दिक्पतौ ललाटगतत्वं तद्दिग्गमननिषेधं लालाटलक्षणं चाऽऽह-दिक्पे ललाटगे सति

न प्रवसेत् प्रवासं न कुर्यात् । तनौ लग्ने वर्तमान इतः सूर्यः प्राक् प्राच्यां दिशि भालगो ललाटस्थितः स्यात् । मदने सप्तमे वर्तमानोऽर्कजः शनिः पश्चिमस्यां ललाटस्थितः स्यात् । अंबुगबुधः चतुर्थगतो बुधः सौम्यामुत्तरस्यां ललाटस्थितः स्यात् । खं दशमं तद्रतः कुजो भौमः अपाक् दक्षिणस्यां ललाटस्थितः स्यात् । द्वित्रिगतो गुरुः ऐश्यामीशान्यां ललाटस्थितः स्यात् । आयव्ययस्थो भृगुः कविः ज्वलजदिशि आग्नेयां ललाटस्थितः स्यात् । षट्सुतगो विभुश्चंद्रः वायौ वायव्यां ललाटस्थितः स्यात् । अष्टांकसंस्थं तमोऽष्टमनवमस्थानस्थो राहुः निर्ऋतिदिशि ललाटसंस्थः स्यादिति ॥ ८ ॥

टीकार्थ—ज्या दिशेस गमन करावयाचें त्या दिशेचा स्वामी ललाटगत असतां त्या दिशेस गमन करूं नये असें सांगतों— दिशेचा अधिपति ललाटगत असेल तर प्रयाण करूं नये. सूर्य लग्नां असेल त्यावेळेस पूर्वेस तो सूर्य ललाटगत समजावा. सप्तमस्थानीं शनि असेल त्यावेळेस तो पश्चिमेस ललाटगत समजावा. चतुर्थस्थानीं बुध असेल त्यावेळेस तो बुध उत्तर दिशेस ललाटगत समजावा. दशमस्थानीं मंगळ असेल त्यावेळेस तो दक्षिणेस ललाटगत समजावा. द्वितीय आणि तृतीय स्थानीं असलेला गुरु हा ईशान्य दिशेस ललाटगत समजावा. सहा आणि पांच ह्या स्थानीं असलेला चंद्र वायव्य दिशेस ललाटगत समजावा. आठ आणि नऊ ह्या स्थानीं असलेला राहु हा नैऋत्य दिशेस ललाटगत समजावा ॥ ८ ॥

वक्रग्रहांचा निषेध व ग्रहांची जन्मनक्षत्रे.

वक्री केंद्र १।४।७।१० गतस्तदीयदिवसो लग्नेऽस्य वर्गोभवे- ।

यातुर्नाशकरः शुभोऽपि तनुगो जन्मर्क्षलग्नेद्रिपुः ॥

द्वीशाग्रचम्बजभाग्यभानि गुरुभं पौष्णांतके सार्षभं ।

जन्मर्क्षाणि रेवरुपप्लवगतः खेटस्तनौ हानिकृत् ॥ ९ ॥

श्लोकार्थ—प्रयाणलग्नापासून केंद्रस्थानीं वक्र झालेला ग्रह, त्याचा वार व लग्नां वक्रग्रहाचा वर्ग हे गमन-कर्त्याचा नाश करितात. जन्मराशीच्या व जन्मलग्नाच्या स्वामीचा शत्रु लग्नां असतां तो शुभ असला तरी नाश करितो. सूर्यादि ग्रहांची त्यांच्या पुढें लिहिलेली जन्मनक्षत्रे होत. ज्या ग्रहाच्या जन्मनक्षत्रावर भूकंपादि उत्पात झाला असेल, तो ग्रह प्रयाणलग्नां हानिकारक जाणावा ॥ ९ ॥

वक्रीति । वक्री ग्रहः केंद्रगतः सन् यातुर्गमनकर्तुर्नाशकरः स्यात् तदीयदिवसोऽपि वक्रग्रहस्य दिवसोऽपि यातुर्नाशकरः स्यात् लग्नेऽस्य वर्गोऽपि नाशकरः स्यात् । जन्मर्क्षे लग्नेद्रिपुः शुभोऽपि तनुगो यातुर्नाशकरः स्यात् जन्मराशिजन्मलग्ने तयोः ईशो तयोः रिपुः । अथ सूर्यादीनां जन्मनक्षत्राण्याह—द्वीशेति । रेवरक्तो ग्रहाणां द्वीशादीनि जन्मर्क्षाणि जन्मनक्षत्राणि स्युः द्वीशं विशाखा सूर्यस्याग्निः कृत्तिका चंद्रस्यांबु पूर्वाषाढा भौमस्याजो श्रवणो बुधस्य भाग्यभं पूर्वाफल्गुनी गुरोः गुरुः पुष्यः शुक्रस्य पौष्णं रेवती शनेः याम्यं भरणी राहोः सार्षमाश्लेषा केतोः उपप्लवगत इति । उपप्लवगतो नाम यदीयभं यस्य ग्रहस्य भं जन्मनक्षत्रं हतं त्रिविधोत्पातहतं स्यादसौ ग्रहो लग्ने स्थितो हानिकृत्स्यात् ॥ ९ ॥

टीकार्थ—प्रयाणाचें जें लग्न असेल त्यापासून जें केंद्र ह्य० १-४-७-१० हीं स्थानें असतील त्या स्थानीं ग्रह वक्री झाला असेल तर तो गमन करणाऱ्याचा नाश करणारा होतो. त्या वक्रग्रहाचा वारही नाशकरणारा आहे. त्या वक्र ग्रहाचा वर्ग लग्नां असेल तर तोही नाश करणारा आहे. जन्मराशीचा आणि जन्मलग्नाचा स्वामी ह्यांचा शत्रु लग्नां असेल तर तो शुभ असला तरी नाश करितो. सूर्य इत्यादिकांचीं जन्मनक्षत्रे सांगतों—सूर्यादिकांचीं जन्मनक्षत्रे क्रमानें विशाखा इत्यादिक आहेत. जसें—सूर्याचें द्वीश ह्य० विशाखा चंद्राचें अग्नि ह्य० कृत्तिका, मंगळाचें अंबु ह्य० पूर्वाषाढा, बुधाचें श्रवण, गुरुचें भाग्यभ ह्य० पूर्वाफल्गुनी, शुक्राचें पुष्य, शनीचें रेवती, राहुचें याम्य ह्य० भरणी, केतूचें सार्ष ह्य० आश्लेषा, हीं जन्मनक्षत्रे समजावीत. ज्या ग्रहाच्या जन्मनक्षत्रावर भूकंप इत्यादि उत्पात झाला असेल तर तो ग्रह प्रयाणाचे लग्नां असेल तर तो हानिकारक जाणावा ॥ ९ ॥



|   |   |   |
|---|---|---|
| सूर्य—विशाखा.<br>चंद्र—कृत्तिका.<br>मंगळ—पूर्वषाढा. | बुध—श्रवण.<br>गुरु—पूर्वाफल्गुनी.<br>शुक्र—पुष्य. | शनि—रेवती.<br>राहु—भरणी.<br>केतु—आश्लेषा. |
|---|---|---|

प्रयाणलक्ष्मीं शुभ ग्रह.

वेशिः सौम्ययुतस्तनौ जनुषि ये सद्भिर्युता राशयो ।

जन्माब्जोपचयस्थिता अपि तनोः स्वर्क्षोच्चमित्रक्षणाः ॥

पापा अप्यतिशोभनास्तनुगता जन्मेश्वरौ केंद्रगौ ।

स्वारात्यह्नि तनौ शुभो न फलदो मित्राह्नि पापोऽर्थदः ॥ १० ॥

श्लोकार्थ—ज्या राशीला सूर्य असेल तीपासून दुसऱ्या राशीला वेशि ह्मणावें. शुभग्रहानें युक्त वेशि प्रयाणलक्ष्मीं असतां अतिशुभ होय. प्रयाणकर्त्याच्या जन्मकाळीं शुभग्रहांनीं युक्त ज्या राशि असतील त्या प्रयाणलक्ष्मीं फार शुभ जाणाव्या. जन्मकाळीं चंद्र ज्या राशीला असेल ती पासून ३६।१०।११ ह्या उपचय स्थानीं आणि जन्मलग्ना पासून उपचय स्थानीं जे ग्रह असतील ते प्रयाण लक्ष्मीं असतां फार शुभ होत. जन्मकाळीं स्वगृही, स्वोर्क्षी, स्वमित्रगृही असणारे खलग्रह देखील प्रयाणलक्ष्मीं अति शुभ होत. जन्मराशीचा व जन्मलग्नाचा स्वामी, हे केंद्रस्थानीं असतां फार शुभ होत. आपल्या शत्रूच्या वारीं लक्ष्मीं असणारा शुभ ग्रहही फल देत नाही. मित्राच्या वारीं लक्ष्मीं पापग्रहही फल देणारा होतो ॥ १० ॥

वेशिरिति । सूर्याद्वितीयो राशिर्वेशिः स सौम्ययुतः सन् अंगगो लग्नगोऽतिशोभनः स्यात् जनुषि जन्मकाले सद्भिर्युतये राशयः तनुगताः अतिशोभना स्युः जन्माब्जोपचयस्थिताः जन्माब्जो जन्मचंद्रः तस्मादुपचयानि त्रिषडेकादशदशमानि तेषु स्थिता ग्रहास्ते तनुगता अतिशोभनाः तनोरपि जन्मलग्नादप्युपचयस्थलग्नगता अतिशोभनाः स्युः । स्वर्क्षोच्चमित्रक्षणाः जन्मनि ये स्वर्क्षणा उच्चगा मित्रक्षणास्ते पापा अपि तनुगता अतिशोभनाः स्युः जन्मेश्वरौ जन्मराशिजन्मलग्नस्वामिनौ केंद्रगावतिशोभनौ स्यातां । स्वारात्यह्नि स्ववैरिवारे शुभः शुभग्रहः तनौ लग्ने वर्तमानो न फलदो भवति मित्राह्नि पापः तनौ वर्तमानोऽर्थदः स्यात् । तथा च्यवनः । रक्षका वर्धकाश्चैव ये स्युर्जन्मनि नायकाः । तान्वापानपि निःशंको यात्रालग्न्ये नियोजयेदित्यादि ॥ १० ॥

टीकार्थ—आतां वेशी ह्मणजे काय तें सांगून प्रयाणकाळीं शुभग्रह सांगतो—सूर्याच्या राशीपासून जी दुसरी राशी तिला वेशि असें नांव आहे. तो वेशी सौम्यग्रहानें युक्त असून लक्ष्मीं असेल तर तो फारच शुभकारक समजावा. प्रयाण करणाऱ्याच्या जन्मकाळीं शुभग्रहांनीं युक्त ज्या राशि असतात त्या जर लक्ष्मीं असतील तर त्या सर्व अति शुभकारक समजाव्यात. जन्मकाळीं चंद्र ज्या राशीवर असेल त्या राशीपासून ३-६-१०-११ ह्या उपचय स्थानीं असलेले ग्रह जर तनु ह्मणजे लक्ष्मीं असतील तर अतिशय शुभकारक आहेत. जन्मकाळीं स्वगृही, स्वोर्क्षी, आणि स्वमित्र गृही असलेले जरी पापग्रह असले तरी ते लक्ष्मीं असतील तर अतिशय शुभकारक आहेत. जन्मराशीचा अधिपति आणि जन्मलग्नाचा अधिपति हे दोघे जर केंद्रांत ह्मणजे १-४-७-१० ह्या स्थानीं असतील तर अतिशय शुभकारक जाणावेत. आपल्या शत्रूच्यावारीं व शत्रूच्या घरीं राहणारा शुभही ग्रह जर लक्ष्मीं राहणारा असेल तर तो शुभफल देणारा असत नाही आपल्या मित्राच्या वारीं आणि लक्ष्मीं हा असणारा पापग्रह फल देणारा होत नाही ॥ १० ॥

प्रयाणाला अशुभ व शुभ ग्रह.

ऽयायार्थन्यगताः खलाः खड्गजोऽब्जोऽत्याद्यपष्टाष्टगो ।

भूयः सोऽपचितोऽस्तर्खांबुसुतगः शुक्रोऽस्त इज्यो मृतौ ॥

नष्टज्ञो व्ययगो ग्रहान्वितशशी यातुर्महाविघ्नदा ।

अन्यस्थानगता जयार्थसुखदास्त्याज्यं पुरोक्तं न चेत् ॥ ११ ॥

श्लोकार्थ—प्रयाणलग्नापासून ३।११।६ ह्या तीन स्थानांशिवाय इतर सर्व स्थानीं खलग्रह, दशमस्थानीं शनि, १२।१।६।८ ह्या स्थानीं चंद्र आणि ७।१०।४।५ ह्या स्थानीं क्षीण चंद्र, सप्तम शुक्र, अष्टम गुरु, द्वादशस्थानीं अस्तंगत बुध, व कोणत्याही ग्रहानें युक्त चंद्र हे ग्रह प्रयाण कर्त्याला महाविघ्न उत्पन्न करितात. हीं स्थानें सोडून अन्यस्थानीं हेच ग्रह पूर्वीं सोडून सांगितलेले कांहीं अशुभ नसले तर गमन कर्त्याला जय, द्रव्य व सुख देतात ॥ ११ ॥

अथ यात्रालग्नो इष्टानिष्टाश्च श्लोकैर्नैकेनाऽऽह—ज्यायार्थन्यगता इति । ज्यायार्थन्यगताः खलाः ज्या ३ या ११ रिभ्यः ६ अन्यानि १।२।४।५।७।८।९।१०।१२ तत्र गताः खलाः पापग्रहाः खे दशमे इनजः शनिः । ज्याऽऽयार्थन्यगताः खला इत्यनेनैव सिद्धेऽपि विशेषदुष्टफलज्ञापनार्थं ख इनज इत्युक्तं । अंत्या १२ द्य १ षष्ठा ६ द्य ८ गोऽब्जश्चंद्रो भूयः पुनः स चंद्रोऽपचितः क्षीणचंद्रः कृष्णपक्ष चंद्रः अस्त ७ खां १० बु ४ सुत ५ मः शुक्रः अस्ते ७ इज्यो गुरुर्भूतौ ८ नष्टज्ञोऽस्तमितबुधो व्यय १२ गतः ग्रहान्वितशशी येन केनापि ग्रहेण ग्रहाभ्यां ग्रहेर्वायुक्तश्चंद्रमाः एते प्रत्येकं यातुर्महाविघ्नदाः स्युर्नानाप्रकारेण मरणभंगादीन् ददतीत्यर्थः । अन्यस्थानगता उक्तेभ्योऽन्यस्थानगताः संतस्तदा जयार्थसुखदाः स्युः । तदा कदा चेद्यादि पुरोक्तं त्याज्यं न स्यात् ॥ ११ ॥

टीकार्थ—आतां यात्रेविषयीं इष्ट आणि अनिष्ट कोणते ग्रह ते सांगतो—त्रि ह्य० ३ आय ह्य० ११ अरी ह्य० ६ ह्य० ३-११-६ ह्या स्थानांशिवाय बाकीच्या स्थानीं ह्यणजे १-२-४-५-७-८-९-१०-१२ इतक्या स्थानीं असलेले पापग्रह आणि दशमस्थानीं असलेला शनि इतके ग्रह फारच अशुभ समजावेत. वरच्या १-२-४-५-७-८-९-१० १२ ह्यांमध्ये दशमस्थानीं असलेला पापग्रह फारच अशुभ आहे असें सिद्ध होत असतां पुनः दशमस्थानचा शनि असें म्हटल्यामुळे तो दशमचा शनि फारच दुष्ट आहे असें सांगण्यास्तव लिहिलें आहे. अंत्य म्ह० १२ आय म्ह० १ षष्ठ म्ह० ६ अष्ट म्ह० ८ इतक्या स्थानीं असलेला चंद्र तो अपचित म्ह० क्षयपक्षांतील चंद्र फारच अशुभ समजावा. अस्व म्ह० ७ ख म्ह० १० अंबु म्ह० ४ सुत म्ह० ५ इतक्या स्थानीं असलेला शुक्र हा अनिष्ट आहे. अष्टम स्थानाचा गुरु हा अनिष्ट आहे अस्तंगत असलेला द्वादशस्थानचा बुध हा अनिष्ट आहे, आणि कोणत्याही ग्रहानें युक्त असा चंद्र हा अनिष्ट आहे ह्यणजे वर सांगितलेले सर्वग्रह नानाप्रकारच्या मरण इत्यादिक दोषकारक असतात. वर सांगितल्याशिवाय दुसऱ्या स्थानचे दुसरे ग्रह हे जय, अर्थ, आणि सुख देणारे आहेत. परंतु पूर्वीं सांगितलेले त्याज्य नसतील तर शुभकारक आहेत ॥ ११ ॥

संमुख शुक्र व बुधाचा अपवाद.

स्वग्रामैकपुरात्मसन्नसु चतुर्वक्त्रे चतुः शालके ।

तूद्वाहेषु वधूपवेशनृपभीदुर्भिक्षपीडासु च ॥

तीर्थस्वामिनिदेशयोर्भृगुवसिष्ठाज्यंगिरः काश्यपे ।

भारद्वाजजवात्स्ययोर्हितकरं यानं सितज्ञोन्मुखम् ॥ १२ ॥

श्लोकार्थ—स्वग्राम, एकपुर, स्वगृह, चतुर्द्वारगृह, चौसोपीघर, विवाह, वधूपवेश, राजभय, दुर्भिक्षाची पीडा, तीर्थगमन, स्वामीची आज्ञा ह्यांच्या ठायीं आणि भृगु, वसिष्ठ, अत्रि, आंगिरस, काश्यप, भारद्वाज, वत्स ह्या ७ गोत्रांत उत्पन्न झालेल्यास शुक्राच्या व बुधाच्या संमुख प्रयाण करणें शुभ जाणावें ॥ १२ ॥

अथ प्रतिबुधशुक्रापवादमाह—स्वग्रामेति । स्वग्रामः प्रसिद्धः एकपुरं प्रसिद्धं आत्मसन्न आत्मगृहं चतुर्मुखं चतुर्वक्त्रं चतुःशालकं प्रसिद्धं उद्वाहाः विवाहाः ब्राह्मादया तेषु वधूपवेशः नववधूपवेशः नृपभी राजभयं । दुर्भिक्षपीडा प्रसिद्धा तासु तीर्थस्वामिनिदेशयोः तीर्थ तीर्थगमनं स्वामिनिदेशः स्वाम्याज्ञा तयोः भृगुवसिष्ठाज्यंगिरःकाश्यपे भृगुवादिगोत्रसमूहे भारद्वाजजवात्स्ययोगौत्रयोः एषूक्तेषु सितज्ञोन्मुखं शुक्रबुधसंमुखं यानं गमनं हितं स्यात् । अत्र वधूपवेशे प्रतिशुक्रदोषो नोक्तः तत्तु भर्त्रा सह

गमनविषयं भर्त्रा विना गमने दोषो दृश्यते नवोढायास्तु वंध्यात्वमिति । तथा च भीमपराक्रमे । स्वामिना नीयमानायां प्रतिशुक्रो न विद्यत इति ॥ तथा च मतांतरे नवोढायास्तु वंध्यात्वं यदुक्तं संमुखे भृगौ । तदत्र विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागम इति ॥ तथा च लल्लुः ॥ स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विग्रहे तथाद्वाहे । नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नीस्तीति ॥ तथा च मत्स्यपुराणे । चतुःशालं चतुर्द्वारमलिदैः सर्वतोयुतं । नाम्ना तत्सर्वतोभद्रं न तत्र प्रतिशुक्रतेति ॥ तथा च वसिष्ठः । काश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वज्यांगिरसेषु च । भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न विद्यत इति ॥ १२ ॥

**टीकार्थ—**आतां प्रीतिबुध आणि संमुखशुक्र ह्यांचा अपवाद सांगतो—स्वग्रामामध्ये, एकनगरामध्ये, आपल्या घरी, ज्या घरास चार द्वारे आहेत अशा घरी, चारसोपे असलेल्या घरी, ब्राह्म इत्यादि चार विवाहामध्ये, नवीन वधूच्या प्रवेशामध्ये, राजभयाचेवेळी, दुष्काळाच्या पंडेममध्ये, तीर्थगमनामध्ये, स्वामीच्या आज्ञेमध्ये, इतक्या ठिकाणी आणि भृगु, वसिष्ठ, अग्नि, आंगिरस, काश्यप, भारद्वाज, वत्स ह्या सात गोत्रांत उत्पन्न झालेल्यांस शुक्राच्या व बुधाच्या-संमुख प्रयाण करणे शुभ आहे असे जाणावे. आतां वधू प्रवेशाविषयी प्रतिशुक्राचा दोष सांगितला नाही परंतु तो नियम पतिबरोबर गमन करण्याविषयीचा आहे पतिशिवाय गमन करण्यामध्ये नवोढेला वंध्यापणाचा दोष आहे. तेच भीमपराक्रमग्रंथांत असे सांगितले आहे की, स्वामीबरोबर वधूने गमन केले असतां प्रतिशुक्राचा दोष नाही. तसेच दुसऱ्या मतांत सांगितले आहे की, नवोढेने शुक्रसंमुख असतां एकटे गमन केले असतां दोष आहे असे विद्वानांचे मत आहे. परंतु दोघांनी बरोबर गमन केले असतां दोष नाही तेच लल्ल सांगत आहे की, आपल्या घरी, नगरामध्ये देशाच्या नाशाचेवेळी, लग्नाचे वेळी, नववधूच्या प्रवेशाचेवेळी प्रतिशुक्राची विचारणा करावयाचे कारण नाही. तेच मत्स्यपुराणांत सांगितले आहे की, चारसोपे असलेले, चार द्वारे असलेले, चोहोकडे उंबरा असलेले, अशाला सर्वतोभद्र असे झणतात. तशामध्ये प्रवेश करताना प्रतिशुक्राचा विचार करावयाचे कारण नाही. तेच वसिष्ठ सांग तो की, काश्यप, वसिष्ठ, भृगु, आंगिरस, भारद्वाज, वात्स्य, इतक्या गोत्रांत उत्पन्न झालेल्यांस प्रतिशुक्राचा दोष नाही ॥ १२ ॥

### संमुखशुक्राचा अपवाद व प्रयाणविधि.

चंद्रे पूषभमेषगे सति सितोऽधः स्यात्तदा संमुखं ।

यानं सत्परपूर्वयोः सितविपर्यासात्सदाऽऽवश्यकं ॥

राजा तर्पितवद्भिभूसुरसुहृत्स्नेहानुवृत्तिं त्यजन् ।

तृप्तः कार्यमना व्रजेत्रिदिवसैरेकाब्धिषट्क्रोशकान् ॥ १३ ॥

**श्लोकार्थ—**रेवती नक्षत्राला व मेषराशीला चंद्र असतां शुक्र अंध होतो, तेव्हां त्याच्या संमुख प्रयाण करणे शुभ होय. अवश्य कार्य असतां शुक्राच्या उलट दिशेला ह्मणजे आकाशाच्या पूर्व कपालांत शुक्र असतां पश्चिमेला व पश्चिमकपालांत असतां पूर्वेला गमन करणे सर्वकाळ शुभ जाणावे. अग्नि, ब्राह्मण, मित्र ह्यांना तृप्त करून स्नेह संबंध सोडून, भोजन करून स्वतः तृप्त होऊन व कार्याविषयी मन उत्कण्ठित ठेवून राजाने पहिल्या दिवशी एक कोस, दुसऱ्या दिवशी चार कोस, व तिसऱ्या दिवशी सहा कोस असे प्रयाण करावे चवथ्या दिवसापासून पुढे पाहिजे तितके कोस गमन करावे ॥ १३ ॥

अथान्यं चापवादमाह—चंद्र इति । चंद्रे पूषभमेषगे सति सितः शुक्रः अंधः स्यात् तदा संमुखं यानं सत् शुभं स्यात् । तथा च गर्गः । पौष्णादिवह्निभाद्यत्रौ यावत्तिष्ठति चंद्रमाः । तावदंधो भवेच्छुक्रः प्रवेशे निर्गमे शुभ इति ॥ अथाऽऽवश्यकं प्रवृत्तिमाह—परपूर्वयोरिति । परपूर्वयोः । पश्चिमपूर्वयोः सितविपर्यासाच्छुक्रविपर्यासात् आवश्यकं कृत्ये सति यानं सत्स्यात् । एतदुक्तं भवति शुक्रे पूर्वकपालगतं सति पश्चिमां गच्छेत् । पश्चिमकपालगतं सति पूर्वां गच्छेत् । तथा च ज्योतिःप्रकाशे व्युत्सुकेषु यावत्प्राक्पालस्थो भृगुर्भवेत् । तावत्पश्चिदिशं गच्छेत्प्राचिं प्रत्यक्स्थितस्तथेति ॥ अथ प्रयाणविधिमाह—राजेति । राजा त्रिदिवसैरेकाब्धिषट्क्रोशकान् व्रजेत् एतदुक्तं भवति प्रथमदिने क्रोशं गच्छेत् । द्वितीयदिने चतुःक्रोशान् तृतीये षट्क्रोशान् अर्थात्परतो यथेच्छं गच्छेत् । कथंभूतः राजा तर्पितवद्भिभूसुरसुहृत् वह्निभिः भूसुरा ब्राह्मणाः सुहृदो बांधवाः ते तर्पिताः वह्नि-

भूसुरसुहृदो येन स तथा । अत्रायं भावः । समिच्चरुतिलादिना वह्नितर्पयित्वा दक्षिणाज्ञादिभिर्भूसुरांस्तर्पयित्वा वस्त्रालंकरणादिभिः सुहृदः कलत्रादींस्तर्पयित्वा व्रजेदिति । किं कुर्वन् स्नेहानुवृत्तिं त्यजन् सन् स्नेहेन अनुवृत्तिः पुनर्गृहागमनं । अयं भावः । यात्रार्थं वह्निर्गत्वा पुत्रादि स्नेहवशात्सद्वलीकनार्थं गृहं नाऽऽगच्छेदिति । कथंभूतः राजा तृप्तः बुभुक्षितो न गच्छेदिति भावः । पुनः किं लक्षणकार्यमनाः कार्याय उत्कंठितांतःकरणः । तथा च रत्नावल्यां । स्वनिकेतात्सुरभवेनात्प्रधानादाश्रमादुरुः गृहाद्वापि । यायात्कृतान्निकार्यः प्राश्य हविष्यं द्विजानुमतमिति ॥ तथा च बृहस्पतिः दैवज्ञं पूजयित्वा तु विदुषः पूज्यः शक्तिः । प्रदक्षिणमिमाम्कृत्वा तिष्ठन्ध्यायेदुमापतिमिति ॥ तथा च ज्योतिःप्रकाशे संतोष्य स्वांगनां विप्रान् जह्यात्प्रतिरथादिकं । शुचिः शुक्लांबरोष्णीषो नत्वष्टं सुमना व्रजेदिति ॥ तथा च काश्यपः । यात्रासमयं वृद्धानुपरागे च ग्रहस्य वैषम्ये । गोभूहिरण्यवस्त्रैः संपूज्य श्रद्धया च दैवज्ञमिति ॥ बृहद्यात्रायां । स्नातो भुक्तोऽनुलितश्च सर्वालंकारभूषितः । शुक्लांबरधरः श्रीमानध्वगः सुखमेधत इति ॥ भूपालवल्लभे । ब्राह्मणाज्ञावमन्येत कोपयेन्न निजांगनां । यात्रां कृत्वा गृहं नैतु सिद्धकामो विशेषद्रुममिति ॥ ललः । यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणानवमन्यते । तदंतं जीवितं तस्य नासौ प्रतिनिवर्तत इति ॥ बृहद्यात्रायां । यस्तु संप्रस्थितो यात्रां स्वभार्यां नाभिनंदति । भार्यावानाभिनंदेत नास्य प्रतिनिवर्तनमिति ॥ तथा च रत्नावल्यां । क्रोशं वा यदि वाऽप्यर्थं प्रथमेऽहनि शस्यते द्वितीये योजनं गत्वा निवसेत् महीपतिः ॥ तृतीये योजनं सार्धं वसेदाक्रम्य दूरतः । ततः परं यथेष्टं तु यायान्मार्गं महीश्वर इति ॥ १३ ॥

टीका—आतां दुसरा अपवाद सांगतो—रेवतीनक्षत्रावर चंद्र असतां आणि मेषराशीला चंद्र असतां शुक्र हा आंधळा असतो झणून त्यावेळेस शुक्रसंमुख असल्याचा दोष नाही. तेंच गर्ग सांगत आहे की, रेवती नक्षत्रावर चंद्र असतां आणि मेषराशीवर चंद्र असतां शुक्र हा आंधळा असतो त्यावेळेस गमन करणें शुभकारक आहे. आतां अवश्यक कार्याविषयीं प्रवृत्ति सांगतो—अतिशय अवश्यक काम असेल तर शुक्राच्या उलट दिशेस जाण्यास हरकत नाही जसें कीं शुक्र आकाशांत पूर्वे कपालांत असला तर पश्चिमेस जाण्यास हरकत नाही व पश्चिम कपालांत असला तर पूर्वेस जाण्यास हरकत नाही. तेंच ज्योतिःप्रकाशांत सांगितलें आहे कीं, अतिशय अवश्यक कार्य असतां पूर्वकपालांत शुक्र असेल तर पश्चिम दिशेस जाण्यास हरकत नाही. शुक्र पश्चिम कपालांत असेल तर पूर्व दिशेस जाण्यास हरकत नाही. आतां प्रयाण विधि सांगतो—राजानें पहिल्या दिवशीं एक कोस जावें दुसरे दिवशीं चार कोस तिसरे दिवशीं सहा कोस अशा रीतीनें गमन करावें अर्थात् पुढें आपल्या इच्छे इतके कोस चालावें राजानें निघण्याचें पूर्वीं आग्नि आणि ब्राह्मण आणि आपले मित्र ह्यांना तृप्त करावें. ह्याचा अर्थ असा कीं अग्निमध्ये तृप्त, चरु, तिल इत्यादि हवन करून त्याला तृप्त करावें, ब्राह्मणांला दक्षिणा इत्यादिक देऊन तृप्त करावें. आपल्या मित्रांनां वस्त्र, अलंकार इत्यादि देऊन तृप्त करावें. यात्रेस जातानां मागील पुत्रादिकांवर स्नेह न ठेवतां जावें म्हणजे यात्रे करितां बाहेर निघाल्यावर पुनः स्नेहास्तव पुत्रादिकांना पाहाण्याकरितां घरीं माघारें येऊं नये. उपवास पोटीं राजानें गमन करूं नये. व्यग्र मनानें गमन करूं नये. तेंच रत्नावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, राजानें आपल्या घरांतून, मंदिरांतून, उत्तम महालांतून गुरु घरापासून निघतांना अग्नीला हवनांनीं तृप्त करून ब्राह्मणांनां संतुष्ट करून ब्राह्मणांच्या अनुमतीनें यात्रेस जावें. तेंच बृहस्पती सांगतो कीं, ज्योतिर्विदाची म्हणजे जोशीबोवांची पूजा करून आणि यथाशक्तीनें विद्वानांची पूजा करून त्यांना प्रदक्षिणा घालून श्रीशिवाचें ध्यान करीत निघावें तेंच ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, आपल्या स्त्रियेला आणि ब्राह्मणांनां संतुष्ट करून प्रातिरथ इत्यादिक सोडावेत. स्वच्छ वस्त्र धारण करून पवित्र मनानें आपल्या इष्ट देवतेला नमस्कार करून निघावें. तेंच काश्यप सांगतो कीं, यात्रेच्या वेळीं, ग्रहणाचे वेळीं, गृहभंगाचे वेळीं, गाय, पृथिवी, सुवर्ण, वस्त्र इत्यादिकांनीं दैवज्ञाची पूजा करावी. बृहद्यात्रा ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, स्नान करून, भोजन करून, चंदनादिकांचा लेप करून सर्व प्रकारचे अलंकार घालून शुभ्र वस्त्र धारण करून असा श्रीमान् राजा सुखानें वृद्धि पावत असतो, भूपाल वल्लभांत सांगितलें आहे कीं, ब्राह्मणांचा अवमान करूं नये. आपल्या स्त्रियेचा कोप होऊं देऊं नये. यात्रे करितां निघाल्यावर पुनः पुत्रादिकांच्या स्नेहानें घरीं माघारीं येऊं नये. लल सांगतो कीं, जो यात्रे करितां निघतांना ब्राह्मणांचा अपमान करितो त्याचें आशुष्य यात्रेतच पुरें होतें तो पुनः माघारा येत नाही. बृहद्यात्रेंत सांगितलें आहे कीं, जो यात्रेस निघतांना आपल्या स्त्रियेला संतुष्ट करीत नाही अथवा स्त्रीही ज्याला अभिनंदन करीत नाही तो यात्रा करून पुनः माघारा परत येत नाही. तेंच रत्नावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, राजानें पहिले दिवशीं एक कोस अथवा अर्धा कोस जावें व दुसरे दिवशीं एक योजन म्हणजे चार कोस जावें तिसरे दिवशीं दीड योजन म्हणजे सहा कोस जावें त्यापुढें आपल्या इच्छेप्रमाणें जावें ॥ १३ ॥

गमनकरणान्याचे व प्रस्थानाचे नियम.

क्रोधक्षौररतिश्रमामिषगुडघृताश्रुदुग्धासव-

क्षाराभ्यंगभयाःसितांबरवमिस्तैलं कटुज्झेद्वमे ॥

क्षीरक्षौररतीः क्रमात्रिशरसप्ताहं परं तद्दिने ।

रोगं ह्यार्तवकं सितान्यतिलके प्रस्थानकेऽपीति च ॥ १४ ॥

श्लोकार्थ—क्रोध, क्षौर, मैथुन, श्रम, मांस, गूळ, घृत, अश्रुमोचन ( रडणें ) दुग्ध, मद्य, क्षारभान्य ( उडीद वगैरे ) अभ्यंगस्नान, शत्रुभय, शत्रुवांचून अन्य रंगाचें वस्त्र, धमन, तेल, तिखट हीं सर्व गमन कर्त्यानें सोडावीं. गमनापूर्वीं तीन दिवस दुग्ध, पांच दिवस क्षौर व सात दिवस मैथुन वर्ज्य करावें. बाकीचीं क्रोधादि सर्व गमन दिवशीं सोडावीं. रोग झाला असतां तो नाहींसा होईपर्यंत प्रयाण करूं नये. स्त्रीला ऋतु प्राप्त झाला असतां संभोग होईपर्यंत प्रयाण वर्जावें. पांडन्यावांचून अन्य रंगाचा तिलक गमन दिवशीं लावूं नये. गमनाला वर्ज्य केलेले सर्व प्रस्थान ठेवावयाचें असतां त्यालाही वर्ज्य करावें ॥ १४ ॥

अथ यात्रिकस्य नियमानाह—क्रोधेति । क्रोधः प्रसिद्धः क्षौरं प्रसिद्धं । रतिर्मैथुनं श्रमः क्लेशः आमिषं मांसं गुडः प्रसिद्धः घृतं घृतवरणं अश्रु अश्रुमोचनं दुग्धं प्रसिद्धं आसवो मद्यं क्षारं क्षारधान्यं माषादि अभ्यंगस्तैलाभ्यंगः भयं शंका रिपुभयमित्यर्थः । असितांबराणि अशुभ्रवस्त्राणि रक्तकृष्णादीनि । वमिर्वमनं तैलं प्रसिद्धं कटु मरिचादि इत्येतद्वमे गमने उज्झेत् त्यजेत् । अथोक्तेषु किं किं कातिदिनं त्यजेदित्याह—क्षीरेति । क्षीरक्षौररतीः क्रमात् त्रि ३ शर ५ सप्ताहं ७ त्यजेत् क्षीरं दुग्धं ज्यहं ३ क्षौरं शराहं पंचाहं ५ रतिं सप्ताहं ७ त्यजेदित्यर्थः । परं उर्वरितं तद्दिने प्रयाणदिने त्यजेत् रोगं व्याधिं यावद्वाधं त्यजेत् ह्यार्तवं बीजदानपर्यंतं त्यजेत् सितान्यतिलकं श्वेतव्यतिरिक्ततिलकं पीतकौकुमादिकं तद्दिने त्यजेत् प्रस्थानकेऽपि इत्येतत्त्यजेत् प्रस्थानकं नाम मुहूर्तसमये किंचिद्भीष्टवस्तुचालनं । तदुक्तं रत्नमालायां । छत्रायुधाद्यं मनसस्त्वभीष्टं प्रचालयेद्भैजयिकं जयार्थीति ॥ एतत्तु कार्यवशाक्रियते प्रस्थाने संपूर्णफलं नास्ति । तथा च रत्नकोशे । कार्यवशात्स्वयमगमे भूभर्तुः केचिदाचार्याः । छत्रायुधाद्यभीष्टं वैजयिकं निर्गमे कुर्युः इति ॥ तथा च गर्गः । स्वशरीरेण यः कश्चिन्निर्गच्छन् श्रद्धयाऽन्वितः । तस्य यात्राफलं सर्वं संपूर्णं पथि सिध्यतीति ॥ तच्चालनावधिग्रंथांतरात् । गृहाद्द्वंष्टांतरं गर्ग आह सीमांतरं भृगुः । शरक्षेपाद्भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्वाहिरिति ॥ एवं प्रस्थाने कृतेऽपि स्वयमन्यस्मिन्सुदिने गच्छेत् । तथा च ज्योतिःप्रकाशे । प्रस्थानेऽपि कृते नेयान्महादोषान्विते दिने । गर्भयोगं विना कालवृष्ट्यादौ चाप्युते तथेति ॥ रत्नमालायां । वसेन्न चैकत्र दश क्षितीशो दिनानि नो सप्त च मांडलीकः । यः प्राकृतः सोऽपि च पंचरात्रं भद्रेण यात्रा परतः प्रयोज्येति ॥ एवं विधे प्रस्थानोऽपि क्रोधक्षौररत्यादीन् वर्जयेदित्यर्थः । गर्गः । क्रोधं क्षौरं तथा वांति तैलाभ्यंगाश्रुमोक्षणं घृतं मांसं गुडं तैलं यानं मद्यं परित्यजेदिति ॥ रत्नकोशे । कालीयकं हिंगुलकः कुंकुमं रक्तचंदनं । पतिं रक्तं च वसनं यातुर्नैष्ठानि तत्क्षणादिति ॥ बृहद्यात्रायां । कटुतैलगुडक्षौरपक्वमांसाशनंतथा । भुक्त्वा यो याति मोहेन व्याधितः स निवर्तत इति ॥ लल्लः । प्रमत्तो व्याधितो भीतः शांतः क्रुद्धो शुभुक्षितः । अध्वानं न प्रपद्येत क्लीबवेषस्तथैव च ॥ रत्नावल्यां । स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव वा । ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदंतं तस्य जीवितमिति ॥ भृगुः । त्रिरात्रं वर्जयेत्क्षीरं पंचाहं क्षुरकर्म च । तदहश्चावशेषाणि सप्ताहं मैथुनं त्यजेदिति ॥ यात्राया गमनलक्षणं गगार्कं ज्ञेयं । मुहूर्तसमये प्राप्ते हंसचारां त्रिणा व्रजेत् । देवज्ञामात्यविप्राद्यपुरोगैः स्वजनैर्वृतः । पूर्वं दक्षिणमुद्धृत्य पादं यात्रां नराधिपः ॥ द्वात्रिंशत् पदं गत्वा यानमारुह्य संव्रजेत् । ततो निरीक्षयेत्सम्यक् शकुनांश्च शुभाशुमान् ॥ तथैव सदसच्छब्दात्रिमित्तानि च संव्रजेदिति ॥ १४ ॥

टीका—यात्रा करणान्याचे नियम सांगेत—क्रोध, क्षौर, मैथुन, श्रम, मांस, गूळ, घृत, अश्रु, ( रडणें, ) दुग्ध, मद्य, क्षारधान्य ह्म उडीद वगैरे, अभ्यंग स्नान, शत्रूंचें भय, पांडन्या शिवाय दुसरें वस्त्र, धमन, तेल, तिखट इतके पदार्थ यात्रा करणान्यानें सोडावेत. आतां हे सांगितलेले कोणकोणते पदार्थ कितीकिती दिवस सोडावेत

तें सांगतो—यावेस जाण्याचे पूर्वी तीन दिवस दूध सोडावें पांच दिवस क्षौर वज्य करावें. सात दिवस मधुन वज्य करावें. बाकीचे पदार्थ प्रयाणाचे दिवशींच वज्य करावेत. रोग झाला असता तो नाहीसा होईपर्यंत प्रयाण करूं नये. स्त्रीस ऋतु प्राप्त झाला असता तिच्या बरोबर संभोग होईपर्यंत प्रयाण वज्य करावें. पांढऱ्या तिलका शिवाय बाकीचे लाल वगैरे तिलक त्याच दिवशी वज्य करावेत. प्रयाणाचे वेळी जे कांहीं आपलें इष्टवस्तूचें चालन तेही त्याच दिवशी वज्य करावें. तेंच रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, विजयाच्या इच्छेनें युद्ध यात्रेकरितां निघणाऱ्यानें छत्र, चामर इत्यादि जें प्रिय वस्तूचें चालन तेही वज्य करावें. हें सर्व कार्य प्रसंगोपात करावें लागतें त्याचें संपूर्ण फळ प्रस्थान काळीं होत नाही. तेंच रत्नकोश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कदाचित् कार्यवशास्तव राजानें छत्र, चामर धारण करूं नये. असें कितीएक आचार्यांचें मत आहे कित्येकांचें मत असें आहे कीं, छत्रचामरादि इष्ट पदार्थ चालन करावे. तेंच गर्ग-सांगत आहे कीं, आपल्या देहाने जो कोणी यात्रे करितां श्रद्धापूर्वक निघतो त्याला यात्रेचें संपूर्ण फळ रस्त्यामध्यें मिळतें, त्यानें छत्रचामरादि चालण्याचा अबाधित दुसऱ्या ग्रंथापासून जाणून घ्यावा. भृगु असें सांगतो कीं, एका घराहून दुसऱ्या घरीं जाणें हेंच सीमाबदलणें आहे असें समजावें भरद्वाजाचें असें मत आहे कीं, जेथपर्यंत बाण फेंकला जातो तेथपर्यंत सीमा बदलते. वसिष्ठाचें मत असें आहे कीं, नगराच्या बाहेर गेलें म्हणजे सीमा बदलते असें मत आहे. असें जरी प्रस्थान केलें तरी दुसऱ्या सुदिनावर गमन करावें. तेंच ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, प्रस्थान केलें तरी सुद्धां दोषयुक्त दिवसावर गमन करूं नये. गर्भयोगाशिवाय म्हणजे मेघाच्छादित आकाश झाल्या शिवाय एकदम अकाळ वृष्टी झाली असतांही गमन करूं नये. तेंच रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, राजानें दहा दिवस एका स्थानीं राहूं नये. मांडलिक राजानें सात दिवस एका स्थानीं राहूं नये. साधारण प्राकृत मनुष्यानेंही पांच रात्रपर्यंत एकाजागीं राहूं नये. यात्रेप्रमाणें राहाण्यास हरकत नाही अशा प्रकारच्या प्रस्थानावरही क्रोध, क्षौर इत्यादि पूर्वी सांगितलेले वज्य करावेत. गर्ग सांगतो कीं, क्रोध, क्षौर, वमन, तैलाभ्यंग, रडणें, द्यूत, मांस, गूळ, तेल, यान, मद्य हीं वज्य करावीत. रत्नकोशांत असें सांगितलें आहे कीं, कालीयक, हिंगुलक, कुंकुम, रक्तचंदन, पिवळें आणि तांबडें वस्त्र इतके पदार्थ प्रयाण करणारास त्या क्षणीं वज्य आहेत. वृहद्यात्रा ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, कडू, तेल, गुळ, क्षौर, पक्कमांस भक्षण इत्यादिकांचें भक्षण जो अज्ञानानें करून जातो तो रोगग्रस्त होऊन माधारी परत येतो. लळ असें सांगत आहे कीं, प्रमत्त झालेला, रोगग्रस्त झालेला, भय पावलेला, शांत स्वभावाचा, रागावलेला, भुकेलेला, नपुंसकाचा वेष धारण केलेला अशानें प्रयाणास जाऊं नये. रत्नावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, आपल्या अथवा दुसऱ्याच्या स्त्रियेला किंवा पुरुषाला ताडण करून जो प्रयाण करतो त्याचें आयुष्य तिकडेच पुणें होतें. भृगु सांगतो कीं, तीन दिवस पर्यंत दूध वज्य करावें पांच दिवसपर्यंत क्षौर वज्य करावें. सात दिवस मेथून वज्य करावें. आणि बाकीचे पदार्थ त्याच दिवशी वज्य करावेत यात्रेच्या गमनाचें लक्षण गर्गानें सांगितलें आहे तें जाणावें. गमनाचा सुहृत् आला असतां राजानें हंसासारखें हळू-हळू चालावें आणि दैवज्ञ, प्रधान, विप्र हे पुढें असावेत आणि अगोदर उजवा पाय उचलून बत्तीस पावले चालून मग यानांत म्हणजे रथ, गाडी, पालखी इत्यादिकांवर वसावें नंतर हळू हळू शुभ आणि अशुभ असे शकून पाह्यावेत. त्याच प्रमाणें सत् आणि असत् शब्द आणि निमित्तें पाह्यावेत ॥ १४ ॥

शुभशकुन.

वस्त्रालंकरणानि पूर्णकलशस्तौर्यध्वनिः पुत्रवान् ।

शंखादर्शनृपाश्वदंतिमुरभिस्त्रीपुष्पधान्यादि च ॥

दोलादीपविधूमवह्निमुरभिद्रव्याणि शुभ्रो वृषो ।

वेश्या छत्रवितानचामरकुमार्यो मीनगोरोचने ॥ १५ ॥

श्लोकार्थ—शुभवल्लें, सुवर्णादिकांचे अलंकार, पूर्णकलश, वाद्यांचा नाद, पुत्रवान् पुरुष, शंख, आरसा, राजा, घोडा, हत्ती, गाय, सौभाग्यवती स्त्री, पांढरीं फुलें, काळीं नव्हेत अशीं धान्यें, सुवर्णादि धातु, दोला (डोळी मेणा वगैरे), दीप धुकट न येणारा अग्नि, कापूर, चंदन वगैरे सुगंधि पदार्थ, पांढरा बैल, वेश्या, छत्र, वितान (छत्र चांदवा), चामर, कुमारिका, मत्स्य, गोरोचन हीं घरांतून बाहेर निघाल्यावर दृष्टीस पडतील तर शुभ जाणावी ॥ १५ ॥



इदानीं शकुनानाह-वस्त्रेति । वस्त्राणि श्वेतवस्त्राणि अन्यान्यपशुकुनमध्ये पठितानि । अलंकरणानि सुवर्णादिनिर्मितानि भूषणानीत्यर्थः । पूर्णकलशः प्रसिद्धः । तौर्यध्वनिः वाद्यध्वनिः । पुत्रवान् वर्धमानः पुरुषः । शंखः प्रसिद्धः । आदर्शो मुकुरः । नृपो राजा । अश्वः प्रसिद्धः । दंती हस्ती सुरभिर्गौः । स्त्री सौभाग्यवती । पुष्पाणि श्वेतानि । धान्यानि अकृष्णानि कृष्णानि त्वपशुकुनमध्ये पठितानि । आदिशब्देन सुवर्णादि धातवः । दोला प्रसिद्धा दीपः प्रसिद्धः विधूमवाहिः धूमरहितोऽग्निः सुरभिद्रव्याणि सुगंधद्रव्याणि कर्पूरचंदनादीनि शुभ्रो वृषः श्वेतवृषभः वैश्या प्रसिद्धा छत्रं प्रसिद्धं वितानं वस्त्रानिर्मितं प्रसिद्धं चामरं प्रसिद्धं कुमारी प्रसिद्धा मीनो मत्स्यः जलादुद्धृतः गोरोचनं प्रसिद्धं ॥ १५ ॥

टीकार्थ—वस्त्र म्हणजे पांढरी वस्त्रे अर्थात् त्याशिवाय दुसरी वस्त्रे अपशकून समजावीत पांढरी वस्त्रे शुभ शकून आहेत. अलंकार ह्य० सोने, मोती, रूपे इत्यादिकांनी तयार केलेले डागिने, भरलेला घडा, वाद्यांचा शब्द, पुत्रवान् पुरुष म्हणजे मुलगा असलेला पुरुष, शंख, आरसा, राजा, घोडा, हत्ती, गाय, सौभाग्यवती स्त्री, पांढरी फुले धान्ये म्हणजे काळ्या वर्णाशिवाय असलेली अर्थात् पांढरी इत्यादि वर्णाचीं धान्ये, कारण कीं काळीं धान्ये अपशकुनांत, सांगितली आहेत. धान्यादि ह्यांतील आदि ह्या शब्दाने धातु, झोंपाळा, दिवा, धूमरहीत अग्नि, सुगंध द्रव्ये. ह्य० कापूर, चंदन इत्यादि. पांढरा बैल, वैश्या ह्य० रंडी, छत्र ह्य० छत्री, छत ह्य० वस्त्राने तयार केलेले, चामर ह्य० चवरी, कुमारी ह्य० कन्या, मीन ह्य० मासे म्हणजे पाण्यांतून काढलेले अर्थात् ओले ताजे, गोरोचन इतके पदार्थ शुभ शकून आहेत ॥ १५ ॥

### शुभशकुन.

यद्यत्स्वांतनितांततोषकरणं कौरुद्धृतं गोमयम् ।

मृच्चाम्भोर्धटान्वितः सहचरो धौतांबरो मौत्रकः ॥

दूर्वादभरथाः पलासमदिरा वर्णी गुरुदैवविवित् ।

विप्रौ मित्रमृगावरोदनशवं सिद्धार्थं दुग्धादि च ॥ १६ ॥

श्लोकार्थ—जे जे दृष्टीस पडलें असतां मनाला फार संतोष उत्पन्न करील ते ते शुभ होय. जमिनीवरून उचललेलें गोमय, मृत्तिका, पाणी आणण्याकरितां मांडें घेऊन आपणाबरोबर निघालेला, धुतलेली वस्त्रे घेतलेला पॅरीट, दूर्वा, दर्भ, रथ, मांस, रक्त, मद्य, ब्रह्मचारी, गुरु, ज्योतिषी, दोषे ब्राह्मण, मित्र, मृग, बरोबर कोणी रडत नाही असें प्रेत, पांढऱ्या मोहऱ्या, दध, दुही, तूप हीं प्रयाणकर्त्याला निघाल्यावर दृष्टीस पडलीं तर शुभ होत ॥ १६ ॥

अथ संकोचेनाऽऽह-यद्यदिति । यद्यद्वस्तु स्वांतनितांततोषकरणं स्वांतं अंतःकरणं तस्य नितांतं अतिशयेन तोषकरणं संतोषजनकं तत्तत् किं बहुनोक्तेन । एवं संकोचेनोक्त्वेदानीं येषु संतोषासंतोषाभावः तानि पूर्वाचार्यैः शकुनमध्ये पठितानि तान्याह-कौरुद्धृतं गोमयं कोः पृथिव्या उद्धृतं गोमयं मृच्च पृथिव्या उद्धृता मृत्तिका अंभोऽर्थघटान्वितः सहचरः उदकार्थं कुंभयुक्तो जनः सन् सहचरः सहचरतीति सहचरः । जलार्थी रिक्तकुंभस्तु पथिकेन सह व्रजेत् । निवर्तते यथा पूर्णः कृतार्थ पथिकस्तथेत्युक्तत्वात् ॥ धौतांबरो मौत्रकः धृतवस्त्रः रजकः दूर्वा प्रसिद्धा दर्भः प्रसिद्धः दूर्वादभौ तृणे अपि शुभे अपशकुन मध्ये यत्तुणं पठितं तदेतद्व्यतिरिक्तं रथः प्रसिद्धः पलं मांसं अन्नं रक्तं मदिरा मद्यं वर्णी ब्रह्मचारी गुरुः प्रसिद्धः दैवविज्योतिषी विप्रौ द्वौ ब्राह्मणौ मित्रं इष्टः मृगः प्रसिद्धः अरोदनशवं रोदनरहितं प्रेतं सिद्धार्थी गौरसर्षपाः दुग्धादि दुग्धदध्याज्यं । ननु यद्यत्स्वांतनितांतं तोषकरणं इत्यनेन दुग्धं बृहणत्वात्सिद्धं पुनः किमुक्तं दुग्धमिति । सत्यं दुग्धं भक्षणे निषेधितं तत्सं-देहनिवृत्त्यर्थं दुग्धपठनमित्यदोषः । एवमेवात्र विचारणीयं । तथा च वसंतः । दध्याज्यदूर्वाक्षतपूर्ण-कुंभसिद्धान्नसिद्धार्थकचंदनानि । आदर्शशंखामिषमीनमद्यगोरोचनागोमयमुद्धृतं कोरिति ॥ भारद्वाजः । राजा विप्रौ सुहृद्वैश्या सपुत्रा स्त्री कुमारिका । अभिरूपो नरः स्त्री वा गजो वाजी वृषः सितः ॥ रज्ज्वाधृतान्यवर्णैर्गौः सवत्सा च विशेषतः । उद्धृतं गोमयं नीतं मृत्तिका चोद्धृता तथा ॥

रजको धौतवस्त्रश्च वेश्या तौर्यत्रिकध्वनिः । जयमंगलशब्दश्च शांतिपाठः सर्वापकः ॥ दीपो वा प्रज्व-  
लद्बहिः पूर्णकुंभो नृपासनं । मद्यं मांसं च रुधिरं भक्ष्याणि विविधानि च ॥ इक्ष्वो मधु तांबूलं वस्त्रालं-  
करणानि च । रौप्यं ताम्रं मणिं स्वर्णं द्रव्यं दर्पणमक्षताः ॥ वितानं चामरं छत्रं दूर्वा दर्भतृणध्वजाः ।  
दोला चारुथो वृद्धः पुत्रपौत्रार्थयुक् शुचिः ॥ चंदनानि सुगंधीनि तथा पुष्पाणि रोचना । घृतं दधि  
पयः पेयासिद्धमन्नं वचः शुभं ॥ दैवज्ञः सगुरुर्देवश्चित्तोत्साहकराणि च । दृष्टैतानि नरो यायात्सर्वार्थं  
लभते तु स इति ॥ १६ ॥

टीकार्थ—आतां संकोच करून थोडक्यांत सांगतो— जें जें वस्तु मनाला आतिशय संतोष कारक वाटतें तें तें वस्तु  
शुभ शकुन समजावे, फार सांगून काय फायदा आहे. अशा रीतीने थोडक्यांत शुभ शकुन सांगितले आतां ज्या विषयीं  
संतोष आणि असंतोष हे दोनही नाहींत ते पदार्थ पूर्वीच्या आचार्यांनीं शुभशकुनामध्ये सांगितले ते सांगतो— पृथ्वी  
पासून उकरून काढलेली मृत्तिका, पाणी आणण्या करितां भांडे बरोबर घेऊन जाणारा मनुष्य म्हणजे पाणी आणण्या करितां  
वाटसरू बरोबर रिकामें भांडें घेऊन जाणारा मनुष्य. तो जसा पाण्यानें भरलेला घट घेऊन येतो आणि कृतार्थ होतो  
तसा प्रयाण करणाराही फत्ते काम करून येईल. शुभ वखें नेसून जाणारा धोबी, दूर्वा, दर्भ, हे दोन गवत आहे ह्यास्तव  
अपशकुनांत यावेत परंतु ते शुभ शकुनच आहेत. ह्यापून दूर्वा आणि दर्भ ह्याशिवाय बाकीचीं तृण अपशकुन समजावीत  
रथ ह्यो गाडी, मांस, रक्त, मद्य, ब्रह्मचारी, गुरु, ज्योतिषी, दोन ब्राह्मण, मित्र, हरण, रडणारे मनुष्याबरोबर नसलेलें असें  
प्रेत, पांडव्या मोहव्या, दूध, दही, तूप हे शुभ शकुन जाणावेत. आतां अशी शंका येते कीं, दूध खाण्याचा निषेध सांगि-  
तला असून पुनः दूध शुभ शकुनांत कसे घेतलें. ही शंका दूर करण्यास्तव पुनः दूध सांगितलें आणि मनाला जें जें  
संतोषकारक ह्यापून सांगितलें त्यावरून दूध येत असतां पुनः दूध असें सांगितलें आहे ह्याचें कारण त्याच्या भक्षणास  
निषेध सांगितला ती शंका दूर करण्यास्तव आहे. तेंच वसंत सांगतो कीं, दधि, तूप, दूर्वा, अक्षता, पूर्णकुंभ, तयार अन्न, पांडव्या  
मोहव्या, चंदन, आरसा, शंख, मांस, मासे, मद्य, गोरोचन, पृथ्वीपासून काढलेली माती इतके शुभ शकुन आहेत. भार-  
द्वाज सांगतो कीं, राजा, दोन ब्राह्मण, मित्र, वेश्या ह्यो रांड, पुत्रवती स्त्री, कुमारी, सुंदर आणि कुलीन पुरुष, आणि  
कुलीन स्त्री, हत्ती, घोडा, पांढरा बैल, दोरीनें बांधून धरलेली दुसऱ्या वर्णाची वासरा सहित गाय, पृथ्वीपासून  
खणलेली माती, पांडव्या वस्त्राचा धोबी, वेश्या ह्यो रांड, वाद्य, ध्वनि, जयाचा व मंगल कारक शब्द,  
दीपासहीत शांतिपाठ, जळणारा दिवा, पेटलेला अग्नि, भरलेला घडा, राजासन, मद्य, मांस रक्त, नाना-  
प्रकारचे भक्ष्य पदार्थ, ऊंस, मद्य, तांबूल, वस्त्र, अलंकार, रुपें, तांबें, मणि, सोने, द्रव्य, आरसा, अक्षता, छत्र,  
चवरी, छत्र, दूर्वा, दर्भ, झोपाळा, उत्तम रथ, पुत्र पौत्र असलेला वृद्ध पवित्र मनुष्य, सुगंध चंदनादिक, शुभ पुष्पें,  
गोरोचन, तूप, दही, दूध, पेयवस्तु, सिद्ध अन्न, हितकारक भाषण, ज्योतिषी, गुरु, देव, मनाला आनंद करणारे पदार्थ,  
इतके सांगितलेले पदार्थ पाहून शुभ शकुन समजून प्रयाण करावें म्हणजे त्यापासून इष्ट सिद्धि होते ॥ १६ ॥

अपशकुन.

कुर्वन्दक्षिणतः सदेतदितरद्वामे प्रकुर्वन्ब्रजेत् ।

भस्मास्थीधनविट्पुषाश्मलवणोपानत्तृणायस्कराः ॥

पिण्याकौषधकृष्णधान्यरुदनं तक्रं सधूमानलः ।

कार्पासारुणपुष्पचर्म च गुडस्तैलायमी कर्दमः ॥ १७ ॥

श्लोकार्थ—मागच्या दोन श्लोकांत सांगितलेले शुभशकुनाचे पदार्थ उजव्या बाजूला घालून जावें. पुढें  
अपशकुनाचे पदार्थ आहेत ते डाव्या बाजूला घालून जावें. भस्म, हाडें, लांकडें, विष्टा, कोंडा, दगड, मीठ,  
उपानह ( जुतें, जोडा वगैरे ), गवत, लोहार, पेंड, औषध, उडीद वगैरे काळें धान्य, रडें, ताक, धुमणारा अग्नि,  
कापूस, तांबडें फूल, चर्म, गूल, तेल, लोखंड, चिखल हे पदार्थ अपशकुन करणारे होत ॥ १७ ॥

अथाशुभान्याह—कुर्वन्निति । एतत् अनंतराकं सत् शुभं दक्षिणतः दक्षिणभागे कुर्वन् सन् इत-  
रत् अशुभं वक्ष्यमाणं वामे कुर्वन् सन् ब्रजेत् गच्छेत् । भस्मेति । भस्म प्रसि० अस्थि प्रसि० इधनं  
प्रसि० विट् विष्टा तृणं धान्यादीनां त्वक् फल्यु अदमा पाषाणः लवणं सामुद्रिकं उपानहौ प्रसिद्धौ

तृणं प्रसि० अयस्करो लोहकारः पिण्याकं मर्दिततिलाः औषधं प्रसि० कृष्णधान्यं माषादि रुदनं रौद्र-  
नादि तक्रं प्रसि० सधूमानलः धूमसहितोऽग्निः कार्पासः प्रसि० अरुणपुष्पं जपादि चर्म प्रसि० गुडः  
प्रसि० तैलं प्रसि० अयो लोहं कर्दमः पंकः ॥ १७ ॥

टीकार्थ—आतां अपशकून सांगतों— पूर्वी सांगितलेले शुभकारक पदार्थांस उजवी घालून प्रयाण करावें, आणि  
आतां सांगावयाचे अशुभ पदार्थांस डावीकडे करून प्रयाण करावें. भस्म, हाडकें, लांकडें, विष्ठा, कीडा, दगड, मीठ ह्य०  
समुद्रांतील मीठ, पायांतील जौडा, गवत, लोहार, कुटलेले तीळ, औषध, काळेंधान्य, ह्य० उडीद वगैरे, रडणें वगैरे, ताक,  
धूमासहीत अग्नि, कापूस, लाल फूल, ह्य० जासुंदी वगैरे, कातडें, गुळ, तैल, लोखंड, निखल हे पदार्थ अपशकून  
कारक आहेत ॥ १७ ॥

अपशकुन.

मत्तो वांतबुभुक्षितांतकखला मुंडी जटी व्याधितः ।  
खंजव्यंगदिगंबरो यतिररिः काषायमुक्तालकौ ॥  
चोराभ्यक्तमलाविलाश्च पतितः पाश्यर्गली गुर्विणी ।  
बंध्या कृष्णवृषाहिभेकसरटा गोधा वराहः शशः ॥ १८ ॥

श्लोकार्थ—उन्मत्त, ओकणारा, मुकेलेला, प्राण्यांचीं हिंसा करणारा, दुर्जन, हजामत केलेला, जटा  
वाढविलेला, रोगी, लंगडा, अवयवहीन, नग्न, संन्यासी, शत्रु, तांबडें वस्त्र घेतलेला, केश मोकळे सुटलेला, चोर,  
तेलानें माखलेला, मलिन, जातिभ्रष्ट, प्राणी धरण्यासाठीं फांस घेतलेला, लोखंडाची कडी किंवा साखळी घेतलेला,  
गरोदर बायको, वांझ बायको, काळा बैल, सर्प, बेडूक, सरडा, घोरपड, डुकर, ससा हे सर्व अपशकून  
करणारे होत ॥ १८ ॥

मत्त इति । मत्त उन्मत्तः वांतो वमितः बुभुक्षितः प्रसि० अंतकः प्राणिहिंसकः खलो दुर्जनः  
मुंडी मुंडितः जटी जटिलः व्याधितो रोगी खंजः पादेन खंजः व्यंगः अंगहीनः दिगंबरो नग्नः यतिः  
संन्यासी अरिर्वैरी काषायी गैरिकरंजितवस्त्रः मुक्तालकः मुक्तकेशः चोरः प्रसि० अभ्यक्तः तैलाभ्यक्तः  
मलाविलो मलिनः पतितो जातिभ्रष्टः पाशी प्राणिबंधार्थं पाशवान् अर्गली अर्गलावान् गुर्विणी  
सगर्भा बंध्या निरपत्या कृष्णवृषः कृष्णोनडान् अहिः सर्पः भेको मंडूकः सरटः प्रसि० गोधा प्रसि०  
वराहः प्रसि० शशः ॥ १८ ॥

टीकार्थ—उन्मत्त, ओकणारा, मुकावलेला, प्राण्यांची हिंसा करणारा, दुर्जन मनुष्य, हजामत केलेला, जटा  
विलेला, रोगी, लंगडा, अवयवहीन, नागवा, संन्यासी, शत्रु, तांबडें वस्त्र घेतलेला, केश मोकळे सोडलेला, चोर, अभ्यक्त  
ह्य० तेलानें माखलेला, मलिन, पतित ह्य० जातिभ्रष्ट, प्राणी धरण्यासाठीं फांस घेतलेला, लोखंडाची कडी किंवा साखळी  
घेतलेला, गर्भिणी स्त्री, वांझ बायको, काळा बैल, सर्प, बेडूक, सरडा, घोरपड, डुकर, ससा इतके सर्व पदार्थ अपशकून  
करणारे आहेत ॥ १८ ॥

अपशकुन.

जाहौत् महिषः खरोष्ट्रमहिषारूढाश्च रिक्तो घट- ।  
रिच्छक्का प्राणिशिरोऽगकंपपदवीबंधाः कुवागाहवौ ॥  
पातो यानपलायनं श्वकलहः पंडः क्षुतं गोर्ज्वल- ।  
द्वेशमेतिप्रतिबंधकाः कुशकुनारिच्छक्कादिका मृत्युदाः ॥ १९ ॥

श्लोकार्थ—जाह ( एक प्राणी आहे, ह्याला कोंकणांत “मंडळ” ह्मणतात ) मांजर, रेडा, गाढवावर  
उटावर व रेड्यावर बसलेले, रिकामें भांडें, शिक, प्राण्यानें आपलें मस्तक किंवा अंग कांपवणें, कोळ्यानें मार्गांत  
सुताचें केलेलें घर, दुर्भीषण, मांजरांचें रेड्याचें वगैरे युद्ध, वस्त्रादिकांला अडखळून पडणें, अश्वदिवाहनांचें पलायन,

कुत्र्यांचें भांडण, नपुंसक, गाईची शिक, आगीनें पेटणारें घर हे अपशकुन कार्यांचा नाश करणारे आहेत. शिक वगैरे मरण आणणारे होत ॥ १९ ॥

जाह इति । जाहो मंडली लोके सेहलीतिप्रसिद्धा । जाहको गात्रसंकोची मंडली च बुधैः स्मृत इति हलायुधः ॥ ओतुर्मांजरः महिषः प्रसि० खरोष्ट्रमहिषारूढाः प्रसि० रिक्तो घटः प्रसि० छिक्का क्षुतं प्राणिशिरोंगकंपः प्राणिनां गोऽश्वादीनां प्राणिनां शिरोज्झाटनमंगोज्झाटनं वा पदवीबंधो मार्गबंध ऊर्णनाभादिभिर्मार्गां बध्यते कुवाक् कुत्सितवाक्यश्रवणं आहवः संग्रामः बिडालमहिषादीनां पातः पतनं वस्त्रादीनां स्खलनं यानमश्वादि तस्य पलायनं श्वकलहः शुनां कलहः षंडो नपुंसको गोः क्षुतं प्रसि० ज्वलद्वेष्टम ज्वलद्वहर्शनं इत्येतेऽपशकुनाः प्रतिबंधकाः कार्यप्रतिबंधकाः स्युः । छिक्कादिका अपशकुना मृत्युदाः स्युः । तथोक्तमागमांतरे । तृणतैलादि कार्पासभस्मचर्मतुषैषधं । सामुद्रं गुडपंकाहिमत्तवांतबुभुक्षितमित्यादि ॥ १९ ॥

टीकाथ—जाह ह्य० मंडली लोकांत मंडळ नांवाचा प्राणी क्षणतात, मांजर, रेडा, गाढवावर बसलेला, उंटावर बसलेला, रेव्यावर बसलेला, रिकामें भांडें, शिका, गाय, घोडा इत्यादि प्राण्यांनीं आपलें मस्तक किंवा अंग कापिवणें, कोळ्यानें मार्गांत सुताचें केलेलें घर, दुष्ट भाषण, मांजराचें रेव्याचें वगैरे युद्ध, वस्त्र इत्यादिकांना अडखळून पडणें, घोडा इत्यादि वाहनांचें पळणें, कुत्र्यांचें भांडण, नपुंसक, गाईची शिक, जळणारें घर, हे सवें अपशकून समजावेत. हे झाले असतां आपलें कार्य नष्ट होणार असें जाणावें. शिका इत्यादि अपशकुन मृत्यु कारक आहेत. तेंच दुसऱ्या आगमांत सांगितलें आहे कीं, गवत, तेल इत्यादि, कापूस, भस्म, कातडें, कोंडा, औषध, समुद्रांतील मीठ, गूळ, चिखल, सर्प, मत, ओकलेला, भुकेलेला इत्यादि ॥ १९ ॥

शुभाशुभशकुन.

भृंगाल्युष्ट्रपठच्छुकाश्च नखिनः स्त्रीसंज्ञका वामतः ।

कालीकुक्कुटपुंमथाश्च सुरभिर्दक्षे मनोभीष्टदाः ॥

भारद्वाजशिखंडिचाषनकुलाहंसोऽज एते दशं ।

याता इष्टफलास्तु रासभरवो वामेऽपि पृष्ठेऽर्थदः ॥ २० ॥

श्लोकार्थ—भ्रमर, विंचु, उंट, बोलका पोपट, नखें असणारे कुत्रे वगैरे आणि चिमणी वगैरे स्त्री संज्ञक प्राणी हे गमन कर्त्याच्या डाव्या बाजूनें गेले असतां मनोरथ पूर्ण करितात. म्हैस, कोंबडा, पुरुष संज्ञक कावळा वगैरे प्राणी आणि गाय हीं उजव्या बाजूनें गेलीं तर मनांतील हेतु पूर्ण होतात. भारद्वाज, मयूर, चाष, मुंगूस, हंस, बकरा हे दृष्टीस पडले तर इच्छित फळ देतात. गाढवाचा शब्द डाव्या बाजूला व मागल्या बाजूला झाला तर शुभ होय. वरच्या उलट होणारे अपशकुन समजावे ॥ २० ॥

अथ शकुनांतरमाह-भृंगेति । भृंगो भ्रमरः अलिवृश्चिकः उष्ट्रः प्रसि० पठच्छुकाः शब्दं कुर्वाणा राजशुकाः नखिनः श्वानादयः स्त्रीसंज्ञकाः चटकादयः एते वामतः मनोऽभीष्टदाः स्युः । काली महिषी कुक्कुटः प्रसि० पुंमथाः पुरुषसंज्ञकाः काकादयः सुरभिर्गौः एते दक्षे मनोभीष्टदाः स्युः । भारद्वाजः प्रसि० शिखंडी मयूरः चाषः प्रसि० नकुलो बभ्रुः प्रसि० हंसः प्रसि० अजो बस्त एते भारद्वाजादयो दशं याताः संतः इष्टफलाः स्युः । अयमर्थः । भारद्वाजादयो वामे दक्षे वाऽग्रे वा दृष्टमात्रा इष्टफला अभीष्टफलदा भवन्तीत्यर्थः । रासभरवो गर्दभध्वनिर्नामे पृष्ठेऽपि अर्थदोऽभीष्टार्थदो भवति ॥ २० ॥

टीकाथ—आतां दुसरे शकुन सांगतां—भ्रमर, विंचू, उंट, बोलका पोपट, नखें असलेले कुत्रे वगैरे, स्त्री संज्ञक चिमणी वगैरे प्राणी, हे गमन कर्त्याच्या डाव्या बाजूनें गेले असतां मनोरथ पूर्ण करितात. म्हैस, कोंबडा, पुरुष संज्ञक कावळा इत्यादि, आणि गाय हे उजव्या बाजूनें गेले असतां मनांतील हेतु पूर्ण करणारे आहेत. भारद्वाज पक्षी, मोर, चाष पक्षी, मुंगूस, हंस, बकरा हे दृष्टीस पडले तर इच्छित फळ देतात. ह्यांतील अर्थ असा कीं, भारद्वाज इत्यादि पक्षी, उजवीकडे व डावीकडे दोहोंकडेही पाहिले असतां इच्छित फळ देणारे आहेत. गाढवाचा शब्द डाव्या बाजूला व मागल्या बाजूला झाला तर शुभ होय. वरच्या उलट होणारे अपशकुन जाणावेत ॥ २० ॥

विपरीत शकुन व पारिहार.

नद्युत्तारभयप्रवेशसमरद्युतेषु नष्टेक्षणे ।

व्याधौ स्युः शुभदा विलोमशकुना नाड्या इडाया भरे ॥

आद्ये दुःशकुने निवृत्य च शुचिर्भूत्वाऽष्टधा स्यायमं ।

कृत्वेयादपरेऽष्टिवारमपरे दत्त्वा सुवर्णं व्रजेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीमदनंताख्यसुतचातुर्मास्ययाजिनारायणवि-

रचिते मुहूर्तमार्तंडे यात्राप्रकरणं समाप्तम् ॥

श्लोकार्थ—नदी उतरून जाणें, राजादिकांचें भय, ग्रामांत प्रवेश करणें, युद्ध, द्यूत, सांडलेला पदार्थ, शोधणें आणि रोगाला उपचार करण्याकरितां जाणें ह्यांच्या वेळीं झालेले अपशकुन शुभ जाणावे. इडा नाडी ह्य० डावी नाकपुडी भरपूर वाहत असतां अशुभ शकुन शुभ जाणावा. जातांना प्रथम अपशकुन झाला तर मागें फिरून हातपाय धुवून व आचमन करून शुद्ध होऊन बसावें; व आठ वेळ प्राणायाम करून नंतर जावें. दुसऱ्या वेळीं अपशकुन झाला तर पूर्वीप्रमाणें शुद्ध होऊन सोळा वेळ प्राणायाम करून जावें. तिसऱ्यानें अपशकुन होईल तर सुवर्णदान करून जावें. प्राणायामाचा अधिकार नाहीं त्याणें तितका वेळ बसून जावें ॥ २१ ॥

अथ येषु येषु कृत्येषु विपरीतशकुनाः शुभाश्च तानाह—नद्युत्तार इति । नद्युत्तारो नद्युत्तरणं भयं नृपादीनां प्रवेशो ग्रामादिप्रवेशः समरः संग्रामः द्यूतं प्रसि० नष्टेक्षणं नष्टवस्तुनोऽवलोकनं व्याधौ रोगोपचारे ण्यु विलोमशकुनाः विपरीतशकुनाः शुभदाः स्युः । अयमर्थः । गमने येऽपशकुनास्ते नद्युत्तारादिषु शुभदाः स्युरित्यर्थः । तथा इडाया नाड्याः भरे पूर्णतायां विलोमशकुनाः शुभदाः स्युः । तथा च वसंतः । भवेदिडायां परिपूरितायां सर्वोऽपि वामः शकुनः प्रशस्तः । स्यात्पिगलाय परिपूरितायां सर्वोऽपसव्यः शकुनः प्रशस्तः ॥ संगे रणे कर्मणि च प्रवेशे शुक्ले ग्रहे नष्टविलोकने च । व्याधौ सखिर्दुर्गवनादिकेषु शस्तः प्रयाणाद्विपरीतभाव इति ॥ अन्यच्च । नद्युत्तारे भये युद्धप्रवेशे नष्टवीक्षणे । शकुना व्यस्तगाः शस्ता नृपालोके प्रयाणवदिति ॥ अथ प्रथमेऽपशकुने जाते सति किं कर्तव्यमाह—आद्येति । आद्ये प्रथमे दुःशकुने जाते सति निवृत्य निवर्तनं कृत्वा तत्र शुचौ देशे उपविश्य शुचिः प्रक्षालितपाणिपाद आर्चांतः कृताचमनोऽसवः प्राणास्तंषामायामः प्राणायामोऽष्टधाऽष्टवारं कृत्वा इयात् गच्छेत् । चेद्यदि पुनर्दुःशकुनः स्यात्तदा निवृत्य शुचिरार्चांतोऽष्टिवारं षोडशवारमसूत्रियस्येयात् । अपरे तृतीये दुःशकुने जाते सति सुवर्णं दत्त्वेयात् । एतदावश्यकगमनविषयं । प्राणायामानधिकारी तावत्कालं स्थित्वा व्रजेत् । तथा च ज्योतिर्निबंधे । विरुद्धे शकुने पूर्व प्राणायामाष्टकं चरेत् । द्वितीये द्विगुणान्कृत्वा तृतीये न व्रजेत्कचिदिति ॥ तथा च वसंतराजः । जाते विरुद्धे शकुनेऽध्वनीनो व्यावृत्य कृत्वा करपादशौचं । अचम्य च क्षीरतरोरधस्तात्तिष्ठन्प्रपश्येच्छकुनांतराणीति ॥ तथा चाऽऽर्ष्टिषेणिः । यदाऽऽपशकुनं पश्येद्विपरीतमुपस्थितं । सद्युतं कांचनं दत्त्वा निर्विशंकः सुखं व्रजेदिति ॥ २१ ॥ ॥ इति मुहूर्तमार्तंडटीकायां यात्राप्रकरणं समाप्तम् ॥

टीकार्थ—आतां ज्या ज्या कृत्यामध्ये उलट शकुन असतात व ते शुभ शकुन होतात ते सांगतां—नदी उतरून जाणें, राजादिकांचें भय, ग्रामांत प्रवेश करणें, युद्ध, द्यूत ह्य० जुगार, हरवलेला पदार्थ शोधणें, आणि रोगाला उपचार करण्या करितां जाणें, अशा वेळीं झालेले अपशकुन हे शुभ जाणावेत. ह्याचा तात्पर्य अर्थ असा कीं, प्रयाण करितांना जे अपशकुन झणून सांगितले ते सर्व नदी उतरून जाणें इत्यादिकांमध्ये शुभ शकुन समजावेत. इडा ह्य० डावी नाकपुडी भरपूर वाहात असतां अशुभ शकुनाला शुभ शकुन समजावेत. तेंच वसंत ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, इडा म्हणजे डावी नाकपुडी भरपूर वाहात असतां सर्व अपशकुन शुभ जाणावे तशीच उजवी नाकपुडी भरपूर वाहात असतां सर्व अपशकुन शुभ शकुन जाणावे. गमनास जे अपशकुन आहेत ते सर्व युद्ध, ग्रहप्रवेश, सुकृग्रह, हरवलेल्या वस्तूचें पाहणें, रोग, नदी तरून जाणें, किड्यावर चढून जाणें इत्यादि कार्यांमध्ये शुभ समजावेत. दुसरें असें आहे कीं, नदी उतरून जाणें, भय पावणें, युद्ध प्रवेश, हरवलेल्याचा शोध करणें, इतक्या ठिकाणीं गमनास जे अपशकुन ते शुभ सम-

जावेत. आतां प्रथम अपशकुन झाला असतां काय करावें तें सांगतों—बाहेर निघाल्यावर अपशकुन झाला असतां आपल्या निघालेल्या जाग्यावर माघारें परत जाऊन तेथें बसून हात पाय धुवून आचमन करून आठ वेळां प्राणायाम करून घरांतून पुनः बाहेर निघावें. पुनः जर अपशकुन झाला तर आणखी आपल्या घरीं पुनः परत येऊन हातपाय धुवून आचमन करून सोळा वेळां प्राणायाम करावा. नंतर पुनः गमन करावें. पुनः तिसऱ्या वेळेस अपशकुन झाला असतां सुवर्णदान करून प्रयाण करावें. परंतु हा प्रकार आवश्यक गमनाविषयीं जाणावा. ज्याला प्राणायाम करण्याचा अधिकार नाही त्यानें तितका वेळ बसून नंतर जावें. तेंच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, विरुद्ध शकुन झाला असतां आठ प्राणायाम करावेत. दुसऱ्यावेळीं अपशकुन झाला असतां दुप्पट ह्याजे सोळा प्राणायाम करावेत. तिसऱ्या वेळीं अपशकुन झाला असतां गमन करूं नये. तेंच वसंतराज सांगतो कीं, अपशकुन झाला असतां वाटवरून ह्याजे प्रयाण करणाऱ्यानें माघारें परतून हातपाय धुवून आचमन करून क्षीरतरुच्या ह्याजे वडाचे वगैरे झाडाखालीं उभा राहून दुसरे शुभ शकुन येण्याची वाट पहावी. तेंच आर्षिषेणि सांगत आहे कीं, ज्यावेळेस अपशकुन पाहाण्यांत येतील त्यावेळेस तूपासह सुवर्णदान करावें आणि मग निःशंकपणें गमन करावें ॥ २१ ॥ अशा रीतीनें मुहूर्तमार्तंड ठेकेचें यात्राप्रकरण संपलें.

॥ यात्राप्रकरण समाप्त ॥

## ॥ अथ मिश्रप्रकरणम् ॥ ८ ॥

राज्याभिषेक व देवस्थापन.

जन्मांगर्क्षदशेशसद्ब्रह्मकुजैः सार्कैर्बलिष्ठैर्मृदु- ।

क्षिप्रैर्द्रुवभैः स्थिरार्धिनृतनौ व्याराह्नि भूपस्थितिः ॥

स्वस्वक्षैः समृद्धुर्ध्वक्षचरभैः क्षिप्रैः सुरस्थापनं ।

प्रोचुर्माघयुगे च राधयुगले व्याराह्नि पूर्वाह्नके ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—जन्मलग्न, जन्मराशि, आणि अभिषेक समर्थी असणारी दशा ह्यांचे स्वामी आणि शुभग्रह, मंगळ, रवि, हे बलवान् असतां; मृदु, क्षिप्र, ज्येष्ठा, ध्रुव ह्या नक्षत्रांवर; स्थिर असून जन्मराशीपासून व जन्मलग्नापासून ३६।१०।११ ह्या उपचय राशींपैकीं मनुष्य लग्नावर; मंगळावांचून इतर वारीं राज्याभिषेक शुभ जाणावा. ज्या देवाचें स्थापन करावयाचें त्याच्या त्याच्या नक्षत्रावर आणि मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र, ह्या नक्षत्रांवर; माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ ह्या महिन्यांत, मंगळ रहित वारीं आणि पूर्वाह्णांत सर्व देवांचें स्थापन करावें असें श्रेष्ठ ऋषि ह्याणतात ॥ १ ॥

अथ मिश्रप्रकरणं विवक्षुरादौ राजाभिषेकं वृत्तार्धेनाऽऽह-जन्मेति । जन्मांगर्क्षदशेशादिभिर्बलिष्ठैः तथा मृद्धादिभिः स्थिरार्धिनृतनौ व्याराह्नि भूपस्थितिः शस्ता स्यादित्यध्याहारः । अंगं च ऋक्षं च अंगक्षं जन्मनि अंगक्षं जन्मांगर्क्षं जन्मलग्नजन्मराशी ते च दशा च जन्मांगर्क्षदशाः दशा वर्तमाना तस्या ईशाः ते च सद्ब्रह्माश्च कुजश्च सूर्यश्च ते च तैः सार्कैः अर्कोरविस्तेन सह बलिष्ठैः स्थानादिबलसमृद्धैः सद्भिः । तथा मृदुक्षिप्रैर्द्रुवभैः स्पष्टं । स्थिरार्धिनृतनौ ऋद्धिं गता नृतनुः ऋद्धिनृतनुः । स्थिरा चासौ ऋद्धिनृतनुश्च सा तथा तस्यां जन्मराशिजन्मलग्नाभ्यां स्थिरोपचयनलये । व्याराह्नि भौमरहितदिने भूपस्थितिः राजप्रतिष्ठा शुभा स्यादित्यर्थः । लग्नबलं प्राग्वत् प्रायश्चंद्रं त्यजेत्याद्यबलो-कनीयं । अथ देवस्थापनमुत्तार्धेनाऽऽह-स्वस्वक्षैरिति । स्वस्वक्षैः यस्य देवस्य प्रतिष्ठा क्रियते तस्य नक्षत्रैः समृद्धुर्ध्वक्षचरभक्षिप्रैः शेषं स्पष्टं । माघयुगे माघफाल्गुनयोः तथा राधयुगे राधो वैशाखस्तस्माद्युगं युगलं तस्मिन् वैशाखज्येष्ठयोरित्यर्थः । तथा व्याराह्नि विगत आरो यस्मात् एवं विधमहस्तस्मिन् भौमरहितदिन इत्यर्थः । पूर्वाह्नके अत्र दिनस्य द्वौ भागौ पूर्वभागः पूर्वाह्नः तस्मिन् आचार्याः सुरस्थापनं प्रोचुः शेषं स्पष्टं सर्वाभरस्थापनामिति शेषः । लग्नबलं प्राग्वत् ॥ १ ॥



**टीकाथ—**आतां अगोदर मिश्र प्रकरण सांगण्याच्या इच्छेनें राज्याभिषेक अर्था वृत्तानें सांगतों—जन्मांग ह्य० जन्मलघ्न, जन्मकृश ह्य० जन्मराशि, दशा ह्यणजे अभिषेक करावयाचे वेळीं असलेली दशा ह्या तिघांचे स्वामी बलिष्ठ असावेत आणि शुभ ग्रह हेही बलवान् असावेत तसेच रवि आणि मंगळ हेही स्थान इत्यादिकांनीं बलवान् असावेत. त्याप्रमाणें मृदु नक्षत्रें, क्षिप्रनक्षत्रें, इंद्र ह्य० ज्येष्ठ नक्षत्र, ध्रुव नक्षत्रें ह्या नक्षत्रांवर आणि जन्म लग्नापासून उपचय ह्य० ३-६-१०-११ ह्या राशीपैकी मनुष्य लग्नावर आणि मंगळवाराशिवाय दुसऱ्यावारीं राज्याभिषेक करणें प्रशस्त आहे. लग्नबल जें पाहावयाचें तें पूर्वीप्रमाणेंच पाहावें. “प्रायश्चंद्रं त्यजां०” ह्या श्लोकांत सांगितल्या प्रमाणें त्याज्याचा त्याग करावा. आतां देवस्थापन उत्तरार्थानें सांगतों—ज्या देवाची प्रतिष्ठा करावयाची त्या देवाच्या नावा वरून जें नक्षत्र आलें असेल त्या नक्षत्रांवर आणि मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र ह्या नक्षत्रांवर आणि माघाचें युग्म ह्यणजे माघ, फाल्गुन ह्या दोन महिन्यामध्ये राघ युग्म ह्य० वैशाख आणि ज्येष्ठ ह्या चार महिन्यामध्ये आर ह्यणजे मंगळ त्याचा जो वार ह्यणजे मंगळवार तेवढा वर्ज्य करून दुसऱ्यावारीं पूर्वाण्हाकाली. येथें दिवसाचे दोन भाग करावयाचे पैकीं पहिला भाग तो पूर्वाण्हा समजावा ह्या पूर्वाण्हावर पूर्वीच्या आचार्यांनीं देवस्थापन करावें असें सांगितलें आहे, ह्या वेळीं सर्व देवांचें स्थापन करावें, लग्नाचें बल पूर्वी प्रमाणेंच पाहावें ॥ १ ॥

**वस्त्रधारण, क्षालन वगैरे.**

**धार्यं वस्वदितीनपंचगुरुभाश्च्यंत्यध्रुवैर्ज्ञत्रये ।**

**ज्ञाने क्षाल्यमिहास्त्रुभक्षितमसन्मध्यत्रिभागेंऽवरम् ॥**

**स्त्री रक्तांबरभूषणेऽत्र विभृयाद्यादित्यपुण्यध्रुवे ।**

**श्वेतेऽब्जोऽरुणरुक्मयोः कुजरवी कृष्णे शनिः शस्यते ॥ २ ॥**

**श्लोकार्थ—**धनिष्ठा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पुष्य, अश्विनी, रेवती, ध्रुव संज्ञ-क या नक्षत्रांवर; आणि बुध, गुरु, शुक्र ह्या वारीं नवें वस्त्र धारण करावें. बुधवार सोडून याच मुहूर्तावर वस्त्र घुवावें. वस्त्राचे तीन भाग मानून मधल्या भागांत उंदरानें, गुरानें खाल्लें, जळलें किंवा डाग पडला तर अशुभ होय. पुनर्वसु, पुष्य, ध्रुव ह्या नक्षत्रां वांचून वस्त्र धारणाच्या मुहूर्तावर स्त्रीनें तांबडें वस्त्र व सुवर्णादि-कांचे अलंकार धारण करावे. शुभ्र रंगाचीं वस्त्रें व रुप्याचे मोत्यांचे वगैरे शुभ्र, अलंकार धारण करण्यास सोमवार शुभ, तांबडीं पिवळीं वस्त्रें व अलंकार यांना मंगळवार व रविवार शुभ आणि काळीं निळीं वस्त्रें अलंकार यांना शनिवार शुभ होय ॥ २ ॥

अथ वस्त्रपरिधानं तस्य क्षालनमुंदुरादिभक्षितफलं चाऽऽह—धार्यमिति । वसुधनिष्ठा अदितिः पुनर्वसुः इनपंचकं हस्तपंचकं गुरुमं पुष्यः अश्विः अश्विनी अंत्यं रेवती ध्रुवाणि पूर्वोक्तानि एतैर्न. क्षत्रैः ज्ञत्रये बुधगुरुशुक्रवारे अंबरं वस्त्रं धार्यं नान्यत्र यत उक्तं । रवौ जीर्णं विधौ स्तोत्रं जलार्द्रं दुःखदं कुजे । बुधे धनं गुरौ ज्ञानं शुक्रे सौख्यं शनौ मलमिति ॥ लग्नबलं प्राग्वत् । अथ क्षालनमाह-इहास्मिन् वस्त्रधारणोक्तनक्षत्रादौ क्षाल्यं प्रक्षालनीयं कथं भूते ज्ञाने बुधवाररहिते । उक्तं च । वस्त्रहेमा-द्यलंकारधारणोक्तैश्च भादिभिः । तत्संहतिश्च निर्माणं विदध्यात्क्षालनादिकमिति ॥ यद्यपि यस्यांगं यददोऽग्निगो गदितमे कुर्यादिति पूर्वमेवांगभूतं कर्मोक्तं तथाऽपि क्षालने बुधवर्जनार्थं ज्ञाने इह क्षाल्यमित्युक्तं बुधनिषेधश्रवणात् । उक्तं च । शनौ सोमसुते श्राद्धे षष्ठ्यामावास्यायोस्तथा । वस्त्राणां क्षालनं चैव दहत्यासत मं कुलमिति ॥ अथोदुरादिभक्षितफलमाह—आखुभक्षितमिति । आखुः उंदुरः तेन अंबरं मध्यत्रिभागे भक्षितं असत् दुष्टफलं स्यात् । एतदुक्तं भवति । वस्त्रं त्रिगुणं कृत्वा यदि भक्षितभागो मध्यत्रिभागे पतति सदात् दुष्टमित्यर्थः । आखुरित्युपलक्षणं तेनाग्निदग्धं गवादि-भक्षितं मय्यादिलिप्तं ज्ञेयं । तथा चोक्तं वृत्तशते । दग्धं वा स्फुटितं च गोमयमषापकैर्विलिप्तं तदा दग्धं मूषकपूर्वकैरशुभदं मध्यत्रिभागेंऽशुक्रमिति ॥ अथ स्त्रिया रक्तवस्त्रधारणं भूषणधारणमनुक्तग्रहा-णां कुत्र कुत्र प्राशस्त्यं तदुत्तरार्धेनाऽऽह—स्त्रीति । स्त्री अत्रोक्ते वस्त्रधारणमादावंबरं भूषणं सुवर्णादि भूषणं विभृयात् धारयेत् । कथंभूते व्यादित्यपुण्यध्रुवे विगतानि आदित्यपुण्यध्रुवाणि यस्मात्तत्तथा-तस्मिन् यतोऽत्र स्त्रिया रक्तवस्त्रभूषणधारणे दोषो दृश्यते । तथा चोक्तं । पुष्यादित्यध्रुवौर्ध्वैः स्वर्णै-

रक्तांबरादिकं । नवं न भूषणं धार्यं नार्या दयितुरायुष इति ॥ लग्नबलं प्राग्वत् । अथ चंद्रादीनां प्राशस्त्यमाह—श्वेते वस्तुनि रौप्यमुक्ताफलादिकेऽज्जश्वंद्रो हितः सोमवारे श्वेतं वस्तु धार्यमित्यर्थः । कुजरवी अरुणरुक्मयोः शस्तेते । शनिः कृष्णे वस्तुनि नीलवस्त्रादिके शस्यते शनौ तद्वार्यमितिभावः ज्ञत्रयेतु सर्वं धार्यमिति पुरैवोक्तम् ॥ २ ॥

**टीकाथ—**आतां वस्त्र धारण आणि तें वस्त्र, उंदीर इत्यादिकांनीं खाल्ले असतां त्याचें फळ सांगतां—वसु ह्य० धनिष्ठा, अदिति ह्य० पुनर्वसु, इन ह्य० सूर्य त्याचें नक्षत्र ह्य० हस्त हीं पांच नक्षत्रें ह्य० हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा. गुरु ह्य० पुष्य, अश्वि ह्य० अश्विनी, अंत्य ह्य० रेवती हीं नक्षत्रें शिवाय ध्रुव संज्ञक नक्षत्रें सांगितलीं आहेत त्या नक्षत्रांवर ज्ञ ह्य० बुध हे तीन ह्य० बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, ह्या तीन वारांवर नवीन वस्त्र धारण करावें दुसऱ्या नक्षत्रां व वारी धारण करूं नये. कारण असें सांगितलें आहे कीं, रविवारी वस्त्र जीर्ण होतें, सोमवारीं अरुण होतें, मंगळ-वारीं पाण्यांत बुचकळले असतां दुःख देणारें होतें, बुधवारीं धन प्राप्ति होते. गुरुवारीं ज्ञान प्राप्त होतें. शुक्रवारीं सौख्य मिळतें. शनिवारीं मळकट होतें. लग्नबळ पूर्वीं प्रमाणेंच समजावें. आतां वस्त्राचें क्षालन सांगतां—वस्त्र धारणाकरितां सांगितलेल्या नक्षत्रांवर वस्त्राचें क्षालन करावें. मात्र ह्या क्षालनाला बुधवार वर्ज्य आहे. असें सांगितलें आहे कीं. वस्त्र, सुवर्ण इत्यादि धारण करण्यास जीं नक्षत्रें सांगितलीं आहेत. त्याच नक्षत्रांवर त्याची संहति, निर्माण, क्षालन इत्यादिक करावें. जरी पूर्वीं सांगितलें आहे कीं, ज्याचें जें अंग असतें तें त्या अंगाच्या नक्षत्रावर करावें, तें करणें प्रशस्त आहे तथापि क्षालन करण्याकरितां बुधवार हा वर्ज्य आहे ह्मणून श्लोकांत 'ज्ञाने' ह्मणजे बुधवारा शिवाय, असें झटलें आहे. कारण बुधवाराचा निषेध सांगितला आहे, शनिवारीं, बुधवारीं, श्राद्धदिवशीं, षष्ठीस, अमावास्येस वस्त्राचें क्षालन केलें असतां सात पिढ्यांपर्यंत कुळाला जाळीत असतें. आतां उंदीर इत्यादिकांनीं खाल्ले असतां त्याचें फळ सांगतां—वस्त्राचे तीन भाग करावेत. पैकीं मध्यभाग उंदरानीं खाल्ला असतां त्याचें फळ दुष्ट आहे. उंदीर शब्दानें उंदीरच नुसता न घेतां आग्नि इत्यादिकांनीं जळलें असतांही दुष्ट समजावें. तेंच वृत्तशत ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, वस्त्र जळलें, फाटलें, शेणानें भरलें, शार्दनें भरलें, चिखलानें भरलें उंदीरादिकांनीं खाल्लें तर अशुभ समजावें. मात्र वस्त्राचे तीन भाग करून त्याच्या मधल्याभागीं वर सांगितलेले दोष घडले असतां अशुभ समजावें. आतां स्त्रियांनीं लाल वस्त्र धारण करणें, दागिने धारण करणें, पूर्वीं न सांगितलेल्या ग्रहांचा कोठें कोठें प्रशस्तपणा आहे तो श्लोकाच्या उत्तरार्धानें सांगतां—वस्त्र धारण करण्याकरितां पूर्वीं सांगितलेल्या नक्षत्र इत्यादिकांवरच स्त्रीनें वस्त्र धारण करावें आणि सोनें इत्यादिकांनीं तयार केलेले दागिनेही धारण करावेत. मात्र आदित्य ह्य० पुनर्वसु, पुष्य आणि ध्रुव नक्षत्रें मात्र वर्ज्य आहेत. कारण त्या नक्षत्रांवर स्त्रियांनां दोष सांगितला आहे. तेंच सांगितलें आहे कीं, स्त्रियांनीं सुवर्णाचे अलंकार. लाल वस्त्र इत्यादिकांचें धारण पतीच्या आयुष्याचे वृद्धीस्तव पुष्य, पुनर्वसु आणि ध्रुव संज्ञक नक्षत्रें ह्यांवर करूं नये. लग्नाचें बलाबल पूर्वीं प्रमाणेंच समजावें. आतां चंद्र इत्यादि ग्रहांचा प्रशस्तपणा सांगतां—पांढऱ्या रंगाच्या वस्तुविषयीं ह्य० रूपाचे व मोत्याचे दागि-न्याविषयीं सोम ह्य० चंद्र हितकारक आहे ह्मणून सोमवारीं ते धारण करावेत. तांबडीं, पिवळीं वस्त्रें अलंकार हे धारण करण्याकरितां रवि आणि मंगळ हे ग्रह हितकारक आहेत ह्यास्तव त्या दोनवारीं ह्य० रविवारीं व मंगळवारीं धारण करा-वेत. काळीं निळीं वस्त्रें व अलंकार धारण करण्याविषयीं शनिग्रह हितकारक आहे ह्मणून ते शनिवारीं धारण करावेत. बुधादि तीन वारांवर ह्मणजे बुधवार व गुरुवार, आणि शुक्रवार ह्या तीन वारांवर सर्व धारण करावें ॥ २ ॥

पुरुषाचें अलंकार धारण व क्रयविक्रय.

वस्त्रोक्तैर्व्यनिलद्वयाश्विभिरगेंऽग्रे तुर्विभूषा हिता ।

विप्राज्ञोत्सकलब्धिषूदितमनुक्तेऽपीष्टक्रुद्धारणम् ॥

भैत्राकानिलमूलदसहरिभेंद्रीज्याजपादोत्तरे ।

पण्यानां क्रयविक्रयौ घटपरर्ध्यगे स्वशुद्धौ तनु ॥ ३ ॥

**श्लोकार्थ—**स्वाती, विशाखा, अश्विनी हीं ३ नक्षत्रें सोडून मागल्या श्लोकांतील वस्त्रधारणाच्या नक्षत्रादिकांवर आणि स्थिरलग्नावर पुरुषांनीं अलंकार धारण करावे. ब्राह्मणाची आज्ञा असतां, विवाहादि उत्सवाच्या वेळीं अथवा मिळालें तर त्याच वेळीं सुद्धा नसतांही वस्त्रालंकार धारण करणें शुभ होय. अनुराधा, हस्त, स्वाती, मूळ, अश्विनी, श्रवण, मृग, पुष्य, पूर्वाभा०, उत्तराफ०, उत्तराषाढा, उत्तराभा० ह्या १२

नक्षत्रावर, कुंभाशिवाय जन्मराशि व जन्मलग्न ह्यां पासून ३६।१०।११ ह्यांतल्या उपचय लग्नावर आणि द्वितीयस्थानी खलग्नह नसतां विक्रयाचे पदार्थ आपण विकत घ्यावे व दुसऱ्याला विकाने ॥ ३ ॥

अथ नराणां भूषणधारणं वृत्तचरणेनाऽऽह-वस्त्रोक्तैरिति वस्त्रोक्तैर्भादिभिर्वस्वदितीत्यत्रोक्ते अंगे स्थिरलग्ने नुः नरस्य अलंकृतिरलंकरणं हितं स्यात् । किंलक्षणैर्वस्त्रोक्तैः व्यनिलद्वयाश्विभिः अनिलद्वयं स्वातीयुगं स्वातीविशाखेति अश्विनी प्रसिद्धा विगते अनिलद्वयाश्विन्यौ येभ्यस्तानि तथा तैः स्वातोविशाखाश्विनीरहितैरित्यर्थः । लग्नबलं प्राग्वत् । अथ द्वितीयचरणेन विशेषमाह-विप्राज्ञेति । विप्राज्ञा ब्राह्मणाज्ञा उत्सवो विवाहादेकः लब्धिर्लाभ आसु सत्सु अनुकेऽपि भादौ धारणं वस्त्रादिधारणमिष्टकृत्स्यात् । तथा चोक्तं व्यासेन । लब्धं राजप्रसादेन विप्रादेशात्करग्रहे । प्रीत्या दत्तोत्सवे वस्त्रं धार्यं निवेद्यपि भादिक इति ॥ अथोत्तरार्धेन पण्यानां क्रयविक्रयावाह-मैत्रेति । मैत्रमनुराधा शेषं सुगमं । घटपरार्ध्यगे घटः कुंभः तस्मात्परमन्यत् । तच्च तत् ऋक्ष्यंगं च ऋक्ष्यंगं उपचयलग्नं तस्मिन् कुंभव्यतिरिक्तोपचयलग्ने पण्यानां पूगीफलखर्जूरादीनां क्रयविक्रयौ तनु विस्तारय कुर्वित्यर्थः । कस्यां सत्यां स्वशुद्धौ सत्यां स्वं धनभावः तस्य शुद्धिः पापराहित्यं तस्यां सत्यां । शेषं प्राग्वत् । तथा चोक्तं । दशमैकादशे लग्ने वित्तकेंद्रत्रिकोणगैः । शुभैः पण्यस्य कर्मोक्तं वर्जयित्वा घटोदयमिति ॥ ३ ॥

टीकाथ-आतां पुरुषांनीं अलंकार धारण करावयाचे तें एका वृत्ताच्या चरणानें सांगतों-वस्त्र धारण करण्याकरितां जीं नक्षत्रें सांगितलीं आहेत त्यांतून स्वाती, विशाखा, अश्विनी नक्षत्र वर्ज्य करून बाकीच्या वस्त्र धारणाच्या नक्षत्रांवर पुरुषांनीं अलंकार धारण करावे. आतां दुसऱ्या चरणानें विशेष सांगतों-ब्राह्मणाची आज्ञा झाल्यावर उत्सव असल्यास, विवाह इत्यादिक मंगल कार्य असल्यास, मोठा लाभ असल्यास सांगितलेलें नक्षत्र नसेल तरी सुद्धां वस्त्रादि धारण करावेत. तेंच व्यासानें सांगितलें आहे कीं, राजानें प्रसन्न होऊन दिलें असतां, ब्राह्मणानें आज्ञा केली असतां, लग्नादि मंगल कार्य प्राप्त झालें असतां, प्रीतीनें उत्सवाचे वेळीं वस्त्र धारण करावें, त्यावेळीं निव्व नक्षत्र असेल तरी तें पाहूं नये. आतां उत्तरार्धानें पदार्थांचा क्रय आणि विक्रय सांगतों-मैत्र ह्य० अनुराधा, अर्क ह्य० हस्त, अनिल ह्य० स्वाती, मूल, दस ह्य० अश्विनी, हरि ह्य० श्रवण, मृग, इज्य म्ह० पुष्य, पूर्वाभा०, उत्तरा फ०, उत्तराषाढा, उत्तराभा०, ह्या १२ नक्षत्रांवर कुंभराशीशिवाय जन्म राशि व जन्म लग्न ह्या दोहोंपासून ३-६-१०-११ ह्यांतल्या उपचय लग्नावर आणि द्वितीय लग्नीं ग्रह नसेल तर पण्य ह्य० विक्रय घेण्याचे पदार्थ घ्यावेत व विक्रयाचे पदार्थ विकाने ॥ ३ ॥

धनिष्ठापंचकांत वर्ज्य, सेवा व संन्यास.

प्रेतज्वालनशय्यकावितनने स्तभोच्छ्रयं याम्यदिक् ।

यानं काष्ठवृणोच्चयं परिहरेत्कुंभद्वयस्थे विधौ ॥

सेवेष्टा ध्रुवारुणांत्यवसुभैः स्वाये रवौ वा कुजे ।

संन्यासः स्थिरभे खलैर्गतबलैः षष्ठांत्यगे भार्गवे ॥ ४ ॥

श्लोकार्थ-प्रेतदहन, पलंग, माचा वगैरे नवीन करणें किंवा विणणें, घराचे खांब व धारण उभे करणें, दक्षिणदिशेला प्रयाण करणें आणि लांकडें व गवत यांचा संग्रह, हीं कर्में कुंभ व मीन ह्या दोन राशीला चंद्र असतां करूं नये. ध्रुव, शततारका, रेवती, धनिष्ठा ह्या नक्षत्रांवर दशमस्थानी किंवा एकादशस्थानी रवि अथवा मंगळ असतां सेवेला आरंभ करावा. स्थिर नक्षत्रांवर व स्थिरलग्नावर खलग्नह निर्बल असतां आणि षष्ठ किंवा द्वादशस्थानी शुक्र असतां संन्यास घेणें शुभ जाणावें ॥ ४ ॥

अथ वृत्तार्धेन धनिष्ठापंचके वर्ज्यमाह-प्रेतेति । कुंभद्वयस्थे विधौ सति कुंभमीनगे चंद्रे सति परिहरेत् सर्वथा नाऽऽचरेत् स्पष्टं अथोत्तरार्धे चरणेन सेवामाह-सेवेति । ध्रुवादिभिर्नक्षत्रैः सेवा इष्टा स्यात् सुगमं कस्मिन् सति स्वाये रवौ सति वा इत्यथवा कुजेसती खं दशमं आय एकादशं अनयोरन्यतमे रविभौमयोरन्यतमे सतीत्यर्थः यस्मिँल्लग्नैः सेवा क्रियते तस्माल्लग्नदशमे एकादशे वा रवौ भौमे वा सति सेवा इष्टा हितकरा स्यादित्यर्थः । शेषं प्राग्वत् । अथ चतुर्थचरणेन संन्यासमाह-संन्यास इति । स्थिरभे

स्थिरनक्षत्रे स्थिरलक्ष्मे च संन्यास इष्टः स्यात् कैः खलैर्गतवलयैः पापग्रहैर्हीनबलैरित्यर्थः । सप्तम्यर्थे तृतीया कस्मिन् सति भार्गवे शुक्रे षष्ठांत्यगे ६।१२ सति । शेषं लग्नबलं प्राग्वत् । उक्तं च । त्रिषडेका- दशे सौरिव्यये षष्ठे च भार्गवः । सबले धर्मपे जीवे केंद्रे दीक्षाविरक्तिकृदिति ॥ ४ ॥

टीका—आतां अर्ध्या वृत्ताने धनिष्ठा पंचक नक्षत्रांत जें वज्र्ये तें सांगतां—दोन कुंभ ह्य० कुंभ व मीन ह्या राशींवर चंद्र असतां प्रेतदहन, पलंग माचा वगैरे नवीन तयार करणें किंवा विणणें, घराचे स्तंभ ह्य० खांब आणि धारण उभे करणें, दक्षिणदिशेला प्रयाण करणें, व लांकडें आणि गवत यांचा संग्रह करूं नये. आतां उत्तरार्धांनै सेवा सांगतां— ध्रुवनक्षत्रें, शततारका, रेवती व धनिष्ठा ह्या नक्षत्रांवर ख ह्य० दशमस्थानी आणि आय ह्य० एकादशस्थानी रवि आणि कुज ह्य० मंगळ असतां सेवेला आरंभ करावा. वाकींचें लग्नबल पूर्वाप्रमाणेंच समजावें. आतां चवथ्या चरणानें संन्यास सांगतां—स्थिरनक्षत्रावर स्थिर लग्नावर आणि पापग्रहांचें बळ नसेल तर ह्यणजे पापग्रह निवळ असतां आणि शुक्र ग्रह ६-१२ ह्यास्थानी असेल तर संन्यास घ्यावा. असें सांगितलें आहे कीं, ३-६-११ ह्यास्थानी शनि असेल तर १२-६ ह्यास्थानी शुक्र असेल तर वर्णाधिपति ह्य० नवमाधिपति प्रबल असेल तर आणि गुरु हा केंद्रां असेल तर संन्यास घ्यावा ॥ ४ ॥

कृषिकर्म व नांगरण्याचा मुहूर्त.

उद्गाहर्क्षचरद्विपेंद्रलघुभत्वाष्टैः शुभा स्यात्कृषि- ।

व्यार्किंज्ञारखगाह्निपुग्मक्षपगोकन्याविलम्बे तिथौ ॥

व्यंकौजे सदिति प्रणम्य खगभूमुख्यान् सिताच्छादनः ।

स्वर्णोद्दृष्टहलं समुष्कसुवृषैः सौमीं पटुस्त्रिर्नयेत् ॥ ५ ॥

श्लोकार्थ—विवाहाचीं ११ नक्षत्रें, व चर, विशाखा, ज्येष्ठा, लघु, चित्रा ह्या नक्षत्रांवर; शनि, बुध, मंगळ, ह्यांवांचून अन्य ग्रहांच्या वारीं; मिथुन, मीन, वृषभ, कन्या ह्या लग्नांवर; दशमीसहित व नवमी राहित विषम तिथींवर ह्य० १।३।५।७।१०।११।१३।१५ ह्या तिथींवर; नवग्रह, भूमि, अग्नि इत्यादि देवतांला नमस्कार करून मस्तकाला शुभ्र वस्त्र बांधून, नांगरण्याविषयी कुशल पुरुषांनै, फाळाचें अन्न सुवर्णानें वांसून वृषण असणारे ( आंडील ) बळवान् असे बैल नांगराला जुंपून तो आरंभी तीन वेळ उत्तरेकडे न्यावा ॥ ५ ॥

अथ वृत्तद्वयेन कृषिकर्माऽऽह—उद्गाहेति । उद्गाहर्क्षाणि पूर्वोक्तानि मूलांत्याकेंत्यादीनि एकाद- शसंख्यानि चराणि प्रसिद्धानि द्विपं विशाखा इंद्रो ज्येष्ठा लघुभानि प्रसिद्धानि त्वाष्ट्रं चित्रा तैः व्यार्किंज्ञारखगाह्नि आर्किः शनिः शो बुध आरो भौमो विगता आर्किंज्ञारा येभ्यस्ते तथा ते च ते खगाश्च तेषामहः दिनं तस्मिन् शनिबुधभौमराहितवार इत्यर्थः । युग्मक्षपगोकन्याविलम्बे युग्मं मिथुनं क्षपो मीनः गौर्वृषः कन्या प्रसिद्धा एषामन्यतमविलम्बे तिथौ व्यंकौजे विगतः अंको नवमी यस्मात् असौ व्यंकः सचासौ ओजश्च ओजो विषमस्तस्मिन् नवमीव्यतिरिक्तविषमतिथावित्यर्थः । किंलक्षणे व्यंकौजे तिथौ सदिति दिग्दशमी तथा सह वर्तमाने १।३।५।७।११।१३।१५ कृषिः शुभा स्यात् । तथा चोक्तं चंद्रे शुभे शुभतिथौ शुभवारयोगे वारे गुरौ शशिशुक्रगभस्तिवारे । लक्ष्मे वृषे मिथुनके क्षप कन्यकायां शस्तं कृषिप्रकरणं प्रवपेन्निधानं इति । अन्यच्च । दशम्येकादशी चैव तृतीया च त्रयोदशी । सप्तमी पंचमी चैव प्रतिपच्च सुखावहा । हंत्यष्टमी बलीवर्दात्रयमी सस्यघातिनी । चतुर्थी कीटजननी पतिं हन्ति चतुर्दशी ॥ रवौ बृहस्पतौ चंद्रे शुक्रे कुर्याद्विशेषतः । बुधार्किंभूमिपुत्राश्च न भवंति फलप्रदा इति ॥ अथ विधिमाह—सिताच्छादनः श्वेतवस्त्रधरः पटुः कुशलः कर्ता खगभूमुख्यान् देवान्प्रणम्य कृष्यारंभः पूर्वोक्तः सितायज्ञः क्रियते तत्र पूजितान् खगभूमुख्यान् ग्रहभूमुख्यादीन् प्रदक्षिणापूर्वकं प्रणम्य मनोवाक्कायकर्मभिर्नमस्कृत्य स्वर्णोद्दृष्टहलं सुवर्णघर्षिताग्रं हलं समुष्कसुवृषैः मुष्का वृषणास्तैः सहवर्तमानाः समुष्काः शोभना वृषाः सुवृषा गुणावयवपूर्णा निरोगाः समुष्काश्च ते सुवृषाश्च तथा तैः कृत्वा सौमीं उत्तरां दिशं प्रति त्रिवारं नयेत् हलेन पद्धतीः कुर्यादिति भावः । उत्तरदिशं प्रति त्रिवार- नयनेन पंच रेखा उत्पद्यते । तद्यथा । प्रथमगमनेनैका आवर्तने द्वितीया पुनरुत्तरां प्रति द्वितीयगम- नेन तृतीया पुनरावर्तने चतुर्थी पुनरुत्तरां प्रति तृतीयगमनेन पंचमी रेखा उत्पद्यते । अधिका न

कार्या इति भावः । सौमीं पटुस्त्रिनेयेदित्यत्र पटुपदग्रहणमखंडक्रजुरेखाकरणार्थं । तथा चोक्तं । शस्तासु चंद्रतारासु शुचिः शुक्लेन वाससा । स्नात्वा गंधैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विशेषतः । पृथिवीं ग्रहसंयुक्तां पूजयित्वा प्रजापतिं । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दातव्या चैव दक्षिणा ॥ शुक्लौ वृषौ नियोक्तव्यौ नवीनैश्च युतेन वा । विबलं छिन्नलांगूलं कपिलं वृषभं त्यजेत् ॥ हलप्रवाहनं कार्यं नीरुग्मिवृषकर्षकैः । हलादिभिर्दंडैः क्षेमं कुट्टदैरशुभं भवेत् ॥ वृषभा यदि युध्येयुस्तस्य विघ्नं सदा भवेत् । हेमघृष्टहलाग्रेण छिन्नरेखां न कारयेत् ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरेणार्घ्यं प्रदापयेत् । तस्य सर्वप्रकारेण निर्विघ्नं कारयेत्तदा ॥ एका जयकरी रेखा तृतीया चार्थवृद्धिदा । पंचमी च भवेद्रेखा बहुसस्यफलप्रदा ॥ अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या महादोषस्ततो भवेत् । स्मृतव्या वसवः शुक्रः पृथनामा सुचंद्रमाः । पराशरो हली चैव सर्वविघ्नोपशान्तय इति ॥ अत्र दुर्निमित्तानि तत्रैवोक्तानि । हले प्रवाह्यमाणे तु कूर्म उत्पद्यते यदि । गृहिणो मृतये तस्य ततोऽग्नेश्च भयं भवेत् ॥ ईषाभंगो यदा क्रष्टुः संशयो जीवितस्य च । सुतनाशो युगे भग्ने समाने म्रियते शिशुः ॥ योक्रच्छेदे तु व्यासंगः सस्यहानिश्च जायते । हले प्रवाह्यमाणे तु गौरेकः प्रपतेद्यदि ॥ प्रपतेद्युक्तमात्रस्तु बंधनं च प्रयच्छति । ज्वरातिसाररोगेण कृषिभंगं विनिर्दिशेत् ॥ प्रवहेद्युक्तमात्रस्तु ततो गौः खनते यदि । हलेन युक्तमात्रस्तु तदा सस्यं चतुर्गुणमिति ॥ ५ ॥

**टीकाथ—**आतां दोन वृत्तांनी कृषिकर्म सांगतो—विवाहास सांगितलेल्या ११ नक्षत्रांवर ह्यणजे मूळ, रेवती इत्यादिकांवर, चर नक्षत्रांवर, द्विप ह्य० विशाखा, इंद्र ह्य० ज्येष्ठा, लवुनक्षत्र, त्वष्ट्र ह्य० चित्रा, ह्या नक्षत्रांवर आर्कि ह्य० शनि, ज्ञ ह्य० बुध, आर ह्य० मंगळ ह्या तीन वारांशिवाय बाकीच्या ह्य० गुरु, शुक्र रवि, सोम ह्या चारवारीं गुप्त ह्य० मिथुन, झष ह्य० मीन, गौ ह्य० वृष, कन्या, ह्यांपैकी एखाद्या लग्नावर अंक ह्य० ९ ह्य० नवमी आणि दिशू ह्य० १० ह्य० दशमी ह्या दोन तिथी वर्ज्य करून बाकी उरलेल्या तिथीं मध्ये विषम तिथींवर ह्य० १-३-५-७-११-१३-१५ ह्या तिथींवर, नवग्रह, भूमि, अग्नि ह्यांना नमस्कार करून मस्तकाला शुभ्र वस्त्र गुंडाळून नांगरण्याविषयीं कुशल असणाऱ्या पुरुषांना नांगराचे फळाचे अग्र सोन्याने घांसून आंडील असे बैल नांगराला जुंपून तो नांगर आरंभी तीनवेळ उत्तरेकडे न्यावा. तिथी इत्यादिकांचा विचार असा सांगितला आहे की, चंद्र शुभ असतां शुभ तिथीवर शुभ वारावर ह्य० गुरुवार, बुधवार, शुक्रवार आणि रविवार असतां त्यांवर वृष, मिथुन, मीन आणि कन्या ह्या लग्नांवर नांगरण्याचा आरंभ करणें प्रशस्त आहे. दुसरे असे की, दशमी, एकादशी, तृतीया, त्रयोदशी, सप्तमी, पंचमी, प्रतिपदा ह्या तिथी नांगरण्यास सुखकारक आहेत. अष्टमी बैलाचा नाश करणारी, नवमी धान्याचा नाश करणारी, चतुर्थी किडे उत्पन्न करणारी, चतुर्दशी मालकाचा नाश करणारी आहे. रविवार, सोमवार, शुक्रवार, ह्यावारीं विशेषें करून आरंभ करावा. बुधवार, शनिवार, मंगळवार हे वर्ज्य आहेत. ह्यावारीं नांगरलें असतां फल होत नाहीं. आतां नांगरण्याचा विधि सांगतो—शुभ्रवस्त्र धारण करावें, नांगरण्याच्या कामांत कुशल असणाऱ्यानें नवग्रह, भूमि, अग्नि ह्यांनां मनानें, वाणीनें व कायानें नमस्कार करून सोन्यानें नांगराचा अग्रभाग घांसावा आणि आंड असलेले असे मोठमोठे बैल नांगरास जोडावे ते बैल पुष्ट असून बलवान् असावेत. ते रोगी नसावेत. अशा बैलांसह वर्तमान नांगरण्यास आरंभ करावा तो उत्तरदिशेकडे तीन वेळां जावें, ह्यणजे नागरांनं पांच रेखा होतात त्या अशा प्रथमगमनानें एक रेखा उत्पन्न होत, तसेंच पुनः माधारी आल्यानें दुसरी रेखा उत्पन्न होते, दुसऱ्या खेपेस पुनः जातानां एक रेखा, माधारी येतानां एक रेखा, मिळून चार रेखा आणि तिसऱ्या खेपेस उत्तरेकडे जातानां एक रेखा सर्व मिळून पांच रेखा होतात. ह्या पांच रेखा शिवाय अधिक रेखा करूं नये. नांगरण्यामध्ये कुशल असणाऱ्यानें असें ह्मटल्यामुळें अखंड एकसारखी सरळ रेखा करावी, असें सांगितल्या सारखें होतें. तेंच सांगितलें आहे की, चंद्र आणि ग्रह हे अनुकूल असतां स्नानादिक करून शुभ्रवस्त्र धारण करून गंधफुलांनी पूजा करावी. आणि विशेषें करून नवग्रहसहित पृथ्वीची पूजा आणि प्रजापतीची पूजा करून अग्निला प्रदक्षिणा करून ब्राह्मणीनां दक्षिणा द्यावी. पांढरे आणि पुष्ट असे बैल नांगराला जोडावेत. बैल अशक्त असून रोंपूट तुटलेला आणि काळे असूं नयेत. कारण की, नांगर ओढण्याचें काम निरोगी आणि बळकट अशा पुष्ट बैलाकडूनच होणें शक्य आहे. जर नांगरतांना बैल परस्पर लढतील तर त्याला नेहमी विघ्न होईल. सोन्यानें नांगराचें अग्र घांसून ज्या रेखा करावयाच्या त्या रेखा तुटक्या नसाव्यात. उत्तरेस तोंड करून दुधानें अर्घ्य द्यावा असें केल्यानें त्याला कोणत्या प्रकारचें विघ्न येणार नाहीं. एक रेखा जयकारक आहे, तिसरी अर्थ वृद्धि करणारी आहे, पांचवी रेखा पुष्कळ धान्य देणारी आहे, पांचांहुन अधिक रेखा करूं नयेत. कारण त्यापासून फार दोष आहे. नेहमी वसूची आणि शुक्राची व पृथनामाची, चंद्राची, पराशराची, बलरामाची स्मृति ह्य० स्मरण करावें. त्यापासून सर्व विघ्नांचें शमन होतें. आतां दुर्निमित्तें तेथेंच सांगितलीं आहेत तीं अशीं की,

नांगर ओढतांना जर कूर्म उत्पन्न झाला तर त्यापासून मालकाचें मरण होतें आणि अग्निपासून भय होतें, नांगर मोडला तर नांगरणास मरणाचा संशय येतो. युगाचा नाश झाला तर पुत्राचा नाश होतो, समानच राहिला तर वालक मरण पावतो. योकाचा नाश झाला असतां विघ्न येतें आणि धान्यहानि होते. हा नांगर ओढतांना जर एक बैल पडला तर आणि बैल जोडल्या बरोबरच जर तो पडला तर बंधन प्राप्त होतें. आणि ज्वर, अतिसार रोग होऊन नांगरणाच्या-चा नाश होतो. बैल जोडल्याबरोबर जर तो भराभर नांगर ओढून नांगरावयास लागला तर त्यापासून चौपट धान्य होईल असें जाणावें ॥ ५ ॥

हलचक्र, बीज पेरणें, शेत कापणें व फणिचक्र.

त्रित्रीष्वनलार्थरामहुतभुग्भेष्वर्कभुक्तादस- ।

तसद्रूपः कृषिभैर्विवारुणहरींद्रैर्बीजवापः शुभः ॥

सूर्यक्षोदितृतीयतोऽतिधृतितश्चष्टाष्टभिः सत्फलः ।

प्रोक्तोऽन्यैः फणिसप्तमाद्रविमितैस्तच्छेदनं वापभैः ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—ज्या नक्षत्राला सूर्य असेल त्याच्या मागल्या नक्षत्रापासून ३ अशुभ, ३ शुभ, ३ अशुभ, ५ शुभ, ३ अशुभ, ५ शुभ, ३ अशुभ, ३ शुभ अशीं असतात. नांगरण्याच्या मुहूर्ताला ह्या हलचक्रांतलें शुभ नक्षत्र घ्यावें. शततारका, श्रवण, ज्येष्ठा ह्यांशिवाय मागच्या श्लोकांतलें नांगरण्याच्या तिथि, नक्षत्र, वारादिकांवर बीज पेरणें शुभ होय. सूर्य नक्षत्रापासून ३ अशुभ, ८ शुभ, ८ अशुभ, ८ शुभ अशीं नक्षत्रे आहेत. हें फणिचक्र बीज पेरण्याला असल्यास शुभ फळ देतें. अन्यमतानें राहू असेल त्या नक्षत्रापासून ६ अशुभ, १२ शुभ, ९ अशुभ, असें आहे. हेंही फणिचक्र बीज पेरण्याला पहावें. बीज पेरण्याच्या नक्षत्रां-वर शेत कापावें ॥ ६ ॥

अथ कृषिविषये लांगलचक्रमाह—त्रित्रीति । अर्कभुक्तात्सूर्यभुक्तनक्षत्रात्सकाशात् त्रिष्वनलार्थं त्रिष्वनलार्थं स्थानाष्टकस्थितेषु नक्षत्रेषु असत्सदित्येतत्फलद्वयं वारं वारं स्यात् । एतदुक्तं भवति । सूर्याक्रांत-नक्षत्रस्य आदिमानक्षत्रात्सकाशात् त्रिषु असत् दुष्टफलं स्यात् तदनंतरं त्रिषु सत् शुभं स्यात् तत् त्रिषु असत् ततः इषुषु पंचसु सत् ततोऽनलेषु त्रिषु असत् ततः अर्थेषु पंचसु सत् ततो रामेषु त्रिषु असत् ततो हुतभुक् त्रिषु सत्स्यादित्यर्थः । अथ बीजोप्तिमाह—कृषिभैरिति । कृषिभैः कृषिनक्षत्रै-रुद्वाहर्क्षचरद्विपेत्यादिभिर्बीजवापः शुभः प्रोक्तः किलक्षणैः कृषिभैः विवारुणहरींद्रैः वारुणं शतता-रका हरिः श्रवणः इंद्रो ज्येष्ठा विगताः वारुणहरींद्रा येभ्यस्तानि तथा तैः शततारकाश्रवणज्येष्ठार-हितैरित्यर्थः । कृषिभैरित्युपलक्षणं तस्मात्कृष्युक्तं सर्वं तिथिवारादिकं ज्ञेयं । तथा चोक्तं । मूष-कानां भयं भौमे मंदे शलभकीटयोः । नवमे च तिथौ रिक्ते हीने सोमे विशेषतः ॥ वृषलघ्नेऽथवा मीने कन्यायां मिथुनेऽथ वा । वापयेत्सर्वसस्यानि यदीच्छेत्सस्यसंपद इत्यादि ॥ लग्नबलं प्राग्वत् । अथ बीजवापविषये द्विभेदं फणिचक्रमाह—सूर्यक्षोदिति । सूर्ययुक्तनक्षत्रादि तृतीयं तस्मादतिधृ-तिरेकोनविंशं तस्मात् अष्टाष्टभिः तृतीयादष्टभिः एकोनविंशदष्टभिर्नक्षत्रैः बीजवापः सत्फलः । अथ द्वितीयभेदमाह—अन्यैरिति । अन्यैराचार्यैः फणिसप्तमात् राहुसप्तमात्सकाशात् राविमितैर्द्वादशभि-र्नक्षत्रैः बीजवापः शुभः प्रोक्तः । एतदुक्तं भवति । राहुयैस्मिन्नक्षत्रे भवति तस्माद्यत्सप्तमं नक्षत्रं तत्फणिसप्तममुच्यते तस्मात्सकाशाद्वादशभिरित्यर्थः । राहोस्तु फणीति नाम ग्रंथांतरे प्रसिद्धं । बराहमिहिराचार्येण राहुस्वरूपविकल्पा ग्रंथांतरोक्ता उद्घादिताः स्वकृतसंहितायां । अमृत-स्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदं । प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदंत्येक ॥ इंद्रकर्म-डलाकृतिरसितत्वात्किल न दृश्यते गगने । अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात्कमलयोगेः ॥ मुखपु-च्छविभक्तांगं भुजंगमाकारमुपदिशंत्यन्य इति ॥ भुजंगमाकारकथनात्फणीत्यभिधानं प्रसिद्धं । रत्नमालायामपि फणिभाद्वीजोप्तिकाले स्फुटमिति ॥ तथा चाऽऽगमांतरे । राहुभादष्टमं यावद्वीजो-प्तिं परिवर्जयेदिति ॥ अथ धान्यछेदनमाह—तच्छेदनं वापभैरिति । तेषां धान्यानां छेदनं तच्छेदनं वापभैः बीजवापनक्षत्रैः प्रोक्तं । ननु यस्यांगं यदौगिनो गदितमे कुर्यादिति पुरैवोक्तं तत्कथं



पुनरुक्तं तच्छेदनं वापभैरिति । सत्यं कृषिनक्षत्राणां बीजवापनक्षत्राणां च किञ्चिद्भेदोऽस्ति द्वयोः कृष्यंगत्वात् कैः कार्यमिति संदेहनिवारणार्थं तच्छेदनं वापभैरित्युक्तम् ॥ ६ ॥

**टीकाथ**—आतां नांगरण्याविषयी लांगल चक्र सांगतो—ज्या नक्षत्रावर सूर्य असतो त्याचे मागील नक्षत्रापासून तीन तीन इत्यादि ८ वर्गांच्या नक्षत्रांची अशुभ शुभ, अशुभ शुभ अशीं फळे आहेत. ह्याचा अर्थ असा की, ३ अशुभ पुढे ३ शुभ पुढे ३ अशुभ पुढे ५ शुभ पुनः ३ अशुभ पुनः ५ शुभ नंतर ३ अशुभ नंतर ३ शुभ अशीं असतात. ही जी शुभ आणि अशुभ अशीं नक्षत्रे आहेत त्यांपैकी नांगरण्याच्या मुहूर्ताला हलचक्रांतले शुभ नक्षत्र घ्यावे. आतां बीज पेरण्याचीं नक्षत्रे सांगतो—मागील श्लोकांत जी नांगरण्याकारतां नक्षत्रे सांगितली आहेत त्या नक्षत्रांवर बीं पेटावे. हे शुभकारक आहे. परंतु त्यांत वरुण ह्य० शततारका, हरि ह्य० श्रवण, इंद्र ह्य० ज्येष्ठा, हीं नक्षत्रे वर्ज्य करावीत. नांगरण्याचीं नक्षत्रे बीं पेरण्यास घ्यावीं एवढेच नाही तर नांगरण्याची तिथि, वार, नक्षत्रे सर्व घ्यावीत. तेंच सांगितलें आहे की, मंगळवारी बीं पेरलें असतां उंदरांचें भय होतें. शनिवारी बीं पेरलें असतां टोळ आणि किडे ह्यांचें भय समजावें. नवमी तिथीस, रिक्तातिथीस, हीन तिथीस, सोमवारी विशेषकरून नाशाचें भय आहे. वृषलक्ष्मी अथवा मीनलक्ष्मी, कन्यालक्ष्मी, मिथुनलक्ष्मी सर्व प्रकारचे बीं पेटावे त्यापासून धान्याची समृद्धी होते. लग्नाचें बल वगैरे पूर्वीप्रमाणेच पाहावे. आतां बीं पेरण्याविषयीं दोन प्रकारचे हलचक्र सांगतो—सूर्ययुक्तनक्षत्रापासून तिसरें अशुभ ८ वें शुभ ८ वें अशुभ ८ वें शुभ अशीं नक्षत्रे समजावीत ३-८-८-८ मिळून सत्तावीस नक्षत्रांनां बीं पेरणें शुभकारक आहे असें सांगितलें आहे. आतां दुसरा प्रकार सांगतो—दुसऱ्या आचार्यांचें असें मत आहे की, राहु असेल त्या नक्षत्रापासून बारावें नक्षत्र शुभ आहे त्यावर बीं पेरण्याचें करावें. ह्याचा अर्थ असा की, ज्या नक्षत्रावर राहु असतो त्यापासून जे सातवें नक्षत्र असतें त्याला फाणि सप्तम असें नांव आहे, त्यापासून बारावे नक्षत्रावर बीं पेरणें शुभ आहे. राहुला फणी असें नांव दुसऱ्या ग्रंथांत प्रसिद्ध आहे. राहुचे स्वरूपाचे विकल्प दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितले ते ब्रह्मदेवाचे आपण केलेल्या संहितेंत सांगितले आहेत. ते असे की, ह्या राहु नामक असुराचें मस्तक जरी तोडलें तरी त्यानें अमृताचा आस्वाद केला होता ह्याणून त्याचा प्राण गेला नाही आणि तो राहु ग्रह होऊन राहिला आहे. तो राहु, चंद्र आणि सूर्य ह्यांच्या मंडलासारखा आकृतीनें आहे परंतु तो काळा असल्यामुळें आकाशांत दिसण्यांत येत नाही आणि कमलयोगीन ह्य० ब्रह्मदेवाचें वरदान असल्यामुळें तो राहु पर्वकाळाशिवाय दुसऱ्या दिवशीं दिसत नाही तोंड आणि पुच्छ ह्या दोहोंकडे अंगाचा विभाग केला आहे ह्याणून तो भुजंग ह्य० सर्प त्याच्या आकाराचा आहे असें कित्येकांचें मत आहे. तो राहु भुजंगाचे आकारा सारखा आहे ह्याणूनच त्याला फणी असें नांव आहे. रत्नमालाग्रंथांतही स्पष्ट सांगितलें आहे की, फाणि ह्य० राहुच्या नक्षत्रापासून बीं पेरण्याचा काळ आहे. तज्जेंच दुसऱ्या आगमांत सांगितलें आहे की, राहु नक्षत्रापासून आठवें नक्षत्र बीं पेरण्यास वर्ज्य आहे. आतां धान्याचें छेदन सांगतो—धान्याचें छेदन बीं पेरण्याच्या नक्षत्रांवरच करावें, आतां अशी शंका येते की, मुख्य कार्य करावयास जें नक्षत्र सांगितलें असेल त्या कार्याचें अंग ह्य० अवयव कार्य करावयास तें नक्षत्र घ्यावें असा नियम आहे. असें पूर्वी सांगितलें आहे तर आतां पुनः छेदनाकरितां बीं पेरण्याचें नक्षत्र घ्यावें हें सांगण्याचें कांहीं कारण दिसत नाही हें ह्याणून बरोबर आहे. नांगरण्याचीं नक्षत्रे आणि बीं पेरण्याचीं नक्षत्रे ह्यांच्यामध्ये थोडा भेद आहे. दोनही नांगरण्याचीं अंगे असल्यामुळें कोणत्या नक्षत्रावर कोणतें कार्य करावें ह्या संशय दूर करण्याकरितां बीं पेरण्याच्या नक्षत्रांवर धान्य कापावें असें सांगितलें आहे ॥ ६ ॥

मळणीचा खांब पुरणें, नवान्नप्राशन, नृत्य, संगीत.

मेथि क्षीरतरोरुफानुरहितैरुद्धाहभै रोपयेत् ।

अन्नप्राशनभैर्वसंतशरदोः प्रोक्तं नवान्नं बुधैः ॥

मेत्रार्कात्यवसूत्तरेज्यवरुणैः सेंद्रैः शुभं नर्तनं ।

लग्ने ज्ञे गुरुवीक्षिते हिब्रुकगैः सौम्यैश्च संगीतकम् ॥ ७ ॥

**श्लोकार्थ**—ज्यांतून दुधासारखा चीक निघतो अशा वृक्षाचा मेथि ( मळणीचा खांब ) उत्तराफ० व अनुराधारहित विवाह नक्षत्रांवर पुरावा, वसंत ऋतूत व शरत् ऋतूत अन्न प्राशनाच्या तिथि नक्षत्रादिकांवर नवान्न प्राशन करावें. अनुराधा, हस्त, रेवती, धनिष्ठा, उत्तराफ०, उत्तराषा०, उत्तराभा०, पुष्य, शततारका, ज्येष्ठा ह्या नक्षत्रांवर; लक्ष्मी बुध असून, त्यावर गुरुची दृष्टि असतां; आणि चतुर्थस्थानी शुभग्रह असतां नृत्य व संगीत यांचा आरंभ शुभ जाणावा ॥ ७ ॥

अथ निष्पन्ने धान्ये क्रमप्राप्तं मेथिरोपणं वृत्तचरणेनाऽऽह-मेथिमिति । क्षीरतरोर्वटवृक्षादेर्मैथ उद्गाहमैर्विवाहनक्षत्रैर्मूलांत्याकैत्यादिभिरारोपयेत् निखनेत् मेथिर्नाम खले धान्यमर्दनार्थं काष्ठमा-  
रोप्यते मेथ्यंते संगम्यंते वृषभा अस्मिन्निति मेथिः । मेथु संगमे । पुंस्ति मेथिः खले दाहयस्वर्तं  
यत्पशुबंधनमित्यमरः ॥ किंलक्षणे रुद्राहमैः उफानुरहितैः उफा उत्तराफाल्गुनी अनुः अनुराधा तारभ्यां  
रहितैः । उक्तं च । रेवती रोहिणी मूलं स्वाती हस्तो मृगस्तथा । आषाढोत्तरयुक्ता च तथा भा-  
द्रपदा मघा ॥ बंधने सर्वबीजानां तथा शालाप्रवेशने । दुःखदा वनदा चैवानुराधोत्तरफाल्गुनी ॥ वटश्च  
सप्तपर्णश्च गंभारी शालमली तथा । औदुम्बरी तथा धात्री या चान्या क्षीरवाहिनी ॥ स्त्री-  
नास्त्री कर्षकैर्नित्यं मेथिः कार्या फलप्रदेति ॥ अथ नवधान्यप्रसंगेन नवान्नकर्म द्वितीयचरणेनाऽऽह-  
अन्नप्राशनमैरिति । वसंतशरदो ऋत्वोरन्नप्राशनमैर्नवान्नं नवान्नकर्म बुधैः प्रोक्तं । अन्नप्राशनमैरि-  
त्युपलक्षणं तस्मादन्नप्राशनोक्तं तिथिवारादिकमन्नप्राह्यं । सांशिकस्य नवान्नकर्मणा विना ब्रीह्या-  
दीनां नवनवमितानां धान्यानां भक्षणे दोषप्रसंगादावश्यकं कर्मेतत् । नवधान्यानीमानी । ब्रीहयो  
यवगोधूमा नीवारः कंगुवैणकाः । शालयो मुद्गमाषाश्च नवधान्यानि च क्रमात् ॥ एषां मध्ये शर-  
त्संभवानि धान्यानि ब्रीह्याग्रयणेन विना न भक्षणीयानि । वसंतसंभवानि यवाग्रयणेन विना न  
भक्षणीयानीति नियमादि कर्म शरद्वसंतयोः क्रियत इति । तदन्नप्राशनोदितैस्तिथिभादिभिः मासे  
षष्ठेऽष्टमे वेत्यत्रोक्तैर्नवान्नं कर्तव्यमित्यर्थः । अथोत्तरार्धेन नृत्यसंगीतयोरारंभमाह-मैत्राकीर्तयेति ।  
मैत्रमनुराधा अर्को हस्तः अंश रेवती वसवो धनिष्ठा उत्तरास्तिस्त्र इज्यः पुष्यः वरुणः शततार-  
का इंद्रो ज्येष्ठा तैर्नर्तनमारभेत् संगीतकं च आरभेत् कस्मिन्सति लग्ने वर्तमाने ज्ञे गुरुवोक्षिते  
सति कैः हिबुकगैः सौम्यैः चतुर्थस्थानस्थितैः सौम्यग्रहैः । शेषं प्राग्वत् ॥ ७ ॥

टीकाथ—आतां धान्य तयार झाल्यावर क्रमानें प्राप्त झालेला मेथि ह्य० मळणीचा खांब वृत्ताच्या चरणानें  
सांगतो—क्षीर वृक्ष ह्य० ज्यापासून दुधा सारखा चीक निघतो अशा वृक्षाचा ह्यणजे वड वगैरे वृक्षांचा खांब मळणीकरितां  
तयार करून तो विवाहास सांगितलेल्या नक्षत्रांवर पुरावा मेथि ह्यणून त्या खांबाला नांव आहे. कारण कीं, त्या खांबाच्या  
चोहोंकडे बैल फिरत असतात कारण मेथु असा धातु आहे त्याचा अर्थ संगम करणें असा आहे. तीं विवाह नक्षत्रें ध्याव-  
याचीं ह्यणून सांगितलें, परंतु त्यामध्ये उफा ह्य० उत्तरा फाल्गुनी अनु ह्य० अनुराधा हीं दोन नक्षत्रें वर्ज्य करावयाचीं  
आहेत. असें सांगितलें आहे कीं, रेवती, रोहिणी, मूल, स्वाती, हस्त, मृग, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, मघा इतकीं नक्षत्रें  
सर्व धान्यांचें छेदन करण्याकरितां आणि घरांत आणून रचण्याकरितां सांगितलीं आहेत आणि अनुराधा व उत्तराफाल्गुनी  
हीं दोन नक्षत्रें दुःखदायक आहेत. मळणीचा खांब वडाचा, सप्तपर्ण वृक्षाचा, गंभारीचा, शालमलीचा, उंबराचा, आवळीचा  
अथवा ह्या शिवाय दुसरे जे क्षीरवाही ह्य० दुधा सारखा चीक निघणारे वृक्ष आहेत त्यांचा खांब शेतकऱ्यांनीं करावा त्या-  
पासून उत्तम फल प्राप्त होतें. आतां नवीन धान्याच्या प्रसंगाने नवान्न प्राशनाचा विचार दुसऱ्या चरणानें सांगतो—वसंत  
ऋतूत आणि शरद ऋतूत अन्न प्राशनाला सांगितलेल्या नक्षत्रांवर नवान्न प्राशन करावें असें विद्वानांनीं सांगितलें आहे. नुसतीं  
अन्न प्राशनाचीं नक्षत्रेंच ध्यावीत असें नाही; तर त्याची तिथि, वार, नक्षत्र इत्यादिकही ध्यावेत. ज्याचे घरीं अमिहोत्र असेल  
त्याला नवान्न प्राशनाचें कर्म केल्याशिवाय तांदूळ इत्यादिक नवीन झालेल्या धान्यांचें भक्षण केल्याबद्दल दोष सांगितला  
आहे ह्यणून नवान्न प्राशनाचें कर्म आवश्यक केलेंच पाहिजे. नवीन धान्यांचीं नांम अशीं कीं, तांदूळ, यव, गोधूम, नीवार,  
कांग, वैणक, शालि, मूग, उडीद हीं नव धान्यें समजावीत. ह्यांमध्ये शरत् ऋतूत उत्पन्न झालेलीं धान्यें ब्रीही  
आप्रायण झाल्याशिवाय खाऊं नयेत. आणि वसंत ऋतूत झालेलीं धान्यें यवादिक आप्रायण झाल्याशिवाय  
खाऊं नयेत. हेच कर्म शरत् आणि वसंत ह्या दोन ऋतूत करावें लागतें. ते कर्म अन्न प्राशनाच्या नक्षत्र इत्यादिकांवर  
करावें आणि त्याचीच तिथि व मास इत्यादिक ध्यावे असा नियम आहे. आतां उत्तरार्धानें नृत्य आणि संगीत ह्यांचा  
आरंभ सांगतो—मैत्र ह्य० अनुराधा, अर्क ह्य० हस्त, अंश ह्य० रेवती, वसु ह्य० धनिष्ठा, उत्तरात्रय ह्य० उत्तराषाढा,  
उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, इज्य ह्य० पुष्य, वरुण, ह्य० शततारका, इंद्र ह्य० ज्येष्ठा इतक्या नक्षत्रांवर नृत्याचा  
आरंभ करावा. तसाच गाण्याचाही आरंभ करावा. लमीं बुध असून त्या बुधावर गुरुची दृष्टि असतां आणि हिबुक ह्य०  
चतुर्थस्थानी शुभ ग्रह असतां नृत्य व संगीत ह्यांचा आरंभ करावा. बाकीचें सर्व पहिल्या प्रमाणेंच समजावें ॥ ७ ॥

पशुसंबंधीं कर्म.

द्वीशाकेंद्रद्वितीयवासवशिवाश्वयंत्याग्निपाशींद्रभैः ।

पूर्वाभिः शुभदा विंसीहमतनौ नानापशूनां क्रिया ॥

वारेष्वर्कचतुर्षु कोत्तरहरित्वाष्ट्रेष्वमारिक्तयो-।

रष्ट्रम्यां न हितोदिता स्वभगभे न स्याद्द्रदोषः किल ॥ ८ ॥

श्लोकार्थ—विशाखा, हस्त, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्विनी, रेवती, कृत्तिका, शततारका, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभा, ह्या नक्षत्रांवर आणि सिंह रंहित लग्नीं अनेक प्रकारचे पशु विकत देणें, घेणें, आणणें, नेणें, वगैरे पशुसंबंधीं कर्म शुभ जाणावें. रवि, सोम, मंगळ, बुध ह्या ४ वारीं रोहिणी, उत्तराफा, उत्तराषाढा, उत्तराभा, श्रवण, चित्रा ह्या नक्षत्रांवर व अमावास्या, रिक्ता, अष्टमी ह्या तिथींवर पशु कर्म शुभ नव्हे, ज्या नक्षत्राची जी पशुयोनि त्या नक्षत्रांवर त्या पशूंचे कर्म करण्याला नक्षत्र अशुभ असेल तरी दोष नाही ॥ ८ ॥

अथ नानापशूनां कर्म वृत्तेनैकेनाऽऽह—द्वीशेति । द्वीशं विशाखा अर्को हस्तः इंदुर्मृगः अदितिः पुनर्वसुः इज्यः पुष्यः वासवं धनिष्ठा शिव आर्द्रा अश्विनी प्रसिद्धा अंत्यं रेवती अग्निः कृत्तिका पाशी शततारका इंद्रो ज्येष्ठा तैः पूर्वाभिस्तिसृभिः विंसीहमतनौ विगतः सिंहो येभ्यस्तानि विंसीहानि तानि च तानि भानि विंसीहभानि सिंहहरितराशयः तेषां तनुर्लघ्नं तस्मिन् नानापशूनां क्रिया शुभदा उदिता पशूनां क्रयविक्रयादि कर्म शुभदं प्रोक्तमित्यर्थः । अथोत्तरार्धेन वर्ज्यमाह—अर्कचतुर्षु वारेषु रविचंद्रभौमबुधवारेषु कोत्तरहरित्वाष्ट्रेषु कः रोहिणी उत्तरास्तिस्रः आसां समाहारः कोत्तरं हरिः श्रवणः त्वाष्ट्रं चित्रा तेषु अमारिक्तयोः अमा अमावास्या रिक्ताश्चतुर्थी-नवमीचतुर्दशीनामन्यतमा तयोः अष्टमी प्रसिद्धा तस्यां नानापशूनां क्रिया हिता नोदिता । अपवादमाह—स्वभगभे सति भदोषो नक्षत्रदोषः कचित्पशुकर्मणि न स्यात् । लग्नबलं प्राप्नुवत् । उक्तं च । इत्यादित्यद्विवसुद्वयांत्याकेंद्रद्वीशैः क्रयादि गोः । दर्शभूताष्टमीचित्राध्रुवकर्णैर्गमाद्यसत् ॥ सोमार्कवैधृतौ पाते लग्ने पंचानने बुधे । भद्रासंक्रांतिरिक्तासु पशुकर्म विवर्जयेत् ॥ शुभग्रहोदये शुद्धनैधने स्वक्षेयानेषु । रक्षावृद्धिक्रिया शस्ता पशूनां मुनिभिः स्मृतेति ॥ तथा चाऽऽगमांतरे । सोमे भौमे बुधे गावो न चालयास्तुरगाः शनाविति ॥ अन्यच्च । पूर्वात्रयामृतमयुखदुताशनेषु शक्राश्विवाजिवसुवारुणशांकरेषु । एतेषु गोमहिषदंतितुरंगमादिनानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्तेति ॥ ८ ॥

टीकाार्थ—आतां नाना पशूंचे कर्म एका वृत्तानें सांगतों—द्वीश ह्याजें ज्या नक्षत्राचे दोन स्वामी आहेत असें ह्यां विशाखा, अर्क ह्यां हस्त, इंदु ह्यां मृग, अदिति ह्यां पुनर्वसु, इज्य ह्यां पुष्य, वसु ह्यां धनिष्ठा, शिव ह्यां आर्द्रा, अश्विनी, अंत्य ह्यां रेवती, अग्नि ह्यां कृत्तिका, पाशी ह्यां शततारका, इंद्र ह्यां ज्येष्ठा आणि पूर्वात्रय ह्यां पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, इतक्या नक्षत्रांवर आणि सिंहराशी शिवाय बाकीची कोणतीही राशि, लग्नीं असेल तर नानाप्रकारच्या पशूंचा क्रय आणि विक्रय करणें शुभकारक आहे. आतां उत्तरार्धानें वर्ज्य सांगतों—अर्कादि चार वार ह्याजें रविवार, सोमवार, मंगळवार, बुधवार, हे चार वार आणि क ह्याजें रोहिणी, उत्तरात्रय ह्यां उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हरि ह्यां श्रवण, त्वाष्ट्र ह्यां चित्रा इतकीं नक्षत्रें. अमा ह्यां अमावास्या, रिक्ता ह्यां चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ह्यांपैकी, कोणती तरी एक तिथी, अष्टमी, ह्या पूर्वी सांगितलेल्या नक्षत्र, तिथींवर पशूंचा क्रय, विक्रय करणें हितकारक, नाही ह्याचा अपवाद सांगतों—ज्या नक्षत्राची जी पशुयोनि असेल त्या नक्षत्रावर त्या पशूंचा क्रय, विक्रय करण्यास हरकत नाही; लग्नाचें बलाबल पूर्वी प्रमाणेंच पाहावें. असें सांगितलें आहे कीं, द्वि आदित्य ह्यां पुनर्वसु आणि पुष्य, द्विवसु ह्यां धनिष्ठा व शततारका, द्वि अंत्य ह्यां रेवती व अश्विनी, अर्क ह्यां हस्त, इंद्र ह्यां ज्येष्ठा, ह्या नक्षत्रांवर गाईंचे क्रय, विक्रय अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी, चित्रा नक्षत्र, ध्रुव करण ह्यांवर पशूंचे क्रय विक्रय असत. ह्यां अशुभ फल दायक आहेत. सोमवार, रविवार, वैधृति, व्यतिपात, बुधवार, लग्नीं सिंह राश असतां, भद्रा, संक्रांति, रिक्ता तिथी इत्यादिकांवर पशूंचा क्रय आणि विक्रय वर्ज्य आहे. शुभ ग्रहाचा उदय असतां निधन स्थान ह्यां अष्टमस्थान शुद्ध असतां, अथवा ज्या पशूंचा विक्रय अथवा क्रय करावयाचा असेल त्या नक्षत्राची जी पशु योनि असेल ह्यां अश्विनी नक्षत्रावर अश्वचा क्रय आणि विक्रय किंवा भरणीवर हत्तीचा क्रय विक्रय अथवा रक्षण करणें वगैरे करावें असें मुनींनी सांगितलें आहे, तेंच

दुसऱ्या ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सोमवारी, मंगळवारी, बुधवारी गार्हचा क्रय विक्रय करूं नये. शनिवारी घोड्यांचा क्रय विक्रय करूं नये. दुसरें असें आहे कीं, तीन पूर्वां ह्य० पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वा भाद्रपदा, अमृतमुख ह्य० चंद्र ह्य० मृग, अग्नि ह्य० कृत्तिका, शक्र ह्य० ज्येष्ठा, अग्नि ह्य० कृत्तिका, वाजि नक्षत्र, वसूचें नक्षत्र, वारुण नक्षत्र, शिवनक्षत्र, इतक्या नक्षत्रांवर गाय, दैत्य, हत्ती, घोडा इत्यादि नाना प्रकारच्या पशुजातींचा क्रय, विक्रय करणें शुभ आहे ॥ ८ ॥

अश्वकर्म व अश्वचक्र.

व्यादित्यद्विवसुस्थिराश्विभृदुस्वात्यर्कभैर्ज्ञत्रया-।

काराह्नीज्यभृगूदये द्विकमदेष्विदौ क्रियाऽऽश्वी हिता ॥

तत्राप्यर्कमतः क्रमात्तिथिमितैः पश्चात्त्रिभिः साभिजि-।

च्छस्ता या नृसमा तदुक्तममुखैः कार्या परैर्भिर्बुधैः ॥ ९ ॥

श्लोकार्थ—पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठा, शततारका, स्थिर, अश्विनी, मृदु, स्वाती, हस्त ह्या नक्षत्रांवर, बुध, गुरु, शुक्र, रवि, मंगळ ह्या वारीं; गुरु, शुक्र लग्नीं असतां; आणि २४।७ ह्या स्थानीं चंद्र असतां घोडा विकत देणें, घेणें वगैरे अश्वकर्म शुभ जाणावें. सूर्य नक्षत्रापासून पुढचीं १५ व मागचीं ३ नक्षत्रें अश्वकर्मांला शुभ होत. हीं अभिजितासह मोजावीं. हें अश्वचक्र अश्वकर्मांच्या नक्षत्रांला पाहावें. मनुष्याप्रमाणें जें अश्वकर्म करावयाचें तें, मनुष्याच्या कर्मांला सांगितलेल्या मुहूर्तावर करावें. इतर कर्म अश्वकर्मांच्या नक्षत्रांवर करावें ॥ ९ ॥

अथाश्वकर्म वृत्तेनैकेनाऽऽह-द्व्यादित्येति । द्व्यादित्यं पुनर्वसुपुष्यौ द्विवसु धनिष्ठाशततारके स्थिराणि प्रसिद्धानि । अश्विनी प्रसिद्धा मृदूनि प्र० स्वाती प्र० अर्को हस्तः तैर्ज्ञत्रयाकाराह्नी ज्ञत्रयं बुधगुरुशुक्राः अर्कः सूर्य आरो भौमः एषामहो दिनं तस्मिन् इज्यभृगूदये उदये लग्ने इज्यभृगौ इति इज्यभृगूदयं तस्मिन् गुरुशुक्रयुते लग्न इत्यर्थः । द्विकमदेषु इदौ द्वौ द्वितीयं कं चतुर्थं मदः सप्तमं एषु चंद्रे सतीत्यर्थः । आश्वी क्रिया क्रयविक्रयादिका हिता शुभकर्त्री स्यात् । अथाश्वचक्रमाह-तत्रापीति । तत्रापि द्व्यादित्यादिषु नक्षत्रेषु सत्स्वपि अर्कमतः सूर्यनक्षत्रात्सकाशात् क्रमात्तिथिमितैर्नक्षत्रैः पश्चादुक्तमतस्त्रिभिर्नक्षत्रैः साभिजिद्यथा तथा आश्वी क्रिया शस्ता शोभना स्यात् । एवं सामान्यतोऽश्वकर्मां कवेदानीं विशेषमाह-येती । या आश्वी क्रिया नृसमा मनुष्यसदृशी सा क्रिया तदुक्तममुखैः कार्या तस्मै मनुष्याय उक्तानि मनुखानि नक्षत्रादीनि तैः कार्येत्यर्थः । परा या नृसमा न भवति सा एभिः सामान्यैर्द्व्यादित्यादिभिर्बुधैः कार्येत्यर्थः । लग्नबलं प्राग्वत् । तथा च नारदः । विविष्णुचरभे क्षिप्रे मृदुभे स्थिरमेषु च । वाजिकर्माखिलं सूर्यवारे कार्यं विशेषत इत्यादि ॥ तथा चोक्तं । घृतान्नचणकक्षीरतृणमुद्गादिभक्षणेषु । अन्नप्राशनवदृक्षं स्नानं सौम्यग्रहोदये ॥ चौलोकं क्षुरकर्मादौ भेषजे भेषजोदितं । गर्माधानोक्तमश्वानां मैथुने तु विलोकयेत् ॥ गृहारंभोदिते काले हयशाला विधीयते । शिक्षाविद्योक्तकाले च भूषणं भूषणोदिते ॥ चर्मकर्मादिकं कार्यं जययोगे शुभोदये । एवं खरोष्ट्रादिकार्यं पूर्वाह्णे वाहनादिकमिति ॥ ९ ॥

टीका—आतां अश्वकर्म एका वृत्तानें सांगतों—व्यादित्य ह्य० पुनर्वसु आणि पुष्य, द्विवसु ह्य० धनिष्ठा आणि शततारका, स्थिर नक्षत्रें, अश्विनी, मृदु नक्षत्रें, स्वाती, अर्क ह्य० हस्त, ह्या नक्षत्रांवर ज्ञत्रय ह्य० बुधवारापासून तीन वार ह्य० बुधवार, गुरुवार आणि शुक्रवार व रविवार ह्या चार वारांवर गुरु आणि शुक्र हे दोन ग्रह लग्नीं असतां चंद्र, द्वि ह्य० द्वितीयस्थान, क ह्य० सुख ह्य० चतुर्थस्थान, मद ह्य० सप्तमस्थान ह्या ठिकाणीं असतां घोडा घेणें व देणें ह्याची क्रिया करणें प्रशस्त आहे. आतां अश्वचक्र सांगतों—वर सांगितलेलीं नक्षत्रें असूनही शिवाय सूर्यनक्षत्रापासून पुढचीं पंधरा नक्षत्रें आणि मागचीं तीन नक्षत्रें आणि अभिजित् नक्षत्र ह्यांवर अश्वकर्म ह्मणजे घोड्याचा विक्रय आणि क्रय करणें शुभ आहे. अशा रीतीनें अश्वार्चें कर्म सांगून आतां विशेष सांगतों—मनुष्याप्रमाणेंच अश्व कर्म करावयाचें आहे. तेंच सांगितलें आहे कीं, मनुष्याच्या कामाला जीं नक्षत्रें सांगितलीं आहेत तींच नक्षत्रें वगैरे घोड्याच्या कामाला समाजावीत आतां जीं कर्म मनुष्यासारखीं नसतील तीं घोड्यांचीं कर्म व्यादित्य इत्यादि नक्षत्रांवर करावीत. लग्नाचें बला

बल पूर्वी प्रमाणेच जाणावें. तेंच नारद सांगतो कीं, विष्णु नक्षत्रावर ह्यणजे श्रवण नक्षत्रीं, क्षिप्र नक्षत्रावर, मृदु नक्षत्रावर, स्थिर नक्षत्रावर संपूर्ण अश्व कर्म करावें आणि विशेषकरून रविवारीं अश्व कर्म करावें. तेंच सांगितलें आहे कीं, मनुष्याला अन्न प्राशनाचीं जीं नक्षत्रें सांगितलीं आहेत. त्या नक्षत्रावर घोड्याला घांस, अन्न, दाणा, गवत, मूग इत्यादि खाण्यास द्यावे. सौम्य ग्रहांवर त्याला स्नान घालावें. चैल कर्मास सांगितलेल्या नक्षत्रादिकांवर त्या घोड्याचे केश काढणें, खरारा वगैरे करावा. औषध देण्यास औषध देण्याचीं नक्षत्रें, अश्वच्या मैथुनाला गर्भाधानाचीं नक्षत्रें घ्यावीत. घर बांधण्याच्या नक्षत्रावर हयशाला ह्यणजे तबेला वगैरे बांधावा. घोड्याला शिकविण्याचें काम मनुष्याचे विद्यारंभावर करावें. घोड्याला दागिने घालावयाचे ते मनुष्याचे दागिने घालण्याच्या नक्षत्रावर घालावेत. घोड्याला लगाम खोगीर वगैरे घालावयाचें तें काम मनुष्यांच्या शुभकारक जय योगावर करावें. अशाच रीतीनें खेचर आणि उंट इत्यादिकांवर बसण्याचें पूर्वाण्हाकाळीं करावें ॥ ९ ॥

अभ्यंगाचा काल.

भद्रासंक्रमपातवैधृतिसितेज्याकार्ष्ण्यादिषु ।

श्राद्धाहे प्रतिपद्वये परिहरंद्वेतुं विनाऽभ्यंजनम् ॥

मांगल्यं विजयोत्सवोऽब्दवदनं दीपावली हेतवो- ।

ऽभ्यंगस्य क्रियतादितैलमनसन्निधेऽह्नि नित्येऽखिलम् ॥ १० ॥

श्लोकार्थ—भद्रा करण, संक्रांति, व्यतीपात, वैधृति योग, शुक्र, गुरु, रवि, मंगळ हे वार, षष्ठीपासून पुढच्या सर्व तिथि, श्राद्धदिवस, प्रतिपदा, द्वितीया ह्यांवर कारणावांचून अभ्यंग करूं नये. विवाहादि मंगल-कार्य, दसरा, पाडवा, दिवाळी, हीं अभ्यंग करण्याचीं कारणें आहेत, ह्यणून अशा दिवशीं तिथि, वार, योगादि कांहीं अशुभ असलें तरी अभ्यंग करावा. तापविलेलें तेल, मोहऱ्यांचें तेल व सुगंधि तेल निषिद्ध दिवशीं अंगाला लावणें शुभ जाणावें, दररोज अभ्यंग करण्याला कसलाच दोष नाही. सगळे दिवस व सर्व प्रकारचीं तेलें शुभ होत ॥ १० ॥

अथाभ्यंगनिषिद्धकालमाह—भद्रेति । भद्रा प्रसिद्धा । संक्रमः संक्रांतिः पातो व्यतीपातः वैधृतिः प्र० सितः शुक्रवारः इज्यो गुरुवारः अर्को रविवारः आरो भौमवारः षष्ठ्यादयः सर्वा-स्तितयः तासु ६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२० । श्राद्धाहः श्राद्धदिनं प्रतिपद्वयं प्रतिपद्वितीये तस्मिन् हेतुं कारणं विना अभ्यंजनं अभ्यंगं परिहरेत् । कारणे साति अवश्यं चरेदित्यर्थसिद्धः । तथा चोक्तं । सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नवम्यां प्रतिपत्तियौ । चतुर्दश्यामथाष्टम्यां षष्ठ्यां चैव विशेषत इति ॥ ग्रंथांतरे । चतुर्दश्यष्टमी चैव पौर्णमास्यैकसंक्रमः । तैलस्नानं न कुर्वीत सुतबंधुधनक्षयादिति ॥ तथा च वृद्धमनुः । दर्शे स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोस्तु जीवतोः । नवम्यां च न चेतत्र निमित्तांतरसंभवः ॥ प्रतिपद्यनपत्यः स्याद्वितीयायामपत्तिकः । दशम्यामधनः स्नाने सर्वं हति त्रयोदशीति ॥ रत्नमालायां । रविस्तार्यं कान्तिं वितरति शशी भूमितनयो मृति लक्ष्मीं चांद्रिः सुरपतिगुरुर्वित्तरणं । विपत्तिं दैत्यानां गुरुरखिलभोगानुभवनं नृणां तैलाभ्यंगात्सपदि कुरुते सूर्यतनय इति ॥ अथाभ्यंगहेतूनाह—मांगल्यमिति । मांगल्यं विवाहादि विजयोत्सव आश्विनशुक्लदशम्यां क्रियते अब्दवदनं संवत्सरप्रतिपत् दीपावलिः प्रसिद्धा एतेऽभ्यंगस्य हेतवः कारणानि । एषु निषिद्धतिथ्यादावपि अभ्यंगः कर्तव्यः । तथा चोक्तं व्यवहारसारे । वत्सरादौ वसंतादौ सूतकांते महोत्सवे । दीपोत्सवे चतुर्दश्यामभ्यंगनियमो न चेति ॥ तथा चोक्तं स्कांदे विजयादशमीविषयं । निषिद्धमपि कर्तव्यं तैलाभ्यंजनमादरात् इति ॥ अथाभ्यंगनिषिद्धापवादमाह—कथितादीति । निधेऽह्नि कथितादि तैलं अनसत् शुभं स्यात् आदिग्रहणात् सार्षपसुगंधपुष्पवासितादि तैलं गृह्यते । एवं कथितादि तैलं निधदि-नेऽपि शुभमित्यर्थः । उक्तं च । सार्षपं गंधतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितं । द्रव्यांतरयुतं वाऽपि न दुष्यति कदाचन ॥ सूर्यशुक्रवारपु निषिद्धासु तिथिष्वपि । कर्तव्ये यदि वा स्नाने पक्वतैलं न दुष्यति ॥ रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिकां । भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैलस्नानं सुखावहमिति ॥ अथ नित्याभ्यंगे विशेषमाह—नित्येऽखिलमिति । नित्येऽभ्यंगेऽखिलं तैलं पक्वादिकं अनसत् शुभं स्यात् उक्तं च । नित्यस्नाने च कर्तव्ये तिथिदोषो न विद्यत इति ॥ १० ॥

अथ प्रसंगेन तिलामलकस्थाने निषिद्धतिथीनाह-दिगिति । दिक् दशमी विश्वे त्रयोदशी अद्भिः



सप्तमी दृक् द्वितीया अंको नवमी दर्शः अमावास्या एतेषु तिथिषु श्रीकामः धात्रीफलैः आमलकी-  
फलैः स्नानं नाऽऽचरेत् । तथा चोक्तं । यः करोति दशम्यां च स्नानमामलकैः सह । पुत्र-  
हानिर्भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः ॥ अर्थपुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायां न संशयः । अमायां च नव-  
म्यां च सप्तम्यां च कुलक्षय इति ॥ अथ स्त्रीणां बुधादिषु अभ्यंगनिषेधमाह—बुधो बुधवारः अंबुपर्क्ष  
शततारका पितृभं मघा एतेष्वभ्यंगस्तस्मात् अंगना स्त्री पतिघ्नी स्यात् । उक्तं च । स्नानं कुर्वति  
या नार्यश्चंद्रे शतमिषगते । सप्तजन्मभवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवमिति ॥ त्रिविक्रमशते । स्नानं  
नाऽऽर्कशुक्रज्यविष्टिसंक्रांतिपर्वसु । द्रव्यष्टषड्दिकत्रयोदश्यां स्त्रियस्तु न मघाबुधैः ॥ अथ पुत्रवतः  
सोमवारेऽभ्यंगनिषेधमाह—पुत्रीति । पुत्रवान् सोमवारे न स्नायात् । उक्तं च । पुत्रवान् स्वगृहे नित्यं न  
स्नायादुत्तरामुखः । सोमवारे तथाऽभ्यंगं वर्जयेत्सर्वथा बुध इति ॥ अथ प्रसंगेन प्रसूतिकास्नाने  
निषेधकालमाह—प्रसूरिति । यमो भरणी पितरो मघा त्वाष्ट्रं चित्रा इंद्रो ज्येष्ठा मिश्रे कृत्तिकाविशाखा  
अंबुपः शततारा कव्यादो मूलं ईश्वरभमाद्रा एषां समाहारस्तस्मिन् कुपुत्रहरिजे कुत्सितः पुत्रः  
पुत्रभावो यस्य तत्कुपुत्रं तच्च तद्धरिजं च तस्मिन् यस्माल्लग्न्यात्पंचमस्थः पापग्रहो भवाति तस्मि-  
न्नित्यर्थः । निशास्यं रात्रिमुखं सायंकालस्तस्मिन् प्रसूता न स्नायात् शेषं लग्नबलं प्राग्वत् । उक्तं च  
मघामूलविशाखाद्राचित्रादितियमद्रये । ज्येष्ठासार्पजले शर्क्षेनैव स्नायात्प्रसूतिका ॥ शुभग्रहयुते  
लग्ने पंचमे पापवर्जिते । परित्यज्य महादोषान् सूतिका स्नानमाचरेत् ॥ ११ ॥

टीकार्थ—आतां प्रसंगोपात आंवळेले तेलानें स्नान करण्यास निषिद्ध तिथि सांगतां—दिक् ह्य० दशमी, विश्व ह्य०  
त्रयोदशी, अद्रि ह्य० सप्तमी, दृक् ह्य० द्वितीया, अंक ह्य० नवमी दर्श ह्य० अमावास्या इतक्या दिवसांवर वैभव मिळ-  
ण्याची इच्छा करणाऱ्यानें आंवळा घातलेल्या तेलानें स्नान करूं नये. तेंच सांगितलें आहे कीं, आंवळ्याच्या तेलानें दशमीस स्नान  
करण्यानें पुत्रहानि होते. त्रयोदशीस स्नान केलें असतां धनाचा क्षय होतो. द्वितीयेस केलें असतां द्रव्य आणि पुत्र ह्यांचा  
नाश होतो. अमावास्येस, नवमीस आणि सप्तमीस कुलाचा क्षय होतो. आतां स्त्रियांचा बुधवार इत्यादिकांवर अभ्यंग  
स्नानाचा निषेध सांगतां—बुध ह्य० बुधवार, अंबुप नक्षत्र ह्य० शततारका, पितृ नक्षत्र ह्य० मघा ह्यांवर स्त्रीनें  
अभ्यंग स्नान केलें असतां तिचा पति मरण पावतो. असें सांगितलें आहे कीं, ज्या स्त्रिया, चंद्र शतमिषक् नक्षत्रावर  
गेल्यावर अभ्यंग स्नान करितात. त्या स्त्रिया सात जन्म पर्यंत विधवा आणि दरिद्री अशा निश्चयानें होतात. त्रिविक्रम  
शत नामक ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, पुरुषांनीं, मंगळवारीं, रविवारीं, शुक्रवारीं, गुरुवारीं, विष्टि वर, संक्रांतीवर, पर्व  
ह्य० अमावास्या आणि पौर्णिमेवर, द्वितीया तिथीवर, अष्टमीवर, दशमीवर, त्रयोदशीवर अभ्यंग स्नान करूं नये. आणि  
स्त्रियांनीं मघा नक्षत्रावर आणि बुधवारीं अभ्यंग स्नान करूं नये. आतां पुत्रवानाला सोमवारीं अभ्यंग स्नानाचा निषेध  
सांगतां—ज्याला पुत्र आहे त्यानें सोमवारीं अभ्यंग स्नान करूं नये. असें सांगितलें आहे कीं, पुत्रवानानें आपल्या  
घरीं दररोज उत्तरेस तोंड करून स्नान करूं नये. आणि सोमवारीं व बुधवारीं अभ्यंग स्नान करूं नये. आतां प्रसंगो-  
पात प्रसूतिकेला स्नान करण्याचा निषेध सांगतां—यम ह्य० भरणी, पितर ह्य० मघा, त्वाष्ट्र ह्य० चित्रा, इंद्र ह्य०  
ज्येष्ठा, मिश्र ह्य० कृत्तिका विशाखा, अंबुप ह्य० शततारका, कव्याद ह्य० मूल, ईश्वर ह्य० आद्रा इतक्या नक्षत्रांवर  
आणि ज्या लग्नापासून पंचमस्थानीं पापग्रह असतो अशा लग्नां रात्रीच्या आरंभीं ह्यणजे सायंकाळीं प्रसूतिकेनें ह्य०  
बाळंत स्त्रीनें स्नान करूं नये. लग्नाचें बल पूर्वीं प्रमाणेंच पहावें. असें सांगितलें आहे कीं, मघा, मूल, विशाखा, आद्रा,  
चित्रा, अदिति नक्षत्र, यम ह्य० भरणी, द्रव्य ह्य० कृत्तिका व विशाखा, ज्येष्ठा, सार्प ह्य० आर्कषा, वरुण ह्य० शतता-  
रका, इतक्या नक्षत्रांवर बाळंत स्त्रीनें स्नान करूं नये. पंचमस्थानीं पापग्रह नसून लग्नां शुभ ग्रह असेल अशा सुमुहूर्तावर  
बाळंत स्त्रीनें स्नान करावें ॥ ११ ॥

औषध करणें व रोग्यास देणें.

मंदारान्यादिने मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वलक्षे सुधा- ।

योगे भेषजमाचरेत्समृतिर्केन्द्रारिव्ययांगे भिषक् ॥

तदद्यादिहविभ्रुवेंदुतनयप्रद्योतने रोगिणेऽ- ।

सुक्खावव्रणकर्मसूर्यकुजयोरह्नीह केंद्रस्थयोः ॥ १२ ॥

टीकार्थ—शनि, मंगळ रहित अन्यवारीं, मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रांवर; शुक्रपक्षांत, अमृत

सिद्धियोगावर आणि ८।१।४।७।१०।६।१२ ह्या स्थानीं पापग्रह नसून शुभग्रह असतील अशा लग्नीं वैद्यानें औषध तयार करावें. ध्रुव नक्षत्रे व बुध, रविवार सोडून वरील नक्षत्रादिकांवर रोग्याला औषध द्यावें. रवि, मंगळ ह्या वारीं व हे केंद्रस्थानीं असतां रक्तस्त्राव करणें, क्षतास औषध लावणें वगैरे कमें करावीं ॥ १२ ॥

अथौषधनिष्पादनमाह—मंदारेति । मंदः शनिरारो भौमस्ताभ्यामन्ये रविचंद्रबुधगुरुशुक्रास्तेषां दिनं तस्मिन् मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्नक्षत्रैः वलक्षे शुक्रपक्षे सुधायोगे अमृतयोगे ग्रंथांतरप्रसिद्धे सुमृति-केंद्रारिव्ययांगे शोभनानि पापग्रहरहितानि मृत्तिकेंद्रारिव्ययानि यस्य तत् सुमृतिर्केंद्रारिव्ययं तच्च तदंगं च तस्मिन् भिषक् वैद्यः भेषजमाचरेत् कुर्यात् । शेषं लग्नबलं प्राग्बत् । अथौषधदानमाह—तदौषधं इहानंतरोक्ते भादौ दद्यात् कथं भूते इह विधुर्वेदुतनयप्रद्योतने ध्रुवनक्षत्रबुधराविरहिते । अथ रक्तस्त्रावव्रणयोर्विशेषमाह—असूक्स्त्रावो रक्तस्त्रावः व्रणः क्षतं अनयोः कर्म सूर्यकुजयोरहि दिवसे आचरेत् कयोः सतोः सूर्यकुजयोः केंद्रस्थयोः सतोः । तथा चोक्तं । मंदारवर्जिते वारे चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः । सूर्यसौम्यैः केंद्रगतैर्भेषजोत्पादनं हितं ॥ रक्तस्त्रावं कुजे कुर्यात्तद्द्वारायामथापि वा । कुजे केंद्रेऽथ वा मंदे रवौ वा विखलेऽष्टमे ॥ व्रणकिया कुजे सूर्ये केंद्रे तद्दिनेऽष्टमे । शुद्धपष्ठे च सक्रूरे चरलग्ने युवस्वर इति ॥ १२ ॥

टीकार्थ—आतां औषध करावयाचा काळ सांगतो—मंद ह्या० शनिवार, आर ह्या० मंगळवार, ह्या दोन वारांशिवाय बाकीच्या वारीं ह्या० रवि, सोम, बुध, गुरु, आणि शुक्र ह्यांचे वारीं मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र ह्या नक्षत्रांवर वलक्ष ह्या० शुक्रपक्षावर, अमृत सिद्धि योगावर ( जो अमृतसिद्धि योग दुसऱ्या ग्रंथांत प्रसिद्ध आहे. ) अष्टमस्थानीं, षष्ठस्थानीं, केंद्र ह्या० १-४-७-१० आणि बाराव्या स्थानीं पापग्रह नसतील अशा उत्तम लग्नीं वैद्यानें औषध करण्याचा आरंभ करावा. बाकीचें लग्नबल पूर्वाप्रमाणेंच जाणावें. आतां औषध देण्याचें तें सांगतो—आतां ह्या जवळच सांगितलेल्या नक्षत्रांवर औषध द्यावें. वर सांगितलेल्या नक्षत्रांपैकीं ध्रुवनक्षत्रें, बुधवार आणि रविवार इतके सोडून बाकीच्या नक्षत्रांवर व बाकीच्या वारांवर औषध देण्यास आरंभ करावा. आतां रक्ताचा स्त्राव आणि व्रण ह्यांचा विशेष सांगतो—रक्तस्त्रावाचें आणि क्षतास औषध लावण्याचें काम रवि आणि मंगळ ह्या दोन वारीं करावें किंवा रवि आणि मंगळ हे दोन ग्रह केंद्रस्थानीं असतील तेव्हां रक्तस्त्रावाचें आणि क्षतास औषध लावण्याचें काम करावें. तेंच सांगितलें आहे कीं, शनिवार आणि मंगळवार ह्या दोहोंखेरीज बाकीच्या वारांवर आणि चर, क्षिप्र, मृदु, ध्रुव ह्या नक्षत्रांवर सूर्य आणि बुध हे केंद्री असतां औषध तयार करावें आणि मंगळवारीं रक्ताचा स्त्राव करावा व मंगळाच्या होरावर आणि मंगळ केंद्री असतां रक्तस्त्राव करावा. तसेंच क्षतास औषध लावण्याचें काम शनिवारीं, मंगळवारीं आणि मंगळ व सूर्य हे केंद्री असतां षष्ठस्थान शुद्ध असतां आणि तेथें क्रूर ग्रह असतां चर लग्नावर क्षतास औषध लावण्याचें काम करावें ॥ १२ ॥

रोगाचा अवधि व स्नान.

याम्याहित्रयवायुमूलजलपोषांत्येद्रहस्तांबुभे ।

शांत्याजद्विपयोर्नृपैर्नैवदिनैरन्यत्र रुग्णो विरुक् ॥

आदित्याह्निलध्रुवांत्यपितृभे शुक्रेंदुवारे गद- ।

त्यक्तस्नानमनिष्टमिष्टमशुभे भादौ खलास्तस्थिरे ॥ १३ ॥

श्लोकार्थ—भरणी, आश्लेषा, मघा, पूर्वा, स्वाती, मूल, शततारका, उत्तराभा०, ज्येष्ठा, हस्त, पूर्वाषाढा ह्या नक्षत्रांवर, ज्वरादि व्याधि उत्पन्न झाला तर त्याची यथाविधि शांति केली झणजे रोगी रोगरहित होतो. श्रवण, विशाखा, ह्यांवर उत्पन्न झालेल्या रोगाची १६ दिवस पीडा, आणि बाकीच्या सर्व नक्षत्रांवर उत्पन्न झालेल्या रोगाची ९ दिवस पीडा जाणावी. पुनर्वसु, आश्लेषा, स्वाती, ध्रुव, रेवती, मघा ह्या नक्षत्रांवर आणि शुक्र, सोमवारीं रोगमुक्तानें स्नान करणें अशुभ जाणावें. व्यतीपात, वैधृति, भद्रा, संक्रांति, रिक्तातिथि इत्यादि अशुभ नक्षत्रादिकांवर आणि खलग्रह सप्तमस्थानीं असतील आद्या स्थिर लग्नावर रोगमुक्तानें स्नान करणें शुभ होय ॥ १३ ॥

अथ प्रसंगेन रोगमुक्तिदिवसानाह—वृत्तार्थेन याम्येति । याम्यं भरणी अहित्रयमाश्लेषात्रयं वायुः स्वाती मूलं प्रसिद्धं । जलपः शततारका उपांत्यं उत्तराभाद्रपदा इंद्रो ज्येष्ठा हस्तः प्रसिद्धः ।

अंबुभं पूर्वाषाढा अस्मिन्नक्षत्रगणे रुग्णो रोगी शांत्या यथोक्तशांतिकेन विरुक् ज्वरमुक्तो भवति । अजद्विपयोः श्रवणविशाखयोः रुग्णः नृपैः षोडशभिर्दिनैर्विरुक् स्यात् अन्यत्र अन्येषु नक्षत्रेषु रुग्णो नवदिनैर्विरुग्भवति एतज्ज्योतिषार्काभिप्रायं किंचिद्रत्नकोशाभिप्रायमुक्तं तत्र येषु नक्षत्रेषु ज्वरितस्य मृत्युरुक्तः येषु च कच्छ्रेण बहुभिर्दिनैः ज्वरमुक्तिरुक्ता तत्फलमत्र शांत्या विरुगित्युक्तं कचिदन्यथा फलदर्शनात् । तथा येषु येषु नक्षत्रेषु सप्तभिर्नवभिरेकादशभिर्दिनैर्ज्वरनिर्मोचनमुक्तं तत्फलमत्र मध्यमत्वेन नवदिनैर्विरुगित्युक्तं ग्रंथलाघवाय स्वल्पांतरत्वात् । तथा च ज्योतिषार्कैः सप्ताहमृतिनंदाद्रिरुद्रमृत्युनगादिभिः । कच्छ्रेमृत्यु मृतीशैश्च कच्छ्रेशे व्यसुतानृपैरित्यादि ॥ अथोत्तरार्धेन रोगमुक्ति-  
ज्ञानमाह—आदित्यं पुनर्वसुः अहिराश्लेषा अनिलः स्वाती ध्रुवाणि पूर्वोक्तानि अंत्यं रेवती पितृभं मघा अस्मिन्नक्षत्रगणे शुक्रदुवारे शुक्रसोमवारे । गदत्यक्तज्ञानं रोगमुक्तज्ञानं अनिष्टं स्यात् । तर्हि कुत्र कर्तव्यमित्यत आह—अशुभे भादौ इष्टं शुभं स्यात् कस्मिन्सति खलास्तस्थिरे सति खलः पापग्रहः अस्ते यस्य तत्तथा तच्च तत्स्थिरं च तस्मिन्स्थिरलघ्ने पापे सप्तमे सतीत्यर्थः । तथा चोक्तं । वैधृतौ व्यतिपाते च भद्रायां धिष्यसंक्रमे । रोगमुक्तो नरः स्नायात्कुवारर्क्षतिथिष्वपि ॥ धूतं पापयुतं शस्तं दशमं च शुभान्वितं । सौम्यकूरयुतं रंभ्ररोगस्नानेऽरिभं तथेति ॥ चंद्रबलं सर्वत्र योज्यं । कुतिथिभादौ सदित्यनेन चंद्रादिवलविषये मोहो मा भूदित्यतः चंद्रबलं सूचितं यतः ग्रंथादौ गर्भाधाने सदा इत्युक्तं तत्सर्वकर्मसु ज्ञेयमिति सर्वग्रंथकारसंमतं । यथा चोक्तं संहितायां स्पष्टम् । स्नायाद्रोगविमुक्तस्तु शुभयोश्चंद्रतारयोरिति ॥ १३ ॥

**टीकाथ—**आतां प्रसंगानं रोगांतून मुक्त होण्याचे दिवस अर्ध्या वृत्तानं सांगितों—यम ह्य० भरणी, अहित्रय ह्य० आश्लेषा, मघा, पूर्वा, वायु ह्य० स्वाती, मूल, जलप ह्य० वरुण त्याचें नक्षत्र शततारका, उपांत्य ह्य० शेवटच्या नक्षत्राचे जवळचें ह्य० उत्तरा भाद्रपदा, ईद्र ह्य० ज्येष्ठा, हस्त, अंबुभ ह्य० पूर्वाषाढा, ह्या नक्षत्रांवर ज्वरादि रोग उत्पन्न झालेला रोगी, औषधोपचारादिक उपायांनीं शांत होऊन रोग रहित होतो. अज ह्य० श्रवण, द्विप ह्य० विशाखा ह्या दोन नक्षत्रांवर रोग झालेला रोगी सोळा दिवसांनीं रोगरहित होतो. ह्या शिवाय दुसऱ्या नक्षत्रावर रोग झालेला रोगी नऊ दिवसांनीं रोगरहित होतो. हा सर्व प्रकार ज्योतिषार्क ग्रंथाचा अभिप्राय घेऊन आणि रत्नकोश ग्रंथाचा अभि-  
प्राय घेऊन सांगितला आहे. आतां ज्या नक्षत्रावर रोग उत्पन्न झाला असतां मृत्यु होतो ह्यांनून सांगितलें त्या नक्षत्रावर मोठ्या संकटानें पुष्कळ दिवसांनीं त्या ज्वरादिक रोगाची शांति होते ह्यांनून रोगमुक्त होतो असें सांगितलें आहे. कोठें कोठें तसें न होतां उलट प्रकारही दृष्टीस पडतो. तसेंच ज्या नक्षत्रांवर सात, नऊ, अकरा दिवसांनीं ज्वराची शांति सांगितली आहे त्या सर्वांचें फळ येथें मध्यमपक्ष घेऊन नऊ दिवसांनीं रोग शांति होते असें ग्रंथाचा विस्तार न होण्याकरितां थोड-  
क्यांत सांगितलें आहे. तेंच ज्योतिषार्क ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सात दिवस, आठ दिवस, नऊ दिवस, अकरा दिवस, सतरा दिवस, अशा इतक्या दिवसांनीं मोठ्या कष्टानें मृत्यु होतो अथवा सोळा दिवसांनींही मोठ्या कष्टानें मृत्यु होतो. आतां उत्तरार्धानें रोगांतून बरा झाल्यावर स्नान करावयाचें तें सांगितों—आदित्य ह्य० पुनर्वसु, अहि ह्य० आश्लेषा, अनिल ह्य० स्वाती, ध्रुवनक्षत्रे, अंत्य ह्य० रेवती, पितृभ ह्य० मघा, ह्या नक्षत्रांवर शुक्रवारी आणि सोमवारी रोगांतून मुक्त झालेल्यानें स्नान केलें असतां त्यापासून त्याचें अनिष्ट होतें. तर केव्हां केलें असतां इष्ट होतें तें सांगितों— अशुभ अशा नक्षत्रादिकांवर केलें असतां शुभ होतें तें असें कीं, पापग्रह सप्तमस्थानीं असतील अशा स्थिर लग्नावर रोगमुक्त झाले-  
ल्यानें स्नान केलें असतां त्यापासून रोग्याचें इष्ट होतें. तेंच सांगितलें आहे कीं, वैधृति, व्यतिपात, भद्रा, संक्रमणावर, कुवारावर, कुतिथीवर सप्तमस्थान पापग्रह युक्त असेल आणि दशमस्थान शुभ ग्रह युक्त असेल आणि सौम्य व कूर युक्त असें अष्टमस्थान, तसेंच षष्ठस्थान असेल तर स्नान करणें प्रशस्त आहे. तसेंच चंद्र बल सर्व ठिकाणीं पाहणें आवश्यक आहे. कुतिथि, कुवार इत्यादि सांगितलें ह्यांनून चंद्राच बलाची ही आवश्यकता लागत नाही कीं काय ही शंका दूर करण्यास्तव चंद्र बल पाहिजे असें सांगितलें आहे कारण ग्रंथाचे आरंभीं गर्भाधानाविषयीं जें सांगितलें तें सर्व कर्माविषयीं घ्यावें असें ग्रंथकाराचें मत आहे. ज्याप्रमाणें संहितेंत स्पष्ट सांगितलें आहे. रोगमुक्त झालेल्यानें चंद्र आणि तारा ह्यांजें ग्रह शुभ असतां स्नान करावें ॥ १३ ॥

**द्रव्याचा व्यवहार.**

**द्रव्यं संव्यवहारतो लघुचरैर्योज्यं चरांगे बुधे ।**

**धर्माष्टात्मजगेऽथ तस्य हरणे हस्तो रविर्ज्ञः कुजः ॥**

संक्रांतिभरणीत्रिपुष्करयमौ कुंभांत्ययोश्चंद्रमाः ।

वृद्धिश्चेति शुभा विदून इह यत्कुर्यादणं तत्स्थिरम् ॥ १४ ॥

टीका—लघु व चर संज्ञक नक्षत्रांवर; चर लग्नांवर आणि १।८।५ ह्या स्थानीं बुध असतां व्याजानें द्रव्य द्यावें. हस्तनक्षत्र, रवि, बुध, मंगळ हे वार, संक्रांतिदिवस, भरणीनक्षत्र, त्रिपुष्कर व द्विपुष्कर योग, कुंभ व मीन राशीला असणारा चंद्र, आणि वृद्धियोग इतकीं हीं व्याजां लाविलेलें द्रव्य परत घेण्याला शुभ होत. बुधवा-  
रावांचून वरच्या हस्त नक्षत्रादिकांवर कर्ज काढिलें तर स्थिर होतें; फिटत नाही ॥ १४ ॥

अथ व्यवहारद्रव्यं वृत्तेनैकेनाऽऽह-द्रव्यमिति । द्रव्यं सुवर्णादि संव्यवहारतः कुसीदव्यवहारेण लघुचरैर्नक्षत्रैर्योज्यं देयमित्यर्थः । क चरांगे चरलग्ने कस्मिन् सति बुधे धर्माष्टात्मजगे सति धर्मो नवमं अष्टमं प्र० आत्मजः पंचमं एष्वन्यतमस्थानगते सतीत्यर्थः । अन्यत्पूर्वोक्तं ज्ञेयं । अथानंतरं तस्य प्रयुक्तस्य हरणं पुनर्ग्रहणं तस्मिन्विषये हस्तो नक्षत्रं रविः रविवारः जो बुधवारः कुजो भौमवारः संक्रांतिः सूर्यसंक्रमणदिनं भरणी प्र० त्रिपुष्करो योगः यमो यमलयोगः त्रिपुष्करयम-  
लयोगौ ग्रंथांतरे प्रसिद्धौ । रत्नमालायां । विषमचरणं धिष्ण्यं भद्रातिथिर्यदि संस्पृशेत्सुरगुरुशनि-  
क्षमापुत्राणां कथंचन वासरे । मुनिभिरुदितः सोऽयं योगस्त्रिपुष्करसंज्ञक इत्यादि ॥ अथ यमलयोगः । शनिभौमेज्यवारेषु तिथिर्भद्रा द्विपादमं । तदा द्विगुणयोगः स्याद्विसंगुणफलप्रदः ॥ कुंभांत्ययो-  
श्चंद्रमाः धनिष्ठापंचकं वृद्धिवृद्धियोगोऽपि शुभः हस्तादयोत्र स्वकीयद्रव्यहरणे शुभाः विदूने बुधदिनं विना । इह हस्तादौ यदणं कुर्यात् तत्स्थिरं स्यात् ॥ तथा चोक्तं । चरैः क्षिप्रैश्चरेलग्ने बुधे धर्मसुताष्टमे । व्यवहारविना द्रव्यप्रयोगो मुनिभिः स्मृतः ॥ भरण्यां संग्रहं कुर्यात्पंचके ज्ञे त्रिपुष्करे । ऋणकर्म चरैः क्षिप्रैर्ऋणच्छेदः कुजे हितः ॥ पंचके पंचगुणितं त्रिगुणं च त्रिपुष्करे ॥ यमले द्विगुणं प्रोक्तं हानिवृद्ध्यादिकं बुधैः ॥ ऋणं भौमे न कुर्वीत न देयं बुधवासरे । ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्संचयं सोमनंदने ॥ हस्तार्कवारे संक्रांतौ यदणं स्यात्कुलेषु तत् । वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेदिति ॥ १४ ॥

टीका—आतां व्यवहार द्रव्य एका वृत्तानें सांगितों—सोनें इत्यादिक ठेवून व्याजबद्ध करण्याकरितां जो व्यवहार ह्मणजे देवघेव करावयाची ती लघु आणि चर अशा नक्षत्रांवर करावी. चर लग्न असूनही बुध ग्रह १-८-५ ह्या स्थानीं असावा. बाकीचें सर्व पूर्वाप्रमाणेंच समजावें. आतां दिलेलें द्रव्यादि पुनः घेण्याविषयी. हस्त नक्षत्र, रविवार, बुधवार, मंगळवार, सूर्यसंक्रमण दिवस, भरणी, त्रिपुष्करयोग, यमलयोग, (द्विपुष्कर योग) हे दोन योग दुसऱ्या ग्रंथांत प्रसिद्ध आहेत. रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, गुरुवारी, शनिवारी, मंगळवारी ह्यांपैकीं एका वारीं विषम चरणाचें नक्षत्र आणि भद्रा तिथि हे तिथे असतील तर त्रिपुष्करयोग होतो असें मुनींनी सांगितलें आहे. आतां यमलयोग सांगितों—शनिवार, मंगळवार, गुरुवार ह्यांपैकीं एक वार, भद्रातिथि, द्विचरण नक्षत्र, इतके असतील त्या वेळेस दुप्पट योग असतो ह्मणून हा योग दुप्पट फल देणारा आहे. कुंभ आणि मीनराशीचा चंद्र, धनिष्ठापंचक, वृद्धियोग इतके हस्तादिक आपलें दिलेलें द्रव्य माघारें घेण्यास शुभकारक आहेत. मात्र बुधवार वर्ज्य करावा. ह्या हस्तादिकांवर कर्ज केलें तर तें फारच स्थिर होऊन रहातें. तेंच सांगितलें आहे कीं, चर, क्षिप्र, अशा नक्षत्रांवर आणि चर लग्नावर, बुध हा १-८-५ ह्या स्थानीं असतां व्यवहाराशिवाय एरव्ही द्रव्याचा प्रयोग करावा असें मुनींनी सांगितलें आहे. भरणी नक्षत्रावर द्रव्याचा संग्रह करावा. धनिष्ठा पंचकावर, बुधवारी, त्रिपुष्करयोगावर, कर्ज करावें आणि चर आणि क्षिप्र नक्षत्रांवर बुधवारी ऋणाचा छेद करावा. धनिष्ठा पंचकांतील कर्ज पांचपट होतें. त्रिपुष्करांतील तिप्पट होतें. यमलांतील दुप्पट होतें, ह्मणजे धनको व रिणको ह्यांस वृद्धि आणि हानि होते. मंगळवारी ऋण कलं नये, बुधवारी ऋण देऊं नये. ऋणाचा निकाल मंगळवारी करावा, सोमवारी द्रव्याचा संग्रह करावा. हस्त नक्षत्र, रविवार, संक्रमण दिवस ह्यांवर ज्या कुळांत ऋण झालें असेल तें वृद्धियोगाकरितां जाणावें ह्मणून त्या ऋणाचा छेद करवावा ॥ १४ ॥

नष्ट द्रव्यलाभ, द्रव्यनिक्षेप, मंत्रग्रहण व वृक्षारोपण.

तीक्ष्णोऽग्रध्रुवमिश्रवायुषु धनं नष्टादिकं नैति का- ।

द्वेऽब्ध्यामे त्रिखशेषयोर्न गतमेतपंत्यांबुशुद्धौ क्षिपेत् ॥

विद्यां प्रोक्तवदिष्टदेवतिथिभेऽथ द्वीशमूलध्रुवैः ।

मृद्वशीज्यकरांबुपैः सुजलखाब्जांगे तरुन् रोपयेत् ॥ १५ ॥

श्लोकार्थ—तीक्ष्ण, उग्र, ध्रुव, मिश्र, स्वाती ह्या नक्षत्रांवर उसने दिलेले, व्याजी लाविलेले, पुरलेले किंवा हरवलेले द्रव्य प्राप्त होत नाही. रोहिणी नक्षत्रापासून प्रश्नाकाळचे दिवसनक्षत्र मोजून ४ नीं भागून बाकी ३० राहील तर गेलेले द्रव्य परत मिळणार नाही. मागे विद्यारंभाला सांगितलेल्या मुहूर्तावर आणि जी मंत्रविद्या ग्रहण करावयाची तिच्या इष्ट देवतेच्या तिथिनक्षत्रादिकांवर, ती मंत्रविद्या गुरूपासून शिकावी. विशाखा, मूल, ध्रुव, मृदु, अश्विनी, पुष्य, हस्त, शततारा ह्या नक्षत्रांवर आणि जलचरलर्मी चंद्र असून, ४१० स्थानीं पापग्रह नसतां सर्व प्रकारचीं झाडे लावलीं ॥ १५ ॥

अथ तीक्ष्णादिषु नष्टादिद्रव्यस्य प्राप्तिं तथा द्रव्यनिक्षेपं वृत्तार्धेनाऽऽह—तीक्ष्णोति । तीक्ष्णोग्रध्रुव-मिश्राणि पूर्वोक्तानि वायुः स्वाती एषु नष्टादिकं धनं नष्टप्रयुक्तविनिक्षिप्तादिकं सुवर्णादिकं द्रव्यं नैति तथा कात् रोहिणीनक्षत्रात् मे इष्टनक्षत्रे अब्याप्ते चतुर्भक्ते साति त्रिखशेषयोः गतं न एति । अथ द्रव्यनिक्षेपमाह—अंत्यांबुशुद्धौ क्षिपेत् धनमित्यनुषंगः अंत्यं द्वादशं अंबु चतुर्थं अनयोः शुद्धिः पापराहित्यं तस्यां सत्यां क्षिपेत् निक्षिपेदित्यर्थः । तथा चोक्तं । साधारणोग्रतीक्ष्णेषु स्वात्यां द्रव्यं न लभ्यते । दत्तं प्रयुक्तं निक्षिप्तं नष्टमित्याह नारदः ॥ अथ नृसिंहादिमंत्रविद्यासाधनमुहूर्तं तथा वृक्षारोपणमुहूर्तमुत्तरार्धेनाऽऽह—विद्यामिति । विद्यां मंत्रविद्यां प्रोक्तवत् वेदविद्योक्तमादौ विद्या मौज्युक्त-मादौ इत्याद्युक्तेः । तथा स्वदेवतिथिभे स्वेष्टदेवतिथिनक्षत्रे साधयेत् गुरुमुखाद्ब्रह्मिण्यादित्यर्थः । तत्राऽऽग-मोक्तमंत्रग्रहणेऽनध्यायदोषो नास्ति तच्च स्वदेवतिथिभे इत्यनेनैव पदेन परिहृतम् । तथा चोक्तं । मृदुध्रुवचरक्षिप्रैवाराकौ धर्मसक्तिया । कार्या विद्योक्तमैर्दीक्षा स्वदेवतिथिभेषु चेति ॥ अथ वृक्ष-ारोपणमाह—द्वीशं विशाखा मूलं प्र० ध्रुवमृदुनि पूर्वोक्तानि अश्विनी प्र० इज्यः पुष्यः करो हस्तः अंबुपः शततारका एभिर्नक्षत्रैः तरुन् पादपान् रोपयेत् कस्मिन् सुजलखाब्जांगे अंगेऽब्जः । अब्जांगं अंगं लग्नं तस्मिन्नाब्जः चलचरराशिः चंद्रो वातदब्जांगमुच्यते जलं च खं च जलखे शोभने जलखे यस्य तत् सुजलखं तच्च तदब्जांगं च सुजलखाब्जांगं तस्मिन् शोभने पापग्रहरहिते जलखे चतुर्थदशमे यस्याब्जांगस्य तस्मिन्नित्यर्थः । शेषं पूर्ववत् ॥ १५ ॥

टीका—आतां तीक्ष्ण इत्यादि नक्षत्रांवर हरवलेले द्रव्य, इत्यादि प्रकारच्या द्रव्याची प्राप्ति तसाच द्रव्याचा निक्षेप अर्ध्या वृत्ताने सांगतो—तीक्ष्ण, उग्र, ध्रुव आणि मिश्र हीं नक्षत्रे पूर्वी सांगितलीं आहेत त्या नक्षत्रांवर आणि वायु ह्या स्वाती ह्या नक्षत्रांवर उसने दिलेले, हरवलेले, व्याजी लावलेले, जमिनीत पुरलेले सोने इ० द्रव्य माघारी येत नाही. तसेंच क ह्या रोहिणी नक्षत्रापासून ती इष्ट नक्षत्रार्थतचीं नक्षत्रे ४ नीं भागावीत तीन आणि शून्य बाकी राहील तर गेलेले द्रव्य पुनः मिळणार नाही. आतां द्रव्याचा निक्षेप सांगतो—अंत्य स्थान ह्यणजे बारावे स्थान आणि अंबु ह्या चतुर्थ स्थान ह्या दोन स्थानीं पापग्रह नसेल अशा लग्नां द्रव्याचा निक्षेप करावा. तेच सांगितले आहे कीं, साधारण, उग्र आणि तीक्ष्ण ह्या नक्षत्रांवर आणि स्वाती नक्षत्रावर गेलेले, ठेवलेले वगैरे द्रव्य पुनः मिळत नाही. नारद ह्यणतो कीं, दिलेले, व्याजी लावलेले, ठेवलेले, नाहीसे झालेले असे चार प्रकारचे द्रव्य घ्यावे. आतां नृसिंह इत्यादि देवांचे जे मंत्र असतात ते शिकण्याचे व साधन करण्याचे मुहूर्त, झाड लावण्याचे मुहूर्त उत्तरार्धाने सांगतो—पूर्वी विद्यारंभाला जे मुहूर्त सांगितले आहेत त्याच मुहूर्तावर ह्यणजे मौजीच्या वेळीं वेदविद्येच्या वेळेस सांगितलेल्या मुहूर्तावर नृसिंहादि मंत्रविद्या गुरूपासून शिकून घ्यावी. मात्र हे नृसिंहादि मंत्र आगमोक्त असल्याकारणाने त्याला अनध्यायाचा दोष नाही. हे आपल्या देवाची जी तिथि व नक्षत्र असेल त्या तिथीवर व नक्षत्रांवर त्या मंत्रविद्येचा गुरूपासून स्वीकार करावा. ह्या सांगण्यानेच अनध्यायाचा दोष नाही असे झाले आहे. तेच सांगितले आहे कीं, मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र ह्या नक्षत्रांवर मंगळवारी, रवि-वारी विद्यारंभास सांगितलेल्या नक्षत्रांवर अथवा आपल्या देवाच्या तिथि व नक्षत्रांवर नृसिंहादि मंत्र शिकावा. आतां वृक्ष लावण्याचा मुहूर्त सांगतो—द्वीश ह्या विशाखा, मूल, ध्रुव नक्षत्रे, मृदु नक्षत्रे, अश्विनी, इज्य ह्या पुष्य, कर ह्या हस्त, अंबुप ह्या पाशो ह्या शततारका इतक्या नक्षत्रांवर झाडे लावावीत. मात्र लग्नां जलचरराशी अथवा चंद्र असे असावेत आणि जल ह्या चतुर्थ स्थान आणि ख ह्या दशम ह्या स्थानीं पापग्रह नसावा, बाकीचे पूर्वीप्रमाणेच जाणावे ॥ १५ ॥

वापीकूपादि, राजदर्शन व शांतिक, पौष्टिक.

उद्गाहर्क्षहरित्रयादिति ह्येज्यक्षैस्तडागादयः ।

ज्ञेज्याब्जैस्तनुगैः सिते दशमगे सिद्धयन्ति सद्वासरे ॥

राजेक्षा श्रवणत्रयध्रुवमृदुक्षिप्रैः स्वकेंद्रायगैः ।

सौम्यैः शांतिकपौष्टिके सचरभैरैः सुधर्मोदये ॥ १६ ॥

श्लोकार्थ—विवाहाचीं ११ नक्षत्रे व श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, पुनर्वसु, अश्विनी, पुष्य ह्या नक्षत्रांवर, जलचर लर्मी बुध, गुरु, चंद्र असून शुक्र दशमस्थानी असतां; आणि शुभग्रहांच्या वारी वापी, कूप, तडाग इत्यादि जलाशयांचा आरंभ केला तर तीं सिद्धीस जातात. श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, ध्रुव, मृदु, क्षिप्र ह्या नक्षत्रांवर, आणि २।१।४।७।१०।११ ह्या स्थानी शुभग्रह असतां प्रथम राजदर्शन करावें. ह्याच राजदर्शनाच्या श्रवणादि नक्षत्रांवर, व चरनक्षत्रांवर, आणि नवमस्थानी पापग्रह नसतील अशा लर्मी शांतिक व पौष्टिक कृत्यांचा आरंभ करावा ॥ १६ ॥

अथ वापीकूपादीन्वृत्तार्धेनाऽऽह-उद्गाहेति । उद्गाहर्क्षण्येकादशसंख्याकानि पूर्वोक्तानि हरि-  
त्रयं श्रवणत्रयं अदितिः पुनर्वसुः हयः अश्विनी इज्यः पुष्य एभिस्तडागादयो जलाशयाः सिद्धयन्ति  
कैः ज्ञेज्याब्जैस्तनुगैः ज्ञो बुधः इज्यो गुरुः अब्जश्चंद्रः जलचरराशिश्च एतैस्तनुगैर्लग्नगतैः कस्मिन्सति  
सिते दशमगे सति शुक्रे दशमगे सति क सद्वासरे सद्गहवासर इत्यर्थः । तथा चोक्तं चित्रा स्वातिपुन-  
र्धसु मृगशिरोमूलाश्विनीरोहिणीहस्ताः पुष्यधनिष्ठकं शतभिषङ्मित्रोत्तररेवती । एतेषु श्रवणा-  
न्वितेषु मकरे लग्ने च कुंभे शेषे वापीकूपजलाशयादिखननं शस्तं प्रशस्ते दिने ॥ अन्यच्चोक्तं ।  
सर्वतोयाशयारंभः कर्तव्यो विबलैः खगैः । लग्नस्थे ज्ञेय वा जीवे लग्नभेऽब्जे स्थिते खग इति ॥  
अथोत्तरार्धेन राजदर्शनं शांतिकपौष्टिके चाऽऽह- राजेक्षेति । श्रवणत्रयध्रुवमृदुक्षिप्रैर्नक्षत्रैः राजेक्षा  
राजदर्शनं कार्यं सुगमं पुनः कैः सौम्यग्रहैः स्वकेंद्रायगैः २।१।४।७।१०।११ लग्नात् स्व २ केंद्रा-  
१।४।७।१०। यं ११ गैः शुभग्रहैरित्यर्थः । शेषं प्राग्वत् । शांतिकपौष्टिके आह- शांतिकपौष्टिके  
एतैरेव नक्षत्रैः श्रवणत्रयादिभिर्विधेये कथं भूतैरोभिः सचरभैः चरनक्षत्रसहितैः कस्मिन्सति सुध-  
र्मोदये शोभनः पापरहितः धर्मो नवमं यस्य ससुधर्मः स चासाबुदयश्च स तथा । उदयो लग्नं त-  
स्मिन्नित्यर्थः । शेषं पूर्ववत् ॥ १६ ॥

टीकार्थ—आतां वापी कूप ह्मणजे विहीर, आड इत्यादिक करण्याचा आरंभ अर्ध्या वृत्तानें सांगितों—विवाहाचीं  
अकरा नक्षत्रे सांगितलीं आहेत त्या नक्षत्रांवर, श्रवणत्रय ह्म० श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, अदिति ह्म० पुनर्वसु, हय  
ह्म० अश्विनी, इज्य ह्म० पुष्य, इतक्यांवर आड, विहीर, तलाव इत्यादि खणण्याचा आरंभ केला असतां ते सिद्धीस  
जातात आणि त्यावेळीं ज्ञ ह्म० बुध, इज्य ह्म० गुरु, अब्ज ह्म० चंद्र, आणि जलचर राशि हे तनु ह्म० लर्मी असले  
पाहिजेत. आणि दशमस्थानी शुक्र असावा. तसेच वारही शुभवार असावेत. तेंच सांगितलें आहे कीं, चित्रा, स्वाती,  
पुनर्वसु, मृगशीर्ष, मूल, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषक, मित्रनक्षत्र, रेवती, श्रवण इतक्या नक्ष-  
त्रांवर मकर, कुंभ, मीन, ह्या लग्नांवर आड, तलाव, विहीर इत्यादिकांचें खनन करणें प्रशस्त आहे. दुसरे ठिकाणीं  
अर्धे सांगितलें आहे कीं, सर्व ग्रह विबल असतां आणि लर्मी बुध, गुरु आणि चंद्र असतां सर्व प्रकारच्या  
जलाशयांचा आरंभ करावा. आतां उत्तरार्धानें राजाचें दर्शन आणि शांतिक व पौष्टिक सांगितों—श्रवणत्रय ह्म० श्रवण,  
धनिष्ठा आणि शततारका, ध्रुवनक्षत्रें, मृदुनक्षत्रें, क्षिप्रनक्षत्रें ह्यांवर राजाचें दर्शन करावें परंतु शुभ ग्रह हे स्व ह्म०  
२ केंद्र ह्म० १-४-७-१०-आय ह्म० ११ अर्थात्-२-१-४-७-१०-११ इतक्या स्थानी असतां राजाचें दर्शन  
करावें. बाकीचें पूर्वाप्रमाणेंच समजावें. आतां शांतिक आणि पौष्टिक सांगितों—ह्यापूर्वी सांगितलेल्यां नक्षत्रांवरच शांतिक  
आणि पौष्टिक कर्मे करावीत. मात्र या नक्षत्रांत चार नक्षत्रे अधिक घ्यावीत. आणि धर्म ह्म० नवमस्थान या ठिकाणीं  
शुभग्रह असावा. अर्थात् भाग्यस्थानी पापग्रह नसावा. तसाच लर्मीही पापग्रह नसून शुभ ग्रह असावा. बाकीचें  
पूर्वी प्रमाणेंच जाणवें ॥ १६ ॥



दिव्य आणि अस्तनिर्णय.

दिव्यं नैव मलिम्लुचे विधुसितेज्यास्ते रवावष्टमे ।

मंदाराहि खलोदये स्थिरतनौ कुर्यात्कृतेऽदोऽन्यथा ॥

श्रीशैलग्रहणायनेषु विषुवे संकीर्णजातावुपा- ।

कृत्युत्सर्गवधूप्रवेशनगयागोदासु नित्याब्दिके ॥ १७ ॥

श्लोकार्थ—अधिक मासांत, चंद्र, शुक्र, गुरु ह्यांचें अस्त असतां, जन्मराशीपासून रवि अष्टमस्थानीं असतां, शनिवारी व मंगळवारी, ज्याचा स्वामी खल आहे अशा लग्नीं खल ग्रह असतां व स्थिर लग्नावर दिव्य ( शपथ ) करूं नये. केलें तर तें विपरीत होतें. ज्यावर मल्लिकार्जुन लिंग आहे तो श्रीशैल, चंद्राचें व सूर्याचें ग्रहण, अयन संक्रांति ह्म० कर्क, मकर, विषुवसंक्रांति ह्म० मेष, तूळ, मिश्रजातीकर्म, उपाकर्म, उत्सर्जन, वधूप्रवेश, गयाक्षेत्र, गोदातीर्थ व नवरात्रादि प्रतिवर्षीं करावयाचीं कृत्ये ह्यांविषयीं गुरु शुक्राच्या अस्ताचा दोष नाही ॥ १७ ॥

अथ वृत्तार्धेन दिव्यमाह—दिव्यमिति । मलिम्लुचे मासे विधुसितेज्यास्ते विधुश्चंद्रः सितः शुक्रः इज्यो गुरुस्तेषामस्ते विधोरस्तः कृष्णपक्षे भवति रवावष्टमे गोचरेण सूर्येऽष्टमे मंदाराहि शनि- भौमदिने खलोदये पापराशुदये यद्वा उदये खलः खलोदयस्तस्मिन् स्थिरतनौ स्थिरलग्ने दिव्यं नैव कुर्यात् । अत्र दिव्ये कृते सति अदो दिव्यमन्यथा विपरीतं स्यात् । असत्यवादिनो जयकारि भवतीत्यर्थः । अर्थादन्यत्र कर्तव्यमिति सिद्धं । लग्नबलं प्राग्वत् । अथ गुरुशुक्रयोः मौढ्यदोषः कुत्र कुत्र नास्तीति वृत्तार्धेनाऽऽह— श्रीशैलेति । श्रीशैलः प्रसिद्धः यत्र मल्लिकार्जुनाभिधानं लिंग- मस्ति ग्रहणं सूर्यचंद्रयोः अयने दक्षिणोत्तरे विषुवं मेषतुलासंक्रमः संकीर्णजातिर्हीनजातिः उपाकृतिरुपाकर्म उत्सर्गश्छंदसामुत्सर्गः वधूप्रवेशनं प्रसिद्धं गया प्रसिद्धा गोदा गोदावरी नित्याब्दिकं प्रतिवर्षं यत्क्रियते तथा नवरात्रम् ॥ १७ ॥

टीकार्थ—आतां अर्ध्या वृत्ताने दिव्य ह्मणजे शपथ सांगतों—अधिक महिन्यांत विधु ह्म० चंद्र, सित ह्म० शुक्र, इज्य ह्म० गुरु ह्यांचा अस्त असतां, गोचरीं रवि अष्टमस्थानीं असतां, शनिवारी, मंगळवारी पापराशींचा उदय असतां, अथवा उदयीं खलाचा उदय ह्म० स्थिरलग्नीं दिव्य ह्म० शपथ करूं नये. अशा सांगितलेल्या प्रकारांवर दिव्य केलें असतां तें पुनः उलट होतें ह्म० खोटे करणारास जय मिळतो. अर्थात् वर सांगितलेल्या प्रकारांशिवाय दुसऱ्या वेळीं दिव्य करावें, असें सिद्ध झालें. लग्नबल पूर्वाप्रमाणेच समजावें. आतां गुरु आणि शुक्र ह्यांच्या अस्ताचा दोष कोठें कोठें नसतो तें अर्ध्या वृत्तानें सांगतों—श्रीशैलावर ह्मणजे जेथें मल्लिकार्जुन नांवाचें लिंग आहे तेथें, चंद्रसूर्याचे ग्रहणीं, दक्षिणायन आणि उत्तरायण, विषुव संक्रांती ह्म० मेष, तूळ, मिश्रजातिकर्म, उपाकर्म, उत्सर्जन, वधूप्रवेश, गयाक्षेत्र, गोदातीर्थ, प्रतिवर्षीं करावयाचीं नवरात्रादिक कार्ये इतक्या कार्यांविषयीं गुरुच्या व शुक्राच्या अस्ताचा दोष नाही ॥ १७ ॥

गुरुशुक्रास्ताचे अपवाद.

ईशानाहिबलौ हरेः शयनपर्यावर्तने नैत्यके ।

याने जीर्णग्रहेऽवरोहदमनारोपे पवित्रार्पणे ॥

चातुर्मास्यविधौ न जीवसितयोर्मूढत्वदोषोऽष्टका- ।

सूत्साहांबरधारणेषु गदितो गर्भादिसप्तस्वपि ॥ १८ ॥

श्लोकार्थ—ईशानबलि, सर्पबलि, आषाढ शु० १२ चें विष्णुशयन, भाद्रपद शु० १२ चें पर्यावर्तन, नित्यागमन, जीर्णगृह, देवांचें दोलावरोहण, दमनारोपण, पवित्रार्पण, चातुर्मासांत करावयाचीं व्रतें, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ह्यांच्या वद्य अष्टमाला करावयाचीं अष्टकाश्राद्धें, पुत्रजन्मादि उत्साह, वस्त्रधारण आणि गर्भा- धान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन हे सात संस्कार ह्या सर्वांला गुरु व शुक्र यांच्या अस्ताचा दोष नाही ॥ १८ ॥

ईशानेति । ईशानाहिलिः ईशानबलिः प्रसिद्धः अहिलिः सर्पबलिः हरेः शयनपर्यावर्तने विष्णोः शयनमाषाढशुक्लद्वादश्यां भवति पर्यावर्तनं भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां भवति नैत्यकं यानं नित्यगमनं जीर्णगृहं प्रसिद्धं अवरोहः देवानां दोलारोहः पूजाविशेषः दमनारोपणश्चैत्र्यां पवित्रारपणं श्रावण्यां चातुर्मास्यविधौ चातुर्मास्यव्रतेऽष्टकाः पवर्गीयाक्षरनाम्नां मासानां कृष्णाष्टम्योऽष्टकाः मार्गपौषमाघफाल्गुनानां कृष्णाष्टम्य इत्यर्थः । उत्साहाः पुत्रोत्पत्त्यादयोऽवरधारणं वस्त्रधारणं एषु जीवसितयोगुरुशुक्रयोर्मूढत्वदोषो नास्तीत्यर्थः । न केवलमेषुगर्भादिसप्तस्वपि गर्भाधानाद्यन्नप्राशनांतेषु सप्तसु संस्कारेषु मूढत्वदोषो न गदितः गर्भाद्यन्नाशनांतेष्वित्यत्र श्लोके यद्यपि प्रागुक्तं । तथा च गर्गः । नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने पारिधानके । वधूप्रवेशमांगल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥ भृगुः । उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनारपणं । अवरोहः सहेमंतः सर्पाणां बलिरष्टकाः ॥ ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनं । कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयात् ॥ धर्मप्रदीपे । गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । अयने विषुवे चैव चातुर्मास्यव्रतेषु च ॥ उत्सवेषु च सर्वेषु सीमंतश्रुतुकर्मणि । सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥ कालनिर्णये । नष्टे शुके तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ । कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥ मत्स्यपुराणे । मौढ्येऽपि च प्रकर्तव्या मिश्रजातिक्रियाः शुभाः । सुरेज्यशुक्रयोर्वर्णिक्रियाश्चौलादिका न चेति ॥ १८ ॥

टीका—ईशान बलि, सर्प बलि, विष्णूचें शयन, ह्य० आषाढ शुद्ध १२ विष्णूचें पर्यावर्तन, ह्य० भाद्रपद शुद्ध १२ नित्यागमन, जीर्णगृह, देवांचे दोलावर आरोहण करणें, दमनारोपण ह्यणजे चैत्र महिन्यांत दवणा समर्पण करणें, पवित्रारोपण ह्यणजे श्रावण महिन्यांत पवित्रारोपण करावयाचें तें, चातुर्मास्याच्या उद्देशानें करावयाचीं व्रतें, ज्या महिन्याच्या नावांत पवर्गाचीं ह्यणजे प, फ, व, भ, म, अशीं अक्षरें आहेत ह्यणजे मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ह्या चार महिन्यांमध्ये वद्य अष्टमिंस करावयाचीं अष्टका श्राद्धें, उत्साह ह्यणजे पुत्राचे जन्मादिकांचा उत्साह ह्यणजे वाढ दिवस, वस्त्र धारण करणें इतक्या कार्यांमध्ये गुरु आणि शुक्र ह्यांच्या अस्ताचा दोष नाही. केवळ इतक्याच कार्यांमध्ये गुरु आणि शुक्र ह्यांच्या अस्ताचा दोष नाही एवढेंच नाही तर गर्भाधानापासून अन्नप्राशनापर्यंतच्या सात संस्कारांमध्येही अस्ताचीं दोष नाही. जसें कीं, गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, मिष्कमण, अन्नप्राशन हे सात संस्कार अमुक अमुक महिन्यांतच करावेत असें सांगितल्यामुळे त्याला काल नियम झाला, ह्याकरितां त्यांना अस्ताचा नियम नाही. हे संस्कार पूर्वीं सर्व सांगितले आहेत. तेंच गर्ग सांगतो कीं, नित्यगमन, जीर्णगृह, अन्नप्राशन, वस्त्रधारण, वधू प्रवेश, मांगलिक कार्य ह्यणजे गर्भाधानादि इतक्या कार्यांमध्ये गुरु आणि शुक्र ह्यांच्या अस्ताचा दोष नाही. भृगु सांगतो कीं, उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रारोपण, दमनारोपण, अवरोह ह्य० देवांचे दोलारोहण ( तें हेमंतऋतूमधील ध्यावयाचें ) सर्प बलि, अष्टका श्राद्धें ( मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ह्यांतील वद्य अष्टमीचीं श्राद्धें ) ईशान बलि, विष्णूचें शयन, विष्णूचें परिवर्तन, इतकीं कार्यें शुक्राचें आणि गुरुचें मौढ्य ह्यणजे अस्त असतांही करावें असा निश्चय आहे. धर्मप्रदीप ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, गोदा यात्रेंत, गया यात्रेंत, श्रीशैलपर्वतावर मल्लिकार्जुन यात्रेंत, चंद्र आणि सूर्य ह्या दोघांच्या ग्रहणाविषयीं, दक्षिणायन आणि उत्तरायण ह्या दोन अयनांमध्ये, विषुव संक्रांतीमध्ये, चातुर्मास्यांतील व्रताविषयीं, सर्व प्रकारच्या उत्सव कार्यांमध्ये सीमंतोन्नयन, गर्भाधान ह्या सर्व कार्यां विषयीं सुरगुरु ह्य० गुरु, असुरगुरु ह्यणजे शुक्र ह्यांच्या अस्ताचा दोष नाही. काल निर्णय ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, शुक्राचा आणि गुरुचा अस्त असतां आणि गुरु सिंहराशीस असतां आपल्या देवीची अर्चा ह्य० पूजा करावी कारण ती प्रति वर्षास करावयाची असते व तो कुलधर्म आहे. मत्स्य पुराणांत सांगितलें आहे कीं, सुरेज्य ह्य० गुरु आणि शुक्र ह्या दोघांचा अस्त असतांही मिश्रजातीक्रिया आणि वर्ण ह्यणजे आश्रमी ह्यांच्या क्रिया कराव्यात, मात्र चौल इत्यादिक क्रिया कर्ह नयेत ॥ १८ ॥

तीर्थयात्रानिषेध व प्रेतकर्म निषेध.

शुक्रेज्यास्तमयेऽधिकक्षयजनुर्मासेषु जन्मर्क्षके ।

नापूर्वामरतीर्थदर्शनमियाद्वोदागयाभ्यामृते ॥

एष्वाषाढसहस्यविष्णुशयनेष्वप्यंत्यकर्म त्यजे- ।

चद्वर्षाधिकलंबितं भवति तद्वोदागयातोऽन्यतः ॥ १९ ॥

इति मिश्रप्रकरणं समाप्तम् ॥

श्लोकार्थ—गुरुच्या व शुक्राच्या अस्तांत, अधिक मासांत, क्षयमासांत, जन्ममासांत आणि जन्मनक्षत्रावर, गोदा व गया ह्या दोहोंवांचून पूर्वी न गेलेल्या देवास व तीर्थास मनुष्यानें प्रथम जाऊं नये. वरील गुरुशुक्राच्या अस्तादिकांत, आषाढांत, पौषांत आणि आषाढ शु० १२ पासून कार्तिक शु० १२ पर्यंत विष्णु निजलेला असतो त्या चातुर्मासांत, एकवर्षांपुढें राहिलेलें प्रेतकर्म गोदा, गया ह्यांहून अन्य ठिकाणीं करूं नये. गोदानदीवर व गयेंत प्रेतकर्म करण्याला कालनियम नाही ॥ १९ ॥

अथ तीर्थयात्रानिषेधं प्रेतकर्मनिषेधं च सापवादं वृत्तेनैकेनाऽऽह-शुक्रेति । शुक्रेज्ययोरस्तमयेऽधिकोऽधिकमासः क्षयः क्षयमासो जनुर्मासो जन्ममासः तेषु जन्मक्षके जन्मनक्षत्रेऽपूर्वं प्रथमं तीर्थामरदर्शनं तन्निमित्तं न इयात् न गच्छेत् काम्यामृते गोदागयाभ्यामृते गोदागययोर्दर्शनं सदैव कुर्यादित्यर्थः । प्रेतकर्मनिषेधमाह-एष्विति । एषु गुरुशुक्रास्तादिषु आषाढः प्रसिद्धः सहस्यः पौषः विष्णुशयनं तेष्वपि यद्वर्षाधिकलंबितं अंत्यकर्म प्रेतकर्म भवति तस्यजेत् । गोदागयातोऽन्यतो गोदागययोः सदैवकार्यं । आषाढशुक्रद्वादश्यादिकार्तिकशुक्रद्वादशीपर्यंतं विष्णुशयनं प्रथमवर्षे निषिद्धकालेऽपि कर्तव्यमित्यर्थसिद्धं । अतिकांतवर्षं प्रेतकर्म गयागोदयोर्निषिद्धेऽपि शुक्रेज्यास्तादिके काले विदधीतेत्यर्थः । तथा चोक्तं । बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रेचास्तमुपागते । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनं ॥ व्यासः । अधिमासे च मन्मक्षे नष्टयोगुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥ भृगुः । मलमासेऽन्यनावृत्तं तीर्थस्नानं विवर्जयेत् । अनादिदेवतां द्रष्टुं शुचिः स्यान्नष्टभार्गवे ॥ तीर्थखंडे । गुरुशुक्रास्तादिदोषः प्रोक्तो यस्तीर्थयात्रिणां । अपूर्वयायिनामेव न त्वसौ पूर्वगामिनाम् ॥ पितृखंडे । शुक्रस्यास्तमने चैव देवेज्यस्य तथैव च । प्रेतकार्यं प्रदुष्येत प्रथमं वत्सरं विना ॥ मांडव्यः । मालिने जन्ममासे वा मौढ्ये वा गुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥ गरुडपुराणे । न कुर्याद्गुरुशुक्रास्ते पुण्ये स्वापे मलिम्लुचे । विलंबितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना ॥ मेघातिथिः । अस्तंगते गुरौ शुक्रे पुण्याषाढाधिमासके । प्रेतकार्यं न कुर्वीत गयां गोदावरीं विना ॥ प्रेतमंजर्यां । प्रेतकार्याणि सर्वाणि व्रतस्नानजपादिकं । वर्ज्यं शुक्रेज्ययोरस्ते गयां गोदावरीं विनेति ॥ १९ ॥ इति स्वकृतमु० टीकायां मार्तंडवल्लभायां मिश्रप्रकरणं समाप्तम् ॥

टीकाार्थ—आतां तीर्थयात्रेचा निषेध आणि प्रेतकर्माचा निषेध व त्यांचे अपवाद हे एका वृत्तानें सांगतां—गुरु आणि शुक्र ह्या दोहोंच्या अस्तांत, अधिक महिन्यांत, क्षयमासांत, जन्ममासांत, जन्मकालच्या नक्षत्रां, अपूर्व ह्या पूर्वी कधीं न केलेलें तीर्थदर्शन आणि देवदर्शन करण्याच्या निमित्तानें यात्रेस जाऊं नये. मात्र ह्याचा अपवाद गोदावरी आणि गया ह्यांचे तीर्थी जाण्यास आहे, ह्या गोदा आणि गया ह्यांचे दर्शन नेहमीं करावें. आतां प्रेतकार्याचा निषेध सांगतां—गुरु, शुक्र ह्यांचा अस्त इत्यादि कार्यामध्यें, आषाढांत, पौष महिन्यांत, विष्णुशयन ह्या आषाढ शुद्ध १२ पासून तो कार्तिक शुद्ध १२ पर्यंत चार महिने श्रीविष्णुपरमात्मा निजलेला असतो त्या चार महिन्यांत, जे वर्षानंतर राहिलेलें प्रेत कर्म तें करूं नये. परंतु ह्यास अपवाद गोदा आणि गया हे आहेत ह्या गोदावरीस व गयेस नेहमीं प्रेतकर्म करावें. ह्याचा अर्थ असा कीं, आषाढ शुद्ध द्वादशीपासून तो कार्तिक शुद्ध द्वादशीपर्यंत विष्णूचें शयन असतें. त्यांत पहिल्या वर्षी जीं निषिद्ध कार्ये असतील तीं सर्व करावीं असें सिद्ध झालें. अतिकांत प्रेतकर्म ह्याणजे एक वर्षांपुढें राहिलेलें प्रेतकर्म गोदा आणि गया ह्या तीर्थी शुक्र, गुरु ह्यांचा अस्त वगैरे निषिद्धकालीही करावें. तेंच सांगितलें आहे कीं, बार असो अथवा वृद्ध असो असा शुक्र अस्तंगत असेल तर आणि मलमासांत याप्रमाणें हीं देवदर्शनें वर्ज्य करावीं. व्यास सांगतो कीं, अधिकमासी, जन्मनक्षत्रां, गुरुशुक्राच्या अस्तांत, तीर्थयात्रा करूं नये. मात्र गोदावरी आणि गया ह्यांच्या यात्रा कराव्यात. भृगु सांगतो कीं, पूर्वी न केलेलें असें तीर्थस्नान मलमासांत वर्ज्य करावें. शुक्राचा अस्त असतां अनादिदेवतेचें दर्शन करण्यास तो शुचि असतो. तीर्थखंड ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, तीर्थयात्रा करण्याकरितां गुरु आणि शुक्र ह्यांचा अस्त वगैरे जे निषेध सांगितले आहेत ते सर्व अपूर्व ह्या नवीन यात्रेस जाणाऱ्याकरितां आहेत. परंतु एकदां जाऊन आलेल्या यात्रा करणाऱ्यास नाहीत. पितृखंड ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, शुक्राचा आणि गुरूचा अस्त असतां पहिल्या वर्षीतील प्रेतकर्माशिवाय बाकीचें प्रेतकर्म ह्याणजे पुढील प्रेतकर्म करूं नये. मांडव्य सांगतो कीं, मलमासांत, जन्ममासी, गुरु आणि शुक्र ह्यांचा अस्त असतां, तीर्थयात्रा करूं नये. मात्र गोदावरी व गया ह्या दोहोंची यात्रा करण्यास हरकत नाही. गरुडपुराणांत सांगितलें आहे कीं, गुरु आणि शुक्र ह्यांचे अस्तांत, पौष महिन्यांत, चातुर्मास्यांत, मलमासांत वर्षानंतरचें प्रेतकर्म करूं नये. परंतु गोदावरी व गया ह्या दोन ठिकाणीं मात्र करावें. मेघातिथि

असें सांगतो कीं, गुरुचा अस्त आणि शुक्राचा अस्त असतां, पौष महिना, आषाढ मास, अधिक मास, ह्यांमध्ये प्रेतकर्म करूं नये. मात्र गया आणि गोदावरीस करावे. प्रेतमंजरी ग्रंथांत असें सांगितलें आहे कीं, सर्व प्रकारचीं प्रेतकार्ये, व्रत, स्नान, जप इत्यादिक सर्व कार्ये शुक्र आणि गुरु ह्यांचा अस्त असतां करूं नयेत, मात्र गया आणि गोदावरी ह्या ठिकाणीं करावीत ॥ १९ ॥ अशा रीतीनें आपण केलेल्या मार्तंडवल्गुभानामक मुहूर्तमार्तंडटीकेचें मिश्रप्रकरण समाप्त झालें.

॥ मिश्रप्रकरण समाप्त ॥

## ॥ अनध्यायप्रकरणम् ॥ १ ॥

पर्वाग्रादियुगष्टमीति तिथयो मध्वादिपक्षद्वयेऽ- ।

नध्यायाश्चरसंक्रमा अथ मधौ वह्निश्च शुके यमः ॥

राधेऽग्निस्त्वसितो यमः शुचिदृगाशार्कास्त्रयोदश्यथो ।

मार्गे कृष्णनगग्रहाविषदृगंकाशाग्रयः कीर्तिताः ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—चैत्रादि सर्व मासांच्या शुक्ल व कृष्ण पक्षांत पूर्णिमा, अमावास्या, प्रतिपदा, चतुर्दशी, अष्टमी ह्या तिथि, मेष, कर्क, तुळ, मकर ह्या चर संक्रांति, चैत्र शु० तृतीया, ज्येष्ठ शु० द्वितीया, वैशाख शु० तृतीया व कृ० द्वितीया, आषाढ शु० द्वितीया, दशमी, द्वादशी, त्रयोदशी, मार्गशीर्ष कृ० सप्तमी, नवमी, आश्विन शु० द्वितीया, नवमी, दशमी, तृतीया ह्या तिथींला अनध्याय ह्णतात ॥ १ ॥

अथानध्यायप्रकरणमारभ्यते ॥ छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः । छिद्रेभ्यः स्रवति ब्रह्म ब्राह्मणेन यदजितं ॥ तत्काले तस्य रक्षांसि श्रियं ब्रह्म यशो बलं । सर्वमादाय गच्छन्ति वर्जयंतोऽपितं फलमित्यनध्याये पठनादौ प्रदोषा निगदिताः । तत्राऽऽदौ प्रसंगात्पठनादौ निषेधात् मौज्यादिनिषेधाच्च वृत्तद्वयेनानध्यायानाह-पर्वेति । पूर्व अमा पूर्णिमा किलक्षणं पर्व अग्रादियुक् अग्रं प्रतिपत् आदिश्चतुर्दशी ताभ्यां युक् युक्तं । अष्टमी प्र० इति तिथयश्चतस्रस्तिथयो मध्वादिपक्षद्वये मधुश्चैत्रः तदादिषु मासेषु पक्षद्वयं शुक्लकृष्णार्थं तस्मिन् अनध्यायाः स्युः कीर्तिताः कथिता बुधैरित्यध्याहारः । अथान्यानाह-चरसंक्रमाः चरराशिसंक्रांतयः मेषकर्कतुलामकरसंक्रांतय इत्यर्थः । मधुश्चैत्रस्तस्मिन् वह्निः वह्निसंख्याकास्तिथिस्तृतीयेत्यर्थः । शुके ज्येष्ठे मासे यमः द्वितीया यत्र प्रकरणे शुक्लकृष्णपक्षनिर्देशो न दृश्यते तत्र शुक्लपक्षजस्तिथिर्ज्ञेयः राधे वैशाखेऽग्निस्तृतीया शुके तु पुनरसितः कृष्णो यमः द्वितीया शुचिदृगाशार्काः शुचिराषाढः तस्य दृक् द्वितीया आशा दशमी अर्को द्वादशी त्रयोदश्यपि आषाढशुक्लद्वितीया दशमी द्वादशी त्रयोदशीत्यर्थः । अथ मार्गे मार्गशीर्षे कृष्णनवग्रहौ कृष्णसप्तमीनवम्यौ इषदृगंकाशाग्रय इष आश्विनः तस्य दृक् द्वितीयांको नवमी आशा दशमी अग्निस्तृतीया आश्विनशुक्लद्वितीया नवमी दशमी तृतीयेत्यर्थः ॥ १ ॥

टीकार्थ—आतां अनध्यायाचें प्रकरण आरंभितों. ब्राह्मणांना जे अनध्याय ह्णजे ज्या दिवशीं वेदाध्ययन करूं नये असे दिवस सांगितले आहेत, ते सर्व छिद्र आहेत. ह्णून ब्राह्मणानें जें ब्रह्म संपादन केलें असेल तें सर्व छिद्रांतून गळून जातें. ह्यास्तव त्या अनध्यायाचे वेळीं सर्व राक्षस येऊन त्या ब्राह्मणांची लक्ष्मी, यश, बल हें सर्व घेऊन जातात आणि जें इच्छित मिळावयाचें फळ तें नाहींसं करितात. अशा रीतीनें अनध्यायाचें दिवशीं पठन, पाठन इत्यादिकांचा दोषपूर्वक निषेध सांगितला आहे. त्यांत अगोदर प्रसंगोपात पठन इत्यादिकांविषयीं निषेध सांगितला आहे आणि मौज्या इत्यादिक निषेध सांगितला ह्णून दोन वृत्तांनीं अनध्याय सांगतों. पर्वे ह्य० पूर्णिमा व अमावास्या, त्यांचे आदिच्या दोन चतुर्दशी आणि पुढच्या दोन प्रतिपदा अर्थात् दोन १४ दोन १ मिळून चार दिवस व १५-३० मिळून ६ दिवस, अष्टमी २ इतक्या ह्या आठ तिथि चैत्रापासून फाल्गुनपर्यंतच्या सर्व महिन्यांमध्ये शुक्ल आणि कृष्ण ह्या दोन पक्षांतील मिळून आठ तिथी अनध्याय आहेत, असें विद्वानांनीं सांगितलें आहे. आतां दुसरे अनध्याय सांगतों—चर राशीच्या ह्णजे मेष, कर्क, तुला, मकर ह्यांच्या संक्रांतीही अनध्याय आहेत. मधु ह्य० चैत्र त्यांतील वह्नि ह्य० तृतीया, शुक्र ह्य०

ज्येष्ठ ह्या महिन्यांतील यम ह्य० द्वितीया, हे अनध्याय आहेत. जेथें शुक्र आणि कृष्ण असा निर्देश केला नसेल तेथें शुक्र पक्षांतील तिथी घ्यावी. राघ ह्य० वैशाख महिन्यांतील अग्नि ह्य० तृतीया ती शुक्र तृतीया व कृष्ण तृतीया दोन्हीही, शुचि ह्य० आषाढांतील दृक् ह्य० द्वितीया, आशा ह्य० दशमी, अर्क ह्य० द्वादशी, त्रयोदशी इतके अनध्याय आहेत. आतां मार्गशीर्ष महिन्यांत नवमी आणि सप्तमी अनध्याय आहेत. इष ह्य० आश्विनांत दृक् ह्य० द्वितीया, अंक ह्य० नवमी, आशा ह्य० दशमी, अग्नि ह्य० तृतीया ह्या तिथींना अनध्याय असें झणतात ॥ १ ॥

अनध्याय.

पौषेशस्त्वसिता दृगंकमुनयोऽस्त्ये कृष्णखेटाद्रिदृक् ।

माघेऽर्काब्धिदृगद्रयस्त्वसितजा बाह्वंकपृथ्वीधराः ॥

ऊर्जे द्रव्यंकरवीश्वरास्त्वसितजा दृग्विश्वसूर्या नभः ।

स्येऽग्निः कृष्णदृगद्रिविश्वनवमी पैत्रं यमोऽन्यः श्रवाः ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—पौष शु० एकादशी व कृ० द्वितीया, नवमी, सप्तमी; फाल्गुन कृ० नवमी, सप्तमी, द्वितीया; माघ शु० द्वादशी, चतुर्थी, द्वितीया, सप्तमी व कृ० द्वितीया, नवमी, सप्तमी; कार्तिक शु० द्वितीया, नवमी, द्वादशी, एकादशी व कृ० द्वितीया, त्रयोदशी, द्वादशी; भाद्रपद शु० तृतीया व कृ० द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी, नवमी आणि भाद्रपद कृष्णपक्षांत मघा व भरणी हीं नक्षत्रे व शुक्रपक्षांत श्रवण नक्षत्र हे सर्व अनध्याय जाणावे ॥ २ ॥

पौषेति । पौषेशः पौषस्य ईशः एकादशी शुक्ला तु पुनः असिताः कृष्णा दृगंकमुनयः द्वितीया-नवमीसप्तम्यः । अंत्ये फाल्गुने कृष्णखेटाद्रिदृक् खेटो नवमी अद्रिः सप्तमी दृक् द्वितीया एषां समाहारः । खेटाद्रिदृक् कृष्णं च तत् खेटाद्रिदृक् च तथा कृष्णनवमी सप्तमी द्वितीया इत्यर्थः । माघेऽर्काब्धिदृगद्रयोऽर्को द्वादशी अग्निश्चतुर्थी दृक् द्वितीया अद्रिः सप्तमी एते शुक्लाः तु पुनः असितजा बाह्वंकपृथ्वीधराः असितजाः कृष्णपक्षजाः बाह्वंकपृथ्वीधराः बाहुर्द्वितीया अंको नभमी पृथ्वीधरः सप्तमी ऊर्जे कार्तिके द्रव्यंकरवीश्वराः द्विद्वितीया अंको नवमी रविर्द्वादशी ईश्वर एकादशी एते शुक्लाः तु पुनः असितजाः कृष्णपक्षजाः दृग्विश्वसूर्याः दृक् द्वितीया विश्वे त्रयोदशी सूर्यो द्वादशी नभस्ये भाद्रपदेऽग्निस्तृतीया शुक्ला कृष्णदृगद्रिविश्वनवमी पैत्रं दृक् द्वितीयाऽद्रिः सप्तमी विश्वे त्रयोदशी नवमी प्रसिद्धा पैत्रं मघा यमो भरणी अन्यः शुक्रः श्रवाः श्रवणः भाद्रपदशुक्र-श्रवण इत्यर्थः ॥ २ ॥

टीकार्थ—पौष महिन्यांतील ईश ह्य० शुक्रपक्षांतील एकादशी आणि कृष्णपक्षांतील दृक् ह्य० द्वितीया, अंक ह्य० नवमी, मुनि म्ह० सप्तमी हे अनध्याय आहेत. अंत्य ह्य० फाल्गुन महिन्यांत कृष्णपक्षांत खेट ह्य० नवमी, अद्रि ह्य० सप्तमी, दृक् ह्य० द्वितीया इतके अनध्याय आहेत. माघ महिन्यांत शुक्रपक्षांत अर्क ह्य० द्वादशी, अग्नि ह्य० चतुर्थी, दृक् ह्य० द्वितीया, अद्रि ह्य० सप्तमी आणि कृष्णपक्षांत बाहु ह्य० द्वितीया, अंक ह्य० नवमी, पृथ्वीधर ह्य० सप्तमी इतके अनध्याय आहेत. ऊर्जे ह्य० कार्तिकमहिन्यांत शुक्रपक्षां द्वि ह्य० द्वितीया, अंक ह्य० नवमी, रवि ह्य० द्वादशी, ईश्वर ह्य० एकादशी आणि कृष्णपक्षां दृक् ह्य० द्वितीया, विश्व ह्य० त्रयोदशी, सूर्य ह्य० द्वादशी, इतके अनध्याय आहेत. नभस्य ह्य० भाद्रपदमासीं शुक्रपक्षां अग्नि ह्य० तृतीया आणि कृष्णपक्षां, दृक् ह्य० द्वितीया, अद्रि ह्य० सप्तमी, विश्व ह्य० त्रयोदशी, नवमी, इतक्या तिथि आणि पैत्र ह्य० मघा नक्षत्र, यम ह्य० भरणी नक्षत्र आणि शुक्रपक्षां श्रवण नक्षत्र इतके सर्व अनध्याय आहेत ॥ २ ॥

अनध्याय निर्णय.

योऽनध्यायतिथिः स पूर्वदिवसेऽस्तात्प्राङ् मुहूर्तोन्मितोऽ- ।

न्यस्मिन्वोदयतः क्षणत्रयगतो ब्रह्मेह नैवाभ्यसेत् ॥

पर्वाग्रादियुगष्टमीति च तिथीस्त्यक्तवैषु शास्त्रस्मृती ।

वेदांगानि समभ्यसेच्च निखिलेषूक्तं पठेन्नैत्यकम् ॥ ३ ॥

श्लोकार्थ—जी अनध्यायतिथि, ती पूर्व दिवशी सूर्यास्तापूर्वी दोन घटिका किंवा अधिक असेल तर पूर्व दिवशी वेदाभ्यास करू नये. अथवा दुसऱ्या दिवशी सूर्योदयानंतर ६ घटिका किंवा अधिक असेल तर त्या दिवशी वेदपठन करू नये. पूर्णिमा, अमावास्या, प्रतिपदा, चतुर्दशी, अष्टमी ह्या तिथि सोडून सर्व अनध्याय असतां शास्त्र, स्मृति, वेदांगें यांचा अभ्यास करावा. सर्व अनध्यायांवर जें पठन करावें असे सांगितलें आहे तें आणि संध्या, होम, ब्रह्मयज्ञादि नित्य करावयाचें तें पठन करावें ॥ ३ ॥

अथैषां निर्णयं वृत्तेनैकेनाऽऽह-य इति । यः कश्चिदनध्यायतिथिः स पूर्वदिवसेऽस्तात्सूर्या-स्ताध्वाक् मुहूर्तोन्मितः स्यात् । अत्र पूर्वदिवसे ब्रह्म वेदं न पठेत् वा इत्यथवा अन्यस्मि-न्दिवसे परदिवसे क्षणत्रयगतो भवति । अत्रास्मिन्दिवसे ब्रह्म नो संपठेत् । पर्वग्रादियुग-ष्टमी पूर्ववत्पदाविभागः । इति चतुरस्तिथीस्त्यक्त्वा एषु अनंतरोक्तेषु अनध्यायेषु शास्त्रस्मृ-ती वेदांगांनि समभ्यसेत् । सुगमं । निखिलेषु सर्वेष्वनध्यायेषु उक्तं पठेत् । नैत्यकं च पठेत् । उक्तमिति । यथाऽमावास्यायामश्रंस्तु जपेद्ब्रह्माहूतिपूर्वकां । गायत्री सप्रणवां सकृन्निर्वा राक्षोघ्नीः पि-त्र्यमंत्रान् पुरुषसूक्तमप्रतिरथमन्यानि च पवित्राणीति । नैत्यकं संध्याहोमब्रह्मयज्ञादि । तथा च मनुः । वेदोपाकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । न निरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रजपेषु चेति ॥ वेदोपाकर-णानि अंगानि स्मृतिरत्नावल्याम् । नित्ये जपे च नांगे च कतौ पारायणेऽपि च । नानध्यायेऽ-स्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥ देवतार्चनमंत्राणां नानध्यायः स्मृतः सदा । नानध्याये जपेद्देवानुद्गांश्चैव विशेषतः ॥ पौरुषं पावमानं च गृहीतनियमादृत इति ॥ स्मृत्यर्थसारे । चतुर्द-श्यष्टमीपर्वप्रतिपदवर्जितेषु च । वेदांगन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यासेदिति ॥ कूर्मपुराणे । इदौ वृद्धि क्षयं प्राप्ते ब्रह्मयज्ञं न कारयेत् । न जपेद्देदिकं मंत्रं गायत्र्यष्टोत्तरं शतमिति ॥ स्मृतिरत्नावल्यां । अल्पं जपेदनध्याये पर्वण्यल्पतरं जपेदिति ॥ ३ ॥

टीकाार्थ—आतां ह्या अनध्यायांचा निर्णय एका वृत्तानें सांगितों—जी कोणती अनध्यायाची तिथि असते ती पूर्व दिवशी सूर्यास्ताचे पूर्वी दोन घटिका अथवा अधिक असेल तर त्या पूर्वदिवशीही वेदाचा अभ्यास करू नये. अथवा दुसऱ्या दिवशी सूर्योदयानंतर सहा घटिका किंवा त्याहून अधिक असेल तर त्या दिवशी वेदाचा अभ्यास करू नये. पर्व, प्रतिपदा, चतुर्दशी आणि अष्टमी ह्यांचा विभाग पूर्वीप्रमाणें समजावा. अशा रीतीनें पर्व ह्याणजे पौर्णिमा आणि अमावास्या, दोन प्रातःपदा ह्या चार तिथी सोडून बाकीच्या दुसऱ्या पूर्वी सांगितलेल्या अनध्यायांचे ठिकाणीं वेदांचीं अंगें आणि शास्त्रें व स्मृति ह्यांचा अभ्यास करावा. परंतु दररोज ज्या वेदादि भागाचा पाठ करणें आवश्यक आहे असा जो नैत्यक पाठ तो तर सांगितलेल्या अनध्यायांच्या तिथीवरही करावा. असें सांगितलें आहे कीं, जसें अमावास्यास भोजन न करितां व्याहृतिपूर्वक गायत्रीचा पाठ, प्रणव सहित गायत्रीचा पाठ एकवार किंवा तीन वेळां किंवा राक्षोघ्न नांवाचें जें सूक्त आहे तें पितरांनां उद्देशून सांगितलें आहे, त्याचा पाठ करावा व पुरुषसूक्ताचे मंत्र आणि दुसरीही पवित्र सूक्ते पठण करावीत. नित्य पठण करावयाचीं ह्याणजे संध्या, होम, ब्रह्मयज्ञाचे बदलचें वेद पठण करण्यास हरकत नाही. तेंच मनूनें सांगितलें आहे कीं, वेदांचीं उपाकरणें ह्याणजे अंगें आणि नित्य पठण करण्याचे स्वाध्याय, होम, मंत्र, जप हे करण्यास अनध्यायाचीं अडचण नाही ह्याणजे अनध्यायाचे दिवशीही ह्यांचा पाठ करावा. वेदांचीं उपाकरणें ह्याणजे अंगें असें सांगितलें आहे. स्मृति रत्नावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, नित्य कर्म, जप, वेदांचीं अंगें, यज्ञ, पारायण इतक्यांच्या पठणाविषयीं अनध्यायाच दोष नाही परंतु वेदांचा पाठ करणें व पाठ देणें ह्याविषयीं मात्र अनध्याय आहेत. देवतांचें पूजन करण्याचे जे मंत्र सांगितले आहेत त्यांचें पठण करण्यास अनध्याय नाहीत. अनध्यायांचे दिवशीं वेदांचें, रुद्रांचें विशेषे करून पठण करू नये. पुरुषसूक्त, पवमानसूक्त ह्यांचेही पठण करू नये परंतु जर ह्यांचा पठण करण्याचा नियम घेतला असेल तर पठण करण्यास अनध्यायाची अडचण नाही. स्मृत्यर्थसार ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या, प्रतिपदा इतक्या तिथी सोडून बाकीच्या अनध्याय तिथींवर वेदांचीं अंगें, न्याय, मीमांसा. धर्मशास्त्र ह्यांचें पठण आणि पाठन करावें कूर्म पुराणांत सांगितलें आहे कीं, चंद्रमाची वृद्धि आणि क्षय झाला असेल त्या दिवशीं ह्याणजे पौर्णिमा, अमावास्या ह्या दिवशीं ब्रह्मयज्ञ करवूं नये आणि वैदिक मंत्राचा जप करू नये. गायत्रीचा अष्टोत्तर जप मात्र करावा. स्मृति रत्नावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं. अनध्याय तिथि असतां थोडा पाठ करावा आणि पर्व दिवशीं फारच थोडा पाठ करावा ॥ ३ ॥



## नैमित्तिक अनध्याय.

बभ्रवोत्वेणखराड्यजां ब्वहिगजाश्वोष्ट्रांत्यमुकोन्नता- ।

नोयानांतरिते त्र्यहं प्लवखगाचैर्ना च स ज्योतिषम् ॥

स्त्रीगोस्थं तरिते हरुत्सवनिशीथाशौचमार्गेषु च ।

छायायां न कपित्थशाल्मलिमधुश्लेष्मातकादेः पठेत् ॥ ४ ॥

श्लोकार्थ—मुंगुस, मांजर, हरिण, गर्दभ, अग्नि, बकरा, उदक, सर्प, हत्ती, घोडा, उंड, अंल्यज, मुका, उन्मत्त, गाडा आणि पालखी, मेणा वगैरे यान हीं गुरु व शिष्य ह्यांच्यामध्ये आलीं तर तीन दिवस अनध्याय होतो. बेडूक, पक्षी, घोरपड, पाल वगैरे व पुरुष मध्ये आल्यास सज्योति अनध्याय होतो. स्त्री, गाय, हाडे हीं गुरु शिष्यांमध्ये येतील तर एक अहोरात्र अनध्याय होतो. विवाहादि उत्सवांत, मध्यरात्रीस, अशौचांत व मार्गांत पठन करूं नये. कवठ, सांवरी, मोहा, भोंकरी, कांचन, एरंड वगैरे वृक्षांच्या छायेला पठन करूं नये ॥ ४ ॥

अथ नैमित्तिकाननध्यायान्वृत्तद्वयेनाह—वाञ्छिवति । बभ्रुर्नकुलः । ओतुर्माज्जरः । एणो हरिणः । खरः प्र० । अग्निः प्र० । अजो मेघः । अंबु उदकं । अहिः सर्पः । गजः प्र० । अश्वः प्र० । उष्ट्रः प्र० । अंत्योऽत्यजजाती रजकचर्मकारादयः । मूकः प्र० । उन्नतो मत्तः । अनः शकटः । यानं शिविकादि । एभिरंतरिते गुरौ सति त्र्यहं त्रिरात्रमनध्यायः । प्लवो मंडूकः । खगः पक्षी । आदिशब्दाद्गोधादि । एभिरंतरिते सज्योतिषमनध्यायः । अयमर्थः । दिवा अंतरिते सति सूर्यास्तमानपर्यंतमनध्यायो रात्रावंतरिते रात्रिशेषपर्यंतमनध्याय इत्यर्थः । स्त्रीगोस्थं तरितेऽहः । स्त्री प्र० गौः प्र० अस्थि प्राण्यंगं एभिरंतरितेऽहर्दिनमहोरात्रमनध्यायः उत्सवो महोत्सवो विवाहादिकः । निशीथं मध्यरात्रं आशौचं सूतकं मार्गोऽध्वा एषु न पठेत् । च परं कपित्थशाल्मलिमधुश्लेष्मातकादेः छायायां न पठेत् । सुगमं । आदिशब्दात्कोविदारविभीतकैरंडादीनां ग्रहणम् ॥ ४ ॥

टीकार्थ—आतां नैमित्तिक अनध्याय दोन वृत्तानें सांगतां—बभ्रु ह्य० मुंगुस, ओतु ह्य० मांजर, एण ह्य० हरिण, खर ह्य० गाढव, अग्नि ह्य० विस्तव, अज ह्य० बकरा, अंबु ह्य० उदक, अहि ह्य० सर्प, गज ह्य० हत्ती, अश्व ह्य० घोडा, उष्ट्र ह्य० उंट, अंल्य ह्य० चांडाल वगैरे नीच जाती ह्यणजे धोबी, चांभार वगैरे, मूक ह्य० मुका, उन्नत ह्य० मत्त, अन ह्य० गाडा, यान ह्य० मेणा इत्यादिक पदार्थ गुरु आणि शिष्य ह्यांच्या मधून गेले असतां तीन दिवस अनध्याय करावा. प्लव ह्य० बेडूक, खग ह्य० पक्षी आदि शब्दानें गोधा इत्यादि प्राणी गुरु आणि शिष्य ह्यांच्या मधून गेले असतां नक्षत्र दर्शन पर्यंत अनध्याय करावा. ह्याचा अर्थ असा कीं, दिवसा दोघांच्या मधून हे प्राणी गेले असतां सूर्यास्तापर्यंत अनध्याय करावा; रात्रीस दोघांमधून हे प्राणी गेले असतां रात्र संपेपर्यंत अनध्याय करावा. स्त्री, गाय, हाडे हे मधून गेले असतां एक अहोरात्र अनध्याय करावा. विवाहादि महोत्सव, मध्यरात्र, सूतक, रस्ता ह्या ठिकाणीं अनध्याय करावा. कपित्थ ह्य० कवठ, शाल्मली ह्य० सांवरी, मधु ह्य० मोह, श्लेष्मातक ह्य० भोंकरी, कोविदार ह्य० कांचन, एरंड इत्यादिक झाडांच्या छायेखालीं बसून अध्ययन करूं नये अर्थात् अनध्याय करावा ॥ ४ ॥

ग्रामांतः कुणपे श्वश्रूद्रनिकटे श्राद्धाशने वक्रगे ।

तांबूलं ग्रहणादुरुक्षितिपतिप्रांतादुपोत्सर्गतः ॥

भूकंपाशनिपाततः पुरदहेरिष्टावलोकात्रयहं ।

गर्जेऽनार्तवके त्र्यहं समयजे सज्योतिरिते सतः ॥ ५ ॥

श्लोकार्थ—गावांत प्रेत असतां, कुत्रा किंवा शूद्र जवळ असतां, श्राद्ध भोजन केल्यावर अन्न जिरेपर्यंत, मुखांत तांबूल असतां, सूर्यचंद्राच्या ग्रहणानंतर, गुरु किंवा राजा मरण पावला असतां, उपाकर्म व उत्सर्जन केल्यानंतर, भूकंप झाला असतां, वीज पडली असतां, गांवांत आग लागली असतां, गंधर्व नगर, भूत इत्यादि अरिष्ट पाहिले असतां, ह्या सर्वांपारून तीन दिवस पठन करूं नये, अकालीं मेघ गर्जना झाली तर ३ दिवस व

यथाकाळीं गर्जना झाली तर सज्योति अध्ययन करूं नये. स्वशाखी सत्पुरुष मरण पावला असतां सज्योति पठन करूं नये ॥ ५ ॥

ग्रामांतरिति । ग्रामांतः कुणपे ग्राममध्ये कुणपे प्रेते सति न पठेत् । श्वशूद्रनिकटे श्वान-  
शूद्रसन्निधौ न पठेत् । श्राद्धाशने श्राद्धभोजने कृते सति जीर्णावधि न पठेत् । वक्रगे मुखगते  
तांबूले सति न पठेत् । ग्रहणात्सकाशाद्यहं न पठेत् तथा गुरुक्षितिपतिप्रांतान्मरणात् त्र्यहं उपो-  
त्सर्गतस्यहं उप उपाकर्म उत्सर्गश्छंदसामुत्सर्गः तथा उपोत्सर्गतः सकाशाद्यहं । भूकंपाशनि-  
पाततह्यहं भूकंपः प्र० अशनिपातो विद्युत्पातः ताभ्यां त्र्यहं पुरदहेः पुरदाहात् स्ववस-  
तिग्रामदाहादित्यर्थः । त्र्यहं रिष्टावलोकात् गंधर्वनगरभूतादिदर्शनात् त्र्यहं न पठेत् । गर्जेनातर्वके  
त्र्यहं ऋतौ भवः आर्तवः न आर्तवः अनार्तवः अनार्तव एव अनार्तवकस्तस्मिन् अकालगर्जे  
जाते सति त्र्यहं न पठेत् । समयजे ऋतुजे गर्जे सति सज्योतिर्यथास्यात्तथा न पठेत् । दिवा गर्जे  
सति सूर्योस्तपर्यंतं । रात्रौ गर्जे सति सूर्योदयपर्यंतं न पठेदित्यर्थः । सतः अंते स्वशाखिसत्पुरुषस्य  
मृतौ जाते सति सज्योतिर्न पठेत् ॥ ५ ॥

टीकार्थ—गावांत प्रेत असतां अध्ययन करूं नये. कुत्रा आणि शूद्र हे जवळ असतां अध्ययन करूं नये.  
श्राद्धाचें भोजन केल्यावर तें अन्न पचेपर्यंत अध्ययन करूं नये. तोंडांत तांबूल असतां अध्ययन करूं नये. सूर्य आणि चंद्र  
ह्यांचे ग्रहणानंतर तीन दिवस पर्यंत अध्ययन करूं नये. तसेंच गुरु आणि राजा हे मरण पावले असतां तीन दिवसपर्यंत  
अध्ययन करूं नये. उपाकर्म आणि उत्सर्जन केल्यावर तीन दिवस अध्ययन करूं नये. भूमिकंप झाला असतां, विद्युत्पात  
झाला असतां तीन दिवस अध्ययन करूं नये. नगरामध्ये आग लागली असतां तीन दिवस अध्ययन करूं नये. गंधर्वनगर,  
भूत, पिशाच इत्यादि अरिष्ट पाहिलें असतां तीन दिवस अध्ययन करूं नये. ऋतु नसतां जर मेघांनीं गर्जना केली तर  
तीन दिवस अनध्याय करावा ह्मणजे अध्ययन करूं नये. समयावर मेघांची गर्जना झाली असतां नक्षत्र दर्शनपर्यंत अध्य-  
यन करूं नये, ह्मणजे दिवसास गर्जना झाली असतां सूर्योस्तपर्यंत अध्ययन करूं नये, रात्रीस गर्जना झाली असतां  
सूर्योदयपर्यंत अध्ययन करूं नये. आपल्या शाखेचा मोठा सत्पुरुष मेला असतां सज्योति अध्ययन करूं नये ॥ ५ ॥

अन्य अनध्याय.

वाद्योलूकखरार्तजंबुकरवे साम्रां च वाते जले ।  
नीहारे पतिताभिशस्तनिकटे धावज्जनालोकने ॥  
ग्रामांते पितृकाननेऽप्यथ सतानूनत्प्रिणीते दिवं ।  
तद्वत्सद्व्रतिनि त्र्यहं च न पठेद्भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिर्न च ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—वाद्यांचा नाद ऐकूं येत असतां, घुवड, गाढव, पीडित, कोल्हा हीं ओरडत असतां, साम-  
वेदाचें गायन चाललें असतां, मोठा वारा सुटला असतां, उदकांत, धुकें पडलें असतां, जातिभ्रष्ट व खोटें बोल-  
णारा हे जवळ असतां, धांवणारे लोक पहात असतां, गांवाच्या सीमेवर, श्मशानांत, यज्ञांतील ऋत्विज व महाना-  
भ्यादि व्रतें झालेला हे मरण पावले असतां तीन दिवस, जेवल्यावर हात ओले असेपर्यंत पठन करूं नये ॥ ६ ॥

अनध्यायांतरमाह—वाद्येति । वाद्यादीनां रवे शब्दे श्रूयमाणे साम्रां च रवे श्रूयमाणे वाते वात-  
स्य सर्वदा विद्यमानत्वादतिवाते जले जलमध्ये नीहारे धूमरूपोत्पाते पतितो जातिभ्रष्टः अभिशस्तो  
मिथ्याभिशापी तत्समीपे धावज्जनालोकने धावन्मनुष्यालोकने ग्रामांते ग्रामसीमासमीपे पितृ-  
कानने श्मशाने न पठेत् सतानूनत्प्रिणीते दिवं स्वर्गं प्रति इते गते मृते सति त्र्यहं न पठेत् । तानूनत्प्रं  
नामधृतं यागे येन येन ऋत्विजा सह स्पृष्टं स सतानूनत्प्री तस्मिन् मृते सति त्र्यहं न पठेत् ।  
तद्वत्सद्व्रतिनि मृते सद्ब्रतं वेदव्रतं चरितं येन सद्ब्रती तस्मिन् मृते त्र्यहं न पठेत् । भुक्त्वा  
यावदार्द्रपाणिस्तावन्न पठेत् । अन्येऽनध्याया मूलग्रंथतोऽवगंतव्याः ॥ ६ ॥

टीकार्थ—दुसरे अनध्याय सांगतों—वाद्यांचा शब्द ऐकूं आला असतां आणि उलूक ह्म० घुवड, खर ह्म० गाढव,

पीडित मनुष्य, कोल्हा हे ओरडत असतां, साम वेदाचें गायन चाललें असतां, मोठा वारा सुटला असतां, पाण्यांत, नीहार झणजे धूकें उडवलें असतां, पतित ह्य० जातिभ्रष्ट आणि मिथ्याभिलाषी झणजे खोटें बोलणारा हे जवळ असतां, धांवणारे लोक पद्दात असतां, गांवाच्या सीमेवर, पितृकानन ह्य० स्मशानामध्ये अध्ययन करूं नये. तानून झणजे घृत हें ज्यानें ऋत्विजां बरोबर अग्नीमध्ये हवन केलें आहे असा ऋत्विज मरण पावला असतां, त्याप्रमाणेंच सत्रती झणजे वेदादिक उत्तम व्रतें ज्यानें आचरण केलीं आहेत असा मरण पावला असतां तीन दिवस अध्ययन करूं नये. भोजन केल्यावर ओला हात आहे तोंपर्यंत अध्ययन करूं नये ॥ ६ ॥

प्रदोष, अनध्याय.

रात्र्यर्थे मदनो मुनिर्दलयुते यामे चतुर्थ्याद्यके ।

प्राग्रात्रौ पठनं ह्युपाकरणतो मासं निशः प्राग्दले ॥

श्वोऽनध्याय इतीह रात्रिपठनं वर्ज्यं सदा संध्ययो- ।

श्वोरोपद्रवयामके त्रिदिवसं दुर्भुक्प्रतिग्राहयोः ॥ ७ ॥

इति अनध्याय प्रकरणम् ॥

श्लोकार्थ—ज्या दिवशीं मध्यरात्रीच्या आंत त्रयोदशी, दीड प्रहर रात्रीच्या आंत सप्तमी व एक प्रहर रात्रीच्या आंत चतुर्थी असेल त्या दिवशीं प्रदोष होतो; झणून त्या दिवशीं पूर्वरात्रीस पठन करूं नये. उपाक-  
र्मापासून एक महिनापर्यंत रात्रीच्या पूर्वार्धांत पठन वर्ज्य होय. उद्यां अनध्याय आहे असें जाणून त्या अनध्या-  
याच्या पूर्वे दिवसाच्या सर्व रात्रींत पठन वर्ज्य करावें. प्रातःसायंसंध्या समयी पठन वर्ज्य होय. चोरांचा उपद्रव  
होईल त्याप्रहरांत पठन वर्ज्य करावें. दुष्टभोजन व दुष्टप्रतिग्रह केल्यानंतर तीन दिवस अध्ययन करूं नये ॥ ७ ॥

अथ प्रदोषानध्यायानाह-रात्र्यर्थे इति । रात्र्यर्थे मदनस्त्रयोदशी यस्मिन् दिने स्यात्. मुनिः  
सप्तमी रात्रेर्दलयुते यामे सार्धप्रहरे यद्दिने स्यात् चतुर्थी आद्यके प्रथमे प्रहरे यद्दिने स्यात् ।  
अत्र दिने प्राग्रात्रौ पूर्वरात्रौ पठनं वर्ज्यं तु पुनः उपाकर्मतः सकाशात् मासमात्रं रात्रेः प्राग्दले  
पठनं वर्ज्यं । श्वोऽनध्याय इतीह इत्यत्र रात्रिपठनं समस्तरात्रौ पठनं वर्ज्यं । सदा संध्योरुभयोः  
पठनं वर्ज्यम् । चोरोपद्रवेण उपलक्षितो यामः प्रहरः तस्मिन्पठनं वर्ज्यं । त्रिदिवसं दुर्भुक्प्रति-  
ग्राहयोः दुष्टौ भुक्प्रतिग्रहौ दुर्भुक्प्रतिग्रहौ तयोः दुष्टभोजनदुष्टप्रतिग्रहयोः त्रिदिवसं पठनं वर्ज्यम् ।  
तथा च श्रीधर्या स्मृतिवचनानि । अष्टम्योश्च चतुर्दश्योः पंचदश्योश्च सूतके । शावे प्रतिपदोर्ध्वत्र  
भये चैव महोत्सवे ॥ रोगे युद्धे विवादे च द्यूते पथि निशीथके । नाधीयीताशुचिश्चापि नास्नातश्च  
न तंद्रितः ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । त्रिरात्रं स्यादनध्यायो मृते भूपे गुरावपि ॥  
फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां तु चैत्र्यां तु ज्येष्ठमिष्यते । अनध्यायस्तथाऽऽषाढ्यां श्रावण्यां कार्तिके  
तथा ॥ तथैव मार्गशीर्षस्य पूर्णमास्यां न संचरेत् । अश्विन्याः पतने कंठे भूमेर्दाहे पुरस्य च ॥ मृग-  
स्य सर्पमार्जारनकुलाद्यश्वदंतिनां । अंतरागमनेऽजोष्ट्रखराणां च ज्येष्ठं स्मृतं ॥ पताकातोरणाद-  
शरथयानजलाग्निनां । मूकोन्मत्तादिशूद्राणामंतरागमने ज्येष्ठं ॥ नारीणामपि सर्वासां गवां चैवांत-  
रागमे । अहोरात्रमनध्यायो गर्जने रात्रिसंभवे ॥ द्यूगर्जने च रात्रौ चापररात्रे दिनं स्मृतम् । दिनं  
तूभयसंध्यायामथास्यां चांतरागमे ॥ पक्षिमंडूकगोधासु नराणां चांतरागमे । दिने दिवसशेषः  
स्याद्रात्र्यां रात्र्याश्च तद्भवेत् ॥ श्वसृगालरवे नृणां श्रोत्रियागमनेऽध्वनि । तात्कालिकोऽप्यनध्या-  
यस्तांबूलस्य च भक्षणे ॥ श्राद्धे निमंत्रितो यस्तु भुक्त्वा नाध्ययनं चरेत् । करिष्यश्च तथा विप्र  
प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ॥ एते प्रोक्ताह्यनध्याया वैदिकास्तांत्रिकास्ततः । प्रवक्ष्यतेऽष्टमीद्वये चतु-  
र्दश्यां च केवलं ॥ विधुवद्वितये चैवमयनद्वितये तथा । न पठेत्पाठयेद्धीमान् पुराणमपि सत्तमः ॥  
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यावदस्तमिते रवौ । दिनशेषमनध्यायं वैदिकं परिकीर्तितं ॥ तथोदिते दि-  
वारात्रं तत्कालमुदिते तयोः । प्रतिपद्यां च संक्रांतौ तत्कालमखिलासु च ॥ नभोनभस्ययोः कृष्णे  
मासयोस्त्रिदिनं द्विजः । न सप्तम्यामधीयीत त्रयोदश्यां च पैत्र्ययोः ॥ सदा त्रयोदशी यावत्प्राङ्नि-  
शीथात्तिथिर्भवेत् । प्राक् तदहोपराह्णांतादधीयीत न च द्विजः ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रतिपद्यां

च वजयेत् । धर्मशास्त्रपुराणानि शास्त्रं तात्कालिकं बुधः ॥ विमिश्रितासु कर्तव्यं सप्तम्यादिषु यत्न-  
तः । पुराणाभ्यसनादीनि पंचदश्योश्च वा न वा ॥ नांतरागमने दोषः पुराणादिषु विद्यते । न श-  
स्यते च तत्काले घृतं संप्राश्य वा बुधः ॥ नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमः । अकाल-  
गर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु ॥ अनध्याया बुधैः कार्या उपरागादिकेषु च । श्वोऽनध्याये च  
शर्वर्या नाधीयीत कदाचन ॥ स्मृत्यंतरे । प्रदोषे च त्रयोदश्यां नाध्येयं प्रतिपत्स्वपि । प्रदोषलक्षणां  
षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रौ ननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिकाः ॥ अर्धरात्रौ ननाडि-  
कार्धरात्राद्वटिकया एकयोनेत्यर्थः ॥ अत्र नैमित्तिकप्रदोषमाहापस्तंबः । श्रावण्यां पौर्णमास्यामध्यय-  
नमुपाकृत्य मासं प्रदोषे नाधीयीतेति । प्रदोषः पूर्वरात्रः । तथा च गर्गः । अध्यायानामुपाकर्म श्राव-  
ण्यां श्रवणेन वा । यावन्मासं पूर्वरात्रे नाधीयीत कदाचनेति ॥ नारदः । अयने विबुधे चैव शयने  
बोधने हरेः । अनध्यायं प्रकुर्वीत मन्वादिषु युगादिषु ॥ मन्वादयो मत्स्यपुराणेऽभिहिताः । आ-  
श्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी सिता । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ फाल्गु-  
नस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ श्रावण-  
स्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पंचदशी सिता ॥  
मन्वंतरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ युगादयो विष्णुपुराणे दर्शिताः । वैशाखमासस्य तु या तृ-  
तीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे । नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पंचदशी च माघे ॥ उ-  
पाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतं । अष्टकासु त्वहोरात्रं मृतं तासु च रात्रिषु ॥ मार्गशीर्षे तथा  
पौषे माघे मासे तथैव च । तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः ॥ स्मृतिरत्नावल्यां ।  
चतुर्दश्यां यदा पर्व प्रागस्तादृश्यते रवेः । अनध्यायं प्रकुर्वीत त्रयोदश्यां तु धर्मवित् ॥ विद्युत्स्त-  
नितवर्षे तु महोल्कानां तु संभवे । अकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ स्तनितं मेघगर्जितं ।  
अनुराधक्षरमारभ्य षोडशक्षं तु भास्करः । यावच्चरति वै तावदकालं मुनयो विदुः ॥ काले वृष्टौ  
च तत्कालमकाले च त्रिरात्रकं । अतिमात्राऽथवा वृष्टिर्नाधीयीत दिनत्रयं ॥ अकालवर्षणे जाते  
जलौकाश्च प्रवर्तते । एकरात्रमनध्यायमिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ मेषे च वृषभे चैव तृणाप्रात्स्रवते  
जलं । भूमिद्रावमनध्यायं कुर्वीत वृषकुंभयोः ॥ अत ऊर्ध्वं द्विपादेषु तृणप्रचयनं जलं ॥ तृणप्रचय-  
नं तृणप्रवाहः । चौरैरुपद्रुते ग्रामे संग्रामे चाग्निकारिते । अकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥  
प्रादुष्कतेष्वनग्रीषु विद्युत्स्तनितनिःस्वने । सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ तथा दिवा ॥ मनुः ।  
निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने । एतानकालिकान् विद्यादनध्यायानृतवपि ॥ निर्घात  
आंतरालिको ध्वनिविशेषः । ज्योतिषां चोपसर्जनं चंद्रसूर्ययोः परिवेषः । आपस्तंबः । प्रतिगृह्य द्विजो  
वेदानेकोद्दिष्टस्य केतनं । ग्रहांते कीर्तयेद्ब्रह्म राहोरन्यत्र सूतके ॥ केतनं निमंत्रणं । कूर्मपुराणे । समान-  
विद्ये तु मृते तथा सब्रह्मचारिणी । आचार्ये संस्थिते चापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतं ॥ याज्ञवल्क्यः । ग्रहं  
प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यत्विगुरुबंधुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये मृते ॥ संध्यागर्जिनिर्घा-  
तभूकंपोलकानिपातने । समाप्य वेदं धुनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूष-  
कैः । कृतंस्तरे त्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ पराशरः । सर्पस्यऽनकुलस्याथ अजमार्जारयोस्तथा ।  
मूषकस्य तथोष्ट्रस्य मंडूकस्य च योषितः ॥ पुरुषस्यैलकस्यापि शुनोऽश्वस्य खरस्य च । एषां यो वित-  
तश्चैव अंतरागमने कृते ॥ त्रिरात्रमुपवासश्च त्रिरात्रमभिषेचनं । अथ तात्कालिकाः । खरोऽगर्दभोलूक-  
सामबाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशृङ्गांत्यश्मशानपतितांतिके ॥ देशेऽशुचौ वर्त्मनि च विद्युत्स्तनित-  
संग्रवे । भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिर्भौतरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥ पांसुवर्षे दिशां दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः  
प्रातिगंधे च शिष्टे च गृहमागते ॥ खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृषे रथरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतास्ता-  
त्कालिकान्विदुरिति ॥ अथानध्यायापवादः ॥ मनुः । वेदोपाकरणे चैव स्वाध्यायो चैव नैत्यके । न नि-  
रोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रजपेषु चेति ॥ ७ ॥ इति मुहूर्तमार्तडटीकायां मार्तंडवल्लभायामनध्यायप्रकरणं ॥

टीका—आतां प्रदोषाचे अनध्याय सांगतो—रात्रीच्या अर्धभागी ज्या दिवशीं मदन ह्म० त्रयोदशी असेल,  
मुनि ह्म० सप्तमी रात्रीच्या पहिल्या दीड प्रहरीं असेल, चतुर्थी रात्रीच्या पहिल्या प्रहरीं असेल, त्या दिवशीं प्रदोष असतो.  
ह्मणून त्या दिवशीं पूर्वे रात्रीस अध्ययन करूं नये. उपाकर्म केल्यापासून एक महिनापर्यंत रात्रीच्या पूर्वार्धांत पठण  
वज्य आहे. श्वः ह्म० उद्यां अनध्याय असेल तर आदले दिवशीं सर्वरात्र अध्ययन करूं नये. नेहेमी दोन्ही संध्याकाली  
अध्ययन करूं नये. ज्या प्रहरींत चोरांचा उपद्रव असेल त्यांत अध्ययन करूं नये. दुर्भुक् ह्म० दुष्ट भोजन ह्मणजे दुष्टाचे

घरचें अन्न खाळें असतां आणि दुष्टपरिग्रह ह्य० दुष्टाकडून परिग्रह ह्य० दान दक्षिणा घेतली असतां तीन दिवस पर्यंत अध्ययन करूं नये. तसेंच श्रीधरोपग्रंथांत स्मृतीचीं वचनें अशीं आहेत कीं, दोन अष्टमी, दोन चतुर्दशी, पौर्णिमा आणि अमावास्या, मरणाचें सूतक, दोन प्रतिपदा, मोठें भय, मोठा उत्सव, रोग, युद्ध, विवाद, धूत, रस्ता, मध्यरात्र, इत्यादि ठिकाणीं अनध्याय करावे ह्याजें अध्ययन करूं नये. तसेंच अपवित्र आणि स्नान केल्याशिवाय आळसी राहून अध्ययन करूं नये. उपाकर्म, उत्सर्ग, चंद्र सूर्याचें ग्रहण ह्या ठिकाणीं तीन दिवसपर्यंत अनध्याय करावेत ह्य० अध्ययन करूं नये. राजा मेला अथवा गुरु मेला असतां आणि फाल्गुनी पौर्णिमा व चैत्री पौर्णिमा इत्यादि ठिकाणीं तीन दिवसपर्यंत अनध्याय करावेत. त्या प्रमाणेंच आषाढी पौर्णिमा, श्रावणी पौर्णिमा, तशीच कार्तिकी पौर्णिमा, मार्गशीर्षी पौर्णिमा इत्यादि दिवशीं अध्ययन करूं नये. वीज पडली असतां, भूमिकंप झाला असतां, नगरांत आग लागली असतां अध्ययन करूं नये. हरिण, सर्प, मांजर, सुंगूस, घोडा, वाघ वगैरे हिसक प्राणी, बकरा, उंट, गाढव इतके प्राणी गुरु आणि शिष्य ह्यांच्या मधून गेले असतां तीन दिवस अध्ययन करूं नये. पताका, तोरण, आरसा, गाडी, मेणा वगैरे यान, पाणी, अग्नि, मुका, उन्मत्त, शूद्र हे गुरु आणि शिष्य ह्यांच्यामधून गेले असतां तीन दिवस अनध्याय करावेत ह्याजें अध्ययन करूं नये. सर्व स्त्रिया आणि गाई ह्या मधून आल्या तर एक अहोरात्र अनध्याय ह्याजें अध्ययन करूं नये. रात्रीस मेघगर्जना झाली असतां दुसऱ्या दिवशीं अध्ययन करूं नये. दिवसास मेघगर्जना झाली असतां रात्रीस अध्ययन करूं नये. दोन्ही संध्येस गर्जना झाली असतां एक अहोरात्र अध्ययन करूं नये. आतां गुरु आणि शिष्य ह्यांच्यामधून पक्षी, बेडूक, पाल, मनुष्य हीं गेलीं असतां तो बाकीचा उरलेला दिवस अनध्याय करावा. तशीच उरलेली रात्र अनध्याय करावी. तसेंच कुत्रा, कोल्हा, ह्यांचें ओरडणें ऐकिलें असतां, श्रोत्रिय विद्वान् ब्राह्मण आला असतां, रस्त्यामध्ये, तेवढ्यापुरता अनध्याय करावा. तांबूल भक्षण केलें असतां अध्ययन करूं नये. श्राद्धी जेवलेल्या ब्राह्मणांनें अध्ययन करूं नये. तसेंच श्राद्ध भोजन पुढें करावयाचें असतां आणि त्याचें विसर्जन केल्याशिवाय अध्ययन करूं नये हे सर्व वैदिक अनध्याय सांगितले. आतां तांत्रिक अनध्याय सांगतो कीं, दोन अष्टमी, दोन चतुर्दशी, दोन विषुव संक्रांति, दोन अयनें, ह्या दिवशीं बुद्धिदानांनें पुराणांचें सुद्धां पठण आणि पाठण करूं नये. अष्टमीस आणि चतुर्दशीस सूर्य अस्त झाल्यावर बाकीचा काळ ह्य० रात्र ही वैदिक अनध्याय जाणावा. अथवा सूर्य उदय काळीं जर त्या तिथी असतील तर सर्व दिवस अनध्याय करावा. प्रतिपदा आणि संक्रांति तत्काळ जरी तिथि असली तरी सर्व दिवसभर अनध्याय करावा. नभ ह्य० श्रावण आणि नभस्य ह्य० भाद्रपद ह्या दोन महिन्यांच्या कृष्णपक्षांत तीन दिवसपर्यंत अध्ययन करूं नये. तें असें कीं, सप्तमीस आणि पितृपक्षांतील त्रयोदशीस ह्याजें मध्यरात्रपर्यंत सर्व दिवसभर अध्ययन करूं नये. त्या दिवसाच्या अपराण्हापर्यंत अध्ययन करूं नये. अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा इत्यादि तिथींवर ती तिथि आहे तोपर्यंतच विद्वानांनें धर्मशास्त्र आणि पुराणें ह्यांचा अनध्याय करावा. ह्या शिवाय मिश्रित अशा सप्तम्यादि तिथींवर प्रयत्न पूर्वक पुराणादिकांचा अभ्यास करावा. पौर्णिमा आणि अमावास्या ह्या तिथींवर पुराणांचा अभ्यास करावा अथवा न करावा. गुरु आणि शिष्य ह्यांच्या मधून पूर्वी सांगितलेले प्राणी वगैरे गेले असतां पुराणादिकांचा अभ्यास करण्यास व करविण्यास हरकत नाही, परंतु तेवढ्या काळापुरताच अनध्याय करावा. अथवा तुप पिऊन पुनः अध्ययनास आरंभ करावा. प्रेत जमिनीवर पडलें असतां अथवा प्रेत वाहून नेताना पाहिलें असतां, अकाळीं मेघगर्जना झाली असतां, पर्वकाळीं, आशौचादिकामध्ये, ग्रहणादिकामध्ये विद्वानांनीं अनध्याय करावेत असे सांगितले आहे. दुसऱ्या दिवशीं अनध्याय असतां पहिले दिवशींच्या रात्रीस अध्ययन करूं नये दुसऱ्या स्मृतींत असे सांगितले आहे कीं, प्रदोष, त्रयोदशी, प्रतिपदा ह्या दिवशीं अध्ययन करूं नये. आतां प्रदोष लक्षण सांगतो—पष्ठी आणि द्वादशी ह्या दिवशीं मध्यरात्रीच्या पूर्वी एक घटिका कमीपर्यंत प्रदोषकाल असतो आणि तृतीयेस नऊ घटिका प्रदोष असतो. आतां आपस्तंब नैमित्तिक प्रदोष सांगतो कीं, श्रावण पौर्णिमासीला अध्ययन आरंभ केल्यावर एक महिनापर्यंत प्रदोषकाळीं अध्ययन करूं नये. प्रदोष ह्य० पूर्वे रात्र समजावी. तेंच गर्ग सांगतो कीं, श्रावण पौर्णिमेला उपाकर्म केल्यावर मग एक महिनापर्यंत प्रदोषकाळीं ह्य० पूर्वे रात्री अध्ययन करूं नये. नारद असे सांगतो कीं, दोन संक्रांतीस, विषुव संक्रांतीस, श्रीहरीच्या शयनीं ह्य० आषाढ शुद्ध एकादशीस आणि श्रीहरीच्या प्रबोधीं ह्य० कार्तिक शुद्ध एकादशीस अनध्याय करावा आणि सर्व मन्वादिकांचे दिवशीं अनध्याय करावा. मत्स्य पुराणांत मन्वादि किती आहेत ते सांगितले आहेत. ते असे कीं, आस्विन महिन्यांतील शुक्लनवमी, कार्तिकाचे महिन्यांतील शुक्ल द्वादशी, चैत्र महिन्यांतील शुक्ल तृतीया, भाद्रपदाची शुक्ल तृतीया, फाल्गुनाची अमावास्या, पौष महिन्यांतील शुक्ल एकादशी, आषाढाची शुक्ल दशमी, माघाची शुक्ल सप्तमी, श्रावणाची कृष्ण अष्टमी, आषाढी, कार्तिकी, फाल्गुनी, चैत्री, ज्येष्ठी पौर्णिमा ह्या पांच पौर्णिमा इतके दिवस मन्वादिक आहेत ह्यांवर दान केलें असतां, तें अक्षयदान होतें. युगादिक विष्णुपुराणांत सांगितले आहेत ते असे कीं, वैशाख महिन्याची शुक्ल तृतीया, कार्तिक शुक्लपक्षाची नवमी, भाद्रपदाच्या कृष्णपक्षाची त्रयोदशी, माघातील पौर्णिमा उपाकर्माचे आणि उत्सर्गाचे वेळीं तीन दिवसपर्यंत अनध्याय समजावेत. अष्टका श्राद्धाचे दिवशीं

अहोरात्र, मरणाच्या रात्रीस, मार्गशीर्ष, पौष, माघ ह्या तीन महिन्यांत कृष्ण पक्षांत तीन अष्टका श्राद्धे असतात. असें विद्वानांनीं सांगितलें आहे. स्मृतिरत्नावलि ग्रंथांत असें सांगितलें आहे कीं, ज्या वेळेस चतुर्दशीस रवीच्या अस्ताचे पूर्वी पर्व दिसतें त्या वेळेस अनध्याय करावा तसाच त्रयोदशीसही धर्मवेच्यानें अनध्याय करावा. अकालिक वीजेचा उत्पात आणि मेघांची गर्जना, मोठी उल्का पडली असतां अनध्याय करावेत असें मनुचें वाक्य आहे. अकालिक द्वाणजे अनुराधा नक्षत्रापासून तो पुढील सोळा नक्षत्रांवर जांपर्यंत सूर्यनारायण प्रवेश करितो तोंपर्यंत अकालिक समजावा असें मुनींचें मत आहे. काळी वृष्टि झाली असतां तेवढ्यापुरता अनध्याय करावा आणि अकालिक वृष्टि झाली असतां तीन रात्रपर्यंत अनध्याय करावेत. अथवा अतिवृष्टि झाली असतां तीन दिवस पर्यंत अनध्याय करावेत. अकाल वृष्टि झाली असतां जलौका प्रवृत्त होतात. त्यावेळीं एक रात्र अनध्याय करावा असें कात्यायनाचें मत आहे. मेष आणि वृषभ ह्या दोन राशींवर सूर्य असतां गवताच्या अप्रापासून पाणी झरतें आणि भूमीपासून साव होतो त्यावेळीं अनध्याय करावा. वृष आणि कुंभ राशींवर सूर्य असतां त्यापुढें द्विपाद प्राणी राशींवर असतां गवताचा साव होतो आणि गवताचा प्रवाह असतो त्यावेळीं अनध्याय करावा. चोरांनीं गांवास उपद्रव केला असतां, युद्धांत, गावांत आग लागली असतां, सर्व प्रकारचे अद्भुत चमत्कार झाले असतां, अकालिक ह्य० एकदम अनध्याय करावा. वीजेचा कडक डाट, मेघांची गर्जना ह्या ऐकल्या असतां सज्योति अनध्याय करावा. अथवा जेव्हां गर्जना इत्यादिक झाल्या असतील तेव्हांपासून त्या त्या रात्रीचा शेषपर्यंत अनध्याय करावा. मनु सांगतो कीं, त्या त्या कार्याचा ऋतु असूनही आकाशांतील शब्द, भूमिकंप, चंद्रसूर्याचें खळ, हे झाले असतां अनध्याय करावेत. आपस्तंब असें सांगतो कीं, ब्राह्मणानें वेद शिकण्याचा आरंभ केल्यावर एकोद्दिष्टाचे बद्दल निमंत्रण असेल तर तीन दिवस अनध्याय करावेत. राहूचे सूतकाशिवाय दुसरें सूतक असतां अनध्याय करावेत. कूर्मपुराणांत सांगितलें आहे कीं, समान विद्या शिकलेला आपला सहाध्यायी, आपला गुरु मरण पावला असतां तीन रात्रपर्यंत अनध्याय करावेत. याज्ञवल्क्य सांगतो कीं, शिष्य, ऋत्विक्, गुरु आणि गुरुबंधु इतके मरण पावले असतां, तीन दिवसपर्यंत अनध्याय करावेत. उपाकर्म, उत्सर्जन, स्वशाखेचा श्रोत्रिय मेला असतां, संध्या, मेघगर्जना, उत्पात, भूकंप, उल्का ह्य० ज्वाला निघणें इतके झाले असतां, वेदाची समाप्ति झाली असतां, आरण्यग्रंथ अध्ययन केल्यावर अहोरात्र अनध्याय करावा. तसेंच गुरु आणि शिष्य ह्यांच्यामधून पशु, वेडूक, सुंगूस, कुत्रा, सुप, मांजर, उंदीर हे गेले असतां, एक अहोरात्र अनध्याय करावा. तसाच शुक्राचा पात झाला असतां, किंवा अधिकपणा झाला असतां अनध्याय करावा. पराशर सांगतो कीं, साप, सुंगूस, बोकड, मांजर, उंदीर, उंट, वेडूक, स्त्री, पुरुष, एडका, कुत्रा, घोडा, गाढव ह्यांपैकीं कोणी एखादा गुरु आणि शिष्य ह्यांच्या मधून गेला असतां तीन दिवस उपवास, तीन दिवस अनध्याय करावेत. आतां तात्कालिक ह्य० तेवढ्या पुरते अनध्याय सांगतो—गाढव, उंट, खेचर, सुबड, साम, बाण, रडणाऱ्यांचा शब्द, अपवित्रांचा शब्द, प्रेत, शूद्र आणि अंत्यज जवळ असतां, अपवित्र देशां, रस्त्यांत, वीजेची गर्जना आणि मेघांची गर्जना झाल्यावर, चंद्रग्रहण, सूर्याचें ग्रहण, भोजन केल्यावर ओला हात आहे तोंपर्यंत, पाण्यामध्ये, मध्य रात्रीस, अति बारा सुटला असतां, अतिशय धूळ उडाली असतां, दिशा जळत असतां, संध्येच्या वेळीं, भुव्याच्या वेळीं, भीतीमध्ये, धावणाऱ्यांस पाहिलें असतां, दुर्गंध आला असतां, शिष्टाचें आगमन झालें असतां, खर, उंट, यान, हत्ती, घोडा, नौका, वृक्ष, गाडी ह्यांवर आरोहण केलें असतां, अथे एकंदर सदतीस अनध्याय तेवढ्यापुरते आहेत. आतां अनध्यायाचा अपवाद सांगतो—वेदाच्या उपाकरणाचे वेळीं, नित्य स्वाध्यायाचे वेळीं, होम, मंत्र आणि जप ह्या सर्वांमध्ये अनध्यायाचा अपवाद आहे द्वाणजे अध्ययन करावें ॥ ७ ॥ अशा रीतिनें मातृवत्तमानामक टीकेचें अनध्याय प्रकरण समाप्त झालें.

॥ अनध्यायप्रकरण समाप्त ॥

॥ अथ पल्लीसरठपतनम् ॥ १० ॥

दक्षांगोदरनाभिहृत्सु पतिता पल्ली वरांगे हनुम् ।

त्यक्त्वा तुः शुभदा स्त्रियाः फलमिदं वामेन व्यत्ययात् ॥

इत्याहुः सरठग्रोहणफलं पातेऽन्यथैके वृथा ।

पह्यारोहणकेऽपि वत्सहितं स्नात्वा चरेच्छांतिकम् ॥ १ ॥

॥ इतिपल्लीसरठयोः पतनादिविचारः ॥



श्लोकार्थ—उजर्वे अंग, उदर, नाभि, हृदय ह्यांवर व हनुवटी सोडून मस्तकावर पाल पडली तर पुरु-  
षाला शुभ जाणावी, हें पुरुषांचें फळ स्त्रीला विपरीत ध्यावें. स्त्रीच्या डाव्या अंगां पल्लीपतन शुभ होय. ह्या  
प्रमाणेंच ज्या ठिकाणीं पाल पडली तर शुभ, त्या ठिकाणीं सरठ (सरडा) चढला असतां शुभ जाणावा. ज्या  
ठिकाणीं सरडा चढला असतां शुभ, त्या ठिकाणीं पडला तर अशुभ जाणावा. सरडाच्या पतनाचें फळ नाहीं व  
पालीच्या चढण्याचेंही फळ नाहीं असें कित्येक ह्मणतात. पल्ली, सरडा यांचें पतन किंवा आरोहण झालें तर सचैल  
स्नान करून यथाविधि शांति करावी ॥ १ ॥

अथ पल्लीसरठयोः पतनादिविचारः । अथ पल्लीसरठयोः फलं वृत्तेनैकेनाऽऽह-दक्षांगेति ।  
दक्षांगोदरनाभिहस्तसु पतिता पल्ली तथा हनुं त्यक्त्वा वरांगे उत्तमांगे पतिता पल्ली नुः नरस्य शुभ  
दा स्यात् । उत्तमांगे हनुं विना सर्वत्र शुभेत्यर्थः । अर्थादन्यत्र न शुभा । अन्यांगेषु पुरःपार्श्वपृष्ठेषु  
न शुभा स्यात् । अथ स्त्रिया विशेषमाह-स्त्रिया इदं पुरुषोक्तं फलं वामेतरव्यत्याज्ज्ञेयं । वामं  
वामांगं इतरं दक्षिणांगं तयोर्व्यत्यायो वैपरीत्यं तस्मात्पुरुषस्य दक्षांगे यत्फलमुक्तं तत्स्त्रिया वामांगे  
ज्ञेयं पुरुषस्य वामांगे यदुक्तं तत्स्त्रिया दक्षांगे ज्ञेयमित्यर्थः । अथाद्यत्रांगे वामेतरविभागाभावस्तत्र  
पुरुषतुल्यं फलं ज्ञेयं । वरांगे तूभयोः समानमेव फलं वामदक्षिणफलविशेषात् । सरठफलमाह-  
इत्याहुः सरठप्ररोहणफलमिति । एवमेव आहुर्मुनय इत्याध्याहारः । सरठस्य प्ररोहणे पल्लीवत्फल-  
मित्यर्थः । पाते सरठस्य पाते अन्यथा विपरीतं फलमाहुः । सरठस्य प्ररोहणे यत्फलं तत्तस्य पाते  
विपरीतं फलमाहुरित्यर्थः । एके वृथा एके आचार्या वृथा फलमाहुः सरठस्य प्ररोहण एव फलं  
पाते वृथा फलं शुभं न चाप्यशुभमित्याहुरित्यर्थः । पल्यारोहणकेऽपि अन्यथाफलमाहुः पल्लीपतने  
यत्फलं तत्तस्या आरोहणेऽन्यथा विपरीतफलमाहुः एके वृथाफलमाहुः पल्ल्याः पतने एव फलं  
प्ररोहणे वृथेत्येके आहुरित्यर्थः । अथात्र विधिमाह-वस्त्रसहितः स्नात्वा चरेच्छांतिकमिति । स-  
चैलस्नानं कृत्वा शांतिकं शास्त्रोक्तमाचरेत् । तथा च ज्योतिर्निबंधे । पल्लीस्पर्शफलं वक्ष्ये यदुक्तं  
ब्रह्मणा पुरा । ब्रह्मस्थाने भवेद्राज्यं स्थानलाभो ललाटकं ॥ कर्णयोर्भूषणावासिर्नैत्रयोः प्रियदर्शनं ।  
नासिकायां सुगंधानि मुखे मिष्टान्नभोजनं ॥ कपोलयोर्भवेत्सौख्यं हनुदेशे महद्भयं । भ्रुकुट्यां विप्र-  
हृष्टैव कंठे वा व्यसनागमः ॥ कलिर्वंशे मुखं पृष्ठ्यां दक्षे वामे गदादयः । दक्षांगे विजयो नित्यं  
वामांगे शत्रुजं भयं ॥ इष्टलाभो भुजे सव्ये कूर्परे मणिबंधके । दक्षे करतले द्रव्यं तत्पृष्ठे सद्भययो  
भवेत् ॥ वामे भुजे कूर्परे च मणिबंधे धनक्षयः । वामे करतले हानिस्तत्पृष्ठे चार्थनाशनं ॥ हृदये  
राजसंमानं सौभाग्यं दक्षिणे स्तने । दक्षपार्श्वे च भोगाप्तिः स्तने वामे यशो धनं ॥ वामपार्श्वे भवे-  
त्पीडा वामकुक्षौ शिशोस्तथा । दक्षकुक्षौ सुतावासिरुदरे च विशेषतः ॥ वस्त्रातिर्दक्षकट्यां च वाम-  
कट्यां सुखक्षयः । नाभ्यामनोरथावासिर्वस्तौ गर्भच्युतिर्भवेत् ॥ गुह्ये मृत्युर्गुदे रोगो दक्षोरौ प्रीति-  
वर्धनं । वामोरौ मृत्युतो दुःखं दक्षजानौ सुवाहनं ॥ पशुहानिर्वांमजानौ दाक्षिणे जघने सुखं । केशः  
स्याद्वामजंघायां स्फिचि दक्षेऽर्थवृद्धिकृत् ॥ स्फिचि वामे स्त्रीवियोगो दक्षे गुल्फे प्रियागमः । उप-  
प्लवो वामगुल्फे पादयोर्गमनं भवेत् ॥ अत्र यद्यपि सामान्येनोभयोर्गमनफलमुक्तं तथाऽपि दक्षिण-  
पादे गमनाल्लाभो वक्तव्यः । वामपादे गमने हानिर्वक्तव्या । पुरोभागे च दुर्वार्ता नष्टवार्ता च पृष्ठतः ।  
वामे हानिर्धनं दक्षे परितो भ्रमणे क्षितिः ॥ वामदक्षिणभागेन यत्फलं कथितं नृणां । विपर्ययेण  
तत्स्त्रीणां ज्ञेयं शेषं द्वयोः समं ॥ इत्थं पल्ल्याः प्रपतने फलं ज्ञेयं विचक्षणैः । एतदेव फलं विद्यात्स-  
रठस्य प्ररोहणे ॥ पल्ल्याः प्ररोहणे चैव पतने सरठस्य च । तयोः फलस्य व्यत्यासात्तद्देव हि  
जायते ॥ पल्ल्याः प्ररोहणं रात्रौ सरठस्य प्रपातनं । नातिदुष्टफलं विद्याद्वयाधिमुग्रं विपर्यये ॥ पत-  
नानंतरं यस्य रोहणं यदि जायते । पतने फलमुत्कृष्टं रोहणेऽल्पफलं भवेत् ॥ मृत्युयोगे च  
जन्मर्क्षे विष्टया पाते च वैधृतौ । चंद्रेऽष्टमे च सकूरे लग्ने विघ्नं प्रजायते ॥ अंगं दक्षिणमारुह्य  
वामेनोत्तरते स्फुटं । तदा हानिकरी ज्ञेया व्यत्यये न तु हानिदा ॥ चरणादूर्ध्वगीभूय सद्यो रोहिति  
शीर्षणं । प्राज्यराज्यं तदा दत्ते पल्ली श्वेता विशेषतः ॥ चिंतिताभ्यधिकं लाभं स्थिता भोजनभाज-  
ने । पादांगुलीषु संपाताद्धानिश्च महती भवेत् ॥ पल्लयोः सरठयोर्वाऽपि युग्ममंगे शुभे पतेत् । दंप-  
त्योर्जायते प्रीतिर्निश्चयाने वियोगिता ॥ शीर्षस्योपरि पतिता शुभाय पल्ली सिता नन्या । सितगृ-  
ह्णाधोस्पर्शं सर्ववंगेषु क्षोभना ज्ञेयेति ॥ कृकलासः पतेद्यस्य मूर्ध्नि तद्भिन्नज्ञातये । मृतसंजीविनी

विद्यां जपेन्मुडितमस्तकः ॥ अथ पल्लीसरठयोः शांतिः । पल्लीसरठयोः स्पर्शं सचेलस्नानमाचरेत् । पंचगव्यं प्राशयित्वा कुर्यादाज्यावलोकनं ॥ शस्ते वाऽप्यथवाऽशस्ते यदीच्छेदात्मनः सुखं । पुण्याह-  
वाचनं कृत्वा शांतिकर्म समाचरेत् ॥ प्रतिरूपं सुवर्णेन कुर्याद्विज्ञानुसारतः । रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गंध-  
पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ तदग्रे मृन्मयंरम्यं कलशं जलपूरितं वस्त्रमाह्वयैरलंकृत्य स्थापयेत्तंडुलोपरि ॥ पंचा-  
मृतं पंचगव्यं पंचरत्नानि शक्तितः । पंचवृक्षकषायांश्च निक्षिप्याऽऽवाहयेत्ततः ॥ पूजयेद्ब्रधुष्पाद्यैर्लोक-  
पालान् क्रमेण च । अग्निसंस्थापनं कृत्वा होमकर्म समाचरेत् ॥ मृत्युंजयेन मंत्रेण समिद्धिः खादिरैः  
शुभैः । तिलैर्व्याहृतिभिर्होममष्टोत्तरसहस्रकं ॥ अष्टोत्तरशतं वाऽपि कुर्याद्विज्ञानुसारतः । अभि-  
षेकं ततः कृत्वा पावमानस्य च द्विजैः ॥ पुण्यवारुणसूक्तैश्च दोषशांत्यै द्विजोत्तमाः । धौतांबराणि  
धृत्वाऽथ स्वर्णवस्त्रतिलान्ददेत् ॥ ब्राह्मणान् भोजयेदित्थं शांतिकर्म करोति यः । तस्याऽऽयुर्विजयो  
लक्ष्मीः कीर्तिर्बुद्धिः शुभं भवेत् ॥ पल्लीसरठयोः शांतिः कथिता भृगुणा पुरा । शौनकाय मुनींद्राय  
लोकानुग्रहकारिणे ॥ १ ॥ इति मु० मा० टी० मार्तंडवल्हभायां पल्लीसरठयोः शांतिप्रकरणम् ॥

टीका—आतां पाल आणि सरडा ह्यांच्या पतनाचा विचार एका वृत्तानें सांगतो—उजवें अंग, उदर  
नाभि, हृदय ह्यांवर आणि हनुवटी सोडून मस्तकावर पाल पडली असतां पुरुषाला शुभकारक आहे. मस्तकावर,  
हनुवटी खेरीज सर्व मस्तकाचे भागावर पडली असतां शुभकारक आहे. इतक्या स्थानांशिवाय बाकीचीं स्थानें  
अशुभ आहेत. आतां स्त्रियांना विशेष सांगतो—जें फळ पुरुषांना सांगितलें त्याच्या उलट स्त्रियांना समजावें. जसें  
कीं, पुरुषांच्या उजव्या अंगास जें फळ सांगितलें तें फळ स्त्रियांच्या डाव्या अंगास जाणावें. परंतु मस्तकावर पडली  
असतां सारखेंच फळ आहे. कारण मस्तकाला डावें आणि उजवें असा विशेष समजत नाही. आतां सरडाचें फळ  
सांगतो—अशाच रीतीनें सरडाचें फळही पालीच्या फळासारखेंच जाणावें. आतां सरठ आंगावर चढला असतां पाली-  
च्या पडण्याप्रमाणें फळ आहे परंतु तो आंगावर पडला असतां त्या चढण्याच्या उलट फळ आहे असें जाणावें. कित्येक  
आचार्यांचें मत असें आहे कीं, सरठ चढण्याचें फळ आहे परंतु सरठ पडण्याचें फळ मुळीच नाही, तसें पाल पडण्याचें  
फळ आहे परंतु पाल चढण्याचें फळ मुळीच नाही. आतां ह्याचा विधि सांगतो—ब्रह्मासहित स्नान करून शास्त्रांत सांगि-  
तल्या प्रमाणें शांतिकर्म करावें. तसेंच ज्योतिर्विंध ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ब्रह्मदेवानें पूर्वी सांगितल्या प्रमाणें पाल  
पडण्याचें फळ सांगतो—मस्तकावर पडली असतां राज्य प्राप्ति होते. ललाटावर पडली असतां स्थानाचा लाभ होतो.  
कानावर पडली असतां अलंकार मिळतात. डोक्यावर पडली असतां प्रियदर्शन होतें. नाकावर पडली असतां सुगंधाची  
प्राप्ति होते. मुखावर पडली असतां मिश्रन्न भक्षणास मिळतें. गालावर पडली असतां सौख्य प्राप्त होतें. हनुवटीवर पडली  
असतां मोठें भय प्राप्त होतें. भुवईवर पडली असतां तेंटा कलह होतो. गळ्यावर पडली असतां संकट प्राप्त होतें. माकड-  
ह्याडावर पडली असतां कलह होतो. मुखावर, पाठीवर मग उजव्या अथवा डाव्या कमानीं पुरुष आणि स्त्रिया ह्यांना रोग  
वैरे होतात. उजव्या आंगावर पडली तर विजय मिळतो, डाव्या आंगावर पडली असतां शत्रुपासून भय होतें. सव्य भुजावर  
पडली असतां इष्ट लाभ होतो. कोंपरावर पडली असतां इष्ट लाभ होतो, मणगटावर पडली असतांही इष्ट लाभ होतो.  
उजव्या करतळावर पाल पडली असतां द्रव्य लाभ होतो आणि त्या उजव्या हाताच्या पाठीवर पडली असतां  
उत्तम खर्च होतो. वाम भुजावर, कोंपरावर, मणगटावर पाल पडली असतां धनाचा नाश होतो. डाव्या  
करतळावर पडली असतां हानि होते, त्याच्या पृष्ठभागां पडली असतां अर्थाचा नाश होतो. हृदयावर पडली असतां  
राजाकडून मान मिळतो. उजव्या स्तनावर पडली असतां सौभाग्य प्राप्त होतें. उजव्या कुक्षीवर पडली असतां भोगाची  
प्राप्ति होते. डाव्या स्तनावर पडली असतां यश आणि धन मिळतें. डाव्या कुक्षीवर पडली असतां पीडा होते. तसेंच  
बालकाच्या डाव्या कुक्षीवर पीडा होत. उजव्या कुक्षीवर पडली असतां पुत्र प्राप्ति होते. पोटावर पडली तर विशेष करून  
पुत्र प्राप्ति होते. उजव्या कटीवर पडली असतां वस्त्र मिळतें. डाव्या कटीवर पडली असतां सुखाचा क्षय होतो. नाभीवर  
पडली असतां मनोरथ पूर्ण होतो. बस्तीवर पडली असतां गर्भाचा खाव होतो. गुड्यावर पडली असतां मृत्यु होतो. गुद-  
स्थानी पडली असतां रोग होतो. उजव्या मांडीवर पडली असतां प्रीति वाढते. डाव्या मांडीवर पडली असतां मृत्यू संबंधी  
दुःख होतें. उजव्या जंघेवर पडली असतां उत्तम वाहन मिळतें. डाव्या जंघेवर पडली असतां पशूंची हानि होते. दक्षिण  
जघनावर पडली असतां सुख प्राप्त होतें, वाम जघनावर पडली असतां ज्ञेश होतो. उजव्या कुठ्यावर पडली असतां  
अर्थाची वृद्धि होते. डाव्या कुठ्यावर पडली असतां स्त्रीचा वियोग होतो. उजव्या घोंठ्यावर पडली असतां प्रियेची प्राप्ति  
होते आणि डाव्या घोंठ्यावर पडली असतां पीडा होते. पायांवर पडली असतां गमन होतें. आतां जरी ही सामान्यपणें  
पांयावर पाल पडली असतां गमन होतें असें फळ सांगितलें आहे, तथापि उजव्या पांयावर पाल पडली असतां गमन

पासून लाभ होतो असे समजावे आणि डाव्या पांयावर पडली असतां गमना पासून हानि होते असे समजावे, आपल्या पुढल्याभागीं पडली असतां दुष्ट वार्ता ऐकूं येते. पाठीमागे पडली असतां नष्ट वार्ता ऐकूं येते. डाव्या बाजू-कडे पडली असतां हानि होते आणि उजव्या बाजूस पडली असतां धन प्राप्ति होते. चोहोंकडे तिनें भ्रमण केलें असतां नाश होतो. आतां डावा, उजवा ह्या भागांचें जें पुरुषाला फळ सांगितलें. त्याच्या उलट स्त्रियांना समजावें बाकी फळ सारखेंच आहे. अशा रीतीनें पाल पडण्याचें फळ विद्वानांनी जाणावें. अशाच रीतीनें सरडा चढण्याचें फळ समजावें. पाल चढण्याचें आणि सरडा पडण्याचें ह्या दोघांच्या फळाचा व्यास करून जाणावें. रात्रीस पाल चढली असतां आणि सरडा पडला असतां त्याचें आति दुष्ट फळ नाहीं असें जाणावें आणि अतिशय उग्र व्याधि उत्पन्न होतो. पडल्यावर जर चढणें होईल तर पतनाचें फळ फारच उत्कृष्ट आहे. परंतु चढण्याचें फळ अल्प आहे. मृत्युयोग, जन्मनक्षत्र, विष्टियोग, व्यतिपात, वैधृति, आठवा चंद्र, लमीं कूर ग्रह असतां पाल पडली तर विघ्न उत्पन्न होतें. उजव्या अंगावर चढून डाव्या अंगावरून खाली उतरेल तर मोठी हानि होते असें जाणावें आणि ह्याच्या उलट होईल तर हानि होणार नाहीं. पांयापासून वर चढून जर तत्काळ मस्तकावर चढेल तर मोठें राज्य प्राप्त होतें आणि ती पाल जर पांढरी असेल तर तिचें फळ विशेषें करून जाणावें जेवणाच्या भांड्यांत जर बसलेली असेल तर मनांत चितिलेल्या फळापेक्षां अधिक फळ मिळतें. पायांच्या बोटांत येऊन आडखळली तर फार मोठी हानि होते. पाल आणि सरडा हे दोघे जर शुभ अंगावर पडली तर स्त्री पुरुषांमध्ये मोठी प्रीति होते. निध स्थानीं पडली असतां स्त्री पुरुषांच्या वियोग होतो, मस्तकावर पडलेली पाल पांढरी असेल तर शुभकारक आहे, दुसरी पडली तर शुभकारक नाहीं. घरांतील पांढऱ्या पालीचा स्पर्श झाला असतां सर्व अंगावर क्षोभ प्राप्त होतो. सरडा ज्याच्या मस्तकावर पडेल त्यापासून होणाऱ्या विघ्नांची शांति होण्यास्तव क्षौर करून मृतसंजीविनी विघ्नेचा जप करावा. आतां पाल आणि सरडा ह्यांची शांति सांगतो—पाल आणि सरडा ह्यांचा स्पर्श झाला असतां वस्त्रासहित स्नान करावें. पंचगव्य प्राशन करावें. तुपांत अवलोकन करावें. मग तें पतन शुभकारक असो अथवा अशुभकारक असो जर आपल्या कल्याणाची इच्छा असेल तर पुण्याहवाचन करून शांतिकर्म आचरण करावें. आपल्या शक्त्यनुसार सुवर्णाची प्रतिमा करून तिला लाल वस्त्रांनं वेष्टन करावें, गंध आणि फूल ह्यांनी त्याची पूजा करावी. तिच्या पुढें मूर्तिकेचा एक कलश पाण्यानें भरलेला आणि वस्त्र, फूल ह्यांनी सुशोभित केलेला तांदुळावर ठेवावा. त्या कलशामध्ये, पंचामृत, पंचगव्य, पंचरत्न, पांच वृक्षांचे कषाय टाकून त्याचें आवाहन करावें, त्याची पूजा गंध फूलानां करून लोकपालांचें क्रमानें पूजन करावें. अग्नीचें स्थापन करून होम करावा. तो होम मृत्युंजय मंत्रानें खादिराच्या समिधांनी आणि व्याहृति उच्चारून तिलांनी एक हजार आठ अथवा एकशें आठ आहुति टाकाव्यात अथवा आपल्या द्रव्यानुसार होम करावा. नंतर पावमान सूक्तांनी अभिषेक करावा आणि पुण्याहवाचनाच्या सूक्तांनी अभिषेक करावा. त्यापासून दोषाची शांति होते ब्राह्मणांकडून शुभ वस्त्रें धारण करून त्यांना सोनें, वस्त्र, तिल द्यावेत आणि ब्राह्मणांनां भोजन द्यावें. अशा रीतीनें जो शांतिकर्म करतो त्याला आयुष्य, विजय, लक्ष्मी, कीर्ति, बुद्धि इत्यादि शुभ फल प्राप्त होतें अशा रीतीनें पाल आणि सरडा ह्यांची शांति पूर्वी भृगुनीं लोकांवर अनुग्रह करणाऱ्या अशा मुनिश्रेष्ठ शौनकाला सांगितली आहे ॥ १ ॥ अशा रीतीनें मार्तंडवल्गवा टीकेचें पाल आणि सरडा ह्यांच्या शांतीचें प्रकरण पुरें झालें ॥

॥ पली सरठ पतनादि प्रकरण समाप्त ॥

## ॥ गोचर प्रकरणम् ॥ ११ ॥

शुभग्रह च ताराबल.

स्वर्क्षोच्चंद्रखलास्त्रिस्वारिषु शुभाः सप्ताचगोब्जः पुनः ।

चापुत्राद्वयधर्ममृत्युषु कविः स्वास्तत्रिकोणे गुरुः ॥

सौम्यो व्यंत्यसमेऽखिला भवगताः शुक्ले नवेषुद्विगः ।

चंद्रोऽथो निजभाद्युभं नवहृतं त्र्यद्रीषु शेषं न सत् ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—आपल्या जन्मराशीपासून चंद्र आणि खलग्रह ११०।६ ह्या स्थानीं शुभ आणि ७।१ ह्या स्थानीं चंद्र शुभ जाणावा. शुक्र १२।१४।५।१२।१।८ ह्या स्थानीं शुभ, गुरु २।७।१।५ ह्या स्थानीं शुभ, बुध

१।४।६।८।१० ह्या स्थानीं शुभ होय. एकादशस्थानीं सर्व ग्रह शुभ होत. शुक्रपक्षांत १।५।२ ह्या स्थानीं चंद्र शुभ समजावा. आपल्या जन्मनक्षत्रापासून दिवस नक्षत्र मोजून ९ नीं भागावें, बाकी ३।५।७ राहिली तर शुभ नाही झणजे ताराबल नाही. १।२।४।६।८।१० हे अंक बाकी राहतील तेव्हां ताराबल आहे असें समजावें. ॥ १ ॥

अथ गौचरप्रकरणं विवक्षुस्तावजन्मराशेः सकाशात् को ग्रहः कस्मिन् स्थाने शुभः कस्मिन्न-  
शुभ इति चंद्रे शुक्रपक्षे विशेषं ताराबलं च वृत्तेनैकेनाऽऽह-स्वर्क्षाच्चंद्रखला इति । स्वर्क्षात् स्वज-  
न्मराशेः सकाशात् चंद्रखलाखिखारिषु शुभाः स्युः । त्रिः तृतीयं खं दशमं अरिः षष्ठे तेषु चंद्रखलाः  
चंद्रः प्रसिद्धः खलाः पापग्रहाः रविभौमशनिराहुकेतवः शुभाः शुभफला भवन्ति । पुनः सप्ताद्यगोऽब्ज-  
श्चंद्रः शुभः स्यात् । सुगमं । आपुत्राद्ययधर्ममृत्युषु कविः शुभः स्यात् । आपुत्राजन्मराशितः क्रमेण  
पंचमपर्यंतं १।२।३।४।५ व्यथो द्वादशं धर्मं नवमं मृत्युरष्टमेषु कविः शुक्रः शुभः स्यात् । स्वास्तात्रि-  
कोणे गुरुः शुभः स्यात् स्वं द्वितीयमस्तं सप्तमं त्रिकोणं नवमं पंचमं च तत्र गुरुर्वृहस्पतिः शुभः  
स्यात् । सौम्यो व्यत्यसभे शुभः स्यात् । सौम्यो बुधः विगतमंत्यं यस्मात्तद्व्यत्यं तच्च तत्समं च  
तथा तस्मिन् द्वादशस्थानवर्ज्यसमस्थाने द्वितीयचतुर्थादिके शुभः स्यादित्यर्थः । अखिला भवगताः  
शुभाः स्युः । सर्वे ग्रहा एकादशस्थाने शुभाः स्युरिति । शुक्ले नवेषुद्विगश्चंद्रः शुभः स्यात् न कृष्ण-  
पक्ष इति । अथ ताराबलमाह-निजभात् शुभं नवहृतं व्यथीषु शेषं न सत् निजभं स्वजन्मनक्षत्रं  
तस्मात् शुभं दिननक्षत्रपर्यंतं संगण्य नवहृतं सत् व्यथीषु शेषं त्रिसप्तपंचशेषं न सत् न शुभं अन्य-  
च्छुभमित्यर्थास्तिद्धं । तथा च विशेषसंग्रहो व्यवहारसारे । पंथा हानिः प्रियं व्याधिर्दैन्यं स्वास्थ्यं  
गातं गदः । पापं सुखं धनं हानिं करोत्यर्कः स्वजन्मभात् ॥ वल्लं हानिर्धनं रोगं पीडां वित्तं प्रियं  
वसु । भयं सुखं धनं रोगं करोतीदुः स्वजन्मभात् ॥ भयं हानिर्धनं वैरं दुःखं लाभं भयं क्षयं ।  
पापं लाभं सुखं हानिं जनेभौमफलं क्रमात् ॥ बंधं लाभं भयं वित्तं शोकं लक्ष्मीं  
क्षयं धनं । रोगं भोगं सुखं हानिं करोति हः स्वजन्मभात् ॥ भयं वित्तं रुजं हानिं लाभं शोकं सुखं  
रुजं । मानं दैन्यं धनं पीडां करोति जन्मभाद्गुरुः ॥ जयं वित्तं धनं सौख्यं पुत्रान् वैरं शुभं सुखम् ।  
धर्मं दुःखं धनं लाभं जनेः शुक्रो ददाति वै ॥ भयं शोकं धनं दुःखं हानिं सुदृक्षयं मूर्ति । पापं श्रमं  
धनं हानिं जनेः पंगुफलं क्रमात् । राहुकेतवोः फलं शनिकुजवत् ॥ १ ॥

टीकाथ—आतां गौचर प्रकरण सांगण्याच्या इच्छेनें अगोदर जन्म राशीपासून कोणता ग्रह कोणत्या स्थानीं शुभ  
आणि कोणता अशुभ हें आणि चंद्राविषयीं शुक्रपक्षाचा विशेष आणि ताराबल एका वृत्तानें सांगतो— जन्म राशीपासून  
त्रि ह० ३ ख ह० १० अरे ह० ६ ह्या स्थानीं असलेले चंद्र, आणि पापग्रह ह० रवि, मंगळ, शनि, राहु,  
केतु इतके ग्रह शुभ फल देणारे आहेत. आणि पुनः सप्त ह० ७ आय ह० १ ह्या स्थानाचा चंद्र शुभकारक समजावा.  
शुक्र हा पुत्रापर्यंत झणजे लग्नापासून तो पुत्र ह० पंचमस्थान ह्या पर्यंत ह० १-२-३-४-५ इतक्या स्थानाचा आणि  
व्यय ह० १२ धर्म ह० ९ अष्ट ह० ८ ह्या ठिकाणाचा शुभकारक समजावा. गुरु हा स्व ह० २ अस्त ह० ७ त्रिकोण  
ह० ९-५ अर्थात् २-७-९-५ ह्या स्थानाचा शुभकारक आहे. सौम्य ह० बुध अंत्याशिवाय ह० १२ स्थानाशिवाय-  
सम ह० २-४-६-८-१० ह्या स्थानाचा शुभकारक आहे. सर्व ग्रह, एकादशस्थानीं असलेले शुभकारक आहेत. शुक्र  
पक्षातील चंद्र हा नव ह० ९ इषु ह० ५ द्वि ह० २ ह्या स्थानाचा शुभकारक आहे. कृष्णपक्षातील शुभकारक नाही.  
आतां ताराबल सांगतो— निज ह० आपल्या भ ह० नक्षत्रापासून अर्थात् आपल्या जन्मनक्षत्रापासून शुभ ह० दिवसाचें  
नक्षत्र जें असेल तें मोजावें आणि जी संख्या येईल तिला नव हृत ह० नवांनीं भागावें त्रि ह० ३ सप्त ह० ७ पंच  
ह० ५ हे बाकी राहिले तर शुभ नाही झणजे ताराबल नाही अर्थात् ३-७-५ ह्यां शिवाय दुसरी बाकी राहिल तर  
शुभकारक आहे झणजे ताराबल आहे. झणजे १-२-४-६-८-१० इतके अंक बाकी राहतील तर शुभ समजावें. तोच  
व्यवहारसारांत विशेष संग्रह असा आहे कीं, रवि हा आपल्या भ पासून क्रमानें पंथा, हानि, प्रिय, व्याधि, दैन्य, स्वस्थ-  
पणा, गमन, रोग, पाप, सुख, धन, हानि इतके करतो. चंद्र हा आपल्या राशीपासून अनुक्रमानें वल्ल, हानि, धन, रोग,  
पीडा, वित्त, प्रिय, वसु, भय, सुख, धन, रोग इतके करतो. मंगळ हा आपल्या राशीपासून क्रमानें भय, हानि, धन,  
वैर, दुःख, लाभ, भय, क्षय, पाप, लाभ, सुख, हानि इतके करतो. बुध हा आपल्या राशीपासून क्रमानें बंध, लाभ,  
भय, वित्त, शोक, लक्ष्मी, क्षय, धन, रोग, भोग, सुख, हानि इतके करतो. गुरु हा आपल्या राशीपासून क्रमानें भय,  
वित्त, रोग, हानि, लाभ, शोक, सुख, रोग, मान, दैन्य, धन, पीडा इतके करतो. शुक्र हा आपल्या राशीपासून क्रमानें

जय, वित्त, धन, सौख्य, पुत्र, वैर, शुभ, सुख, धर्म, दुःख, धन, लाभ इतके कमानें करितो. शनि ह्य जन्मराशीपासून अनुक्रमानें भय, शोक, धन, दुःख, हानि, सुहृत्क्षय, मरण, पीडा, पाप, भ्रम, धन, हानि, इतके करितो. राहुचें फळ शनिप्रमाणें आणि केतुचें फळ मंगळाप्रमाणें जाणावें ॥ १ ॥

ग्रहांचे वेध.

षष्ठांत्ये खजले सुतायभवने त्र्यंके रवेः स्यान्मिथ- ।

रूपंके जन्मसुते खके मृतिभवे द्यस्ते षडंत्ये विधोः ॥

त्र्यंके लाभसुते सप्ततपसोर्व्यर्काशुभानां व्यधोऽ- ।

ष्टाचे पुत्रधनेऽष्टस्वे कसहजेऽर्यंके भवांत्ये विदः ॥ २ ॥

द्यस्तेऽष्टादिमयोः खके नवसुते त्रीशेऽष्टपुत्रे त्रिका- ।

द्येऽर्यंत्ये कभवे भृगोर्ज्ञशशिनोः शन्यर्कयोर्न व्यधः ॥

विद्धो व्यस्तफलो भवेद्विविचरो हेमाद्रिविध्यांतरे ।

खेटर्क्षाद्यधस्वेचरं विगणयाऽन्यत्रोभयं जन्मभात् ॥ ३ ॥

॥ इति मुहूर्तमार्तंडे गोचरप्रकरणम् ॥

श्लोकार्थ—षष्ठ व द्वादश ह्या दोन स्थानांचा परस्पर वेध होतो, पहिल्या श्लोकांत षष्ठस्थानीं सूर्य शुभ आहे, परंतु त्याच्या १२ व्या वेधस्थानीं कोणी ग्रह नसेल तर तो षष्ठ सूर्य शुभ व तेथें कोणी ग्रह असेल तर शुभ नव्हे. द्वादश रवि, अशुभ परंतु षष्ठस्थानीं कोणी ग्रह असतां तो शुभ जाणावा. बुधाचा व चंद्राचा आणि शनीचा व रवीचा एकमेकांस वेध होत नाही. विद्वद्ग्रह विपरित फळ देणारा होतो. हिमालय व विंध्यपर्वत यांच्यामध्ये ग्रह असेल त्या राशीपासून त्याच्या वेधराशिपर्यंत मोजून वेध पहावा. अन्य ठिकाणीं ग्रह व वेधस्थान हीं दोन्ही आपल्या जन्मराशीपासून मोजावीं. पुढें सर्व ग्रहांचीं शुभस्थानें व वेधस्थानें आहेत त्यांवरून वेध जाणावा ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां वेधं वृत्तद्वयेनाऽऽह-षष्ठांत्य इति । षष्ठं प्रसिद्धं अंत्यं द्वादशं तस्मिन् मिथः परस्परं वेधः । तद्वत् खजले सुतायभवने त्र्यंके अयं रवेर्वेधः स्यात् । अत्रांकन्यास एव व्याख्यानं । सप्तस्युपलक्षितैः पदैः वेधा ज्ञेयाः । तद्यथा षष्ठां ६ त्वं १२ ख १० जले ४ सुता ५ य ११ त्र्यं ३ के ९ रवेः सूर्यस्यायं वेधः । त्र्यं ३ के ९ जन्म १ सुते ५ ख १० के ४ मृति ८ भवे ११ द्य २ स्ते ७ षडं ६ त्वे १२ विधोरयं वेधः । द्य ३ के १२ लाभ ११ सुते ५ सप्तन ६ तपसो ९ व्यर्काशुभानां व्यधोऽयं विगतोऽर्को येभ्यस्ते व्यर्का । तेच तेऽशुभाश्च व्यर्काशुभा रविरहितपापग्रहास्तेषामयं वेध इत्यर्थः । अष्टा ८ चे १ पुत्र ५ धने २ षष्ठ ८ खे १० क ४ सहजे ३ ऽर्यं ६ के ९ भवां ११ त्वे १२ विदः बुधास्यायं वेधः ॥ २ ॥ द्यस्तेति । द्य २ स्ते ७ षष्ठा ८ दिमयोः १ ख १० के ४ नव ९ सुते ५ त्री ३ द्वे ११ षष्ठ ८ पुत्रे ५ त्रिका ३ चे १ ऽर्यं ६ त्वे १२ क ४ भवे ११ भृगोः शुक्रस्यायं वेधः । गुरोर्वेधः संस्कार-प्रकरणे कथितः सोऽत्र सिद्धो ज्ञेयः । अत्र वेधविधाने ज्ञशशिनोः बुधचंद्रयोः शन्यर्कयोश्च परस्परं नो व्यधः स्यात् । परस्परं वेधो नास्ति । एतदुक्तं भवति । विंध्यहिमाचलयोर्मध्ये जन्मराशेः सकाशादन्यतमग्रहाधिष्ठितराशिपर्यंतं गणयित्वा तद्वाशेः सकाशात् यथोक्तवेधस्थानपर्यंतं गणयेत् । तत्र यदि कश्चिद्ग्रहो भवति तदा गणितो ग्रहो विद्धो भवति । अन्यदेशेषु जन्मराशेः सकाशादुभयग्रहं तद्वेधस्थानं च गणयेत् यदा वेधस्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति तदाऽन्यो ग्रहो विद्धो भवति । तत्र सूर्यस्य शनिवेधो नास्ति शनेः सूर्यस्य वेधो नास्ति । एवं चंद्रबुधयोः परस्परं ज्ञेयं । अथ वेधप्रयोजनमाह-विद्धो व्यस्तफलो भवेद्विविचर इति । विद्धो ग्रहो व्यस्तफलः स्यात् प्रथमश्लोकोदितं फलं व्यस्तं विपरीतं भवतीत्यर्थः । रत्नमालायामपि । वामवेधविधिना त्वशोभना अप्यमी शुभ-फलं दिशंत्यलं । ते मृषावचनभाषिणो जना याति हास्यमपि कीर्तिलांछनमिति ॥ अथ देशविशेषेण वेधगणनाविशेषमाह-हेमाद्रिविध्यांतर इति । अस्यार्थः पूर्वमेव व्याख्यातः ॥ ३ ॥ इति मुहूर्तमार्तंड-इटीकायां गोचरप्रकरणं समाप्तम् ॥

**टीकाथ—**आतां सर्व ग्रहांचे वेध दोन वृत्तां सांगतो— रवीचा षष्ठ ह्य० ६ अंत्य ह्य० १२ ह्यांचा परस्पर वेध आहे तसाच ख ह्य० १० जल ह्य० ४ ह्यांचा परस्पर वेध आहे. सुत ह्य० ५ आय भवन ह्य० ११ ह्यांचा परस्पर वेध आहे हा सूर्याचा वेध झाला. आतां चंद्राचा त्रि ह्य० ३ अंक ह्य० ९ ह्यांचा परस्पर वेध आहे तसाच जन्म ह्य० १ सुत ह्य० ५ ह्यांचा परस्पर वेध आहे, ख. ह्य० १० क ह्य० ४ मृति ह्य० ८ भव ह्य० ११ दि ह्य० २ अस्त ह्य० ७ षट् ह्य० ६ अंत्य ह्य० १२ इतके चंद्राचे वेध आहेत. रवीशिवाय बाकीच्या पापग्रहांचा वेध त्रि ह्य० ३ अंक ह्य० १२ लाभ ह्य० ११ सुत ह्य० ५ सपत्न ह्य० ६ तप ह्य० ९ इतके मंगळ, शनि, राहु, केतु ह्या पापग्रहांचे वेध आहेत. बुधाचा वेध अष्ट ह्य० ८ आय ह्य० १ पुत्र ५ धन २ अष्ट ८ ख ह्य० १० क ह्य० ४ सहज ह्य० ३ अरि ह्य० ६ अंक ह्य० ९ भव ह्य० ११ अंत्य १२ इतके वेध बुधाचे आहेत ॥ २ ॥ शुक्राचा वेध द्वि ह्य० २ अस्त ह्य० ७ अष्ट ह्य० ८ आदिम ह्य० १ ख ह्य० १० क ह्य० ४ नव ह्य० ९ सुत ह्य० ५ त्रि ह्य० ३ ईश ह्य० ११ अष्ट ह्य० ८ पुत्र ह्य० ५ त्रिक ह्य० ३ आय ह्य० १ अरि ह्य० ६ अंत्य ह्य० १२ क ह्य० ४ भव ह्य० ११ इतके शुक्राचे वेध आहेत. गुरुचा वेध संस्कार प्रकरणांत पूर्वी सांगितला आहे तोच येथेही द्यावा. ह्या वेधांमध्ये बुध आणि चंद्र ह्यांचा परस्पर वेध नाही तसाच शनि आणि रवि ह्यांचा परस्पर वेध नाही. ह्याचा अर्थ असा निघतो की, विंध्य पर्वत आणि हिमालय पर्वत ह्या दोहोंच्यामध्ये जो ग्रह असेल तो जन्मराशीपासून ज्या कोणत्या एखाद्या राशीवर राहिला असेल त्या राशीपर्यंत मोजून त्या राशीपासून पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे वेधाचे स्थानापर्यंत मोजावे. त्यांत जर एखादा ग्रह वेध स्थानी असेल तर त्याहून निराळा ग्रह विद्ध झाला असें होतें. त्यांत सूर्याचा वेध शनीस लागू पडत नाही. आणि शनीचा वेध सूर्यास लागू पडत नाही अशाच रीतीने चंद्र आणि बुध यांचा परस्पर वेध लागू पडत नाही. आतां वेधांचे काय प्रयोजन आहे ते सांगतो— जो ग्रह विद्ध असेल त्यापासून पूर्वीच्या श्लोकांत सांगितलेलें फळ भिळत नाही. वाम वेध असेल तर अशुभ असूनही ते शुभ फल देतात. असे जे कोणी सांगतात ते मृषा ह्य० खोटें बोलणारे आहेत ह्यापून ते हास्यास्पद होतात आणि त्यांची अपकीर्ति होते. आतां देशपरत्वे वेध कसा गणावा हें सांगतो—ह्याचा अर्थ आतांच पूर्वी सांगितला आहे ॥ ३ ॥

**वेध कोष्टक.**

| ग्रह.     | रवि.    | चंद्र.    | मं. श. रा. के. | बुध.      |
|-----------|---------|-----------|----------------|-----------|
| शुभस्थान. | ६१०१११३ | ३११०११७६  | ३१११६          | ८२१०१४६११ |
| वेधस्थान. | १२१४५१९ | १५१४८१२१२ | १२५१९          | १५१८३१२१२ |

| ग्रह.     | शुक्र.         | गुरु.     |
|-----------|----------------|-----------|
| शुभस्थान. | २११४५१११८३१२१९ | २५१११७९   |
| वेधस्थान. | ७८१०१२३१५११६१० | १२१४८३१११ |

॥ गोचर प्रकरण समाप्त ॥

**॥ संक्रांति प्रकरणम् ॥ १२ ॥**

संक्रांतीचा पुण्यकाळ व शुभाशुभत्व.

ऊर्ध्वं द्यात्ममृगेऽर्कमंक्रमणतः पूर्व स्थिरे कर्कटे ।

जूकाजोभयतः खरामघटिकाः पुण्या मृगे दिग्द्युताः ॥

कर्काजांत्यवृषेणसूर्यचलनं निरयन्यमं सदिवा ।

सूर्यारार्कैर्दिने तृतीयकरणे प्रात्येऽष्टमेऽद्भुतदम् ॥ १ ॥



लीकार्य—द्विस्वभाव ह्य० मिथुन, कन्या, धन, मीन ह्यांच्या व मकरसंक्रांतीच्या पुढें ३० घटिका पुण्यकाल, स्थिर ह्य० वृषभ, सिंह, वृश्चिक, कुंभ ह्यांच्या व कर्काच्या पूर्वी ३० घटिका पुण्यकाल. तूळ, मेष यांच्या पूर्वी १५ घ० व पुढें १५ घ० असा ३० घ० पुण्यकाल. मकराला पूर्वीच्या ३० व अधिक १० असा ४० घटिका पुण्यकाल जाणवा. कर्क, मेष, मीन, वृषभ, मकर ह्या ५ संक्रांति राशीस होतील तर शुभ होत. ह्यांहून अन्य संक्रांति दिवसास होतील तर शुभ होत. रवि, मंगळ, शनि ह्या वारी किंवा कौलव, किंस्तुम्भ, शकुनि ह्या करणावर कोणतीही संक्रांति झाली असतां अशुभ जाणावी ॥ १ ॥

अथ संक्रांतिप्रकरणम् । अथ संक्रांतिफलं विवक्षुस्तावद्वाशिपरत्वेन पुण्यकालं वृत्ताधेनाऽऽह-  
ऊर्ध्वं द्यात्मेति । द्यात्मानो द्विस्वभावा राशयो मिथुनकन्याधनुर्मीना मृगो मकर एषां समाहारस्त-  
स्मिन्नर्कसंक्रमणतः सूर्यसंक्रमणकालात्सकाशात् ऊर्ध्वं उपरि खरामघटिकाः पुण्याः स्युः । स्थिरे  
वृषसिहवृश्चिककुंभानामन्यतम राशौ कर्कटः प्र० अर्कसंक्रमणतः पूर्वं प्रथमं खराम ३० घटिकाः  
पुण्याः स्युः जूकाजोभयतः जूकास्तुलाऽजो मेषोऽनयोरर्कसंक्रमणतः सकाशादुभयतः खराम ३० घटिकाः  
पुण्याः स्युः । पूर्वं पंचदश ऊर्ध्वं पंचदशेति त्रिशद्वटिका इत्यर्थः । एवं सर्वराशिसंक्रमणपुण्यका-  
लमुक्त्वेदानीं मकरे विशेषपुण्यकालमाह—मृगे दिग्युता इति । मृगे मकरे ताः खराम ३० घटिका  
दिग्युता दशयुताः चत्वारिंशद्वटिकाः पुण्या इत्यर्थः । तथा चोक्तं ज्योतिर्निबंधे । संक्रांतिसमयः  
सूक्ष्मो दुर्लभः पिशितेक्ष्णैः । तस्य योगादधश्चोर्ध्वं त्रिशन्नाड्यः प्रकीर्तिताः ॥ अर्वाक् षोडश ना-  
ड्यस्तु परतश्चैव षोडश । पुण्यकालोऽर्कसंक्रांतेः स्नानदानादिकर्मसु ॥ त्रिशत् कर्कटसंक्रांतौ  
पूर्वतः पुण्यनाडिकाः । मकरे तूचराः पुण्याश्चत्वारिंशतिनाडिकाः ॥ स्थिरे विष्णुपदे कर्कं दक्षिणा-  
यनमादितः । मृगे सौम्यायनं झंगे षडशीतिमुखं पुरः ॥ घटते विषुवे मध्ये पुण्यं दानाद्यनंतकं ।  
प्रागर्धरात्रात्पूर्वेद्युः पुण्यं पश्चात्परं दिनं ॥ प्रागर्धरात्रादित्येतद्विषुवविषयम् । कार्मुकं तु परित्यज्य  
मृगं संक्रमते रविः । प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा तदा भोगः परेऽहनि ॥ रविसंक्रमणे पुण्ये यो न स्नातीह  
मानवः । सप्तजन्मांतरे रोगी दुःखमाङ्गिर्धनो भवेत् ॥ आदित्यपुराणे । शतमिदुक्षये दानमुपरागे  
त्वनंतकं । षडशीत्यां सहस्रं तु विष्णुपद्यां तथैव च ॥ विषुवे शतसाहस्रं कोटिं दक्षिणायने । शत-  
कोटिगुणं पुण्यं जायते उत्तरायण इति ॥ अथोत्तरार्धेन संक्रांतेः सदसत्फलमाह—कर्कः  
प्र० अजो मेषः अंत्यो मीनः वृषः प्रसि० एणो मकर एतान् सूर्यचलनं निशि रात्रौ सत्स्यात् ।  
अन्यभं प्रति सूर्यचलनं सूर्यसंक्रमणं दिवा सत्स्यात् । अर्थाद्विपरीतं न शोभनं । सूर्यारकिदिने  
रविमौमशनिदिने तृतीयकरणे कौलवे प्रांत्ये किंस्तुम्भे अष्टमे शकुनौ सर्वराशिसंक्रमणं दुःखदं स्यात् ।  
तथा चोक्तं । मृगकर्काजगोमीनसंक्रांतिर्निशि सौख्यदा । शेषेषु सप्तसु दिवा व्यत्ययादशुभं भवेत् ॥  
संक्रांतिर्जायते यत्र भास्करे भ्रसुते शनौ । तत्र मासि भवेद्धोरं दुर्मिक्षं वृष्टिचौरजं ॥ स्यादुत्थितस्य  
किंस्तुम्भे शकुने कौलवे रवेः । संक्रांतिस्तैतिले नागे प्रसुप्तस्य चतुष्पदे ॥ निविष्टस्य गरे विष्टयां  
वणिजे बालवे बवे । दुर्मिक्षं रोगबाहुल्यमूर्ध्वं संक्रमते रविः । सुप्तः करोति कल्याणमुपविष्टः समं  
फलमिति ॥ १ ॥

टीका—आतां संक्रांतीचें प्रकरण सांगतों. संक्रांति फल सांगण्याच्या इच्छेनें अगोदर राशिपरत्वानें पुण्यकाल  
अध्यां वृत्तानें सांगतों—द्विस्वभाव राशि ह्य० मिथुन, कन्या, धनु, मीन, मृग ह्य० मकर, इतक्या राशींवर सूर्याचें संक्रमण  
झालें असतां त्या संक्रमण कालापासून पुढें खराम ह्य० ३० घटिकांपर्यंत पुण्यकाल समजावा. स्थिर राशी ह्य० वृषभ,  
सिंह, वृश्चिक, कुंभ आणि कर्क ह्या राशींवर सूर्याचें संक्रमण झालें असतां त्या काळाचे पूर्वी खराम ह्य० ३० घटिका  
पुण्यकाल समजावा. जूका ह्य० तूळा, अज ह्य० मेष ह्या दोन राशींवर सूर्याचें संक्रमण झालें असतां संक्रमण काळाचे  
पूर्वी १५ घटिका आणि संक्रमणानंतर १५ घटिका मिळून ३० घटिका पुण्यकाल जाणावा. अशा रीतीनें सर्व राशींचे  
संक्रमण काळ सांगून आतां मकर राशीचे संक्रमणाचा विशेष काळ सांगतों—मकर राशीवर सूर्याचें संक्रमण झालें असतां  
खराम ह्य० ३० आणि दिक् ह्य० १० मिळून ४० घटिका ह्या पुण्यकाल समजावा. तेंच ज्योतिर्निबंध ग्रंथांत सांगितल  
आहे कीं, संक्रांतीचा काळ समजणें आपल्या सारख्या चर्मचक्षु लोकांना फारच दुर्लभ आहे. ह्मणून त्या संक्रांतीच्या  
योगाचे पूर्वी व नंतर मिळून तीस घटिका पुण्य काळ समजावा. पूर्वी १५ घटिका व नंतर १५ घटिका ह्या पुण्यकाळ  
स्नान, दान इत्यादि कर्म करण्यास सांगितला आहे, कर्क संक्रांती लागण्याच्या पूर्वी ३० तीस घटिका पुण्यकाळ आहे.

आणि मकर संक्रांतीच्या नंतर चाळीस घटिका पुण्यकाळ आहे. स्थिरराशी ह्मणजे कर्क राशीवर सूर्यसंक्रमण झालें असतां दक्षिणायनाचा आरंभ होतो आणि मकर राशीवर सूर्य संक्रमण झालें असतां उत्तरायणाचा आरंभ होतो. त्यांचा पुण्यकाळ पूर्वी आणि नंतर मिळून ८६ घटिका आहे. विषुव संक्रांतीमध्ये पुण्य 'दान' हें अनंत फलदायक आहे. त्यांत पहिल्या दिवसा पासून मध्यरात्रीपर्यंत पुण्यकाळ आहे. नंतर दुसरे दिवशीही पुण्यकाळ आहे. धनुराशी सोडून मकर राशीवर सूर्य संक्रमण करितो त्याचे पूर्वे दिवशी प्रदोषकाळीं अथवा मध्यरात्री पुण्य करण्याचा भोग काळ आहे. रवि संक्रमण पावतो त्या काळीं जो मानव स्नान करित नाही, तो सात जन्मपर्यंत रोगी होतो व महादुःखी आणि निर्धन असा होतो. आदित्य पुराणांत सांगितलें आहे कीं, इंद्रक्षर्यां ह्य० अमावास्येस एरव्ही पक्षां शतपट पुण्य आहे. ग्रहणास अनंत पुण्य आहे. षडशीतीमध्ये हजारपट पुण्य आहे. भागीरथीसही हजारपट पुण्य आहे. विषुव संक्रांतीस शंभर हजारपट पुण्य आहे. दक्षिणायनास कोटिपट पुण्य आहे. आणि उत्तरायणांत शंभर कोटिपट पुण्य आहे. आतां उत्तरार्धानें संक्रांतीचें शुभ व अशुभ असें फळ सांगतो—कर्क, अज ह्य० मेष, अंल ह्य० मीन, वृष, एण ह्य० मकर, इतक्या राशीवर सूर्याचें संक्रमण जर रात्रीस होईल तर तें संक्रमण उत्तम फलदायक आहे. इतक्या राशीशिवाय बाकीच्या राशींवर सूर्य संक्रमण दिवसास शुभकारक आहे. अर्थात् ह्या शिवाय उलट होईल तर शुभकारक नाही असें जाणावें. रवि, मंगळ, शनि ह्या वारांवर तिसऱ्या ह्य० कौलव करणावर, किंस्तुन्न करणावर, आठव्या ह्य० शकुनि करणावर सर्व राशीवरील सूर्य संक्रमण झालें असतां तें दुःखकारक आहे. तेंच सांगितलें आहे कीं, मकर, कर्क, मेष, वृषभ, मीन इतक्या राशींवरचें संक्रमण रात्रीस सौख्यकारक आहे. बाकीच्या उरलेल्या सात राशींवरचें संक्रमण दिवसास सुखकारक आहे. ह्याच्या उलट अशुभ समजावें. ज्यावेळेस संक्रांति रविवारी, मंगळवारी, शनिवारी होईल त्यामासों भयंकर दुर्भिक्ष होईल. मग आतिवृष्टि पडून अथवा चोरापासूनही दुर्भिक्ष होतें. किंस्तुन्न, शकुनि आणि कौलव ह्या करणावर रवीचें संक्रमण झालें असतां अशुभ समजावें अर्थात् ह्या तीन करणा शिवाय बाकीच्या तैतिल, नाग, चतुष्पद, ह्यांवर सूर्य सुप्त असतां आणि गर नामक करणावर निविष्ट ह्य० बसला असतां, विष्टे, वणिज, बालव ह्यांवर रविचें संक्रमण झालें असतां दुर्भिक्ष, रोगबाहुल्य फार होतें, सुप्त झाला असतां कल्याण करतो आणि बसला असतां सारखेंच फल आहे ॥ १ ॥

#### अधिकमास आणि क्षयमास.

ब्रह्माद्यैरिनमंडलांत उदितश्चांद्रस्त्वमांतः परै- ।

मासोऽसंक्रमणो द्विसंक्रमणको ज्ञेयोऽधिकोऽथ क्षयः ॥

कर्माण्यन्यगतीनि नात्र तनुयाद्यज्जन्ममृत्यू क्षये ।

तन्मासौ तिथिखंडयोश्चयमुखे भृत्येऽधिको गण्यते ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—ब्रह्मसिद्धांतादि ग्रंथकारांनीं रविमंडलांत मास सांगितला आहे. सूर्याबिंबाला चंद्रबिंबाचा स्पर्श होतो तेव्हां अमावास्येचा अंत होतो. नंतर चंद्राला सगळ्या सूर्यमंडळाचें क्रमण करण्यास ६ घटिका लागतात, ह्मणून त्या काळाला 'रविमंडलांत' असें ह्मणतात. दुसऱ्या कित्येकांनीं अमांत मास सांगितला आहे. असे चांद्रमासाचे दोन भेद आहेत. सूर्याची संक्रांति ज्यांत होत नाही तो अधिक मास व दोन संक्रांति होतात तो क्षयमास जाणावा. अधिक व क्षयमासांत अन्यगतिक ह्मणजे पुढें दुसऱ्या वेळीं करितां येणारीं कमें करूं नये. क्षयमासांत जन्म किंवा मरण झालें तर तिथीच्या पूर्वार्धांत पूर्वमास व उत्तरार्धांत पुढचा मास समजावा. व्याज, गर्भ व सेवकांचे वेतन ह्याविषयी अधिक मास मोजितात ॥ २ ॥

अथ संक्रांतिप्रसंगेनाग्रिमासक्षयमासयोर्लक्षणं तत्र कर्तव्याकर्तव्यं क्षयमासे जन्ममरणदो मासज्ञानं वृत्तेनैकेनाऽऽह—ब्रह्माद्यैरिति । ब्रह्माद्यैः सिद्धांतकर्तृभिः इतमंडलांतः सूर्यमंडलांतः चांद्रः चांद्रमास उदितः परैराचारैरमांतश्चाद्रो मास उदितः । एतदुक्तं भवति । अमावास्यांतादपरोऽमावास्यांतो यावत्तावदमांतो मासः । अमावास्यांते सूर्यचंद्रमंडलयोर्योगो भवति परतः षड्भिर्वेदिकाभिर्वियोगो भवति तस्माद्वियोगादपरो वियोगो यावत्तावद्रविमंडलांतो मासः स ब्रह्माद्यैः क्षयमासाधिमासनिर्णयविषयऽंगीकृतः । अपरैरमांतो मासोऽंगीकृत इत्यर्थः । अत्र यद्यपि सूर्यग्रहणे मध्यग्रहणकालानंतरं मोक्षस्थितिकालः षट्घटिकाभ्यो न्यूनो दृश्यते तथाऽपि सूक्ष्मदर्शिभिः पूर्वाचार्यैः

रसनाब्जोऽर्कमंडलमित्युक्तं तत्राऽऽगम एव प्रमाणं । तत्र उक्तलक्षणो मासोऽसंक्रमणः संक्रांतिरहि-  
तोऽधिको ज्ञेयः । द्विसंक्रमणकः संक्रांतिद्वययुक्तः क्षयो ज्ञेयः । अस्योदाहरणं ब्रह्ममतानुसारिणा श्री-  
भास्कराचार्येण सिद्धांतशिरोमणौ दर्शितं । असंक्रांतिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्विसंक्रांतिमासः  
क्षयाख्यः कदाचित् । क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यथा स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च ॥ गतोऽब्ध्य-  
द्रिनंदै ९७४ मिते शाककाले तिथीशै १११५ भविष्यत्यथांगाक्षसूर्यैः १२४६ । गजाग्रशिभूमि १३७८  
स्तथा प्रायशोऽयं कुनेदंदु १४१ वर्षैः कचिद्रोकुमिश्र १९ ॥ श्रीभास्कराचार्येणाब्ध्यद्रिनंदै ९७४  
मितशाककालादुपरि तिथीशै १११५ मितशाककालात्पूर्वं सिद्धांतशिरोमणिर्विरचितः । अत एवोक्तं  
गतोऽब्ध्यद्रिनंदैमिते शाककाले तिथीशैर्भविष्यतीति । तत्र गजाग्रशिभूमिः तुल्ये शाककाले रविमं-  
डलांतमासप्रमाणेन क्षयमासाधिमासौ प्रदश्येते । आश्विन्यमावास्या बुधे चतुश्चत्वारिंशद्वटिका ४४  
तस्मिन्नेव दिने सप्तत्रिंश ३७ द्वटिका स्वाती तासु तुलासंक्रमणप्रभूत् आश्विनस्तुलासंक्रांतियुक्त-  
त्वाच्छुद्धः कार्तिकी अमावास्या शुके सप्तदशघटिकाः १७ तस्मिन्नेव दिने सप्तत्रिंशद्वटिका स्वाती  
तासु वृश्चिकसंक्रांतिरभूत् । अयमसंक्रांतित्वाधिकः कार्तिकः अपरो मासो वृश्चिकसंक्रांतियुक्तः  
तस्माच्छुद्धोऽयं कार्तिकः । तस्यामावास्या शनौ सप्तचत्वारिंशत् ४७ घटिकास्तस्मिन्नेव दिने एको-  
नषष्टिघटिका स्वाती तासु धनुःसंक्रमणप्रभूत् । धनुःसंक्रमणं मार्गशीर्षे जातं तस्यामावास्या सोमे  
पादोनपंचदशघटिकाः तस्मिन्नेव दिने एकोनविंशद्वटिका स्वाती तासु मकरसंक्रांतिरभूत् ।  
इयं मकरसंक्रांतिर्यद्यपि अमांतमतिक्रम्य जाता तथापि रविमंडलांतमासप्रमाणेन पूर्वमासे  
एव पतिता तस्मात्संक्रांतिद्वययुक्तत्वात् मार्गपौषयुगलं क्षयाह्वयं जातं माघी अमा भौमे  
एकचत्वारिंशत् ४१ घटिकास्तस्मिन्नेव दिने षट्चत्वारिंशत् ४६ घटिका स्वाती तासु कुंभ-  
संक्रांतिरभूत् । इयमपि संक्रांतिर्यद्यपि मासमतिक्रम्य जाता तथापि मंडलांतमासप्रमाणेन  
पूर्वमासस्यैव । तस्मान्माघः शुद्धः अन्यथा मंडलांतमासानंगीकारे । न क्षयो नाधिमासः स्यान्माघो वै  
परिकीर्तित इत्येतच्छास्त्रमनर्थकं स्यात् । आर्यपक्षे तु संदेहो नास्ति यतो ब्रह्मपक्षतिथितः आर्यप-  
क्षतिथिश्चतुर्घटिकाधिका ब्रह्मपक्षसंक्रांतितः आर्यपक्षसंक्रांतिस्त्रिघटिकोना तस्मादार्यपक्षे संदेहा-  
भावः । तथा च फाल्गुनी अमा गुरौ षट्घटिकास्तास्मिन्नेव दिने पंचत्रिंश ३५ द्वटिका स्वाती तासु  
मीनसंक्रांतिर्जाता यस्मादयं फाल्गुनोऽसंक्रांतित्वाधिकः क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यथा स्यात्तदा  
वर्षमध्येऽधिमासद्वयं चेति । तस्योदाहरणं दर्शितं । यत्तु ब्रह्मपक्षे क्षयमासाधिमासनिर्णयेऽमांतं  
मासं गणयंति तैर्ब्रह्ममतं न विदितं । पौलास्तिसिद्धांते । स्फुटगत्या यदा चंद्रो रविमंडलमध्यगः ।  
तदूर्ध्वं संक्रमो भानोर्मासः स स्यान्मलिम्लुचः ॥ कालनिर्णये । संक्रमो यदि भवेद्रवेस्ततो मंडलाद्व-  
हिरनिर्गते विधौ । उच्यतेऽथ स हि संक्रमो बुधैः शुद्धमास इतरो मलिम्लुचः ॥ ललः । यदा शशी  
याति गभस्तिमंडलं दिवाकरः संक्रमणं करोत्यनु । विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुकस्तदाऽधिमासः  
कथितः स्वयंभुवा ॥ रत्नमालायां । सवितृमंडलमेति यदा शशी तदनु संक्रमणं कुरुते रविः ।  
मखमहोत्सवनाशकरस्तदा मुनिवरैर्गदितोऽधिकमासकः ॥ शार्ङ्गधरफलग्रंथे । चंद्रार्कयोस्तु विवैक्यं  
प्रतिपद्दर्शसंधिषु । तिथ्यंतात्तदुभयतो रसनाब्जोऽर्कमंडलं ॥ तन्मंडलाच्छशीगच्छेत्ततः सूर्यस्य  
संक्रमः । मासोऽसौ मलिनः प्रोक्तो न तद्धीनोऽधिकः स्मृतः ॥ पितामहः । प्रतिपद्दर्शसंधौ तु विवैक्यं  
चंद्रसूर्ययोः । जवांतरासं पष्टिघ्नं नाडिका अर्कमंडलं ॥ अत्र कलात्मकविब्रह्मणं ज्योतिःप्रकाशे ।  
दर्शात् एकैः कथितोऽत्र मासः परैः प्रदिष्टो रविमंडलांतः । मतद्वये चेद्विषसंक्रमः स्यात्स एव  
पूर्वस्य न चापरस्य ॥ पितामहः । अष्टाधिमासाः स्युर्नित्यं प्रोच्यंते फाल्गुनादयः । सौम्यपौषौ  
क्षयौ नित्यं भवेतामिति निश्चितम् ॥ क्षयो वाऽप्यधिमासो वा स्यादूर्ज इति निश्चितं । न क्षयो  
नाधिमासः स्यान्माघो वै परिकीर्तितः ॥ पंचमासास्तु वैशाखादधिमासा व्यवस्थिताः । भवंति  
चाष्टभिर्वैर्भवै ११ वाऽकनिशाकरैः १९ ॥ तथैव फाल्गुनश्चैत्र आश्विनः कार्तिकोऽधिकः । पते  
किंदैः १४१ शरांगै ६५ वा कदाचिद्रोकु १९ वत्सरैः ॥ मार्गपौषौ क्षयौ स्यातां कदाचित्कार्तिको  
भवेत् । अधिमासस्तदा ज्येष्ठो भवेन्नित्यं क्षयो यदा ॥ क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्र-  
पदत्रये । आश्विनोर्जौ सदा स्यातामादौ भाद्रपदः सकृत् ॥ यस्मिन्वर्षे कार्तिकः क्षयो भवति  
तस्मिन्वर्षे ज्येष्ठाधिमासो भवेत् । अत्र ज्येष्ठशब्देन भाद्रपदो ज्ञेयः यतः । क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नि-  
त्यं भाद्रपदत्रय इति नियमात् ॥ भाद्रपदादीनां त्रयाणां मध्ये भाद्रपदो ज्येष्ठ इति जानीयादि-

त्यर्थः । अथाधिमासक्षयमासयोः कार्याकार्याण्याह-कर्माण्यन्यगतीनि नात्र तनुयादिति । अन्यगतिर्येषां तानि । अन्यगतीनि तानि । अत्राधिमासक्षयमासयोर्न तनुयान्न विस्तारयेत् न कुर्यात् । अर्थादनन्यगतीनि कर्माण्यत्रापि कर्तव्यानीति सिद्धं । अन्यगतीनामनन्यगतीनामित्थं विचारो यानि कालनिरोधेन प्रोक्तानि तान्यनन्यगतीनि यथा ऋतौ जायामुपेयात् तत्र । ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृत इति ॥ मनुना ऋतुप्रमाणमुक्तं । अथ षोडशरात्रीणां मध्ये निघदिनान्यपहाय गच्छेत् । स ऋतुर्यदि मलमासशुद्धमासांशैर्व्याप्नोति तदा शुद्धमासांशो दोषरहिते गर्भाधानं कुर्यात् । असंभवे मलमासे एव कुर्यात् । तथा चोक्तं । अनन्यगतिकं कुर्यान्नित्यं नैमित्तिकं तथा ॥ एवमन्यानपि विचार्य कुर्यात् । गर्भाधानाद्यन्नप्राशनांतकर्मसु मलमासादीनां निषेधो नास्तीति संस्कारप्रकरणे उक्तमस्ति । गर्भाद्यन्नाशनांतेषु न गुरुसितयोर्बाल्यवाङ्मयं च मौढ्यमित्यादि । तथा च गर्गः । अश्रयाधानं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥ गमनं देवतीर्थानां विवाहमभिषेचनं । यानं च गृहकर्मणि मलमासे विवर्जयेदिति ॥ तथा च सूर्योदये । आवश्यकं मासाख्यं मलमासमृताब्दिकं । तीर्थभ-च्छाययोः श्राद्धं मघानंगपितृक्रियां ॥ कुर्यान्मलिम्लुचे वर्षे मध्ये चेत्सर्वदाश्रिकं । तत्र स्यान्मासिकं मृत्युं मासात्स द्वादशो यदि ॥ प्रेतक्रियां समाप्यात्र कुर्वीताभ्युदयं तथा । श्यामाकाग्रयणं कृच्छ्रे न स्याद्वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ अन्यच्च । काम्यारंभं वृषोत्सर्गं पर्वोत्सवमुपाकृतिं । मेखलाचौल-माणल्याग्न्याधानोद्यापनक्रियाः ॥ वेदव्रतमहादानाभिषेकान् वर्धमानकं । इष्टापूर्तं तथा यस्य विध्यलोपोऽन्यदाकृतौ ॥ तत्सर्वमष्टकादन्यदधिमासे विवर्जयेत् । सूतकेऽपि च कर्तव्यं स्नानाद्यं राहुदर्शनं इति ॥ स्मृतिरत्नावल्यां । प्रवृत्तं मलमासात्प्राप्यत्काम्यमसमापितं । आगते मल-मासेऽपि तत्समाप्यमसंशयमिति ॥ अथ क्षयमासे जन्मादौ मासज्ञानमाह-यजन्मेति । जन्म च-मृत्युश्च जन्ममृत्यु यस्य जन्ममृत्यु यजन्ममृत्यु क्षये क्षयमासि भवतस्तस्य मासौ तिथिखंडयोर्ज्ञातव्यौ तिथेः प्रथमेऽर्थे जन्म वा मृत्युर्वा भवति तदाप्रथममासो द्वितीयेऽर्थे द्वितीयो मासो ज्ञेयः । तथा च बृहत्कालनिर्णये । तिथ्यर्थे प्रथमे पूर्वा द्वितीयेऽर्थे तथोत्तरः । मासाविति बुधैर्ज्ञेयौ क्षयमासस्य मध्यगाविति ॥ अथ मलमासः कुत्र कुत्र गण्यत इत्याह-चयमुख इति । चयो गर्भाधानादेवृद्धिः गर्भस्य कलिलं घनांकुरास्थिचर्मादि चयः प्रतिमासे भवति घनादीनां दिनकलांतरादि चयस्तदादिके प्रेष्ये भृत्ये वेतनदानार्थमधिको मासो गण्यते । तथा च यमः । गर्भे वार्षिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके । सर्पिंडीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेदिति ॥ पाठांतरव्याख्यानं ॥ अधियुगे पूर्वोऽधिमाः प्राकृत इति । प्राकृत एकस्मिन् वर्षेऽधियुगेऽधिकद्वये सति पूर्वोऽधिमाः प्रथमोऽधिमासः प्राकृतमासवज्ञेयः । अधिकवन्न त्याज्यः । अर्थादुत्तरोऽधिकमासो मलमासः । तदुक्तं । मासद्वयेऽब्दमध्ये च संक्रमो न भवेद्यदा । प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुच इति ॥ २ ॥ ॥ इति स्वकृतमुहूर्तमार्तंडटीकायां मार्तंडवल्लभायां संक्रांति-प्रकरणं समाप्तम् ॥

टीकार्थ—आतां संक्रांतीचा प्रसंग चालला आहे ह्यापुन अधिकमास आणि क्षयमास ह्यांचें लक्षण व तेथें कर्तव्य आणि अकर्तव्य ह्यांचा निर्णय, क्षय मासांत जन्ममरणादि झाले असता त्याचें मासज्ञान एका वृत्तानें सांगितों-ब्रह्म इत्यादि सिद्धांत कर्त्यांनीं सूर्यमंडलांत असा चांद्रमास सांगितला आहे. दुसऱ्या कित्येकांनीं अमांत असा चांद्रमास सांगितला आहे. ह्यांचा अर्थ असा आहे कीं, अमावास्येच्या शेवटापासून तो दुसऱ्या अमावास्येच्या शेवटापर्यंत जो महिना झाला त्याला अमांत मास असें सांगितलें आहे. अमावास्येचे शेवटीं सूर्यमंडल आणि चंद्रमंडल ह्या दोघांचा योग होतो तो सहा घटिकापर्यंत तसाच योग राहतो. नंतर सहा घटिकांनीं त्या दोघांचा वियोग होतो. त्या वियोगापासून तो दुसरा वियोग येईपर्यंत जो मास असतो त्याला रविमंडलांत असें नांव आहे. तसा मास ब्रह्मादि सिद्धांतकर्त्यांनीं क्षयमास आणि अधिकमास ह्यांचा निर्णय करण्याकरितां घेतला आहे. दुसऱ्या कित्येक आचार्यांनीं अमांतमास घेतला आहे. आतां जरी हा सूर्यग्रहणांत मध्य ग्रहणकालानंतर मोक्ष स्थितिकाल साहा घटिके-पेक्षां कमी असतो असें दिसून येतें. तथापि सूक्ष्म दृष्टि अशा पूर्वचार्यांनीं रस झ. ६ घटिकात्मक काल हा सूर्यमंडलांत असें मानिलें आहे. त्याविषयीं आगम हाच प्रमाण आहे. पैकीं पूर्वीं सांगितलेल्या लक्षणाच्या मासांत संक्रमण नसतें ह्यापुन तो असंक्रमण झाला ह्यास्तव त्याला अधिक मास ह्यावावा. ज्या महिन्यांत दोन संक्रांति असतात, त्याला क्षय-

मासं ह्यणतात. ह्याचें उदाहरण ब्रह्ममताला अनुसरणाऱ्या श्री भास्कराचार्यानं सिद्धांतशिरोमणि ग्रंथत दाखविलें आहे. तें असें कीं, संक्रांति नसलेला जो मास असतो त्याला अधिकमास असें ह्यणतात. आणि ज्यांत दोन संक्रांति असतात त्याला क्षयमास असें ह्यणतात. क्षयमास कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष ह्या तीन महिन्यांतच होतो, दुसऱ्या कोणत्याही महिन्यांत होत नाही. त्या वेळेस त्या वर्षीत अधिकमास दोन होतात. अग्नि ह्य० ४ अग्नि ह्य० ७ नंद ह्य० ९ बरोबर ९७४ शकामध्ये तिथि ह्य० १५ ईश ह्य० ११ बरोबर १११५ पुढें होणाऱ्या शकामध्ये, आणि अंग ह्य० ६ अक्ष ह्य० ४ सूर्य ह्य० १२ बरोबर १२४६ शकामध्ये, गज ह्य० ८ अग्नि ह्य० ७ अग्नि ह्य० ३ भू ह्य० १ बरोबर १३७८ शकामध्ये, तसाच बहुतेक कु ह्य० १ वेद ह्य० ४ इंद्र ह्य० १ बरोबर १४१ वर्षांनीं आणि कोठें कोठें गो ह्य० ९ कु ह्य० १ बरोबर १९ वर्षांनीं होत असतो. ह्यावरून श्री भास्कराचार्यानं ९७४ शकानंतर १११५ शकाचे पूर्वी सिद्धांतशिरोमणि नामक ग्रंथ रचिला आहे. ह्यणून हाटलें आहे कीं, ९७४ ह्या शकाला गेलेला शक असें सांगितलें आणि १११५ ह्या शकाला पुढें येणारा शक असें सांगितलें आहे. पैकीं १३७८ शकामध्ये रविमंडलांत मास प्रमाण घेतल्याने क्षयमास आणि अधिक असे दोन दिसतात. आश्विन महिन्याची अमावास्या बुधवारी ४४ घटिका होती त्याच दिवशीं ३७ घटिका स्वाती नक्षत्र होतें त्या नक्षत्रावर तुला संक्रांति झाली होती. तो आश्विन महिना तुला संक्रांति युक्त असल्यामुळें शुद्ध महिना समजावा. आणि कार्तिकी अमावास्या शुक्रवारी १७ घटिका होती आणि त्याच दिवशीं ३७ घटिका स्वाती नक्षत्र होतें त्या नक्षत्रावर वृश्चिक संक्रांति झाली होती ह. कार्तिक महिना संक्रांति रहित असल्यामुळें अधिक मास समजावा. दुसरा कार्तिक महिना वृश्चिक संक्रांतीनें युक्त असल्यामुळें तो शुद्ध आहे. कारण त्यांतील अमावास्या शनिवारी ४७ घटिका होती आणि त्याच दिवशीं ५९ घटिका स्वाती नक्षत्र होतें त्यावर धनुःसंक्रांति झाली होती. धनुःसंक्रांति ही मार्गशीर्ष महिन्यांत झाली होती त्या दिवशीं सोमवार होता. १४॥१ घटिका अमावास्या होती त्या दिवशींच १९ घटिका स्वाती नक्षत्र होतें त्यावर मकरसंक्रांति झाली होती. ही मकरसंक्रांति जरी अमांताचें उल्लंघन करून झालेली आहे तथापि रविमंडलांत प्रमाणानें पहिल्या महिन्यांतच पडते ह्यणून दोन संक्रांतीनीं युक्त असल्या कारणानें मार्गशीर्ष आणि पौष हे दोन महिने क्षय संज्ञक झाले. माघाची अमावास्या मंगळवारी ४१ घटिका होती. त्याच दिवशीं ४६ घटिका स्वाती नक्षत्र होतें त्या नक्षत्रावर कुंभ संक्रांति झाली होती. हीहि संक्रांति जरी मास आक्रमण करून झालेली असेल तरी सुद्धा मंडलांत प्रमाणानें पहिल्या महिन्यांतच समजावी. ह्यणून माघ महिना हा शुद्ध समजावा. असें न घेतलें ह्यणजे मंडलांत मासाचा स्वीकार न केला तर क्षय मास आणि अधिक मास हा माघ महिना होणार नाही हें शास्त्र अनर्थक होईल. आर्य पक्षांत तर संदेह नाही कारण तो ब्रह्मपक्षाच्या तिथीपक्षां आर्य पक्षाची तिथि ४ घटिका अधिक आहे. आणि ब्रह्मपक्ष संक्रांतीपक्षां आर्यपक्ष संक्रांति ३ घटिकांनीं कमी आहे. ह्यणून आर्यपक्षां संदेह नाही. तेंच असें आहे कीं, गुरुवारी फाल्गुनी अमावास्या ६ घटिका होती त्याच दिवशीं ३५ घटिका स्वाती नक्षत्र होतें त्या नक्षत्रावर मीन संक्रांति होती ह्यणून हा फाल्गुन महिना संक्रांति रहित असल्यामुळें अधिक मास जाणावा. क्षय मास तर कार्तिकादि तीन महिन्यांतच होतो दुसऱ्या महिन्यांत होत नाही आणि त्या वर्षी अधिक मास दोन असतात. त्याचें उदाहरण दाखविलें आहे. कितीएक असें ह्यणतात कीं, ब्रह्मपक्षामध्ये क्षयमास आणि अधिकमास ह्यांचा निर्णय अमांतमास घेऊन करतां येतो व तसा ते करितात परंतु त्यांनीं ब्रह्मपक्षाचें मत जाणिलें नाही असें समजावें. पौलस्ति सिद्धांतामध्ये सांगितलें आहे कीं, ज्या वेळेस आपल्या स्पष्ट गतीनें चालणारा चंद्र सूर्यमंडलाचे मध्यभागीं येतो त्या नंतर सूर्याची संक्रांति होते तो मलमास ह्यणजे अधिक मास समजावा. कालानिर्णय ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, सूर्यमंडलाच्या बाहेर चंद्र न निघाला असून त्या सूर्याची संक्रांति जर होईल तर त्याला शुद्ध मास असें समजावें आणि त्याहून दुसरा जो मास त्याला मलमास जाणावें, लक्ष असें सांगतों कीं, ज्या वेळेस चंद्र हा सूर्य मंडळीं जातो आणि त्या वेळीं सूर्य हा संक्रमण करितो ह्या मासाला अधिक मास ह्य० मलमास असें ह्यागवें त्या महिन्यांत विवाह, यज्ञ, उत्सव हे कर्तव्य नयेत असें ब्रह्मदेवाने सांगितलें आहे. रत्नमाला ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, ज्या वेळीं चंद्र हा सूर्य मंडळीं जातो त्यानंतर जर रवि संक्रमण करील तर तो मास अधिक मास समजावा असें श्रेष्ठ मुनीनीं सांगितलें आहे. त्यांत यज्ञ, उत्सव हे केले असता त्यांचा नाश होतो. शाङ्गधर फलग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, चंद्र आणि सूर्य ह्या दोघांचें बिंब हें ज्या वेळेस एक होतें तें प्रतिपदा आणि अमावास्या ह्यांच्या संघीमध्ये होत असतें ह्यणजे अमावास्या तिथीचा अंत आणि प्रतिपदेचा आरंभ ह्या दोहोंकडील साहा साहा घटिका पर्यंत सूर्यमंडळीं चंद्र जात असतो नंतर सूर्याचा संक्रम होतो त्या वेळीं जो मास असतो त्याला मलिनमास ह्यणू नये व त्याहून हीन जो मास असतो त्याला अधिकमास असें ह्यणतात. पितामह सांगतो कीं, प्रतिपदा आणि अमावास्या ह्या दोहोंच्या संघीमध्ये चंद्र आणि सूर्य ह्या दोघां बिंबाचें ऐक्य होतें ह्यणजे मोठ्या वेगानें तें विषेक्य होतें येथें कलात्मक बिंबाचें ऐक्य होतें असें ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत



सांगितलें आहे. ह्या ठिकाणीं कित्येकांचे असें मत आहे कीं, दर्शात असा एक मास सांगितला आहे. दुसऱ्याचे मतानें रविमंडलांत असा एक मास सांगितला आहे. दोन्ही मतानें रवीचा संक्रम होतो तोच पूर्वाचा व पराचा समजावा. पितामह असें सांगतो कीं, फाल्गुन इत्यादि आठ मास हे अधिक मास सांगितले आहेत, सौम्य आणि पौष हे दोन मास नेहेमी क्षयमास होतात असा निश्चय आहे. कार्तिक महिना हा अधिक आणि क्षय ह्यांपैकी कोणताही मास होतो. परंतु माघ मास हा अधिक मास आणि क्षयमास असा कधीच होत नाही. वैशाखापासून पांच महिने हे अधिक मास होतात. असा निश्चय आहे. ते ८ आठ वर्षांनीं, ११ अकरा वर्षांनीं अथवा १९ एकोणीस वर्षांनीं होत असतात. त्याप्रमाणेंच फाल्गुन, चैत्र, आश्विन, कार्तिक इतके महिने १४१ वर्षांनीं, ६५ वर्षांनीं अथवा कदाचित् १९ वर्षांनीं अधिक मास येतात. मार्गशीर्ष आणि पौष हे क्षयमास होत असतात कदाचित् कार्तिक मासही क्षयमास होतो. ज्यावेळेस क्षयमास येतो त्यावेळेस ज्येष्ठ हा अधिक मास असतो. नेहेमी भाद्रपदादि तीन महिन्यांमध्ये क्षयमासाचे पूर्वी अधिक मास असतो. आश्विन आणि कार्तिक हे दोन महिने नेहेमी क्षय होत असतात आणि भाद्रपद हा कदाचित् होतो. ज्या वर्षी कार्तिक मास हा क्षय मास असतो त्यावर्षी ज्येष्ठ मास हा अधिक मास होतो. येथे ज्येष्ठ ह्या शब्दानें भाद्रपद हा महिना व्याख्याचा आहे. कारण कीं, क्षयमासाचे पूर्वी अधिक मास होतो तो भाद्रपदादि तीन महिन्यांत होतो असा वर नियम लिहिला आहे. भाद्रपद इत्यादि तीन महिन्यांमध्ये भाद्रपद हा ज्येष्ठ समजावा. आतां अधिक मास आणि क्षय मास ह्या दोन महिन्यांमध्ये कोणतें कर्तव्य आहे व कोणतें कर्तव्य नाही तें सांगतों—ह्या दोन महिन्यांमध्ये जीं कर्मे केलीच पाहिजेत ह्यांजें राहूं शकत नाहीत अशीं कर्मे करावीत. जीं कर्मे राहूं शकतात ह्यांजें हे महिने संपल्यानंतर करावयास हरकत नाही अशीं कर्मे ह्या दोन महिन्यांत करूं नयेत. दुसऱ्या वेळीं होणारी व त्याच वेळीं केली पाहिजेत अशीं कर्मे ह्यांजें ज्या कर्मांना कालाचा अवाधि नाही अशीं कर्मे त्या वेळेस केली पाहिजेत जसें कीं, ऋतुकाळीं भायें बरोबर संग करावा असें शास्त्र आहे आणि तो ऋतुकाळ तर सोळा रात्रपर्यंत असतो असें मनून सांगितलें आहे. ह्यापुन त्या सोळा रात्रीमध्ये नियं दिवस सोडून गमन करावें तो ऋतु काळ जर शुद्ध मास आणि मलमास ह्यांच्या अंशांनीं व्यापून राहिला असेल तर शुद्ध महिन्याच्या अंशीं दोषराहित अशा दिवसावर गर्भाधान करावें. तसा शुद्धमासाचा अंश न सांपडेल तर मलमासांतच गर्भाधान करावें. तेंच सांगितलें आहे कीं, ज्या कर्मांला दुसऱ्या प्रकारची गति नसते असें कर्म नित्य असो अथवा नैमित्तिक असो त्याचा विचार करून करावें. अशाच रीतीनें दुसरीही कर्मे जीं असतात त्यांचा विचार करून तीं करावीत. गर्भाधानापासून तों अन्नप्राशनपर्यंत जीं कर्मे आहेत तीं कर्मे करण्यास मलमासाचा दोष नाही असें संस्कार प्रकरणांत सांगितलें आहे. त्यावेळेस असें सांगितलें आहे कीं, गर्भाधानापासून तों अन्नप्राशनापर्यंत संस्कार करण्याकरितां गुरु आणि शुक्ल ह्यांच्या अस्ताचा दोष नाही वगैरे सांगितलें आहे. तेंच गर्ग सांगतो कीं, मलमासांत अग्नीचें आधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रतें, उपनयन, वृषोत्सर्ग, चूडाकरण, देव आणि तीर्थ ह्याकरितां जाणें, विवाह, अभिषेक, यान, गृहकर्म इतकीं कृत्यें वज्य करावीत. तेंच सूर्योदय ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, मासामध्ये केलेंच पाहिजे असें जें कर्म; मासिक, वार्षिक इत्यादि श्राद्ध, तीर्थावर गजच्छाया पर्वानिमित्त करावयाचें श्राद्ध, मघावरचें कृत्य, चतुर्दशीचें कृत्य, पितृक्रिया, निमित्तिक कार्ये इतकीं कार्ये मलमासांतही करावीत. त्या वर्षी होणारें श्राद्ध त्या महिन्यांत आलें तर करावें. त्या महिन्यांत कदाचित् मरण झालें तर बाराव्या दिवसाचें कृत्य ह्यांजें पहिल्या दिवसापासून बारा दिवसापर्यंतचें प्रेतकृत्य समाप्त करावें. आणि नंतर मंगलकार्ये करावें. श्यामाकाश्रयण आणि कृच्छ्र हें वज्य होत नाही. ह्याशिवाय दुसरीं कर्मे वज्य करावीत. दुसरें असें कीं, काम्यकर्मांचा आरंभ, वृषोत्सर्ग, पर्वोत्सर्ग, उत्सव, उपाकर्म, मेखलाबंधन, चौलकरण, मांगल्य ह्यो विवाह, अग्नीचें आधान, उद्यापन क्रिया, वेदग्रहण, महादान, अभिषेक, वर्धमानक, इष्टापूर्त, ज्याच्या विधीचा लोप होत नाही असें कर्तव्यकर्म हें सर्व मलमासांत वज्य करावें आणि अष्टक श्राद्धाशिवाय दुसरें वज्य करावें. सूतक असतांही ज्ञान इत्यादि करावें. ग्रहणाबद्दलही स्नान इत्यादि करावें. स्मृतिरत्नावली ग्रंथांत सांगितलें आहे कीं, मलमास लागण्याचे पूर्वी जें काम्यकर्म आरंभिलें असेल तें सर्व कर्म मलमास आला तरी त्यामध्ये पुरें करावें. आतां क्षयमास आला असतां जन्म इत्यादिकांविषयीं महिना कोणता तें सांगतों—ज्याचें जन्म आणि मरण क्षयमासांत झालें असेल त्याचे महिने, आणि तिथि खंडांवरून जाणावेत. ह्यांजें तिथीच्या पहिल्या अर्धांत जन्म व मरण झालें असेल तर पहिला मास समजावा. तिथीच्या दुसऱ्या अर्धांत जन्म व मरण झालें असेल तर दुसरा मास जाणावा. तसेंच वृहत्काल निर्णयांत असें सांगितलें आहे कीं, तिथीच्या पहिल्या अर्धांत जन्म आणि मरण झालें असेल तर पहिला मास समजावा. तिथीच्या दुसऱ्या अर्धांत जन्म आणि मरण हीं झालीं असतील तर दुसरा महिना समजावा. ह्याप्रमाणें क्षयमासाचे मध्यभागीं असेल तरही तसेंच समजावें. आतां मलमासाचा असा विचार कीं, तो कोठें कोठें घरावा तें सांगतां.— गर्भवती स्त्रियांचा जो गर्भ वाढतो त्या गर्भाळ, पैशाचे व्याजाबद्दल, चाकराल पगार



धांव्याचा ह्याबद्दल अधिक महिना धरावा. तेंच यम सांगतो कीं, गर्भ, व्याज, चाकराचा पगार, मासिक श्राद्ध, सर्पिंडी करण, नित्यश्राद्ध इतक्या कार्यांस अधिक मास वर्ज्य करूं नये. अर्थात् अधिक मास धरावा. दुसऱ्या पाठाचें असें व्याख्यान आहे कीं, एका वर्षांत दोन अधिक मास आले असतां पहिला मास धरावा. तेंच सांगितलें आहे कीं, एका वर्षांत ज्या वेळीं दोन वेळां संक्रांति होणार नाही, त्या वेळेस पहिला मास नेहेमीचा मास समजावा आणि दुसरा मास मलमास समजावा ॥ २ ॥ अशा रीतीने आपण केलेल्या मार्तंडवल्गभा नामक टीकेचे संक्रांति प्रकरण संपलें ॥

॥ इति संक्रांति प्रकरण समाप्त ॥

## ॥ अलंकार प्रकरणम् ॥ १३ ॥

ग्रंथकरणाच्याचा वंश आणि त्याचें राहण्याचें स्थान.

श्रीमत्कौशिकपावनो हरिपदद्वंद्वार्पितात्मा हरिः ।

तज्जोऽनंत इलासुरार्चितगुणो नारायणस्तत्सुतः ॥

ख्यातं देवगिरेः शिवालयमुदक् तस्मादुदक् टापर- ।

ग्रामस्तद्वसतिर्मुहूर्तभवनं मार्तण्डमत्राकरोत् ॥ १ ॥

श्लोकार्थ—श्रीमान् कौशिकगोत्रांत उत्पन्न झालेला पुरुषांला पवित्र करणारा व विष्णूच्या पादयुगावर मन अर्पण केलेला, असा हरि नामक होता. त्याचा पुत्र, ब्राह्मणांनीं गुण वर्णन करण्यासारखा अनंत नामक होता. त्या अनंताचा पुत्र नारायण हा या ग्रंथाचा कर्ता होय. तो देवगिरीच्या उत्तरेस पुराण प्रसिद्ध घृणेश्वर ज्योतिर्लिंगाचें देवालय आहे, त्याच्या उत्तरेस टापर गांव आहे, तेथें रहात असे, त्या नारायणांने ज्यांत मुहूर्ताचा संग्रह आहे असा हा मुहूर्तमार्तंड ग्रंथ केला ॥ १ ॥

अथालंकारमाह—श्रीमत्कौशिकेति । कुशिकस्य गोत्रापत्यानि कौशिकाः श्रीमंतश्च ते कौशिकाश्च ते तथा तान् पावयति पवित्रीकरोतीति तथा । हरिपदद्वंद्वार्पितात्मा हरिर्वासुदेवः तस्य पदद्वंद्वं चरणयुगं तस्मिन्नर्पित आत्माऽतःकरणं येन स तथा । आत्मा देहे धृतौ जीवे इत्यभिधानात् । एवंविधो यो हरिस्तज्जस्तस्माज्जातो योऽनंतनामा किलक्षण इलासुरार्चितगुण इला पृथ्वी तस्यां सुरा देवा ब्राह्मणाः तैरर्चिताः पूजिता गुणाः शमदमतपोदानाध्ययनादिगुणा यस्य स तथा । जितेंद्रियो वैधनिधिः स्मृतिज्ञो दृढव्रतो यज्ञकृदन्नदातेत्यादिगुणसंपन्न इत्यर्थः । तत्सुतो नारायणो मुहूर्तभवनं मुहूर्तानां भवनं सन्न मार्तंडं मार्तंडनाम ग्रंथमकरोत् । अत्र कुत्र देवगिरेः सकाशात् उदक् उत्तरस्यां दिशि यत् ख्यातं पुराणप्रसिद्धं शिवालयं घृणेशशिवालयमिति प्रसिद्धं ज्योतिर्लिंगस्थानमस्ति । तस्माच्छिवालयमुदगुत्तरस्यां दिशि यः टापरग्रामोऽस्ति तत्र टापरग्रामेऽकरोदित्यर्थः । किलक्षणो नारायणः तद्वसतिः तस्मिन् टापरग्रामे वसतिर्वासो यस्य स तथेति ॥ १ ॥

टीकार्थ—आतां अलंकार सांगतो—श्रीमान् अर्शी कुशिक गोत्रांतील जीं अपत्ये आहेत त्यांना पवित्र करणारा, तसाच ज्यांनी आपला आत्मा ह्या अंतःकरण श्रीहरिवासुदेवाच्या चरणद्वंद्वकडे लावले आहे असा, आत्मा हा शब्द देह, धृति, जीव ह्यांचा वाचक आहे. जो हरि नावाचा हा ग्रंथकाराचा आज्ञा आहे त्या हरीपासून ज्याचे गुण पृथ्वी वरच्या देवांनीं ह्मणजे ब्राह्मणांनीं पूजित केले आहेत असा, शम, दम, तप, दान, अध्ययन इत्यादि गुणांनीं युक्त असा, वैद्याचा केवळ निधि रूपी असा, दृढ स्मृतिचा, यज्ञ करणारा, दातृत्वादि गुणांनीं संपन्न असा होता. हा अनंत नावाचा ग्रंथकाराचा बाप होय. त्याचा मुलगा नारायण ह्यानें मुहूर्तांचें घरच असा हा मार्तंड ग्रंथ केला आहे. त्याचें राहण्याचें स्थान सांगतो—देवगिरीच्या ह्मणजे लोकांतील प्रसिद्ध दौलताबादेच्या जवळ उत्तरदिशेकडे वेरळ नावाचें स्थान आहे तेथें पुराण प्रसिद्ध घृणेश्वर नावाचें ज्योतिर्लिंगाचे मंदिर आहे. त्या घृणेश्वराचे उत्तरेस टापर ह्या नावाचा एक गांव आहे त्या गावीं रहाणारा हा नारायणपंडित नावाचा होता, तेथें राहून हा मुहूर्तमार्तंड ग्रंथ रचिला आहे ॥ १ ॥

ग्रंथाचे पठनाचें फल आणि श्लोकसंख्या.

यः षष्ठ्या युतशतवृत्तबद्धमेनं मार्तंडं पठति नरः स विश्वपूज्यः ॥

बह्वायुःसुखधनपुत्रमित्रभृत्यान्संप्राप्नोत्यविकलधीश्च तीर्थसिद्धिम् ॥ २ ॥

श्लोकार्थ—जो पुरुष १६० श्लोकांनी रचिलेल्या ह्या मुहूर्तमार्तंड नामक ग्रंथाचें पठन करितो तो जगांत पूज्य होतो, आणि बहुत आयुष्य, सुख, धन, पुत्र, मित्र, सेवक हे त्याला प्राप्त होतात व मुहूर्ताविषयी बुद्धि प्रवीण होऊन या एका ग्रंथाच्या योगानें अनेक शास्त्रांची सिद्धि होते ॥ २ ॥

अथास्य पठने फलश्रुति तथा ग्रंथे वृत्तसंख्यां प्रहर्षिण्याऽऽह—यः षष्ठ्येति । षष्ठ्या युतं शतं १६०तन्मितानि वृत्तानि तैर्बद्धः कृतः योऽयं मार्तंडः तमेनं मार्तंडं यो नरः पठति स विश्वपूज्यो भवति । न केवलं विश्वपूज्यो भवति । अपि तु बह्वायुःसुखधनपुत्रमित्रभृत्याः संप्राप्नोति मुहूर्तदानात्साधितकार्यस्य विश्वस्य पूज्यो भवतीति युक्तम् । जनानां यथार्थमुहूर्तदानात् कार्यसिद्धिजनितपुण्येन बह्वायुरारोग्यादीनि संप्राप्नोतीति युक्तं । च परमविकलधीर्भवति न विकला धीर्बुद्धिर्यस्येति तथा । अत्र मुहूर्तमार्तंडे यद्गर्भाधानादिकमुक्तं तत्रान्यबहुसंहिताग्रंथानपेक्षत्वादविकलधीत्वमुक्तं । अत एव तीर्थसिद्धिं प्राप्नोति तीर्थं शास्त्रं तस्य सिद्धिस्तामल्पग्रंथेन बह्वार्थसिद्धेः । यद्वा तीर्थं गुरुः तस्य सिद्धिः शास्त्रोपदेशलक्षणा तां । यद्वा तीर्थं यागस्तेन कृत्वा यागसुखादिलक्षणा सिद्धिस्तां प्राप्नोति । तीर्थं शास्त्राध्वरे क्षेत्रोपायोपाध्यायमंत्रिष्विति विश्वः ॥२॥

टीकार्थ—आतां ह्या ग्रंथाचे पठणाचें फल आणि ग्रंथांत किती वृत्तें आहेत तें प्रहर्षिणी वृत्तानें सांगतों—शंभरांनी युक्त साठ झणजे १६० श्लोक आहेत त्यांनीं हा ग्रंथ रचिला आहे ह्याचें जो पठण करितो तो जगामध्यें पूज्य होतो नुसता जगत्पूज्य होतो एवढेंच नाही तर दीर्घायु, सुख, धन, पुत्र, मित्र, चाकर इत्यादिकांनीं संपन्न होतो झणजे मुहूर्त दिल्यापासून कार्य झालें असतां जगमान्य होणें सहजच आहे व जसा आहे तसा योग्य मुहूर्त सांगितल्यानें शरीर सिद्धि पासून झालेल्या पुण्यानें चिरायु, आरोग्य इत्यादि बहुत गुण प्राप्त होतात. आणि बुद्धि फारच तीक्ष्ण होते तीमध्यें कोणताही विकलपणा रहात नाही. येथें जे गर्भाधानादिकांचे मुहूर्त सांगितले आहेत त्याविषयी दुसऱ्या पुष्कळ असलेल्या संहितादिक ग्रंथांची अपेक्षा न ठेवतां स्वच्छ आणि स्पष्ट रीतीनें निर्णय करून सांगितल्यामुळें बुद्धीमध्ये कोणत्याही प्रकारचा संशय रहात नाही. झणूनच तीर्थ झ० शास्त्राची सिद्धि होते झणजे थोडा अल्प ग्रंथ शिकल्यानें पुष्कळ मोठी अर्थाची सिद्धि होते. अथवा तीर्थ झ० गुरु त्याची सिद्धि झ० तो शिष्यांनां शिकवितो त्या द्वारानें सिद्धि होते. किंवा तीर्थ झ० यज्ञ त्याची सिद्धि होते झ० यज्ञ केल्यापासून जी कार्ये सिद्धि व्हावयाची ती सिद्धि ह्या ग्रंथानें होते, कारण तीर्थ ह्याचे अर्थ शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाध्याय, मंत्री इतके आहेत ॥ २ ॥

ग्रंथाच्या उत्पत्तीचा काळ, आणि प्रार्थना.

त्र्यंकेद्रप्रमिते वर्षे शालिवाहनजन्मतः ॥

कृतस्तपसि मार्तंडोऽयमलं जयतूद्रतः ॥ ३ ॥

पूर्ववाक्यार्थमादाय ग्रंथोऽयं रचितो लघुः ॥

पाठनार्थमशक्तानामंगीकार्यो बुधैर्मुदा ॥ ४ ॥

श्लोकार्थ—शालिवाहनाच्या जन्मापासून १४९३ ह्या वर्षांत माघ महिन्यांत मुहूर्तमार्तंड केला. हा नवीन रचलेला ग्रंथ बहुत जय पावो ॥ ३॥ पूर्वी ऋषींनीं केलेल्या मोठ्या ग्रंथांतील वाक्यांचा अर्थ घेऊन, अशक्तांनीं पठन करण्याकरितां हा लहान ग्रंथ रचिला आहे. ह्याचा विद्वज्जनांनीं प्रीतीनें स्वीकार करावा ॥ ४ ॥

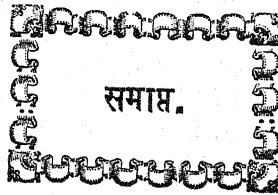
अथ ग्रंथस्याशिषमनुष्टुभाऽऽह—त्र्यंकेति । शालिवाहनजन्मतः त्र्यंकेद्र १४९३ प्रमिते वर्षे तपसि माघे मार्तंडो मुहूर्तमार्तंडः कृतः । नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणं । अयं मुहूर्तमार्तंडोऽलमतिशयेन जयतु । यद्वा यमलं मार्तंडयुग्ममुद्रमुदयं प्राप्तं जयतु सर्वोत्कर्षेणाऽस्तु ॥ ३ ॥ अथैतद्ग्रंथांगीकारार्थं बुधप्रार्थना—पूर्ववाक्यार्थमिति । सुगमम् ॥ ४ ॥ ॥ इति मुहूर्तमार्तंडव्याख्या समाप्ता ॥

टीकार्थ-या ग्रंथाचा आशीर्वाद अनुष्ठानां सांगतो- शालिवाहन शकापासून त्रि ह्य० ३ अंक ह्य० ९ इंद्र ह्य० १४ बरोबर १४९३ ह्या वर्षी तप ह्य० माघ महिन्यांत हा मुहूर्तमार्तंड ग्रंथ केला आहे. मार्तंड असा नावाचा एकदेश घेतल्यानेही संपूर्ण नावाचे ह्य० मुहूर्तमार्तंड असे ग्रहण करावे. हा ग्रंथ अत्यंत जय पावो "मार्तंडः अयं अलं" असा पदच्छेद करून हा अर्थ सांगितला आहे. 'मार्तंडः यमलं' अशी दोन पदे करून हा मुहूर्तमार्तंड आणि टीका हे युग्म उदय पावो. ह्य० सर्व प्रकारांनी ह्याचा उत्कर्ष होवो ॥ ३ ॥ पूर्वीच्या वाक्याचा अर्थ घेऊन हा लहानसा ग्रंथ तयार केला आहे. कारण मोठ्या ग्रंथाचे पठण आणि पाठण करण्यास जे असमर्थ असतील त्यांनी आनंदाने हा ग्रंथ स्वीकारावा ॥ ४ ॥

आसीत्सासमणूरनामनगरे श्रीकौशिकस्यान्वयेऽनंतो वाजसनेयिपूज्यचरणो माभ्यंदिनिया-  
ग्रणीः ॥ कृष्णस्तत्तनयः श्रुतिस्मृतिविदामग्रेसर्रेज्यो हरिस्तत्पुत्रः श्रुतिवित्तदात्मजवरोऽनंतो-  
ऽग्निहोत्री गुरुः ॥ १ ॥ तत्पुत्रस्तदनुगृहात्तधिषणो नारायणप्रापरग्रामे शिष्यगणेच्छया निजकृतग्रंथस्य  
टीकां स्फुटाम् ॥ चक्रेऽस्यां कृपया परोपकृतये शोध्यं दुरुक्तं बुधैर्मादक्षस्य विलोक्य धाष्टर्यं मापि  
ते कुप्यंतु नो सज्जनाः ॥ २ ॥ सुखनिधिपुरुषार्थक्षमा १४२४ समाभिः समाभिः परिमितशककाले  
जातमार्तंडटीकाम् ॥ लिखति पठति त्रिप्रः सोऽत्र भूयाद्धरिण्यां सुखनिधिपुरुषार्थक्षमाक्षमावान्  
क्षमावान् ॥ ३ ॥ ॥ इतिस्वकृतमुहूर्तमार्तंडटीका मार्तंडवल्लभाख्या समाप्ता ॥

अर्थ-सासमणूर नावाच्या शहरामध्ये श्रीकौशिकाच्या वंशांत अनंत नावाचा पंडित होता तो वाजसनेयिलोकांकडून पूज्य असा असे आणि तो माध्यंदिन लोकांचा अग्रेसर असे, त्याचा पुत्र कृष्ण नावाचा होता. तो श्रुति आणि स्मृति जाण-  
णाऱ्यांचा मोठा अग्रेसर होता, त्याचा मुलगा हरि नावाचा होता, तो वेद जाणणारा होता त्याचा मुलगा अनंत नावाचा  
अग्निहोत्री गुरु असा होता ॥ १ ॥ त्याचा पुत्र त्याच्याच अनुग्रहाने विद्या संपन्न होऊन बुद्धिवान झालेला जो नारायण नावाचा  
पंडित होता त्याने यापर नावाच्या गावी शिष्यांच्या इच्छेस्तव आपण केलेल्या मुहूर्तमार्तंड ग्रंथाची स्पष्ट टीकाही आपणच  
केली आहे. ह्या टीकेत जे काही अशुद्ध असेल ते विद्वानांनी शुद्ध करावे आणि माझ्या सारख्याने धाष्टर्य करून हा जो  
ग्रंथ तयार केला आहे त्याबद्दल विद्वानांनी माझ्यावर क्रोध करू नये ॥ २ ॥ सुख ह्य० ४ निधि ह्य० ९ पुरुषार्थ ह्य० ४ क्षमा  
ह्य० १ ह्य० १४९४ शकांमध्ये ही मार्तंडाची टीका तयार झाली आहे. हीच जो पठण करितो आणि लेखन करितो तो  
ह्या पृथ्वीवर सुखाचा निधीरूपी जो पुरुषार्थ ह्य० मोक्ष, पृथ्वी, क्षमा, इत्यादिकांला प्राप्त होतो ॥ ३ ॥ अशा रीतीने आपण  
केलेल्या मुहूर्तमार्तंडाची आपणच केलेली मार्तंडवल्लभा नावाची टीका समाप्त झाली ॥ ॥ ॥

॥ अलंकारप्रकरण समाप्त ॥



समाप्त.

विषय संबंधी ग्रंथ व पुस्तक

बॉल पुस्तकालय वरुणक प्रकाशने विभागाचे मंड, प्रांगण ३ वेदिक ३.  
 ग्रंथ शालोपयोगी पुस्तके, आपले बुक रिपॉज विकत मिळतील. जरी यापुढे ही  
 कॉकडून बागणी येतांच पुस्तके त्वरित उपलब्ध होतील.

बालकृष्ण लक्ष्मी-देव.

ठिकाण : दिल्ली/दोहा नाश.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥